बुन्देलखण्डी-लोकगीतों में सांगीतिक-तत्व

t-1636

बुन्देलखण्ड-विश्वविद्यालय, झाँसी
पी.एच.डी. (संगीत) उपाधि हेतु-प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
1998

निदेशक :
डॉ० सत्यभान शर्मा
अध्यक्ष-संगीत विभाग
डी.ई.आई. (डीम्ड विश्वविद्यालय)
दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)

सह-निदेशक :
डॉ० कमलाकर तिवारी
रीडर, हिन्दी विभाग
एस.सी., कालेज,
बलिया (उ०प्र०)

अनुसंधित्सु :
वीणा श्रीवास्तव
प्रवक्ता-संगीत (गायन)
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई-285001
जिला-जालौन (उ०प्र०)

डॉ0 सत्यभान शर्मा
एम0ए0 (साहित्य, संगीत एवं चित्रकला)
पी0एच0डी0 (संगीत)
अध्यक्ष - संगीत विभाग
डी0ई0आई0 (डीम्ड विश्वविद्यालय)
दयालबाग, आगरा (उ0प्र0)

3/186 प्रेमनगर
दयालबाग, आगरा
(उ0प्र0)
दिनांक 2.11.98
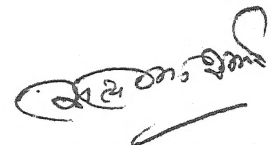
निदेशक का प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती वीणा श्रीवास्तव, एम0ए0 (संगीत गायन), ने मेरे निर्देशन में *"बुन्देलखण्डी लोक गीतों में सांगीतिक-तत्व"* विषय पर शोध-कार्य सम्पन्न किया है। बुन्देली लोकगीतों का संकलन (रिकार्डिंग), उनकी स्वरलिपि, अनुशीलन तथा अन्य पहलुओं द्वारा प्राप्त सांगीतिक-तत्व एवं शोध-सम्यक सामग्री, इनका अनुसंधानात्मक मौलिक कार्य है । बुन्देली लोकगीतों का संगीत की दृष्टि से वर्गीकरण इनके शोध-प्रबन्ध की विशेष शोध-उपलब्धि है, जो शोध-परक कृतित्व का विशेष आंकलन, श्रम एवं निष्ठापूर्वक किये गये कार्य का सूचक है।

नियमानुसार इन्होंने 200 दिन की उपस्थिति पूरी करके अध्यवसाय एवं अध्येतावृत्ति का परिचय दिया है । इस प्रबन्ध का कोई भी अंश अथवा सम्पूर्ण प्रबन्ध किसी अन्य विश्वविद्यालय की शोध उपाधि के लिये विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है । मैं इस शोध प्रबन्ध को परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु संस्तुत करता हूँ ।

(डॉ0 सत्यभान शर्मा)
रीडर एवं अध्यक्ष (कंठसंगीत)
दयालबाग विश्वविद्यालय
दयालबाग
आगरा (उ0प्र0)

'प्राक्कथन'

मां भगवती वाग्देवी की अहैतुकी अनुकम्पा का प्रतिफलन यह 'ज्ञान–महायज्ञ' ऋत्विज गुरूजनों के पौरोहित्य, परमात्मा की पूर्ण कृपा, प्रिय की प्रेरणा, मेरी अनुसंधान–अध्ययन की सहज जिज्ञासा, सतत् साधना तथा कठिन परिश्रम की समिधा से पूर्ण हो सका है।

अस्तु ! लोकवार्ता, लोकमानस की प्रतिकीर्ति है तथा लोक साहित्य लोकवार्ता का एक अंग। लोक–जीवन से संबंधित सम्पूर्ण भावात्मक, सृजनात्मक सामग्री, परम्पराएं, प्रथाएं, विश्वास तथा मान्यताएं, रीतियां तथा प्रचलन 'लोकवार्ता' कहलाती है। लोक–जन की हृदयगत भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति ही लोक–साहित्य है तथा अभिव्यक्ति के विविध रूप ही इसके विविध साहित्यिक भेद एवं रूप हैं। लोक वह दर्पण है, जिसमें लोकजन तथा उसके सम्पूर्ण जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जीवनागत वैविध्य की अभिव्यक्ति विविध रूपों में होने से लोक–साहित्य की विधाओं में विविधता का होना अवश्यंभावी है।

लोकजन जब अपने क्षणिक–हर्ष–विषाद को, ऋतु–व्रत–त्योहारों को, पूजा–उपासना, मंगल–कामना को, संस्कारादि उत्सवों, विधानादि को तथा श्रम–श्लथ–परिहार को स्वर लय देते हैं, गुनगुनाते हैं, तब अन्जाने ही उनके मुख से लोकगीतों की कड़ियां फूट पड़ती हैं। जब वे अपने चरित्र–नायकों के प्रेम, विरह, मिलन, वीरता तथा भक्ति से संबंधित लम्बे आख्यानकों को गीतों में पिरोकर अभिव्यक्त करते हैं, तब वे सहज ही लोकगाथाओं का सृजन कर देते हैं। ग्रामीण–जन श्रम की थकान मिटाने, दादा–दादी, नाना–नानी, अपने छोटे–2 नाती–पोतों के मन को बहलाने तथा स्त्री–पुरुष, व्रत–उपासना में मन–चित लगाने के लिए कथा–कहानी कहते सुनते देखे जाते हैं। लोक नाट्य (रामलीला, रासलीला, स्वांग, नौटकी) गांव–देहात के लोगों के सामूहिक चित्त–विलास तथा मनोरंजन के अनन्यतम साधन हैं। भाव भरे मुहावरे, चुभन भरी लोकोक्तियां तथा जीवनानुभव सिद्ध उक्ति सूक्तियां लोक–जन की वे सहज भावाभिव्यक्तियां हैं, जो श्रोता पर गहरा प्रभाव डालती हैं तथा भाषा में पैनापन लाती हैं। इस प्रकार लोकसाहित्य के अन्तर्गत लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोक नाट्य, लोक–सुभाषित आदि का समावेश होता है। लोक साहित्य की इन विधाओं में लोक गीतों का स्थान सर्वोपरि है।

वेद अपौरुषेय हैं, लोकगीत भी अपौरुषेय हैं, कदाचित् ये वेद से भी प्राचीन हैं। वस्तुतः मानव के आविर्भाव से ही लोकगीतों का उद्भव माना जाता है। यद्यपि इसके

निश्चित जन्म की निर्धारित काल–रेखा खींचना एक दुष्कर कार्य है, फिर भी मौलिक परम्परा के अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में निरन्तर प्रवहमान इसका उद्गम सुदूर अतीत के गर्भ की ओर इशारा करता है। लोकगीतों की प्राचीनता तथा उसके महत्व का प्रतिपादन करते हुए डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है – "ग्रामगीतों का महत्व उनके काव्य–सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है, इनका एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है – एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन, जो अब तक या तो विस्मृत के समुद्र में डूब गया है या गलत समझ लिया गया है...... ग्रामगीत इस (आर्यों के आगमन के पूर्व की) सभ्यता के वेद–श्रुति हैं। वेद भी तो अपने आरम्भिक युग में श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत थे और ग्राम–गीतों की भांति सुन–सुनकर याद किये जाते थे। सौभाग्य वश 'वेद' ने बाद में 'श्रुति' से उतर कर 'लिपि' का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्राम–गीत अब भी 'श्रुति' ही हैं। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य–सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ग्राम–गीतों द्वारा आर्य–पूर्व–सभ्यता का। ईंट पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्राम–गीतों का महत्व मोहनजोदड़ो से भी कहीं अधिक है। मोहनजोदड़ों सरीखे भग्न–स्तूप ग्राम–गीतों के भाष्य का काम दे सकते हैं। वेद श्रुति से उतर कर लिपिबद्ध हो गए लेकिन लोकगीत लोककण्ठ पर ही यात्रा करते रहे। गेयता इसका प्राण–तत्व है।

संगीत शब्द गीत शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाकर बना है। 'सम्' यानि सहित और 'गीत' यानि गायन। अर्थात् गायन के साथ। अतः अंगभूत क्रियाओं वादन तथा नृत्य के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है। गीत वाद्य तथा नृत्य ये तीनों मिलकर 'संगीत' की संज्ञा से विभूषित होते हैं यथा – 'गीतं वाद्यं नृत्यं त्रय संगीत मुच्यते' ।

हमारे देश में संगीत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'सामवेद' भारतीय संगीत का आकर–ग्रन्थ है। यज्ञादि कर्मों के समय इसकी ऋचाओं को गाया जाता था। फलतः वहां संगीत धार्मिकता की परिधि में बंधा था तथा कालान्तर में ये धार्मिकता से स्वतंत्र होकर मानव–जीवन से संबंधित हुआ। इस प्रकार भारतीय संगीत का मूल–स्त्रोत एवं उद्गम स्थान सामवेद है इसी स्थान से संगीत की तीन धाराएं प्रवाहित हुईं। पहली वैदिक परम्परा जिसके आदि–पुरूष ब्रह्मा हैं, दूसरी आगम–पुराण–परम्परा जिसके आदि पुरुष भगवान शंकर कहे जाते हैं और तीसरी भरत परम्परा जिसके प्रचलन कर्ता भरत मुनि कहे जाते हैं।

वस्तुतः लोक तथा वेद से अनुस्यूत सामाजिक धरातल पर संगीत के दो रूप

'लोकसंगीत' तथा 'शिष्ट' या 'शास्त्रीय–संगीत' है। शास्त्रीय संगीत जहां संगीताचार्यों द्वारा स्थापित संगीत–शास्त्र के कठिन नियमों तथा मानदण्डों से अनुशासित होता है, वहीं लोकसंगीत अपने प्रकृतितः स्फूर्त स्वर–लहरियों में उच्चरित। शास्त्रोक्त संगीत में भावना को स्वरों में व्यक्त करने के लिए सम्पूर्ण शक्ति खर्च करनी पड़ती है परन्तु बहुत कम गायकों को भिन्न–2 स्वरूपों को व्यक्त करने की कला हस्तगत हुई है, जबकि लोकगायक उसे सहज ही व्यक्त कर देते हैं।

देशी–संगीत के विकास की पृष्ठभूमि लोक–संगीत है। शास्त्रोक्त संगीत को शास्त्रकारों ने देशी संगीत कहा है। मतंग विरचित 'वृहद्देशी' ग्रन्थ देशी–संगीत का प्राचीन तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। यदि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोकसंगीत से हुई है तो निश्चय ही लोकसंगीत अपने आप में पूर्ण होना चाहिए। लोकसंगीत का निर्माण स्वाभाविक है। इसको समझ कर जब हम विश्लेषण करके नियमबद्ध करते हैं तब वह लोक से हटकर शास्त्रीय रूप धारण करता है। उपर्युक्त धारणा 'लोक संगीत' मात्र के लिए ही नहीं, वरन् 'बुन्देली लोक संगीत' भी इससे अनुस्यूत है।

बुन्देलखण्ड में शस्त्र, शास्त्र तथा संगीत समान रूप से समादृत रहा है। यहां की संगीत–परम्परा बहुत पुरानी है। विश्व–विश्रुत संगीतज्ञ, राग–रागिनियों के सर्जक तानसेन तथा बैजूबावरा की जन्म तथा साधना–स्थली होने का गौरव इस भूमि को सहज ही प्राप्त है। दूसरी ओर वीर लोक काव्य के प्रणेता जगनिक, फाग–साहित्य के अध्येता लोक कवि ईसुरी, गंगाधर, ख्याली राम आदि ने फाग–साहित्य में नये–2 प्रयोग किये हैं।

यहां के राजा–महाराजाओं ने अपने शस्त्र एवं बाहुबल से एक ओर इस धरती के शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है तो दूसरी ओर इनकी छत्र–छाया में ललित–कलाएं (संगीत) भी फलती –फूलती और विकसित होती रही हैं। ध्रुपद–गायिका पद्मश्री असगरी बाई का कहना है कि बुन्देलखण्ड संगीत का गढ़ रहा है। इसकी उर्वर माटी और पारिस्थितिक अनुकूलता ने संगीत को यहां उपजाया है और लोकगीतों की धुनों में ऐसी लोच पैदा की है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

बुन्देली लोकगीत अपनी मार्दव स्वर–लहरियों, लयात्मक धुनों के आरोहावरोह, रंजक राग–रागिनियों तथा अपनी धुनगत वैशिष्ट्य के लिए प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से इस प्रकार गायन वादन की लयों के संस्कार में ढलता हुआ बुन्देली लोक–काव्य अपनी निजी

विशिष्टता और मोहकता लिए हुए है। मालवी, अवधी और ब्रज भाषाओं में इसी प्रकार के लोकगीत होने पर भी इन बुन्देली लोकगीतों का अपना विशिष्ट–स्थान और विलक्षण–लालित्य है। शब्दों के अर्थों को हम न भी समझें तो भी दूर से सुनकर उनकी धुनों के आधार पर हम पहचान सकते हैं कि यह बुन्देली लोक–काव्य गाया जा रहा है, क्योंकि इसमें एक विशिष्ट प्रकार का मार्दव, लोच, लालित्य और प्रांजलता है।

गेयता की दृष्टि से अद्भुत इन बुन्देली लोकगीतों की अक्षुण्ण परम्परा रही है, जिसमें लोकजीवन समग्रता के साथ उभरा है।

किन्तु चिन्ता का विषय है कि मनुष्य में ज्यों–ज्यों बौद्धिक क्षमता का विकास होता गया, त्यों–त्यों वह अपनी तथाकथित पुस्तकीय अहमन्यता से लोक जीवन के विराट–शास्त्र –लोकवार्ता के प्रति उपेक्षित एवं हीन–भावना से ग्रसित होने लगा। प्रकृति की स्वतः स्फूर्त इन लोक कलाओं के मूल को वह अपने ही हाथों काटता गया। परिणामस्वरूप लोकसाहित्य तथा दूसरी ललित–कलाएं राजा–महाराजाओं के प्रस्तर–निर्मित ऊंची–ऊंची चहारदिवारियों–राजदरबारों, महलों में कैद होकर रह गईं तथा मस्तिष्क के स्वस्थ–प्रक्षालन के स्थान पर विलासिता की वस्तु बन गईं। दूसरे शब्दों में इन कलाओं से जनजीवन का संबंध कटता गया और इनके पांव सुनहरी जंजीरो में जकड़ते गये। हर्ष–उल्लास के स्थान पर इनकी सिसकियां सुनाई देती रहीं और मानव–जीवन के ये अनमोल रत्न चांदी के चन्द–टुकड़ों पर तुलने लगे।

भला हो पाश्चात्य विद्वानों की लोक कलाओं के प्रति सहज जिज्ञासा का, जिन्होंने लोकवार्ता के महत्व को समझा और परिणाम स्वरूप पाश्चात्य जगत् के 18वीं शताब्दी के इस आन्दोलन ने भारतीय समाज–विचारकों को भी प्रभावित किया। फलतः लोकवार्ता और लोक साहित्य के प्रति हीनता, दैन्यता और उपेक्षणीयता के स्थान पर गौरवमय सांस्कृतिक विकास के मूल–बीज के रूप में इनके महत्व को स्वीकारा गया। अतएव सुदूर अतीत से प्रवहमान कतिपय कारणों से बीच में धूलाच्छादित इस शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन, अध्यापन संभावित हुआ और इस देश के विभिन्न भागों में लोक साहित्य के अध्ययन की एक अभूतपूर्व लहर उत्पन्न हो गई।

लोकसाहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा अनुसंधान की दृष्टि से सर्वाधिक कार्य लोकगीतों पर हुआ है। संकलन तथा संपादन के फलस्वरूप इसकी समृद्ध–सम्पदा का

महत्वपूर्ण स्वरूप तो प्रकाश में आया है। परन्तु संगीत एवं उसके प्रतिमानों की दृष्टि से इसका सम्पूर्ण दोहन नहीं हुआ है। आज जब पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता अपनी इलैक्ट्रानिक मीडिया के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर प्रत्यक्ष प्रहार कर रही है, ऐसे समय में लोकजीवन के इस प्रत्यक्ष दर्पण को येन–केन–प्रकारेण सुरक्षित रखने का दायित्व आज के समाज–चिन्तकों पर है।

सांगीतिक दृष्टि से अध्ययन एवं विलुप्तप्रायः होते इन लोकगीतों को 'स्वरलिपि' के माध्यम से ही यथारूप में सुरक्षित रखा जा सकता है। अतः यह शोध–प्रबन्ध लोकगीतों को यत्किंचित सुरक्षित रखने तथा इसके माध्यम से साहित्य व संगीत के अन्योन्याश्रित संबंधों को उजागर करने तथा उपेक्षित कलाकारों (गायकों) एवं उनकी कला को सामने लाने का विनम्र प्रयास है।

प्रयोग–आधारित यह शोध–कार्य बुन्देलखण्डीय लोक–सम्पदा के अनुपम सांगीतिक भाव–सौन्दर्य को उद्‌घाटित करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस शोध–अवधि में रूचिकर, ज्ञानवर्धक व रोमांचक अनुभव प्राप्त हुए। भिन्न–भिन्न क्षेत्र के लोक गायकों (स्त्री–पुरूष) द्वारा लोकगीतों की विविध विधाओं की प्रकृतितः धुनों को 'टेप रिकार्ड' करने का सुअवसर मिला। परिणाम स्वरूप लोकजीवन को अत्यन्त करीब से देखने का अवसर मिला। उनके सरल, स्वच्छन्द व निश्चल जीवन ने मुझे अत्यधिक–प्रभावित किया।

पद्‌मश्री असगरी बाई, टीकमगढ़ (म०प्र०) से गीतों के अतिरिक्त कई प्रेरक प्रसंग व जानकारियां प्राप्त हुईं उन्होंने 'लोक–अस्मिता' की इन धरोहरों को बचाने के प्रयास पर जोर दिया। लोक भजन शैली के गायक श्री अमरदान जी से भी साक्षात्कार हुआ, जिन्होंने बुन्देली–लोकगीतों को 'लोक' का 'सांगीतिक–प्रसाद' बताया।

यह शोध–प्रबन्ध प्राक्कथन, उपसंहार को छोड़ कर सात अध्याओं में उपनस्त्य है।

प्रथम अध्याय : 'लोक–तत्व स्वरूपगत विश्लेषण' से संबंधित है। इसके अन्तर्गत लोक शब्द का अर्थ और उसके स्वरूप पर विचार किया गया है। समस्त भारतीय वाङ्मय या तो लोकाश्रयी है या वेदाश्रयी। लोकव्याप्त जन सामान्य की समस्त व्यावहारिक और कलात्मक गतिविधियां जो परम्परानुमोदित तथा संस्कारनिष्ठ हैं साथ ही अलिखित हैं और वेद से बौद्धिक, लिखित, शास्त्रीय या प्रमाणित गतिविधियां, लिखित तथा विदित हैं। अतएव लोक

तथा वेद के दो पहियों पर ही भारतीय समाज का रथ चलता है। इसके परिप्रेक्ष्य में लोक शब्द की प्राचीनता तथा लोक और वेद के अन्तर्सबंधों पर विचार किया गया है।

लोक शब्द का प्राचीनतम स्वरूप आज अपनी अर्थवत्ता में असीम होकर ज्ञान की एक विशेष शाखा का प्रतिनिधित्व करने लगा है यह अंग्रेजी के FOLK के सामीप्य ही नहीं, वरन् उससे अधिक अर्थवान है। लोकवार्ता शास्त्र और लोक साहित्य का अंग–अंगी संबंध और इसके पारस्परिक अन्तर्संबंधों का निरूपण करते हुए भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के अभिमतों से इसकी पुष्टि की गई है। लोकवार्ता का विषय अत्यन्त विस्तृत है। विद्वानों के अभिमतों के आलोक में इसके विषय का निर्धारण किया गया है। लोकवार्ता की अभिव्यक्ति में कला केवल किसी सौन्दर्यानुभूति का प्रकाशन नहीं है वरन् लोकवार्ता और कला का जनजीवन और इसके विश्वासों से घनिष्ट संबंध है। इसके परिप्रेक्ष्य में लोकवार्ता तथा अन्य समाजिक विज्ञान व ललित कलाओं के पारस्परिक अन्तर्संबंधों पर विचार किया गया है।

लोकवार्ता के लोकतत्व – अभिजात साहित्य और लोक साहित्य में किस प्रकार अनुप्रविष्ट होते हैं, इसका निरूपण करते हुए लोक–साहित्य, लोकभाषा के साहित्य एवं लोकचेतना के साहित्य के अर्थ को समझा गया है। साहित्य के उपादानों के रूप में लोकतत्व की भूमिका क्या है तथा वह साहित्य को किस प्रकार प्रभावित तथा महिमा–मंडित करता है, पर विस्तार से विचार किया गया है। इस प्रकार लोकतत्व के सम्पूर्ण आयामों को वैज्ञानिक तथा शोध–परक दृष्टि से जांचने–परखने तथा परिभाषित करने का प्रयास, इस अध्याय का विषय है।

द्वितीय अध्याय : "बुन्देलखण्ड एक परिचय" पर आधारित है। बुन्देलखण्ड के भौगोलिक परिचय के अन्तर्गत प्रथमतः इसके नाम पर विचार किया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अभिमतों के मंथनोपरान्त यह सुनिश्चित किया गया है कि कतिपय राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों ने इस भू–भाग के नाम को अनेकानेक बार परिवर्तित किया है और नाम की यह यात्रा प्राचीन चेदि–देश, दशार्ण, जेजाक–भुक्ति आदि से होती हुई वर्तमान 'बुन्देलखण्ड' तक आई है। क्रेम्बियन युग की चट्टान से निर्मित इसकी मिट्टी, जहां एक ओर इसकी प्राचीनता को द्योतित करती है, वहीं दूसरी ओर उत्तर में आगरा, इटावा, दक्षिण में बालाघाट, छिंदवाड़ा, पूरब में छोटा नागपुर, उड़ीसा से लेकर पश्चिम में निमाड़ तथा राजस्थान से परिवृत भारत के इस हृदय भू–भाग का क्षेत्रफल लगभग 51000 वर्ग कि० मीटर है, जो इसकी विशालता को दर्शाता है। बुन्देली क्षेत्र–विस्तार के अन्तर्गत इस पर

गवेषणात्मक दृष्टि डाली गई है। चूंकि स्वतंत्र भारत में बुन्देलखण्ड की कोई राजकीय सीमा निर्धारित नहीं की गई है, इसलिये इसका सीमांकन बुन्देली भाषा–भाषी क्षेत्र के आधार पर किया गया है।

शौरसेनी प्राकृत और मध्यदेशीय अपभ्रंश से विकसित बुन्देली के भाषीय स्वरूप पर विचार करते हुए परिनिष्ठ, शुद्ध, मिश्रित तथा विकृत बुन्देली रूपों पर वैज्ञानिक दृष्टि डाली गई है। लगभग एक लाख दस हजार वर्ग कि0मी0 क्षेत्र में फैली इस लोकभाषा के बोलने वालों की संख्या लगभग 1 करोड़ के आसपास है, जिसका विवेचन बुन्देली भाषी जनसंख्या के अन्तर्गत किया गया है।

बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक स्वरूप के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति तथा उसके आयामों के आलोक में बुन्देली जन–जीवन को जांचा परखा गया है। आल्ह–कवि जगनिक, संगीत–मार्तण्ड तानसेन, ईसुरी, ख्यालीराम, असगरी बाई आदि संगीत–रत्नों की रत्नगर्भा यह धरती लोक तथा शास्त्रीय संगीत की गढ़ रही है। सुदूर अतीत को रेखांकित करती यहां की संगीत–परम्परा अद्यावधि प्रवहमान है। इस क्षेत्र की अक्षुण्ण सांगीतिक विकास यात्रा का दिग्दर्शन बुन्देलखण्ड के सांगीतिक स्वरूप में किया गया है।

लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य की विविध विधाओं पर अद्यावधि किये गये संकलन, अनुसंधान, इस क्षेत्र में कार्यरत संस्थाएं, विद्वान मनीषियों के योगदान तथा एतद्विषयक भविष्य की चिन्ताओं का विवेचन – 'संकलन तथा अनुसंधान' के अन्तर्गत किया गया है।

पद्मश्री असगरी बाई, लोक भजन शैली के प्रमुख गायक अभरदान जी, वर्तमान समय में चर्चित एवं लोकप्रिय बुन्देली गीतों के सम्राट गायक श्री देशराज पटैरया का साक्षात्कार दिया गया है साथ ही अन्य गायकों का परिचय भी दिया गया है।

तृतीय अध्याय : लोकगीतों के सिद्धान्त पक्ष से संबंधित है, जिनका विवेचन 'लोकगीत : स्वरूप गत विश्लेषण' के अन्तर्गत किया गया है। लोकगीत, अखिल मानव समुदाय की वह रागात्मक भावात्मक अभिव्यक्ति है, जो काल, स्थान तथा पारिस्थितिक–उत्प्रेरणाओं की कुक्ष से पैदा हुआ है। लोकगीतों में अभिव्यक्त जीवन का यह वैयक्तिक सुख–दुख भावात्मक धरातल पर समष्टि का सुख–दुख बन जाता है। इन लोकगीतों की पृष्ठभूमि का निर्माण विश्व–व्याप्त वे समस्त घटनाएं, परिस्थितियां है। जो मानव–मन को आन्दोलित करती हैं और जिनकी अभिव्यक्तियां लोकगीतों में हुई हैं। लोकगीतों के निर्माण की ये प्रेरणापद

परिस्थितियां पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक रही हैं। इनका विवेचन लोकगीत : उद्गम, परिभाषा तथा पृष्ठभूमि के अन्तर्गत किया गया है, लोकगीत लक्षण, विशेषता एवं महत्व के अन्तर्गत लोकगीतों को समझने–समझाने का प्रयास किया गया है। लोकगीतों की कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएं हैं जो सार्वभौम हैं। इन विशेषताओं में निर्वेयक्तिकता, मौखिक–प्रवृत्ति, लयात्मकता, पुनरावृत्ति, निरर्थक शब्द योजना, प्रश्नोत्तर शैली, वस्तुनाम गणना, संख्याओं का प्रयोग, उपदेशात्मकता, सहजता, अकृत्रिमता तथा स्वच्छन्दता आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो विश्व के सभी लोकगीतों में समान रूप से पाई जाती है।

भारतीय–परम्परा के अन्तर्गत लोकगीतों के प्रचलन पर अन्वेषणात्मक दृष्टिपात किया गया है। हमारे यहां लोकगीतों की प्रचलित परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा विशाल हैं सर्वप्रथम लोकगीतों का परिचय हमें वैदिक संहिताओं से गाथा के रूप में मिलता है। और वहां से अविच्छिन्न इसका प्रवाह महाकाव्य तथा महाभारत से होता हुआ अद्यावधि प्रवहमान है। संस्कृत वाग्ड.मय में कतिपय स्थानों पर लोकगीतों को गाए जाने का प्रसंग आया है और यह प्रसंग पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होता हुआ हिन्दी काव्यों में भी दिखाई पड़ता है। सच तो यह है कि हिन्दुओं में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक की सभी स्थितियों की उद्भावनाएं लोकगीतों में दिखाई देती हैं।

लोकगीत : वर्गीकरण के अनतर्गत लोकसाहित्य के विभिन्न विद्वानों द्वारा लोकगीतों के किये गए वर्गीकरणों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। बुन्देली लोकगीतों की विभिन्न कोटियों पर विद्वानों द्वारा दिये गए अपने अभिमतों के आलोक में सम्यक् संतुलित दृष्टि अपनाते हुए बुन्देली लोकगीतों का ऐसा वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है जिसमें सभी प्रकार के लोकगीतों का समाहार हो सके।

चतुर्थ अध्याय : 'बुन्देली लोकगीतों का विस्तृत विवेचन' है। इस अध्याय में लोकगीत तथा बुन्देली गीतों के विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गए वर्गीकरणों के आलोक में स्थापित वर्गीकरण को 1. संस्कार–गीत, 2. ऋतु–गीत, 3. व्रत–उपासना से संबंधित गीत, 4. श्रम तथा जातीय–गीत तथा 5. विविध गीतों आदि पर बुन्देली गीतों को विस्तार के साथ विवेचित किया गया है।

भारतीय समाज में सोलह संस्कारों की मनुष्य जीवन में अनिवार्यता स्वीकार की गई है। इन संस्कारों द्वारा मनुष्य संस्कारित होता है। इन सोलह संस्कारों में चार संस्कारों – जन्म संस्कार, यज्ञोपवीत, विवाह तथा मृत्यु संस्कार पर किये जाने वाले विविध

विधानों तथा उप विधानों पर गाए जाने वाले गीत विशेष का उल्लेख किया गया है।

भारत देश ऋतुओं का देश है। वर्षा, शरद–बसंत तथा ग्रीष्म ऋतुएं अपनी निजी विशेषताओं के साथ इस धरती को सौन्दर्य–सुषमा से मंडित करती है। बुन्देली लोकजीवन अपने हर्षोल्लास, सुख दुख को प्रकृति से सम्पृक्त कर हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति अपने गीतों में करता है। प्रकृति के इस उतार–चढ़ाव का दिग्दर्शन ऋतुगीतों में किया गया है।

बुन्देलखण्ड का जनजीवन धर्माधारित है। धर्म के बीज रूप यहां के लोक जीवन में प्रचलित व्रत तथा विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा–उपासना में दिखाई देते हैं। इन व्रत उपासनाओं को मनाने में जो लोकगीत गाए जाते हैं, वे वस्तुतः लोकमंत्र हैं। बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोक व्रत–उपासनाओं तथा एतद्विषयक गाए जाने वाले गीतों का विवेचन व्रत–उपासना संबंधी गीतों में किया गया है।

श्रम तथा जीवन का अन्योन्याश्रित संबंध है श्रम से थकान और थकान से कार्य में अरूचि पैदा होती है। इस थकान और अरूचि को दूर करने के लिए बुन्देली–जन गीतों को गाते हैं। यहां कुछ ऐसी जातियां है –ढीमर, धोबी, अहीर आदि जो अपने जातीय कार्यों को करते समय अपने गीतों को गाती हैं। यह जातीय–गीत भी श्रम से संबंधित होते हैं। अतएव बुन्देलखण्ड में प्रचलित श्रम तथा जातीय गीतों का विशद् विवेचन श्रम तथा जातीय गीतों के अन्तर्गत किया गया है।

उपर्युक्त इन वर्गीकरणों से इतर जो लोकगीत इस भू–भाग में देखने–सुनने को मिलते हैं, जैसे बालक–बालिकाओं के गीत, देश भक्ति के गीत, वीर भावना, सौन्दर्य, भिक्षावृत्ति, नीति विषयक गीत आदि इन सभी को विविध–गीत के अन्तर्गत समाहित किया गया है।

पंचम अध्याय : 'बुन्देलखण्डी लोकगीतों में संगीत–तत्व से संबंधित है। यह अध्याय इस शोध–प्रबन्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अध्याय है। इसके अन्तर्गतं प्रथमतः संगीत की दृष्टि से बुन्देली लोकगीतों का विस्तृत वर्गीकरण एवं उसके फलकका निर्धारण किया गया है। और उस फलक पर बुन्देली गीतों को जांचा' परखा गया है। सांगीतिक–तत्वों के आधार पर लोकगीतों का (क) स्वर तथा राग संबंधी (ख) लय व ताल (ग) धुन तथा (घ) लोकनाट्य तथा लोकनृत्य संबंधी संगीत कोटियों के अन्तर्गत सुविभाजन किया गया है।

स्वर, राग, लय, ताल तथा नृत्य आदि संगीत के मूलभूत स्तंभ हैं। इसमें 'स्वर' संगीत की पहली सीढ़ी है। शास्त्रीय संगीत का भव्य भवन सात स्वरों के स्तम्भ पर खड़ा

है। 'स्वर व राग पर आधारित' बुन्देली लोकगीतों में इन स्वरों की विवृत्ति इस प्रकार है – यहां प्रायः लोकगीतों में 4, 5, 6 स्वरों का अधिकतम प्रयोग हुआ है। वैसे 2, 3 व सात स्वरों के गीत भी है। लेकिन इनकी संख्या कम है। इन स्वरों में शुद्ध तथा विकृत स्वरों पर भी आधारित लोकगीत हैं। इनमें कुछ ऐसे भी गीत हैं, जिनमें स्वरों के साथ–साथ श्रुतियों का प्रयोग भी हुआ है जैसे – गोटें, पंवारा, राछरे आदि।

राग के लिए कम से कम पांच स्वर होने चाहिए। इससे कम स्वर–समूह 'तान' कहला सकता है राग नहीं। इस दृष्टि से पांच से सात स्वरों वाले लोकगीत ही रागों की श्रेणी में आ सकते हैं। कुछ लोकगीतों में रागों की छाया है कुछ में मिश्रित रागों का आभास तथा कुछ केवल 'स्वतंत्र–धुन' मात्र हैं। बुन्देली लोकगीतों में विशेषतः पीलू, बिलावल, सारंग, खमाज, काफी, तिलककामोद, दुर्गा, आसावरी, देस, झिंझोटी, गारा, पहाड़ी तथा भैरवी आदि के स्वर, छाया या आभास मात्र दिखाई देता है। इसी परिप्रेक्ष्य में बुन्देली गीतों पर दृष्टिपात किया गया है।

दो क्रियाओं के बीच का अवकाश 'लय' है तथा समस्त प्रकृति के समय–क्रम की निश्चित गति को संगीत के गीत, वाद्य, नृत्य को परिमित करने वाला काल 'ताल' कहलाता है। लोकगीतों में जहां द्रुत, मध्य तथा विलम्बित लय के लोकगीत हैं, वहीं दादरा–खेमटा, दीपचन्दी–चांचर एवं कहरवा तालों पर आधारित लोकगीत भी हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में लय व ताल संबंधित गीतों पर विचार किया गया है।

स्वरों की विशिष्ट गेय संरचना ही 'धुन' है। साधारणतया धुनें 4, 5, व 6 स्वरों में मिली हैं। 2, 3, व सात स्वरों की लोकधुनें भी हैं पर इनकी संख्या कम है। कुछ धुनों में कई रागों का मिश्रित प्रभाव है तथा कुछ में रागों की छाया या आभास ही है। बुन्देली गीतों में एक ही धुन के कई गीत गाए जाते हैं व एक ही धुन में कई गीतों को भी गाते है। उदाहरणार्थ एक ही गीत को फाग, भजन व गारी की धुन में गाया जाता है। पद–रचना की बनावट के आधार पर एक ही विधा के लोकगीतों की कई धुन मिलती हैं जैसे – देवी के गीत, सोहर, फाग इत्यादि। "धुन संबंधी लोकगीतों" में इस पर विस्तृत विचार किया गया है।

"लोकनाट्य तथा लोकनृत्य संबंधी गीतों" के अन्तर्गत ऐसे लोक गीतों पर विचार किया गया है जो इन विधाओं से संबंधित हैं। यहां प्रचलित लोक नाटकों में रामलीला, रासलीला, स्वांग तथा नौटंकी है। लोकनृत्यों में सांस्कारिक, ऋतु त्योहार, जातीय तथा

विविध प्रकार के लोकनृत्य जिनमें मुख्यतः राई, सैरा, दिवारी, ढिमरियाई, कांड़रा, रावला, जवारा तथा बधाई नृत्यों पर विस्तार से विचार किया गया है।

षष्ठ अध्याय : के अन्तर्गत संगीत की दृष्टि से बुन्देली लोकगीतों की स्वरलिपियां तैयार की गई हैं। भारत में गीतों को स्वरलिपिबद्ध करने की दो प्रचलित पद्धतियां हैं – (1) पं० विष्णु नारायण भातखण्डे (2) पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर स्वरलिपि पद्धति। इनमें से भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के आधार पर बुन्देली लोकगीतों का स्वरांकन किया गया है। सांगीतिक वर्गीकरण के आधार पर प्रतिनिधि लोकगीतों की स्वरलिपियां तैयार की गई हैं। तथा स्वरलिपियों के साथ ही स्वर, ताल, राग व उनकी विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। बुन्देलखण्ड में प्रचलित सभी प्रकार के गीतों का प्रतिनिधित्व हो सके, ऐसी दृष्टि अपनाई गई है।

सप्तम अध्याय : 'बुन्देलखण्ड के लोक वाद्य' से संबंधित है संगीत में 'वाद्य' का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि वाद्य की अनुपस्थिति में गायन तथा नृत्य क्रियाएं प्रायः पंगु हो जाती हैं। बुन्देलखण्ड में लोकवाद्यों का प्रयोग, लोकगीतों – नृत्यों में संगति देने अथवा स्वतंत्र रूप से वादन के लिए किया जाता है। इन वाद्यों को तंत्र या तन्तु, अवनद्ध, घन व सुषिर वाद्यों की श्रेणी में बांटा गया है। इनकी बनावट, वादन–शैली तथा लोकगीतों में इनके प्रयोगों पर भी विचार किया गया है परम्परा से प्रचलित कई लोकवाद्य ऐसे हैं, जो विलुप्तप्राय हैं अथवा जिनका प्रयोग अब नहीं के बराबर हो रहा है अतः वाद्यों को रेखाचित्रों में बनाकर इन्हें सुरक्षित रखने का प्रयास भी किया गया है।

'उपसंहार' के अन्तर्गत शोध–प्रबन्ध में किये गए कार्यों का लेखा–जोखा दिया गया है।

इस शोध–प्रबन्ध में जिन पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, लेख आदि से सहायता ली गई है, उनका विवरण संदर्भ–ग्रन्थों की सूची में दिया गया है।

इस शोध–कार्य में जिन विद्वान मनीषियों, गुरूजनों, सहयोगियों आदि ने सहयोग दिया है, उनका स्मरण व आभार प्रदर्शन करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूं।

सर्वप्रथम शोध–प्रबन्ध के लेखन में मुझे अपने पितृ–तुल्य शोध–निदेशक डॉ० सत्यभान शर्मा, रीडर संगीत–विभाग, दयालबाग विश्व–विद्यालय, आगरा का वात्सल्यपूर्ण पथ–प्रदर्शन व निर्देशन प्राप्त होता रहा है। उनके स्नेह व सहज स्वभाव के प्रति मैं कृतज्ञ व वन्दित हूँ।

शोध–प्रबन्ध हेतु प्रबल प्रेरणा स्वरूप मेरे अभिन्न एवं सह–निदेशक डॉ० कमलाकर तिवारी, रीडर हिन्दी विभाग, एस० सी० कालेज बलिया (उ०प्र०) की मैं हृदय से विनयावत हूं, जिनके हार्दिक स्नेह, सामीप्य, मार्ग–दर्शन एवं दिशा–निर्देशन से मैं इस पुनीत कार्य को सुगमता पूर्वक अंजाम दे सकी हूँ।

मेरे परमपूज्य गुरू श्री नत्थूलाल जी, आदरणीय पिता श्री आर०के० सक्सेना, मां श्रीमती पुष्पलता एवं बड़ी बहन श्रीमती मंजू सक्सेना के प्रति भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मुझे प्रारम्भ से ही संगीत के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर किया। उन्हीं के असीम स्नेह व वात्सल्य की छाया में मैं अपने इस शोध–कार्य को आगे बढ़ा सकी।

घर व नौकरी दोनों जिम्मेदारियों को निभाते हुए अनेक समस्याओं के बाद भी मुझे पारिवारिक दायित्वों से मुक्त कर निरन्तर सहयोग व प्रेरित करने वाले मेरे पति श्री अरूण कुमार श्रीवास्तव अध्यक्ष–मनोविज्ञान विभाग डी०वी० कालेज, उरई ने मुझे पूर्ण सम्बल प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप ही यह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हुआ। साथ ही साथ अपने प्रिय पुत्र चि० 'सत्यांशु' व प्यारी बेटी 'श्रुति' के प्रति भी कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मेरे शोध कार्य हेतु अक्सर बाहर रहने पर मेरी अनुपस्थिति से उत्पन्न समस्याओं का मुझे कतई आभास नहीं होने दिया और क्षमाप्रार्थी इसलिये कि मैं इस अवधि में अपने दायित्वों का समुचित निर्वहन न कर सकी।

डॉ० ब्रजेश कुमार, रीडर हिन्दी विभाग डी० वी० कालेज उरई ने शोध कार्य के प्रारम्भिक क्षणों में जो सम्बल एवं दिशा–निर्देशन प्रदान किया, उसके लिए मैं उनकी हृदय से विनयावनत हूँ।

मेरे अग्रज श्री उपेन्द्र तिवारी व अनुज श्री राजेश निरंजन की भी मैं चिर ऋणी हूं जिन्होंने संयुक्त रूप से मेरे भ्रमण, संकलन (रिकार्डिंग) व सामग्री एकत्रित करने में मेरा पूर्ण सहयोग किया है।

श्री ललित मोहन व्याख्याता–सागर, वि० वि० सागर पूर्व कार्यक्रम अधिकारी (लोक–संगीत) आकाशवाणी छतरपुर (म०प्र०) के प्रति भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूं जिन्होंने शोध–अवधि में गांव–गांव साथ जाकर संकलन (रिकार्डिंग) का कार्य करवाया साथ ही संबंधित पुस्तकें (संगीत) व कैसेट्स (टेप) उपलब्ध करवाए।

डॉ० हरिमोहन पुरवार निदेशक बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई ने समय–समय पर शोध संबंधी पुस्तकें एवं पाण्डुलिपियां उपलब्ध करवाईं। उनके सहयोग की मैं हृदय से आभारी हूँ।

मेरी अनुजा श्रीमती नीना श्रीवास्तव सहायक प्राध्यापक (संगीत) शा0 क0 म0 सागर (म0प्र0) एवं उनके पति श्री राकेश श्रीवास्तव की भी मैं ह्रदय से आभारी हूं, जिन्होंने शोध कार्य से संबंधित पुस्तकें व सामग्री उपलब्ध कराने में मेरा पूर्ण सहयोग किया।

बुन्देली लोकगीतों की रिकार्डिंग के लिए मैं जिन जिन क्षेत्रों व सुदूर गांव में गई वहां के ग्रामीणजन, गायक गायिकाओं एवं कलाकारों के प्रति भी मैं ह्रदय से आभारी हूं, जिनके असीम सहयोग से यह शोध कार्य पूर्ण हुआ।

शोध संबंधी साहित्य व संगीत की पुस्तकों व सामग्री उपलब्ध कराने के लिए मैं निम्न पुस्तकालयों की भी आभारी हूं जिनमें–''डॉ0 हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय'' सागर (म0प्र0) 'साक्षरता–भवन' लखनऊ, 'उ0 प्र0 संगीत–नाटक–अकादमी' लखनऊ, 'इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' खैरागढ़ (म0प्र0), 'दयानन्द वैदिक महाविद्यालय' उरई प्रमुख रूप से हैं।

डॉ0 आशा खरे, वरिष्ठ व्याख्याता – लोक संगीत विभाग इन्दिरा कला संगीत वि0 वि0 खैरागढ़, डॉ0 बी0 बी0 लाल – पूर्व कुलपति बु0वि0वि0 झांसी, डॉ0 रामस्वरूप खरे – पूर्व प्राचार्य, डी0 वी0 कालेज, उरई – श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', डॉ0 रिपुसूदन, डी0 वी0 कालेज, उरई, श्रीमती नीलम मुकेश व रामकेश की भी मैं आभारी हूं जिनके असीम सहयोग से यह शोध कार्य इस रूप में प्रस्तुत कर सकी।

मेरे अनुज संदीप सक्सेना ने मेरे शोध कार्य की 'टंकण–प्रक्रिया' में, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है, में तन–मन से पूर्ण सहयोग दिया है। ईश्वर से उसके सुखद भविष्य की कामना करते हुए मैं ह्रदय से आभारी हूँ।

अन्त में मैं अपने सभी शुभचिन्तकों, मित्रों सहयोगियों व शिष्य–शिष्याओं के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं, जिनकी हार्दिक शुभकामनाओं की समिधा से यह शोध महायज्ञ सम्पन्न हो सका।

अनुसंधित्सु,

श्रीमती वीणा श्रीवास्तव

'स्वराश्रय'

633, नया राम नगर, उरई, (उ0प्र0)

'अनुक्रमणिका'

प्रथम अध्याय :–

'लोक तत्व : स्वरूपगत विश्लेषण'

द्वितीय अध्याय :–

बुन्देलखण्ड : एक परिचय

तृतीय अध्याय :–

लोकगीत : स्वरूपगत–विश्लेषण

प्रथम अध्याय

'लोक तत्व : स्वरुपगत विश्लेषण'

(क) लोक का अर्थ और स्वरुप *(भारतीय परम्परा)*

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक–दर्शने' धातु में घञ् प्रत्यय पूर्वक निष्पन्न है[1] जिसका अर्थ है 'देखना'। लट् लकार अन्य पुरुष एक वचन में 'लोकते' रूप बनता है जिसका अर्थ है देखने वाला। अतः समस्त दर्शक जन–समुदाय 'लोक' है।[2]

शब्द कोषों के अनुसार इसके दो मुख्य अर्थ वर्ग में से प्रथम या तो आकाश, पाताल, मृत्युलोक या इहलोक, परलोक आदि का या जनसामान्य अथवा जनसाधारण का बोधक है।[3] यही द्वितीय अर्थवर्ग ही प्रस्तुत प्रकरण में अभिप्रेत एवं मान्य है। इसी का तद्भव हिन्दी रूप 'लोग' है। किन्तु इससे आधुनिक 'लोक' शब्द के पूर्ण अभिप्राय व्यक्त नहीं होता।[4]

प्रयोग परम्परा की दृष्टि से विदित है कि 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। इसकी प्राचीनता को प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वान–विचारकों ने एकमत से स्वीकार किये है। वैदिक औपनिषदिक और पौराणिक, धार्मिक, सहित्येतिहासिक ग्रंथों के अतिरिक्त मध्यकालीन साहित्य तथा वाङ्मय में प्राप्त इस शब्द के विभिन्न अर्थों की प्रयोग–परम्परा एक ओर इसकी अतिप्राचीनता को उद्घोषित करती है, तो दूसरी ओर इसके व्यापक क्षेत्र तथा अर्थ–विस्तार को सांकेतिक भी करती है। परन्तु प्राचीन साहित्य एवं वाङ्मय में इसका

---

1. *सिद्धान्त–कौमुदी, पृ0 417 (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1989)*
2. *हिन्दी–साहित्य का वृहद् इतिहास, षोडस भाग, प्रस्तावना पृ 1*
3. *हिन्दी विश्वकोष : (1) लोक (सं.पु.) लोक्यते इति लोक–घञ्। भुवन। लोक सात हैं, सप्तलोकः भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक (अग्नि पु.) सुश्रुत में दो लोक लोकः स्थावर, जंगम,...... एक मात्र पुरुष इन सब लोकों के अधिष्ठाता। (सुश्रुत सूत्रवस्था 1 अ) (2) जन, आदमी (3) स्थान, निवास–स्थान (4) प्रदेश, दिशा (5) समाज (6) प्राणी (7) यश–कीर्ति। 'लोक' (हिन्दी पु0) एक प्रकार का पक्षी जो बत्तख से बड़ा और खाकी रंग का होता है।*
   — हिन्दी विश्वकोष विशंति भाग, पृ0 367
4. *पृ.–367 हिन्दी सात्यिकोष : सं0 धीरेन्द्र वर्मा पृ0 686*

प्रयोग जिस अर्थ में हुआ है, आज के वैज्ञानिक युग एवं साहित्य ने इसके प्रयोग–क्षेत्र एवं अर्थ में और अधिक वृद्धि कर दी है!

ऋग्वेद में 'लोक' के लिए 'जन' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है और एक स्थल पर इसका प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है।[1] एक अन्य स्थल पर यही भारतीयों के अर्थ में 'जन' शब्द के रूप में व्यवहृत हुआ है।[2] इसी प्रकार अथर्ववेद में पृथ्वी पर प्राप्त सभी वस्तुओं के लिए 'लोक' शब्द आया है।[3] यहाँ पृथ्वी से यह प्रार्थना की गई है कि वह इस विशल 'लोक' के हमारे अनुकूल करे। जैमिनीय अनिषद में 'लोक' को हमारे अनुकूल करे। जैमिनीय उपनिषद में 'लोक' शब्द क प्रयोग विराट तथा विस्तृत के अर्थ में हुआ है।[4] महावैयाकरण पाणिनी के अष्टध्ययी में 'लोक', सर्वलोक शब्दों क उल्लेख हुआ है तथा इनमें ठञ् प्रत्यय लगाकर 'लौकिकः' और 'सार्वलौकिकः' शब्दों की निष्पत्ति की गई है।[5] पाणिनी ने 'लोक' और वेद में एङत्र गो शब्द के पद के अन्त में विकल्प भाव का होना स्वीकार करते हुए वेद से लोक की पृथक सत्ता स्वीकार की है।[6]

---

1. *नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत, पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ।।*
   — ऋग्वेद 10/90/14

2. *य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवं, विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं ।।*
   — ऋग्वेद 3/53/12

3. *सत्यं वृहद्दत मुग्रं दीक्षा तपो, ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयंति ।*
   सा नो भूतस्य मथस्य पत्न्यु, सं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ।।
   — अथर्ववेद 18/12/1

4. *बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः, क एतद् अस्य पुनरीहितो अयात् ।।*
   —जैमिनीय उपनिपद् ब्रा. 3/28

5. *लोक सर्वलोकट्ठञ् 5/1/44*
   तत्र विदित इत्यर्थे। लौकिकः। अनुशतिका दित्वा दुभयपद वृद्धिः, सर्वलौकिकः।

6. *लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः स्यात्पदांते। गो अग्रम्। गोऽग्रम्। 6/1/122 सूत्र की वृत्ति द्रष्टव्य है ।*

'लोक' शब्द का प्रयोग वर रूचि के वार्तिकों में, अमुक शब्द का लोक में अनेक रूप में व्यवहार होता हैं – के रूप में किया गया है।[1] महाभाष्यकार पतंजलि ने लोक प्रचलित गौः शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख अपने ग्रन्थ महाभाष्य में किया है।[2] अमरकोशकार ने अनेक लोकों का उल्लेख करते हुए हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक विस्तृत प्रदेश अर्थात् भारतवर्ष को 'लोक' कहा है और 'लोक' का प्रयोग स्वर्गादि 'लोक' तथा 'जन' के अर्थों में भी किया है।[3]

उपर्युक्त आर्यग्रन्थों की अवधारणाओं को संपीड़ित करते हुए लोक शब्द का व्यवहार वेद में जीव तथा स्थान के लिए उपनिषदों में इहलोक तथा परलोक के लिए, निरूक्त में पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा वायु, लोक के लिए तथा पुराणों में भूः, भुवः आदि सप्त लोकों के लिए किया गया है। कोशादि ग्रन्थों में 'लोक' शब्द का व्यवहार संसार, स्थान विशेष, निवास स्थान, प्रदेश, दिशा, लोग, प्राणी, समाज आदि अर्थों में किया गया है ।

महाभारत में "प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः"[4] द्वारा लोक का प्रयोग लोक–जीवन के लिए ही हुआ है। अर्थात जो लोकों का प्रत्यक्ष सर्वदर्शी होता है और लोक–जीवन को अनुभूति के स्तर पर हृदयंगम करता है, उसे मानस–चक्षु से देख–परखकर सर्वदर्शी बन जाता है ।

गीता में 'लोक–संग्रह' और लोकोक्षय द्वारा क्रमशः त्रिलोक, 'जनसाधारण' अथवा 'जन–समूह' का बोध कराया गया है।[5]

---

1. *लोकस्य पृणे। सि. कौ. पृ. 267/6 वार्तिक सूची ।*
2. *केषां शब्दानाम् लौकिकानां वैदिकानां च। एकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी–गोणी–गोता–गोपोतलिकेत्ये व मादयोऽपभ्रंशाः।*
   – महाभाष्य – प्रथम आह्निक
3. *अर्थो जगती लोकोविष्टयं भुवनं जगत, लोकोव्यं भारतवर्ष शरावत्यास्तुगो बधे ।।*
   – अमरकोश – 6, पृ. 47 ।
   आकाशेति दिवेवाकः लोकस्तु भुवने जने । वही पृ. 192 श्लोक 2 ।
4. *महाभारतः उद्योग पर्व 43/36*
5. *कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।*
   लोक संग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ।। *-- भगवदगीता 3/20*

अशोक के शिला–लेख में भी इसका प्रयोग सर्व–सामान्य प्रजावर्ग के लिए ही हुआ है।[1]

इस प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य में लोक की प्रयोग परम्पराएं इन्हीं अर्थच्छायाओं से अनुशासित है। सच तो यह है कि समस्त भारतीय वाङ्मय या तो लोकाश्रयी है या वेदाश्रयी। एक ही जन समूह और उसके मानस के दो पक्ष जो परस्पर पूरक हैं। यहाँ 'लोक' से हमारा तात्पर्य लोक–व्याप्त जन सामान्य की समस्त व्यावहारिक और कलात्मक गतिविधियां जो परम्परानुमोदित तथा संस्कारनिष्ठ हैं, साथ ही अलिखित है और वेद से बौद्धिक, लिखित शास्त्रीय या प्रमाणित गति विधियां है जो लिखित तथा विदित है। दोनों एक ही समाज की पूरक संस्कृतियां हैं। लोक तथा वेद के दो पहियों पर ही भारतीय समाज का रथ चलता रहा है। इसीलिए समन्वय और मर्यादा के प्रतीक महाकवि तुलसीदास भी लोक तथा वेद को अभिन्न मानते है। [2]

यह तो हुआ 'लोक' का भारतीय परिवेश और क्षेत्र। प्रस्तुत अध्ययन के संदर्भ में इस अर्थ का विस्तार भारतीय अर्थ के समानान्तर प्रतीत होता है। आज यह अपनी प्राचीनता के संकुचित क्षेत्र को छोड़कर असीम हो गया है। आज यह ज्ञान की एक विशेष शाखा का मुख्य विषय बन गया है और बहुत कुछ रूढ़ हो चला है। जनसमुदाय और किसी रूप में भी सर्वसामान्य जनता की उपलब्धियां तथा गतिविधियां इसके विषय–क्षेत्र में आती हैं। ज्ञान–विज्ञान की सभी शाखाएं इस क्षेत्र से अनिवार्यतः सम्बद्ध हैं। आधुनिक काल में 'लोक' शब्द 'लोकवार्ता' के अर्न्तगत एक पारिभाषिक पद के रूप में विशिष्टता प्राप्त कर चुका है। अतः इसके वास्तवित अर्थ को 'लोकवार्ता' के क्षेत्र से ही सम्बद्ध मानना चाहिए। इसी की सापेक्षता में लोक शब्द के आधुनिक अर्थ को अपने प्राचीन विस्तार से आगे समझा जा सकता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपनी प्राचीन भारतीय अर्थच्छायाओं से पूर्णतः विच्छिन्न है। लोकवार्ताविदों ने 'लोकवार्ता' की परिभाषा करते समय 'लोक' और 'लोकतत्व' पर भी विचार किया है। उनके विभिन्न मतों से इसका अभिप्राय ज्ञात होता है।

---

3. *अशोक के शिला–लेख पृ. 177 गिरिनार में*

4. *लोकहुं वेद सुसाहिब रीती, विनय सुनत पहिचानत प्रीति ।।*

– रामचरित मानस, बालकाण्ड – 28 (क) 5

ऊपर 'लोक' से 'वेद' के सम्बन्ध की ओर संकेत करते हुए उन्हें परस्पर पूरक बताया गया है इससे विदित है कि 'लोक' जनसामान्य का प्रतिनिधि है और वेद विशिष्ट जन–समूह का। जबकि दोनों स्वभावतः एक दूसरे से घुले मिले हैं। दोनों का समन्वय ही किसी मानव जातिवर्ग की रचनाशीलता तथा उर्वरता का द्योतक है। किन्तु जहाँ तक 'लोक' का संबंध है, वेद उससे परे नहीं ! इस संबंध में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि – ''लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचिसम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।[1]

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस 'समूची–जनता' के स्वरूप का परिचय देते हुए स्पष्ट किया है कि "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक के कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथिवी, और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इनका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार, और निर्वाण का नवीन रूप है। लोक–पृथिवी–मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।[2]

इस विषय को विशिष्ट रूप से परिभाषित करते हुए–''श्याम परमार और डा० सत्येन्द्र ने लिखा है। "लोक साधारण जन–समाज है, जिसमें भू–भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग–भेद रहित व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता–संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, किन्तु 'लोक'

---

1. *डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : जनपद, खण्ड 1, अंक 1, (अक्टूबर 1952)*
2. *डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल : सम्मेलन–पत्रिका (लोक संस्कृति – विशेषांक) 'लोक का प्रत्यक्ष–दर्शन' शीर्षक निबन्ध – पृ. 67*

दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वहीं समाज का गतिशील अंग है।[1]

'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन' में डा0 सत्येन्द्र ने स्पष्ट किया है – "लोक–मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोक–तत्व कहलाते हैं।"[2]

विश्वभारती, शान्ति निकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष डा0 कुंज बिहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा बताते हुए 'लोक' शब्द की भी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा हैं – "लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते है।"[3]

'लोक' एवं 'लोक तत्व' के उपर्युक्त सह–सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए डॉ0 कुन्दन लाल उप्रेती ने कुछ इसी प्रकार का अपना भी मत स्थिर किया है – "लोक' ज्ञानाहं, बौद्धिक चेतना, सुसंस्कृत तथा परिष्कृत रूचि वाले मनुष्यों के समुदाय से इतर अभिजात्य संस्कार एवं शिक्षा से हीन एक ऐसा समुदाय है जो आदिम प्रवृत्तियों तथा परम्पराओं की धारा में बहता हुआ अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति जिन तत्वों के माध्यम से होती है वे "लोक–तत्व" कहलाते हैं"।[4] इन्हें हम चाहें तो लोकवार्ता तत्व या लोक संस्कृति तत्व भी कह सकते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि – मानव समुदाय का वह समूह जो आदिम प्रवृत्तियों, परम्परागत जीवन – शैलियों तथा सरल अकृत्रिम जीवन जीने का अभ्यासी है। जो अहमन्यता, बौद्धिकता, सुसभ्यता, सुशिक्षा तथा बनावट से दूर तर्क–वितर्क रहित सभी–कर्मों को पाप–पुण्य के रूप में देखता है। भाग्य पर विश्वास करता है और सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की जीवनगत आवश्यकताओं की चीजों को पैदा करता है, वह 'लोक' है। ऐसे लोगों की अभिव्यक्ति जिन तत्वों से होती है, वे 'लोकतत्व' कहलाएगे'।

---

1. *डाॅ0 श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य पृ0 10*
2. *डाॅ0 सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ0 3*
3. *हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (षोडष भाग) प्र0 सं.म.स. राहुल सांकृत्यायन पृ.3–4*
4. *डॉ0 कुन्दन लाल उप्रेती : लोक साहित्य के प्रतिमान, पृ0 6*

(ख) हिन्दी का लोक तथा अंग्रेजी का फोक शब्द

'लोक' शब्द की उपर्युक्त अर्थच्छायाओं में, कतिपय परिभाषाएं आधुनिक अर्थ की सीमा में आती है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि यह अर्थ अंग्रेजी 'फोक' की अर्थ व्याप्ति से कहीं न कहीं जुड़ा है। भारोपीय आर्य भाषा परिवार के अर्न्तगत 'लोक' और 'फोक' दोनों की अर्थ परम्पराएं एक ही मूल से विकसित हुई प्रतीत होती है। अतः दोनों के अर्थों में किसी सीमा तक साम्य होना स्वाभाविक है, इनकी अर्थ परम्पराएं अलग-अलग अवश्य विकसित हुई हैं किन्तु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विचारपूर्वक देखा जाय तो दोनों मूलतः एक ही भाषा परिवार से विकसित होने के कारण पर्याप्त मेल में है। वैसे 'फोक' और 'लोक' दोनों ही अपने आधुनिक विशिष्ट अर्थों से घट बढ़कर हैं।

'फोक' (FOLK) एंग्लोसेक्शन शब्द (FOIC) से व्युत्पन्न है। जर्मन में इसका (VOLK) रूप प्राप्त होता है। इसी प्रकार योरोप की अन्य आर्य-भाषाओं में उच्चारण एवं वर्तनी भेद से इसके रूपान्तर प्राप्त होते हैं। जहाँ तक 'फोक' शब्द का प्रश्न है वह संकुचित तथा व्यापक दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। संकुचित अर्थ में यह असंस्कृत एवं मूढ़ समाज का बोधक है, वहीं व्यापक अर्थ में किसी राष्ट्र के सुसंस्कृत एवं शिक्षित जन-समुदाय का बोधक भी है।

'फोक' के लिए हिन्दी साहित्य में 'लोक' जन तथा ग्राम शब्दों के प्रचलन का उललेख ऊपर हो चुका है। पं० रामनरेश त्रिपाठी का 'ग्राम' शब्द पर अधिक आग्रह है और इसी आधार पर वह 'फोक सॉंग' के लिए 'ग्राम-गीत' स्वीकार करते हैं।[1]

देवेन्द्र सत्यार्थी तथा सुधांशु जी इसी का समर्थन करते हैं किन्तु इस मत का खण्डन करते हुए डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि "यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो 'ग्राम' शब्द 'लोक' के भाव को व्यक्त करने में नितांत असमर्थ है। 'ग्राम' शब्द 'लोक' की विशाल भावना को अत्यन्त संकुचित कर देता है। यदि गम्भीर दृष्टि से विचार करें तो लोक की सत्ता नगर तथा ग्राम दोनों में समान रूप से विद्यमान है। परन्तु ग्राम शब्द गाँव तक ही सीमित है। आज बम्बई और कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में भी निवास

---

1. *रामनरेश त्रिपाठी : जनपद खण्ड 1, अंक 1 "ग्राम साहित्य" शीर्षक निबंध, पृ0 5-16*

करने वाले निम्न वर्ग के लोग गीत गा–गाकर अपना मनोरंजन करते है। अतः उनके गीतों को 'लोक गीत' न कहकर जो लोग 'ग्राम गीत' कहने का आग्रह करते हैं उनका यह आग्रह दुराग्रह मात्र है।(1)

डॉ0 मोतीचन्द्र जी ने 'फोक' का पर्याय 'जन' माना है यद्यपि 'जन' शब्द का प्रयोग संस्कृत प्राकृत तथा हिन्दी में प्राचीन काल से होता आ रहा है और इसी से जनपद, जनप्रवाह आदि शब्द प्रचलित है, जिनका अर्थ ग्रामीण क्षेत्र से ही है तथापि आज 'जन' शब्द मिल–मजदूरों तक ही सीमित रह गया है।

जिस प्रकार 'ग्राम' शब्द अत्यन्त संकुचित है उसी प्रकार 'जन' शब्द में उतनी ही अतिव्याप्ति है। अतः 'फोक' के लिए 'जन' शब्द भी उतना उपयुक्त नहीं, जितना अपेक्षित है।

वास्तव में 'लोक' शब्द की एक अपनी परम्परा तथा भावबोध है, जिसके कारण यह अन्य शब्दों की अपेक्षा 'फोक' शब्द के समीप ही नहीं, वरन् उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ अर्थ रखने वाला भी है। अतः 'फोक' के लिए 'लोक' शब्द ही समीचीन है। भारतवर्ष गाँवों का कृषि प्रधान देश है, जहाँ नगरों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। ऐसा होने पर यहाँ के नगर तथा गाँव संस्कृति एवं सभ्यता की सनातन धारा के दो तट होने से परस्पर संपृक्त एवं पूरक हैं। कोई गाँव ही शताब्दियों में अनेक कारणों से नगर का रूप धारण करता है। अनेक स्थानों से लोग उसके महत्व को देखकर आते और बसते जाते हैं। सच पूछा जाय तो गाँवों से टूटकर नगर को आने वाली आब्रजन धाराएं आज भी प्रवाहित हो रही हैं, इसी प्रकार, नगर की अधिक जनसंख्या देहातों की होती है। ये लोग विभिन्न स्थानों की मान्यताएं और रीतियां अपने साथ लाते, तथा एक साथ वर्षों या शताब्दियों रहकर एवं स्थानीय रीति तथा मान्यताओं से प्रभावित होकर अनुकूलन तथा समन्वय द्वारा एक नये 'लोक' का निर्माण करते हैं। यही कारण है कि लौकिक धारणाओं जैसे – अन्धविश्वास, लोकाचार, भूतप्रेत, जादू–टोना, टोटका, कथा–कहानी, गल्प, पूजा–पाठ, त्यौहार आदि का पालन गाँवों तथा शहरों में समान रूप से दिखाई पड़ता है। भारतीय मानव समाज (सभ्य तथा असभ्य) तो जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त परम्परागत लौकिक संस्कारों में आबद्ध है। अतः लोकवार्ता तथा लोक–साहित्य के संदर्भ में 'फोक' के अर्थों में 'लोक'

---

1. *हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (षोडस भाग) पृ0 9*

शब्द की उपर्युक्तता निर्विवाद है। अपनी भिन्नताओं के होते हुए भी नगर और गाँव की गतिविधियां तथा परम्पराएं मूलतः तथा अन्ततः एक ही 'इण्डियन फोक' या 'भारतीय लोक' का प्रतिनिधित्व करती हैं। अस्तु 'फोक' को पर्याप्त सीमा तक व्यंजित, ध्वनित करने में उसका 'लोक' रूपान्तर या भावान्तर अपेक्षाकृत अधिक समर्थ है।

❑

(ग) लोकवार्ता का विवेचन

'फोकलोर' (FOLKLORE) शब्द का हिन्दी अनुवाद 'लोकवार्ता' है। इसके संबंध में 'फोक शब्द पर पर्याप्त विचार 'लोक' तथा 'फोक' के विवेचन में किया जा चुका है। अंग्रेजी LORE शब्द एंग्लोसेक्शन लरे LARE से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है ज्ञान या विद्या। अतः 'फोकलोर' शब्द का सामान्य अर्थ हुआ असंस्कृत या अल्प शिक्षित जन समूह का परम्परित ज्ञान। जॉन आव्रे सम्भवतः यूरोप के ऐसे पहले विद्वान विचारक हैं। जिन्होंने साधारण जनता के रीति रिवाज, विश्वास एवं धारणाओं आदि का अध्ययन शुरू तो किया किन्तु इसे शास्त्र या विज्ञान की दिशा देने में असमर्थ रहे। लेकिन 'लोक' की सामग्री को अध्ययन का विषय बनाते हुए सन् 1846 में पहली बार 'फोकलोर' शब्द का प्रयोग डब्ल्यू जे० टामस ने सभ्य जातियों में पाये जाने वाले असभ्य लोगों की प्रथाओं, रीति--रिवाजों के परम्परागत्--ज्ञान के लिए किया।[1]

इस विचार क्रम में उनके कथन का तात्पर्य है कि आदिम परम्परा में विकसित असंस्कृत एवं पिछड़ी जातियों के अन्धविश्वास, प्रथाएं, रीति–रिवाज, मान्यताएं आदि आगे चलकर संस्कृत एवं सभ्य जातियों में आंशिक रूप से प्राप्त होती है।[2]

---

1. *"Folklore word was coined by W.W. Thames in 1846 to denote the traditions, customs and superstitious of the uncultured classes uncultured nations. The meaning of the word. Is however presented not by definitions but by usage and to day the scope of Folklore includes what was deliberately excluded in early definition popular arts and crafts i.e. the material as well as the intellectual culture of the peasinting."*

   - Encyclopaedia Britaennica : W.W. Thomas Vol. 10, 1846

1. *इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज, जिल्द 5, पृ. 288*

ये परम्पराएं ही लोकवार्ता के अध्ययन क्षेत्र में आती है दूसरे शब्दों में लोकवार्ता[1] के अर्न्तगत् वह समस्त अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें आदिम मानस के अवशेष आज भी दिखाई पड़ते है।[2] आज की वैज्ञानिक दृष्टि यह मानती है कि विश्व की प्रत्येक

---

1. *"Folklore may be said to include the culture of the people, which has not been worked in to the official, religion and history. But which is and has always been of self-growth."*

   - Psychology and Folklore by R.R. Marett. P. 76

2. *(i) Modern reserches into the early history of man, conducted on different lines have converged with almost irresistible force on the conclusion that all civilizaed races have at some period or other emerged from a state of savagery resembling more or less closely the state in which many backward races have continued to the present time; and that long after the majority of men in a community have ceased to think and get like savages, not a few traces of the old ruder modes of life and thought survive in the habits and institution of the people. Such survivals are in cluded under the head of the folklore, which, in the broadest sense of the word, may be said to embrace the whole body of a people traditionary beliefs and customs. So far as these appear to be due to the collective action of 'the multitude' and can not be traced to the individual or great man -*

   Frazer : Man, God and Immortality (1927) P.P. 42.

   (ii) Myth arose in the savage condition prevalent in remote ages among the whole humen race; it remains compartively unchanged among the modem rude tribes who have departed least from these primitive conditions, while even higer and later grades of civilisation, partly by retaining its actual principles, partly by carrying on in its imperfect result in the form of ancestral tradition, have continued it not merely in toleration but it honour" Tylor, Primitive Culture Vol. i.p. 213 quoted in Poetry & Myth : Prescott at P.13.

(iii) Folklore means the study of survivals of early customs, beliefs, narrative and art - An Introduction to Mythology Lewis Spence, P11.

मानव जाति ने अपनी यात्रा का आरम्भ आदिम बर्बर अवस्था से किया है मनुष्य की दैवी उद्भावना और दिव्य महत्ता–युक्त आरम्भ में विश्वास करना आज मूर्खता समझी जाती है।[1] बर्बरावस्था से विकसित होकर मनुष्य ने आज की सभ्यता उपार्जित की है।

'लोकवार्ता' शब्द पर विद्वानों मे मतैक्य नहीं है। डॉ कृष्णदेव उपाध्याय तथा डा० भोलानाथ तिवारी 'फोकलोर' के लिये क्रमशः 'लोक–संस्कृति' तथा लोकायन[2] शब्द उचित मानते है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार 'लोक–संस्कृति' के अर्न्तगत जनजीवन से सम्बन्धित जितने आचार–विचार, विधि–निषेध, विश्वास, प्रथा, परम्परा, मूढ़ाग्रह, अनुष्ठान आदि हैं वे सभी आते हैं – अतः लोक संस्कृति शब्द 'फोकलोर' के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वथा समर्थ हैं।[3]

यदि 'फोकलोर' के लिये लोक संस्कृति शब्द स्वीकार कर लिया जाय तो प्रश्न यह है कि 'फोक–कल्चर' के लिये कौन सा शब्द उचित होगा ? अतः भ्रमपूर्ण होने के कारण लोक संस्कृति शब्द उपयुक्त नही प्रतीत होता ।

डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने 'लोकायन' शब्द अपनाया है।[4] इस शब्द से चाहे जन–साधारण के धर्म का बोध होता हो, किन्तु रीति रिवाज, धर्म, अन्धविश्वास, परम्परा आदि का बोध तो नहीं हो सकता । इस अव्याप्ति दोष के चलते इसे ही ग्रहण कर

---

1. *Indeed the notion that man began with pure moral and religious ideas and a sensible language but gradually became possessed by a licentious imagination and so fomed untrue and unlovely conceptions, has been quite given up; and we see instead that he began with the crudest dreams and fancies, which were by a long, natural and (in general) healthy growth gradually elevated and refind - Poetry and Myth by Prescott. P. 101*

   डॉ० सत्येन्द्र : 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन' पृ. 14–15 पर उद्धृत ।

2-- *सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति विशेषांक, श्री भोलानाथ तिवारी का 'लोकायन और लोक साहित्य' शीर्षक निबन्ध, पृ0 425 ।*

3-- *हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास : सं0 म0 प0 राहुल सांकृत्यायन (सोड़सभाग) पृ0 11–12*

4-- *वही, पृ0 11 ।*

परम्परित रूप प्रत्यक्ष होता है और जिसके स्त्रोत लोक मानस में पाए जाते है तथा जिनमें परिमार्जन और संस्कार की चेतना काम नही करती है। लौकिक, धार्मिक, विश्वास धर्मगाथाएं, लौकिक गाथाएं कहावतें, पहेलियां सभी 'लोकवार्ता' के अंग हैं।[1] इस क्रम में 'फोकलोर' की व्यापकता एवं अर्थ विस्तार को देखते हुए श्री जे0 एल0 मिश ने उसे इस प्रकार परिभाषित किया है – ऐसे सभी प्राचीन विश्वासों, प्रथाओं और परम्पराओं का सम्पूर्ण योग, जो एक सभ्य समाज के अल्प शिक्षित लोगों के बीच आज तक प्रचलित है 'फोकलोर' है । इसकी परिधि में परियों की कहानियां, लोकानुभूतियां, पुराण–गाथाएं, अन्धविश्वास, उत्सव रीतियां, परम्परागत खेल या मनोरंजन, लोकगीत, प्रचलित, कहावतें, कला कौशल, लोक नृत्य और ऐसी अन्य सभी बातें सम्मिलित की जा सकती हैं।[2]

इन उपर्युक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रीय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत कुछ परिभाषाएं महत्वपूर्ण होने के कारण यहाँ दी जा रही हैं –

1. फोकलोर की परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है सबसे अधिक बुद्धिमानी की बात यह होगी कि हम 'फोकलोर' की परिभाषा केवल उस मौलिक सामग्री के अध्ययन को मान लें, जो कि किसी भी विधा में, जन–समुदाय मे पाई जाती है।[3]

– एम0 डब्ल्यू0 स्मिथ

2. 'लोकवार्ता' एक संज्ञात्मक शब्द है जो किसी भी एक जातीय, कृत्रिमता विपुल जन समूह के समग्र संचित ज्ञान भण्डार अर्थात् उसके रीति–रिवाज, लोक विश्वास, लोक परम्पराओं, लोक–कथाओं,

---

1– डा0 सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, विषय प्रवेश, पृ0 2

*2– **The entire body of anciet popular beliefs, Customs and traditions which have survived among the less educated element of civilized society untiel today: It, thus includes fairy tales, myths legends, Superetetions, festival, rites, traditional games, folksong, popular saying, arts, crafts, folkdance and like.***

— Merria Leach : Dictonary, Vol. I-P. 401

3– स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथॉलोजी एण्ड लीजेण्ड, भाग 1, पृष्ठ 402

लेने की बाध्यता का प्रश्न ही नही उठता, जबकि अन्य कई शब्द हमारे पास हैं ।

श्री गो0 म0 कालेलकर ने 'लौकिक दन्त कथा' शब्द चलाया । इसी प्रकार विद्वानों ने समय समय पर अनेक लोक ज्ञान, लोग विधा, जनश्रुति, लोक वाड्.मय तथा लोक साहित्य आदि को फोकलोर का पर्याय बताया है किन्तु ये शब्द मान्य और लोकप्रिय नहीं हो सके ।

इसी बीच श्री कृष्णानन्द गुप्त के सम्पादकत्व में सन् 1945–46 में 'लोकवार्ता परिषद' 'टीकमगढ़ से लोकवार्ता' नामक हिन्दी पत्रिका निकली । यही घटना इस शब्द के प्रचलन तथा लोकप्रियता का वास्तविक कारण बन गई । डॉ0 सत्येन्द्र 'लोकवार्ता' का एक उद्धरण देते हुए 'फोकलोर' के अर्थो में व्यवहृत लोकवार्ता शब्द की उपयुक्तता सिद्ध करते हैं – "हम इसका अर्थ करते है, जनता की वार्ता । जनता जो कुछ कहती और सुनती अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्ता भी होती है जनता के मानस में लोकवार्ता का जन्म होता है अतएव किसी एक देश की लोकवार्ता को पूरा और विधिवत संग्रह किया जाए तो वहाँ के निवासियों की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाएगा ।[1]

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'फोकलोर' के लिये 'लोकवार्ता' शब्द को उपयुक्त बताया है । उन्होंने इस शब्द का चुनाव वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचलित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' आदि ग्रन्थों के वार्ता शब्द के आधार पर किया है।[2] लेकिन डा सत्येन्द्र ने 'लोर' के लिए डॉ0 अग्रवाल के वार्ता शब्द को स्वीकृत कर फोकलोर के लिए 'घरूवार्ता' तथा 'निजीवार्ता' शब्द सुझाया हैं।[3] उन्होंने लोकवार्ता की व्याख्या इस प्रकार की है –

"लोकवार्ता शब्द विशद अर्थ रखता है समस्त आचार विचार जिससे मानव का

1– डॉ0 सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ0 2,3 – पर श्री कृष्णानन्द गुप्त के मत का उदाहारण ।

2– हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (षोडस भाग) सं0 म0 पं0 रा0 सांकृत्यायन पृ0 10

3– डॉ0 सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, प्रस्तावना पृ0 1

जादू–टोने की क्रियाओं, लोकोक्तियों, लोकगीत इत्यादि का परिचायक हैं, जो कि न केवल उसे साधारण भौतिक बन्धनों में परस्पर आबद्ध रखता है, बल्कि उसके बीच भावात्मक एकता के सूत्र भी है, जो उनकी हर अभिव्यंजना को न केवल अपने रंग में अनुरंजित कर लेते है बल्कि उन्हें निराली एवं निजी विशिष्टता भी प्रदान करते हैं।(1)

– मैक एडवर्ड लीश

3. यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है , जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत सम्मुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति रिवाज, कहानियां गीत तथा कहावतें आदि आती है। प्रकृति के चेतन तथा जड़–जगत् के सम्बन्ध में मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों के सम्बन्ध में भूत प्रेतों की दुनियां तथा उसके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इनके क्षेत्र में आते है। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़जीवन के रीति रिवाज, अनुष्ठान तथा त्योहार, युद्ध–आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के भी रीति–रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते है तथा धर्म गाथाएं, अवदान (लीजेण्ड) लोक कहानियां, सांके (बैलेड) गीत, किवदन्तियां पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय है।(2)

– शार्ल्ट सोफिया बर्न

पाश्चात्य लोकवार्ता विदों, नृतत्व शास्त्रियों, मानव शस्त्रियों तथा लोकतत्व अनुसंधित्सुओं द्वारा दी गई उपर्युक्त परिभाषाओं के साथ यहाँ कुछ भारतीय लोकवार्ता

1– स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथॉलोजी एण्ड लीजेण्ड, भाग 1, पृष्ठ 401

2– डॉ0 सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन पृ0 4 से उद्धृत ।

विद् विद्वान विचारकों की परिभाषाएं प्रस्तुत की जा रही हैं, जो पाश्चात्य् चिन्तन परम्परा में स्वतंत्र रूप से महत्वपूर्ण योगदान करती हैं -

डॉ0 श्याम परमार के मतानुसार – "लोक की अपरिमित शक्ति, साहस, मनोभाव, मान्यताएं, विश्वास, राग-द्वेष, परम्पराएं अड़ाके, टोने-टोटके, अनुष्ठान, रीति रिवाज, गीत-कथाएं, वेशभूषा आदि संयुक्त रूप से लोकवार्ता के चेतन अस्तित्व की घोषणा करते हैं। लोकवार्ता केवल प्राचीन अवशेष मात्र रूढ़ियों का अध्ययन ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् जीवित लोकभावों, लोकाभिव्यक्तियों एवं उनकी प्रवहमान प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करता है"।[1]

प्रसिद्ध प्राच्य विद्या-विशारद डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकवार्ता की परिभाषा करते हुए स्पष्ट किया गया है कि "लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है – लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है । लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोक वार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है।[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में डॉ0 कुन्दनलाल उप्रेती का मत है – "लोकवार्ता लोकमानस की आधारभूमि पर प्रतिष्ठित है और यह लोकमानस किसी जातीय विशिष्टताओं से युक्त होकर धार्मिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक तत्वों के साथ अभिजात समाज में अपनी इन संस्कृति का परम्परागत प्रथा एवं विश्वास के रूप में प्रतिनिधित्व करते हुए आज भी आदिम अविकसित मनुष्यों के समुदाय में सजीव रूप से विद्यमान है।[3]

ऊपर लोकवार्ता की विभिन्न परिभाषाएं दी गई हैं। वास्तव में 1846 में विलियम टामस द्वारा फोकलोर शब्द के प्रयोग के बाद से ही लोकवार्ता की परिभाषाएं प्रस्तुत की जाती रही हैं। इन परिभाषाओं में कुछ तो लोक (फोक) को और कुछ वार्ता (लोर) को दृष्टि में रखकर की गई हैं इसीलिए लोकवार्ता की किसी सर्वमान्य परिभाषा पर विद्वान सहमत नहीं हो सके। विभिन्न देशों के विद्वान सामग्री की विभिन्नता के आधार पर

1– डॉ0 श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य पृ0 16

2– डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल : पृथिवीपुत्र, पृ0 85

3– डॉ0 कुन्दन लाल उप्रेती : लोक साहित्य के प्रतिमान पृ0 12

लोकवार्ता की भिन्न धारणाएं रखते हैं ।

मेरियालीश के 'स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर' के प्रथम खण्ड में 21 परिभाषाएं दी गई हैं। इनसे पता चलता है कि कदाचित परिभाषा के लिए सर्व–प्रमुख तथा सर्वमान्य विशेषता है लोकवार्ता का सम्प्रेषण । विशेषकर मौखिक परम्परा अथवा इस परम्परा में होना ही लोकवार्ता कहलाता है । यह विशेषता भी कई सैद्धान्तिक कठिनाइयां उत्पन्न करती है । किसी लिपि विहीन संस्कृति (निरक्षर संस्कृति) में प्रायः सभी वस्तुएं मौखिक परम्परा से प्राप्त होती हैं जो सभी लोकवार्ता का विषय नहीं होती । इसी प्रकार साक्षर संस्कृति की सभी बातें जिसका मौखिक सम्प्रेषण होता है, लोकवार्ता नहीं होतीं। लोकवार्ता से अतिरिक्त सामग्रियों की भी मौखिक सम्प्रेषण परम्परा होती है । इसीलिए 'मौखिक सम्प्रेषण' के ही आधार पर लोकवार्ता का निश्चय नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार लिपिबद्ध, मुद्रित होने से कोई सामग्री लोकवार्ता से परे नहीं हो जाती । लिखित या मुद्रित लोकगाथा आदि के विषय में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि वे साहित्यिक रचना है जो लोकवार्ता के आदर्श पर निर्मित हुई है ।

ऐसा होने पर भी उपर्युक्त समस्त परिभाषाएं अलग–अलग लोकवार्ता के स्वरूप तथा लक्षण के सम्बन्ध में आंशिक सत्य का ही उद्घाटन करती हैं। किन्तु यदि लोक और वार्ता दोनों को इस प्रकार परिभाषित किया जाए कि दोनों को समान महत्व प्राप्त हो तो अवश्य ही लोकवार्ता की सही परिभाषा बनाई जा सकती है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं में मौखिक सम्प्रेषण परम्परा जीवितांश (सरवाइवल) सामुदायिक आदि शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये लोकवार्ता को लक्ष्य कराने वाले सूत्र है मेरियालीश के कोष में आदर्श परिभाषाओं में 14 इस बात पर सहमत हैं कि लोकवार्ता के अन्तर्गत आदिम कबीलों और सभ्य समाज के अन्तर्गत सह संस्कृति से सम्बन्धित सामग्री रहती है। इस तथ्य को सैम्युअल पी0 बेयर्ड ने अपने लेख 'मैटीरियल्स आव फोकलोर' में बड़े ही संयत ढंग से व्यक्त किया है।[1]

---

1 *"द माइथोपिक फिलासफिक एण्ड एस्थेटिक मेण्टल वर्ल्ड आफ नान लिट्रेट आर फॉरमली अनट्रेण्ड ऑर अनस्कूल्ड ऑर अनलर्नेड, ऑर साइन्टिफिकली अनइन्स्ट्रेक्टेड ऑर क्लोज टू नेचर फोक एवरी व्हेयर, दीज़ मैटीरियल्स ऑर नाट नेसेसरली*

➔

अस्तु ! उपरिलिखित विचारमंथनोपरान्त निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लोकवार्ता समूचे लोकजीवन का वह वृहदशास्त्र है, जिसका सम्यक् ज्ञान, उससे तादात्म्य स्थापित कर ही किया जा सकता है। शास्त्रीय विवेचन और पुस्तकीय पृष्ठपेषण से इसकी मात्र सतही जानकारी ही सम्भव है। मोती तो वह प्राप्त कर सकता है, जो इसमें डूबकर तल--स्पर्श करने का अदम्य साहस और शक्ति रखता हो अतएव लोकवार्ता की सामग्री का संचय करने के लिए प्रत्येक गांव को एक खुली हुई पुस्तक समझना चाहिए । भूमि के साथ संबंधित ग्राम या जनपद का प्रत्येक निवासी उस महान पुस्तक का एक–एक बहुमूल्य पृष्ठ है । हम जब चाहें सुविधानुसार और युक्ति पूर्वक अमृत के समान उपयोगी सामग्री दुह सकते है । लोक की पुस्तक के अमिट अंकों को बांचने और विधिपूर्वक अर्थाने की जिनके पास शक्ति है, उन्हें इस ग्रंथ से किसी काल और किसी अवस्था में भी निराशा न होगी ।

(घ) लोकवार्ता के विषय

लोकवार्ता का विषय अत्यन्त विस्तृत है इसलिए इसकी गणना करना कठिन ही नहीं, असम्भव है, तथापि विद्वानों ने अध्ययन की सुविधा के लिए इसका वर्गीकरण किया है। डा0 सत्येन्द्र ने सोफियाबर्न द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को मान्यता दी है जो इस प्रकार है –

कनफाइन्ड टू दि अनकल्चर्ड आर अनइन्सट्रक्टेड ग्रुप्स ऑव ए सिविलाइज्ड सोसाइटी, बिकाज़ दि प्राइमरी मैटीरियल्स आफ फोकलोर 'मस्ट' बी सर्टेन कैटागरीज़ आव क्रियेटिव आइडियाज़, व्हिच हैव बिकम ट्रेडीशनल एमंग आफ पिपुल आव ऐनी सोसायटी एण्ड व्हिच मे बी रिकग्नाइज्ड ऐज़ देयर कामन प्रापर्टी ।

– जर्नल आव अमेरिकन फोकलोर, सैम्युअल । पी0 बेयर्ड, वाल्यूम 66, 1953

1. *डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल : 'लोक–वार्ता', सं0 कृष्णानन्द गुप्त, वर्ष–1, अंक–1, जून–1944*

1. वे विश्वास और आचरण अभ्यास जो सम्बन्धित है –

1– पृथ्वी और आकाश से ।
2– वनस्पति जगत से ।
3– पशु जगत से ।
4– मानव से ।
5– मनुष्य निर्मित वस्तुओं से ।
6– आत्मा तथा दूसरे जीवन से ।
7– परा–मानवी व्यक्तियों से–जैसे देवताओं देवियों एवं ऐसे ही अन्य से ।
8– शकुनों–अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाशवाणियों से ।
9– जादू–टोनों से ।
10– रोगों तथा स्थानों की कला से ।

2. रीति–रिवाज –

1– सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएं ।
2– व्यक्तिगत जीवन के अधिकार ।
3– व्यवसाय – धंधे तथा उद्योग ।
4– तिथियाँ, व्रत तथा त्योहार ।
5– खेल – कूद तथा मनोरंजन ।

3. कहानियाँ, गीत तथा कहावतें –

1– कहानियाँ

अ – जो सच्ची मानकर कही जाती है ।
आ – जो मनोरंजन के लिए होती है ।

2– गीत सभी प्रकार के
3– कहावतें तथा पहेलियां
4– पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें ।[1]

---

1. *डॉ0 सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, विषय प्रवेश पृ0 5 से उद्धृत ।*

डॉ0 सत्येन्द्र के आधार पर ही मोटे तौर पर डॉ0 श्याम परमार ने लोकवार्ता को निम्न विषयों में वर्गीकृत किया है –

1– लोकगीत, लोककथाएं, कहावतें, पहेलियाँ आदि ।

2– रीति–रिवाज, त्यौहार, पूजा–अनुष्ठान, व्रत आदि ।

3– जादू–टोना, टोटके, भूत–प्रेत सम्बन्धी–विश्वास आदि।

4– लोकनृत्य, नाट्य तथा आंकिक अभिव्यक्ति ।

5– बालक–बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल आदि ।[1]

(ङ.) लोकवार्ता तथा अन्य सामाजिक विज्ञान

लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होने के कारण इसका अन्य सामाजिक विज्ञानों से व्यापक तथा गहरा सम्बन्ध है। प्रभाव और प्रसार की दृष्टि से मानविकी की अन्य शाखाओं से इसका तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन इसकी विषय–वस्तु की विवेचना के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आज मानविकी एवं सामाजिक विज्ञानों के विभागों का सम्बन्ध लोकवार्ता से मान्य हो चला है। साहित्यिक तथा मानव वैज्ञानिक निष्कर्षों में अनिवार्य तथा पूरक सम्बन्ध हैं। मानव विज्ञान की चारों शाखाएं इससे जुड़ी हैं। इसी प्रकार पुरातत्व, उत्खनन तथा इतिहास की सूचनाएं भी लोकवार्ता के अध्ययन में सहायक हैं। इसके द्वारा क्षेत्र–विशेष की उपज खान–पान, रहन–सहन, नदी–पहाड़, शहर–नगर, गांव–देहात आदि की भौगोलिक सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। भाषा–विज्ञान भी इससे अधिक निकटता से सम्बन्धित है, क्योंकि मौखिक अभिव्यक्ति की शैली (लोकोक्ति या कथा वृतान्त की शैली) शब्द सम्पति से और उसके व्याकरणिक गठन से प्रभावित होती है। ललित कला विज्ञान का मूल उत्स लोककलाओं से है इस विान की विकास–प्रक्रिया का ज्ञान बिना लोकवार्ता के सम्भव नहीं है। इस प्रकार आज लोकवार्ता ने एकँ समुन्नत विज्ञान का रुप ग्रहण कर लिया है अतः सामाजिक विज्ञानों से यह पूर्ण रूपेण सम्बन्धित है। यहां लोकवार्ता तथा लतिलकलाओं के अन्तर्सबंधों पर विचार अपेक्षित है।

---

1. डॉ0 श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, पृ0 20

(च) लोकवार्ता और ललित कलाएँ

लोकवार्ता और ललित कलाओं (वास्तु या स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला, साहित्य आदि) का परस्पर घनिष्ट संबंध है। सच तो यह है कि किसी भी कला का प्रारम्भिक रूप लोकवार्ता ही रहा है। लोककलाएं ही कालान्तर में सभ्यता के सोपान पर रगड़ती, घिसती, मंजती, संवरती और परिमार्जित होती हुई विकसित होती हैं। साथ ही एक निश्चित रूप धारण कर संस्कार मण्डित हो, अभिजात कला की संज्ञा से अविहित होती हैं। कला हमारे विचारों तथा भावों की द्योतिका होने के कारण संस्कृति की परिचायक भी होती है। एस0 एम0 असगर अली के शब्दों में – "सामाजिक–जातीय चित्रवृत्तियां कला में स्थान पाती हैं। और कला की उन्नति से उस जाति या देश–विदेश की सांस्कृतिक उन्नति का पता लगता है।"[1]

वास्तु या स्थापत्य कला की आधार शिला ही लोकवार्ता पर रखी जाती है। किसी भी शिलान्यास के नीचे सर्प, कच्छप, मत्स्य आदि की मूर्तियों को रखने का अभिप्राय सम्भवतः शेषनाग व कच्छप के पृथ्वी को धारण करने के परम्परागत लोक विश्वास का द्योतक है। इस प्रकार के स्थापत्यों में उत्कीर्ण अभिप्राय एवं प्रसंगो में लोक–मानस का कोई न कोई विश्वास अवश्य जुड़ा रहता है। श्री डब्लू0 जे0 पैरी के अनुसार–मिट्टी की मूर्तियों में स्त्रियों के अंगों का यह विशदीकरण निश्चय ही किसी जादू–टोने से सम्बन्ध रखता है, मात्र कला–सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए ऐसा होना नहीं माना जा सकता है।[2] जहाँ तक चित्रकला का संबंध है, उनका विचार है कि अत्यन्त प्राचीन चित्रों का जो भव्य रूप फ्रांस तथा स्पेन की प्राचीन गुफाओं की दिवारों पर उत्कीर्ण हैं; इनका संबंध लोकवार्ता से है। क्योंकि इसकी अधिक संभावना है कि इस कला का संबंध भोजन–उपलब्धि से था, कि भोजन के लिए इच्छित पशु का रेखांकन उसके पकड़ने में

---

1. *एस0 एम0 असगर अली कादरी : मूर्तिकला का विकास, संस्करण 1954 पृ0 6*

2. *"These people (of the Aurigracian stage of culture) also practisod sculpture depicting boars and other animals that they chased, but in additon, they made sculptures of faminine from, with the material parts grossly exagge rated. "*

   — W.Y. Parry : the Groth of civilization - 1973.

किसी न किसी प्रकार से सहायक था।[1]

भारतीय संगीत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन होने के साथ ही वह यहाँ की धर्म–साधना का अभिन्न अंग रहा है। इस प्रकार का प्राचीन साहित्य नाट्य, नृत्य तथा संगीत लोकवार्ता ही होती है, क्योंकि ऐसा साहित्य एवं अन्य कलाएं लोकमानस के स्तर से उत्पन्न भावों की ही अभिव्यक्ति करते हैं। लोकवार्ता और ललित कलाओं के पारस्परिक अन्तर्संबंधों पर डॉ0 सत्येन्द्र का यह मत अत्यन्त समीचीन है–"लोकवार्ता की अभिव्यक्ति में कला केवल किसी सौन्दर्यानुभूति का प्रकाशन नहीं, लोकवार्ता की कला का जन–जीवन और इसके विश्वासों से घनिष्ट संबंध होता है। लोकवार्ता संबंधी कोई भी चित्र मनोरंजन के लिए अथवा शोभा–सज्जा के लिए नहीं अंकित किया जाता, वह समस्त अनुष्ठान का एक अंग होता है। जिसमें धर्म, तंत्र–मंत्र और टोने से मिलते–जुलते भावों का अद्भुत मेल रहता है।[2] अस्तु लोकवार्ता और ललित कलाएं परस्पर अन्तर्संबंधित है।

(छ) लोक--कला एवं लोक–संस्कृति

विशेषण 'लोक' से बनने वाले शब्दों में लोक–कला शब्द का अपना एक विशेष महत्व है लेक की कला अथवा लोक में प्रचलित कला अथवा लोक की कलात्मक अभिव्यक्ति इसके विभिन्न उपादान हो सकते हैं।

'लोक--कला' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, वह अर्थ आज नया नहीं है -- वस्तुतः उसे 'प्राकृत' कला कहा जाना चाहिए। 'प्राकृत' शब्द का अर्थ 'अपरिष्कृत' असंस्कृत' असभ्य एवं अपरिमार्जित है। अशिक्षित अथवा असंस्कृत व्यक्ति को 'प्राकृत' कहा जाता है। अतएव जिस कला को सीखने के लिए किसी विशिष्ट शिक्षा, अभ्यास, वैज्ञानिक पद्धति अथवा साधना की आवश्यकता नहीं होती, वह 'प्राकृत'–'कला' है।

1- *"It seems probably that this art was concerned with the food suplly, that the representation of an animal desired for food helped in some way in its capture".*

— W.Y. Parry: the Gowth of civilization 1973 P. 27

2– *डॉ0 सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ0 37*

जो व्यक्ति ज्ञान की अन्य शाखाओं में शिक्षित, परन्तु संगीत में अशिक्षित है, वह संगीत की दृष्टि से 'प्राकृत' ही कहलाएगा, अतएव उसके द्वारा गाए जाने वाले गीत 'प्राकृत–गीत' ही कहलाएगें। इस संदर्भ में श्री के0 के0 हेब्बार का निम्न कथन अत्यन्त समीचीन है–"लोक–कला ऐसे लोगों की सहज अभिव्यक्ति है, जिन्हें कोई प्रशिक्षण नहीं मिला है। वह भावना प्रधान होती है और उसमें आत्म–अभिव्यक्ति होती है। ये सीधे–सादे लोग 'कला कला के लिए' सिद्धान्त की तृप्ति के लिए नहीं बल्कि अपने जीवन और परिवेश को कलात्मक रूप से सम्पन्न बनाने के लिए रंगते और गढ़ते हैं। आदिम गुहा–मानव के परम्परागत सौन्दर्य–ज्ञान ने उसे मिट्टी के कटोरे के ऊपरी हिस्से को कुछ खरोचों से सजाने के लिए प्रेरित किया होगा। सम्भवतः ऐसी ही घटना ने, बाद में उसे अपनी प्रेमिका के लिए हार बनाने की ओर बढ़ाया होगा .... सहजता और सृजनात्मकता का गुण लोक–कला में निरन्तर–विद्यमान रहे–यही उसकी शुद्धता है।"[1]

लोक कला मानव को उसकी ज़मीन से जोड़कर रखती है, जिसके माध्यम से वह काफी सीमा तक आधुनिक चिन्ताओं और समस्याओं से मुक्ति प्रदान कर सकता है। लोक–कला सहजता और आध्यात्मिकता से संपृक्त होती है। उसकी तुलना में शिष्ट–शास्त्रीय कला अत्यधिक अलंकृत और चित्रात्मक है। वस्तुतः लोक–कला ही शास्त्रीय कला की जननी है।

ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से विकास के परिणाम–स्वरूप कला रूपों और माध्यमों में परिवर्तन आएगा ही। परिवर्तन में प्रथमतः गीतों का कथ्य बदल जाए, जो सदा से होता आया है। आज भी 'लोक–कलाएं' (विशेषतः गीत का पद–पक्ष) जितनी सहजता से समसामयिक होती चलती हैं, उतनी सहजता से तथाकथित 'शास्त्रीय धारा' में परिवर्तन नहीं आया करता। किन्तु परिवर्तन जब गीत, चित्र, काव्य के प्रति उनके अन्तस के अनुराग को विघटित कर दे, तब उससे चिन्ता होती है। अतः हमारा ग्रामवासी और आदिवासी प्रकृति से जितना दूर हटेगा, उतनी ही उसकी संस्कृति की ताज़गी नष्ट होगी।

कला और जीवन एक दूसरे के पूरक हैं। अतः जीवन में होने वाले सारे तत्कालीन

1– *"के0के0 हेब्बार" परिचर्चा, संयोजक : रमाकान्त श्रीवास्तव, सम्पादित 'लोक संस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य', – महावीर अग्रवाल पृ0 146*

परिवर्तन कला में दिखाई पड़ते हैं। समाज का आर्थिक–सामाजिक, राजनैतिक ढांचा बदलते ही कला के सारे रूपों में अनुपातानुसार परिवर्तन लक्षित होता है। संस्कृति में भी परिवर्तन होता है, लेकिन संस्कृति नष्ट नहीं होती। मानव–सभ्यता के साथ पैदा हुई संस्कृति, आज तक न नष्ट हुई, न हैं और न होगी। वह रूपान्तरित होती रही है। पुरानी व्यवस्था के बहुत सारे लक्षण उस रूपान्तरण के बाद भी उसमें मौजूद रहते हैं।

यदि लोक कलाओं की आत्मा सुरक्षित रखी जा सके तो लोक कलाओं का बदलाव स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी। लोक–कलाकार कभी–कभी इस कौशल के साथ परम्परागत कलाओं को बदलता है। कि कहीं से भी विकृति या कृत्रिमता नहीं झलकती।

ऐसे बदलाव को विकास कहेगें। श्री जीवन यदु के शब्दों में – "कला किसी एक व्यक्ति का नहीं, वरन् समूचे समाज का 'आत्मबोध' है, और सिर्फ 'आत्मबोध' ही नहीं, वरन् 'आत्म–प्रकाशन' भी है। उनसे हमारी चिन्ताएं–समस्याएं सम्प्रेषित होती है, भले ही वे बहुत स्थूलता के साथ हों। लोककलाओं से लोकजीवन की अभिव्यक्ति होती है। चूंकि लोककलाएं बद्ध–कलाएं नहीं है, अतः उनसे सम्प्रेषित चिन्ताएं और समस्याएं भी युगीन होती है यदि लोक कलाओं में आए परिवर्तन का अध्ययन करें, तो विभिन्न कालों की चिन्ताओं, समस्याओं से हमारा साक्षात्कार हो सकता है। लोक कलाएं भी, अन्य कलाओं की तरह युगीन जीवन को जज़्ब करती हैं और प्रतिक्रियाएं सम्प्रेषित करती हैं। उदाहरण के तौर पर छत्तीसगढ़ के 'नाच' या 'नाचा' को ले सकते हैं, जिसके कलाकार जीवन की समस्याओं को 'हास्य–व्यंग' और हाज़िर–जवाबी के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।"[1]

इस प्रकार "लोक–प्रवृत्तियों की परम्परा का निरीक्षण करने पर पता चलता है कि इसके समस्त सत्व श्रमिक जीवन की विभिन्न अनुभूतियों से भरे पड़े हैं। पहली बार जब आदि मानव ने शिकार की खोज में दौड़ लगाई या पत्थर के एक पैने टुकड़े का निर्माण किया होगा या वृक्ष के कई पत्तों को जोड़ लिया, तो वही उसकी कला का प्रारम्भ माना जाना चाहिए।"[2]

---

1. *जीवन यदु" परिचर्चा, संयोजक : रमाकान्त श्रीवास्तव "लोक संस्कृति आयाम एंव परिप्रेक्ष्य" – महावीर अग्रवाल से उद्धृत पृ0 163*

2. *मार्कण्डेय : सम्मेलन पत्रिका – (लोक संस्कृति अंक) 'लोकसंस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य', – महावीर अग्रवाल से उद्धृत पृ0 166*

निष्कर्षतः ग्राम्य–जीवन की जीवन्त झांकी का ही दूसरा नाम 'लोक–कला' है।

'संस्कृति'–शब्द के व्याकरणिक व्युत्पित्तिमूलक स्वरूप को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है – 'लोक–संस्कृति' शब्द 'लोक' और 'संस्कृति' दो शब्दों से निर्मित है। 'लोक' शब्द की विशद् व्याख्या पूर्ववर्ती पृष्ठों में की जा चुकी है अतः यहाँ 'संस्कृति' शब्द की व्याख्या अपेक्षित है। श्री पाद दामोदर सातवलेकर का कहना है – "संस्कृति का अर्थ 'सम्यक कृति' है और 'संभूयकृति' भी है। अर्थात् मनुष्य व्यक्तिशः 'सम्यक् कृति' करता रहे और संघशः 'संभूयकृति' भी करे। व्यक्ति द्वारा तथा संघ–जीवन द्वारा जिस समय सम्यक् कृति होती है, उस समय वह सम्यक् कृति मानव को अतिमानव बनाने में समर्थ होती है।"[1]

"'संस्कृति' शब्द में 'कृ' धातु है। वह क्रिया के अर्थ में है। क्रिया गतिशील होती है। 'सम' उपसर्ग, 'कृ' धातु तथा 'ति' प्रत्यय से 'संस्कृति' शब्द बना है। इसका अर्थ है परिमार्जित करना, शुद्ध करना, परावर्तित करना और समय तथा स्थिति सापेक्ष–लाभ हेतु बदलना। जो उचित है उसे संभालना और जो जीर्ण हो गया है, उसे त्यागना भी आवश्यक है। संस्कृति प्रवाह है। प्रवाह में जल शुद्ध होता है। स्थिर जल गंदा है जाता है, उसे उपयोग में लाने के लिए या तो उष्ण करना होगा या निजर्तुक बनाने के लिए दवा डालनी पड़ेगी या और कोई क्रिया करनी होगी।"[2]

किसी भी देश की संस्कृति का मूल उद्‌गम वहाँ का लोक जीवन है और 'लोक–संस्कृति' मानव की सामूहिक ऊर्जा का स्त्रोत ।

'लोक–संस्कृति' के संबंध में ईश्वर शरण पाण्डेय का कहना है – "'संस्कृति' संप्रत्यय कुछ अस्पष्ट स है। इसके स्थान पर 'सामाजिक चेतना' संप्रत्यय का इस्तेमाल कहीं अधिक सटीक है। 'संस्कृति' की सभी कृतियाँ–यथा राजनीति, विधि, नैतिकता, कला, विज्ञान, दर्शन और धर्म लोगों के आत्मिक कार्यकलाप, मानव की सामाजिक चेतना के

---

1. *श्री पाद् दामोदर सातवेलकर : सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) पृ0 45 (सन् 1974)*

2. *भाऊ समर्थ परिचर्चा – संयोजक : रमाकान्त श्रीवास्तव, "लोक संस्कृति आयाम एंव परिप्रेक्ष्य" – महावीर अग्रवाल के पृ0 148–149 से उद्धृत।*

मुख्य रूप हैं। मानव कृतित्व और कर्तव्य की व्याख्या संस्कृति है।"[1]

भारतीय मूल संस्कृति का तात्विक अंश है – 'लोक–संस्कृति'। जो आज भी अपने मूल रूप में सुरक्षित है। संस्कृति और लोक–संस्कृति एक ही धरा के दो पुष्प हैं, एक को माली ने संवारा और निखारा है दूसरा प्रकृति की गोद में स्वयमेव हंसा और खिला है। श्री कृष्णदास के अनुसार – "लोक–संस्कृति' प्रकृति की गोद में पलती और पनपती है। लोक–संस्कृति के उपासक बाहर की पुस्तकें न पढ़कर अन्दर की पुस्तकें पढ़ते उनके हृदय–सरोवर में श्रृद्धा के फूल सदा फूले रहते हैं। वस्तुतः लोक–संस्कृति की मूल सहज और विश्वास है, वहाँ तर्क को स्थान नहीं। इन माटी के गीतों में एक ओर सहज विश्वास है, दूसरी ओर प्राचीन अर्थ–व्यवस्था एवं संस्कृति का रूप।"[2]

लोक–संस्कृति के सहज चित्र लोकगीतों में प्राप्त होते हैं। अनेक शैली, बोली, भाषा में गाए गीत एक ही लोक–संस्कृति का शाश्वत रूप प्रस्तुत करते हैं। भिन्न–भिन्न प्रदेश के लोकगीत स्वयं में एक ही संस्कृति को समाहित किये हैं। अनके लोकगीत मध्यप्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि में भागवत धरातल पर समान मिलेगें।

लोक मानस की एक–एक रेखा, सुख–दुख, ह्रास–परिह्रास, विजय–पराजय के इतिहास के दर्शन लोकगीतों में मिलते हैं। दया, धर्म, विश्वास, आस्था, कर्मण्यता, सौजन्यता, दयालुता, शालीनता, परोपकारिता आदि लोक–संस्कृति के मूल–तत्व ग्रामीण साहित्य के प्राण हैं।

राष्ट्रीय वीर भावनाएं, सामाजिक रीतियां, पारिवारिक जीवन के हर्ष–विषादगत् वैविध्यपूर्ण चित्र आदि के सही दर्शन लोक साहित्य में होते हैं। भावनाओं एवं सांस्कृतिक चेतना का अपूर्व सम्मेलन लोकगीतों एवं समूचे लोक साहित्य में देखा जा सकता है। लोक–संस्कृति के अध्ययन से पता लगता है कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में विविधता में एकता आज भी विद्यमान है। यद्यपि स्थानीय रंगों के साथ लोक–संस्कृति में भिन्नता

---

1. *"ईश्वरशरण पाण्डेय" : (लोक और संस्कृति) "महावीर अग्रवाल" के "लोकसंस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य" के पृ0 83 से उद्धृत*

2. *"श्री कृष्णदास" : "लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या" – डॉ0 विनोद तिवारी के "लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन" के पृ0 3 से उद्धृत।*

प्राप्त होती है किन्तु मूल–भाषा प्रायः समान है।

मानव मस्तिष्क एवं सामाजिक परिस्थितियों के विकास के साथ लोक–संस्कृति पुष्पित एवं विकसित होती चली गई। लोक–संस्कृति में समसामयिक बोध की एक–एक रेखा के दर्शन होते हैं – पर्दा–प्रथा, पूजा, पर्व, धार्मिक–विश्वास, बलिप्रथा आदि संस्कृति के अंग हैं और इनके वास्तविक रूप लोकगीतों में प्राप्त होते हैं ।

लोक–संस्कृति तो लोक परम्पराओं में, लोकसाहित्य, लोक–नाट्य, लोक–कला, लोक–कथा, लोकगीत में सहज आत्मीयता के साथ उल्लसित है। जनकल्याण की भावना से आपूरित लोक संस्कृति ने सदैव लोकधर्म के माध्यम से ही अनुभूति और यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है।

भारतीय लोक–संस्कृति का सच्चा प्रतिरूप होने के कारण 'तुलसी की चौपाइयां', 'सूर' और 'कबीर' के पद ऐसे लोगों के होठों में बस गए हैं, जिन्हें अक्षर ज्ञान भी नहीं है। नज़ीर अकबराबादी के गीत अपने समय में लोगों की रोजी–रोटी कमाने का साधन थे। आज भी रेलगाड़ियों में लोग अपनी आजीविका कमाने के लिए 'चनाजोर गरम' तन्मय होकर गाते हैं।

राजाराम भादू ने अपने एक लेख में लिखा है – "भारतीय सभ्यता और संस्कृति में लोक–परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं। लोक–संस्कृति रूपों की विविधता के कारण यहाँ की संस्कृति विविध रूपा है। व्यापक संस्कृति, लोक–संस्कृति से ग्रहण करती है– उसका स्तरीकरण करती रही है। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया लोक–संस्कृति के व्यापक–संस्कृति से विभाजन को अन्तराल वाला विभाजन नहीं बनाती; बल्कि समझने में पहचान को दर्शाती है। अवसर जो अर्जित कर लिया जाता है – लिपिबद्ध या क्रमबद्ध और तर्क संगत कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त जो लिखा नहीं गया, श्रुति स्मरण परम्परा में है, विश्रृंखिल है – एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चल रहा है – विकसित परवर्तित या समाप्त हो रहा है – लोक संस्कृति रूप है।"[1]

---

1. *'राजा राम भादू', " लोक संस्कृति और परिवर्तन प्रक्रिया", सम्पादित–महावीर अग्रवाल के "लोकसंस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य" के पृ. 126 से उद्धृत।*

समय परिवर्तन के साथ ही लोक कलाओं में भी परिवर्तन होते रहते हैं, किन्तु कई बार उनका उपयोग व्यावसायिक दृष्टि से किया जाता है। कभी–कभी आसानी से नाम कमाने की प्रवृत्ति से भी इनमें मिलावट कर दी जाती है। परिवर्तन की इस दौड़ में आकाशवाणी दूरदर्शन एवं अन्या मीडिया लोक–संस्कृति का शोषण कर रहे हैं। इस अर्थ में कि वे उसे नागरजनों के समक्ष प्रदर्शन कर उनके मुँह का स्वाद बदलने के अर्थ में मनोरंजन का साधन मानते हैं। ऐसा नहीं लगता कि वे लोक–संस्कृति के प्रति संवेदनशील, ज़िम्मेदार एवं दायित्व–बोध से प्रेरित हों ।

अतः इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए यह आवश्यक है कि इन प्रसार माध्यमों के निर्माताओं का प्रशिक्षण हो, जिससे वे मात्र विविधता के लिए कार्यक्रम–निर्माण के पीछे न भागें बल्कि कलाओं की प्रवृत्ति को समझें, तभी वे जन समूह में जागृति पैदा कर सकते हैं।

लोक–कलाकार प्रायः अपने महत्व और भूमिका से अनभिज्ञ होता है और इसी का लाभ मीडिया उठाती है। इस सन्दर्भ में कमला प्रसाद के पत्र का एक अंश उद्धृत है– "लोक–संस्कृति के अध्ययन में छलांग सम्भव नहीं हैं। यह व्यक्ति से विश्व तक गुंथी धुन और लय जानने से पकड़ में आएगी। यही तो एक जगह है, जहाँ ज्ञान सहज होकर बार–बार नए बीज के रूप में उगता है। वह स्वतः स्फूर्त हो जाता है उसमें पशु–पक्षी, प्रकृति देवी–देवताओं और मानव–जीवन खुलेपन के साथ मिलते हैं। वहाँ परम्परा का मौखिक रूपान्तरण होता है। इस दौरान परिवर्तन–परिवर्द्धन भी होता है। जीवन सहचरण की भावना वहाँ मिलती है। संस्कृति का यथार्थ और उसका स्वप्न–संगम यहीं होता है। यदि इसी पूरी प्रक्रिया का अनुशीलन करने की पद्धति हम विकसित कर पाएं, तो नई शुरूआत होगी, संस्कृति का साम्प्रदायिक इस्तेमाल बंद होगा। तुम जानते हो कि संस्कृति को साम्प्रदायिक रंग में रंग देना सबसे आसान काम होता है। हमें इस प्रवृत्ति से स्वयं भी बचना है और लोगों को भी बचाना है।"[1]

लोक–संस्कृति की सुरक्षा का अर्थ संस्कृति की गति को रोक देना नहीं है। सुरक्षा से केवल यह तात्पर्य नहीं लिया जाना है कि लोक कलाओं को 'कैसेट' और 'जिल्दों'

---

1. *कमला प्रसाद के पत्र का एक अंश– "सम्मेलन पत्रिका" (लोक संस्कृति विशेषांक) पृ. 376*

में बांध कर रख दिया जाय। यद्यपि लोकजीवन और लोककलाओं के अध्ययन के लिए यह भी आवश्यक है लेकिन सुरक्षा से एक बड़ा अर्थ यह निकाला जाना चाहिए कि सम्पूर्ण समाज उन कलाओं में रच–बस जाये। समाज के सभी लोग उन कलाओं में कलाकारों की तरह भले ही निपुण न हों, लेकिन उन कलाओं से, वे उतने ही आनन्दित, उल्लसित होगें जितना कि कोई लोक–कलाकार हो सकता है।

'शास्त्र' ने सदा 'लोक' से ही प्रेरणा ली है और 'लोक' को 'शास्त्र' में प्रतिष्ठा मिली है। आज केवल इन दोनों के पास आने के माध्यम नए हो गए हैं। पास तो ये सदा से आते रहे हैं। इन माध्यमों के कारण अधकचरे 'मिश्रण' का खतरा उत्पन्न होता जा रहा है इससे बचाव के लिए एक परिचर्चा के अर्न्तगत रचना धर्मी 'श्री जीवन यदु ने कहा है – "शास्त्रीय कलाओं की जननी लोक–कलाएं ही हैं। लोक–जीवन में प्रवाहित कलाएं शास्त्र बद्ध होकर एक बड़े जन–समुदाय से दूर हो जाती हैं, या दूर कर दी जाती हैं, दोनों प्रकार की कलाओं के बीच एक बौद्धिक किस्म की रेखा खींच दी जाती है – यह उच्च वर्ग की कला है और ऊंची है, यह गंवारू है और नीची है। यही मानसिक दबाव कलाकारों पर बराबर बना रहता है। आज यद्यपि दोनों कलाओं में भरपूर काम हो रहा है, तथापि एक दूरी का एहसास तब भी बना है। जरूरत इस बात की है। कि दोनों के कलाकार और ज्ञाता एक दूसरे के नज़दीक आकर काम करें और एक दूसरे की कला को समझने की कोशिश करें। शास्त्रीय कलाकार अपनी कला के हर कण की खोज केवल शास्त्रों में न करें, वरन् उसे लोकजीवन में तलाशते हुए यह भी देखें कि अब तक विकसित हुई लोक कलाओं में एक नए शास्त्र को जन्म देने की कितनी संभावनाएं हैं। इस तरह वे बद्ध शास्त्रीयता को मुक्त कर प्रवाह प्रदान कर सकते हैं। इसी तरह लोक–बद्ध–कलाकारों को चाहिए कि वे उस रसायन को समझने की कोशिश करें, जो लोकजीवन से रस खींचकर तैयार किया है और जिसे शास्त्रीय कला–कुण्डों में जमा कर दिया गया है। यही नहीं वे एक दूसरे से जो समझें, उसे पूरे समाज को भी समझाएं यह भी कलाकरों का दायित्व है। इस तरह कला–संदर्भ वर्गहीन होगा। यदि ऐसा हुआ तो यह आज तक की सांस्कृतिक यात्रा में पूरे समाज का महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कदम होगा। आज भले ही दोनों प्रकार की कलाओं के बहुत निकट आने की संभावना न हो, या कम हो। लेकिन संभावना बन सकती है। इसे आ[illegible] सावधानी कहिए या जरूरत कलाकारों को रूढ़िगत मानसिक दबावों से मुक्त होना होग[illegible]

तब 'कला' 'कलह' होने से बचेगी।"[1]

'लोक–संस्कृति' की शक्ति और सम्पन्नता में विश्वास रखने वालों को आज अधिक सजग होने की आवश्यकता है। लोककलाओं के वर्तमान रूप को भी (भारतीय संस्कृति के अध्ययन–मनन के लिए) सुरक्षित रखना होगा और उसके विकसित होते हुए स्वरूप के संबंध में तर्कपूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि भी रखनी होगी।

(ज) लोक साहित्य और अभिजात साहित्य

मानव हृदय से निःश्रित राग–अनुराग से ओत–प्रोत भावनाओं की अभिव्यंजना ही साहित्य है। लोक–साहित्य का उद्‌गम भी मानव हृदयतंत्री से झंकृत करूणा तथा उल्लास से घनीभूत भावनाएं ही हैं। जीवन के सुख–दुख आशा–निराशा, हास्य–रूदन, संयोग–वियोग आदि के कठोर बज्राघात के आघात से मानव हृदय संवेदनशील हो उठता है। वही संवेदना हृदय–तंतुओं से जागृत हो, जब वर्णमाला में अंकित होती है, तब साहित्य की संज्ञा से अविहित होती है। साहित्य सदैव लोक सापेक्ष भावराशि है, लोक से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। लोक एक चेतनाशील सत्ता है, जो जीवन का प्रतीक और जन का पर्याय है। (लोकस्तु भुवने जने) श्री रामलाल ने लिखा है कि – "'लोक' की सीमा केवल ग्राम या साधारण जनता तक ही नहीं है ऐसा संकीर्ण अर्थ तो बहुत बड़ी साहित्यिक ही नहीं, सामाजिक और सांस्कृतिक भूल का द्योतक है, समस्त चराचर मात्र में लोक की समीचीन अलंकृति ही परम उपादेय और मांगलिक है।"[2]

अभिजात साहित्य तथा लोक साहित्य यद्यपि दोनों ही लोक से अनुप्राणित हैं, फिर भी दोनों में वैषम्य भी है। साहित्य लोक–जीवन के सार तत्वों को ग्रहण कर उसके धरातल से ऊपर अपने अस्तित्व का संगठन करता है, परन्तु लोक–साहित्य इसी धरातल

---

1. *'जीवन यदु', 'परिचर्चा' संयोजक : रमाकान्त श्रीवास्तव, सम्पादित – 'महावीर अग्रवाल' – "लोकसंस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य" के पृ. 163 से उद्‌धृत।*

1. *श्री राम लाल : 'भारतीय लोक–संस्कृति की अध्यात्म भूमि' शीर्षक निम्बन्ध, 'सम्मेलन पत्रिका' (लोक–संस्कृति–विशेषांक) पृ0 – 86*

पर पल्लवित एवं पुष्पित होता है। इसीलिए इसका स्वरूप मौखिक सम्प्रेषण द्वारा विकसित एवं निर्धारित होता है। 'वेयर्ड' ने इसे 'मौखिक–कला' कहा है। यह परम्परा से निजी चेतना और संस्कृति से अनुप्राणित रहता है। फ्रांसिसली यूतले ने लोक–साहित्य पर विचार करते हुए इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है।[1] लोक–संस्कृति एवं लोक साहित्य आपस में घुले–मिले रहते है। लेकिन साहित्य, लोक से सांस्कृतिक तत्वों को अपने में समाहित कर लेता हैं। साहित्य देश काल की सीमाओं में बद्ध होता है, लेकिन लोक–साहित्य उससे उन्मुक्त। लोक–साहित्य का आधार 'लोकभाषा' एवं 'लोकबोली' होती है। इसके विपरीत साहित्य का आधार परिष्कृत एवं परिमार्जित शब्दों की भाषा होती है। साहित्य व्याकरण–निष्ठ होता है जबकि लोक साहित्य हर प्रकार से स्वतंत्र एवं स्वच्छन्द।

साहित्य के अध्येता तथा लोक साहित्य के श्रोताओं की रसानुभूति में भी अन्तर पड़ता है इसकी विवेचना पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने इस प्रकार की है –"सिद्ध कवियों की कविता का आनन्द वही उठा सकता है, जिसने छंद, व्याकरण और अलंकार शास्त्र का अच्छी तरह से अध्ययन किया है। ऐसी कविता को हम स्वाभाविक कविता नहीं कह सकते। यह तो माली निर्मित उस क्यारी की तरह है जिसके पौधे कैंची से कतर कर ठीक किये रहते हैं और जो खास तरह की रूचि से विवश होकर सजाई जाती है। ग्राम गीत तो प्रकृति का वह उद्यान है, जो जंगलों में, पहाड़ों पर, नदी तटों पर स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है। वह अकृत्रिम है। सिद्ध कवियों की कविता किसी बंगले का वह फूल है, जिसका सर्वस्व माली है पर ग्राम गीत वह फूल है, झरने जिसको पानी पिलाते हैं, मेघ जिसे नहलाते हैं, सूर्य जिसकी आँखें खोलता है, मंद–मंद समीर जिसे झूले में झुलाता है, चन्द्रमा जिसका मुंह चूमता है और ओस जिस पर गुलाबजल छिड़कती है। उसकी समता बंगले का कैदी फूल नहीं कर सकता।"[2]

---

1. *For my our opration. I will stand by the very simple statement that Folk-literature is orally transmitted literature where ever found among premitive insulated are civilised margined, cultures urban or rural societies dominent are subordinate groups. The hurestic Value of orally transmitted our key, is greate.*

   — Allen Dendece, The study of folklore - P.13.

2. *पं0 रामनरेश त्रिपाठी : "ग्राम साहित्य" (पहला भाग) प्रथम संस्करण, पृ. 55*

अभिजात साहित्य के रसास्वादन के लिए हृदय पक्ष के साथ ही बुद्धि पक्ष की अनिवार्यता यथेष्ट है, लेकिन लोक साहित्य की रसानुभूति के लिए हृदय के भावों का जागरण ही महत्वपूर्ण है। उसमें बुद्धि तथा अलंकरण रीति के अनुशासन की अनिवार्यता नहीं रहती ।

आज के विकासशील युग में लोक–साहित्य को लिपिबद्ध किया जा रहा है। बहुत से ऐसे भी विद्वान हैं जो इसको लोकभाषाओं में रूप प्रदान कर रहे हैं, जिसके कारण यह दीर्घायु हो। यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है, फिर भी लिपिबद्धता के द्वारा भले ही हम इसके वाह्यावरण की रक्षा कर लें, लेकिन इससे इसके प्राकृतिक सौन्दर्य, भावबोध तथा नैसर्गिक छटा का अभाव होना स्वाभाविक ही है ।

अभिजात साहित्य तथा लोक–साहित्य में रागात्मक साम्य होने पर भी रूप सत्ता में पर्याप्त अन्तर है। वर्ण्य–विषय दोनों के समान रहने पर भी पद्धति में अन्तर होता है। साहित्य में अगर वह काव्य है तो रस, छंद, अलंकार आदि शास्त्रीय नियमों के आधार पर निर्मित होगा, यदि अन्य विधा है तो उस विधा के नियम पर ही उसकी रचना सम्भव हो सकेगी। लोक–साहित्य के लिए ऐसे कोई नियम–विनिम्रय नहीं हो सकते, वह हर प्रकार से स्वच्छन्द एवं अबाध होता है। अत्यानुप्रास द्वारा साहित्य को पद्यबद्ध किया जाता है जिससे लय बन सके, लेकिन लोक–गीतों के लिय यह आवश्यक नहीं है। क्योंकि साहित्य की दुनियां में लोकजीवन छन–छन कर आता है। इसीलिए साहित्यिक गीत मंजे–सुधरे होते हैं, और उनकी चमक–दमक गिने–चुने लोगों को ही आसानी से अपनी ओर खींच सकती है। पर इस मांजने–सुधारने और छानने में जीवन की बहुत सी हरियाली भी कट–छंट कर बाहर छूट जाती है, जिससे साहित्य के गीतों में उबले–छने पानी का सा स्वाद होता है, जबकि लोकगीतों में ताजे पानी का आनन्द आता है।[1]

साहित्य अपने रसात्मकता की रक्षा करते हुए, मानव जीवन में स्थित कल्याण की ओर संकेत करता है तथा पाठक को अन्तर्निहित सत्य से प्रभावित करता है। लोक साहित्य जीवन की किसी स्थिति विशेष की तीव्रानुभूति ही करता है । उसका निष्कर्ष पाठक पर होता है कि वह उसके सांकेतिक अभिप्राय को ग्रहण करें।

---

1. *शंम्भू प्रसाद बहुगुणा : 'लोक साहित्य में लोक जीवन की व्यापक अनुभूति' शीर्षक निम्बन्ध, सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) पृ. 193*

(झ) साहित्य के उपादान के रूप में लोकतत्व

साहित्य समाज का दपर्ण होता है, अर्थात् किसी भी समाज का विम्ब–प्रतिविम्ब उसके द्वारा निर्मित साहित्य में प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के भाव–विचार उद्भूत होकर समाज द्वारा वहन होते रहते हैं, जो कालान्तर में कलाकार के हाथों में पड़कर निखर उठते हैं। कोई भी चिन्तन धारा बिना किसी आधार या मूल के एकाएक उदय नहीं होती। उसके उद्भव और विकास के कारण, सामयिक समाज व्यवस्था में अन्तर्निहित रहते हैं। सामाजिक विकास के क्रम में उत्पन्न विषमताएं और परिस्थितियां, नये विचारों को जन्म देती हैं जो साहित्य में अभिव्यक्त होने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि साहित्य के विभिन्न उपादान, समाज के विभिन्न परिवेश तथा धरातल पर कलाकार को प्रेरित करते हैं। वे उपादान प्राकृतिक सौन्दर्य के रूप में प्रस्फुटित कुसुमों के समान इतस्ततः छितराये रहते हैं, जिन्हें एकत्र कर कुशल माली की भांति साहित्यकार एक सुसंगठित गुलस्ते का रूप प्रदान करता है और उनकी उपयोगिता में वृद्धि कर उसे मौलिक रूप में समाज को भेंट करता है। वह लोक साहित्य के विभिन्न उपादानों को ग्रहण करता है, जो कालान्तर में अभिजात या लिखित साहित्य में रच–बस कर उसी का अंग बन जाते हैं। फलतः साहित्य के ये उपादान एवं तत्व कथानक, काव्यरूप, चरित, छंद, अलंकार आदि के रूप में लोकतात्विक प्रभाव की सहज, स्वाभाविक सूचना देते हैं।

कथानक या कथावस्तु के द्वारा साहित्य का कलेवर निर्मित होता है। जहाँ तक साहित्य के मुख्य उपादान कथानक पर लोकतत्व के प्रभाव का प्रश्न है, यह अत्यन्त प्राचीन है। किसी भी साहित्य का आदिम या प्रारम्भिक रूप लोकवार्ता ही रहा होगा। कालान्तर में सभ्यता के सोपान पर रगड़ती, घिसती, मंजती और परिमार्जित होती हुई वह विकसित होती है। साथ ही वह एक निश्चित रूप धारण कर अभिजात साहित्य का स्थान लेती है, अतः साहित्य की उत्पत्ति के मूल में लोकवार्ता (लोक बोली) का प्रमुख स्थान है। उदाहरण के लिए संस्कृत में प्राप्त पौराणिक साहित्य को ले सकते हैं। पुराणों की रचना में मूलतः लोककथाओं के रूपान्तर या प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि लोक प्रचलित कथाओं का संग्रह कर उन्हें पुराणों की प्रकृति के अनुसार नियोजित कर दिया गया है।

"फेरी फेथ इन कैल्टिक कंट्रीज़" की भूमिका में डॉ० इवान वेट्ज ने स्पष्ट किया

है – "कि प्रायः समस्त साहित्यों के मूल स्त्रोत जन साधारण के विश्वास, उनकी कथाएं और उनके गीत हुआ करते हैं, और वर्तमान समय के साहित्यों का उद्गम उनके संस्कार और रीति–रिवाज हैं।"(1)

इसी प्रकार सर जार्ज डब्ल्यू के मतानुसार महाकाव्य आदि अभिजात साहित्य के मूल में लोक–प्रतिभा तथा कथा–रचना की प्रवृत्ति इसी तथ्य को स्पष्ट करती है। वस्तुतः लोकवार्ता ही अभिजात साहित्य के रूप में विकसित होकर अपना नूतन रूप प्रकट करती है।(2) हारविट्ज के मत से प्रायः सभी देशों में कुछ अत्यन्त प्रचलित गीत बहुत दिनों तक लोकप्रिय रहते हैं। अन्ततोगत्वा विद्ज्जनों द्वारा वे साहित्यिक रूपों में प्रतिष्ठित कर लिए जाते हैं। क्या महाभारत किसी एक ही कवि की विशिष्ट प्रतिभा द्वारा उत्पन्न हुआ ? अथवा जैसे–तैसे एकत्र किये गये उन फूलों का गुलदस्ता है, जो समूचे देश की वनस्पतियों में फूले थे और जो सम्पूर्ण राष्ट्र की सामूहिक सम्पत्ति थे।(3)

आदिकाव्य रामायण के कथानक के सम्बन्ध में चैडविक्स बन्धु का मत कुछ इसी

---

1. *रेबरेड ऑक्ले और तारादत्त गेरोला द्वारा लिखित तथा सरस्वती सरन कैफे द्वारा हिन्दी में अनूदित "हिमालय की लोक कथाएं" भूमिका, पृ0 1*

2 *The epic poem is a popular tale which the highest human genius has imparted a peculiar charm and the same genius might have handled in like manner other tales which perhaps may never have passed out of the rang of common story tellers. They must all, there fore, be regarded and treated as belonging to vast store of popular tradition. They form indeed in the strictest sense of the folklore or learing of the peopic."*

— "Introduction to the Science of comparative mythologe and Folklore." Edi-1881

– डॉ0 सत्येन्द्र : 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन' पृ0 53 से उद्धृत ।

3. *हारविट्ज : 'शार्ट हिस्ट्री आफ इण्डिया लिट्रेचर', 1907, पृ0 26*

प्रकार का है। उनके मत से रामकथा अपने मौलिक रूप मे एक सामान्य कोटि की वीर गाथा थी, जिसका वर्ण्य विषय किसी निर्वासित राजकुमार, उसकी पत्नी और उसके अनुज का वह पराक्रम था जिसे इन लोगों ने दक्षिण भारत में प्रदर्शित किया था।[1] जन प्रचलित उस कथानक को बाल्मीकि ने साहित्यिक रूप में संग्रहित कर महाकाव्य का कलेवर निश्चित किया। यही बात महाभारत आदि अन्य विकास शील महाकाव्यों पर भी घटित होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से प्रचलित लोक साहित्यिक कथानक, पात्र एवं चरित्र के आधार पर व्यास जी ने सुष्ठ परिमार्जित अभिजात साहित्य का निर्माण किया है।

लोक साहित्य की ऐसी ही महत्वपूर्ण स्थिति के प्रभाव स्वरूप आधुनिक साहित्य की यथार्थवादी धारा का प्रचलन हुआ है। प्रेमचन्द्र जी ने अपने कथानक लोक से चुनकर होरी, गोबर, धनियां के चरित्र संगठन द्वारा महान औपन्यासिक कृतियां प्रस्तुत कीं। अतः कथानक की दृष्टि से साहित्य लोकतत्व का चिर ऋणी है।

कथानक, चरित्र एवं पात्र के बाद साहित्य को रूपायित करने में भाषा और शैली का योगदान रहता है। भाषा विचारों एवं भावों को वहन करती है। अतः किसी कृति में इन तत्वों के अनुसार ही भाषा संगठित होती है। इसी दृष्टि से भी साहित्य पर लोकतत्वों का प्रभाव पड़ता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य ने लोक प्रचलित साहित्यक रूपों को ग्रहण किया है। पैशाची भाषा में लिखी गई 'गुणाढ्य' कविकृत 'बड्डकहा' नामक पुस्तक का मूल रूप अब प्राप्त नही है, आज क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव द्वारा रूपान्तिरत होकर क्रमशः 'वृहत् कथा मंजरी' एवं 'कथा सरित सागर' के रूप में सुरक्षित है । जातक, पंचतंत्र, हितोपदेश, सिहांसन द्वामिशिका, वैताल, पंच विंशिका, सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' तथा वाणभटट कृत 'कादम्बरी' आदि का कथानक, भाषा आदि लोकतत्वों के आधार पर ही है इन काव्य ग्रन्थों की भाषाओं में अनेक प्रचलित लोक शब्दों का दर्शन स्वर्णालंकार में मण्डित रत्नों के समान अपने प्रकाश से काव्य में एक अनोखी आभा का सृजन करते हैं।

लोक प्रचलित गीतिशैलियां लौकिक काव्य रूप तथा लोक प्रचलित छंदो से साहित्यिक काव्य धारा आप्लावित है। इसके सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने

---

1. *चैडविक्स ब्रदर्स : 'दि ग्रोथ आव लिट्रेचर 1936, भाग –2 पृ0 526*

लिखा है – "भारतीय हृदय का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिये पुराने परिचित ग्राम गीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पण्डितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परम्परा का अनुशीलन अलम् नहीं है .... जब जब शिष्टों का काव्य पण्डितों द्वारा बंधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वछन्द बहती हुई, प्राकृतिक भाव धारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।"[1]

'चण्डीदास' के गीतों का मूल स्त्रोत 'गम्भीरा' नामक लोकोत्सव पर गाये जाने वाले गीत को बताया गया है।[2]

'जयदेव' कृत 'गीत–गोविन्द', बंग भूमि की 'यात्रा' नामक उत्सव पर गाये जाने वाले गीतों के बीच का पल्लवित माना जाता है।[3] यहाँ तक कि 'सूरदास' के गेय पदों को विद्वानों ने प्राचीन गीतों एवं शैलियो के आधार पर ही निर्मित माना है।[4] इस विचार को और स्पष्ट करते हुए डॉ० हजारी प्रसाद जी ने लिखा है – "असल में सूरसागर शास्त्रीय वैष्णव भक्ति शास्त्र से प्रेरणा अवश्य लेता है पर शास्त्रीय होने की अपेक्षा वह लोक धर्म से अधिक निकट है। हिन्दी प्रदेश के लोकगीतों में श्री कृष्ण लीला का प्रवेश, महाप्रभु बल्लभाचार्य से बहुत पहले हो चुका था। इसका मतलब यह है कि इस प्रकार की प्रेम गीतियां जिनमें कुछ प्रेम और विरह की अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण था, पहले से ही लोक में प्रचलित थीं। महाप्रभू वल्लभाचार्य जैसे मनीषियों के सम्पर्क में आकर भक्त कवियों ने उन्हें सुव्यवस्थित भक्ति परक गानों का रूप दिया।[5]

---

1. *'आचार्य रामचन्द्र' शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 600–1*
2. *'बी0के0 सरकार' : द फोफ एलिमेंट इन हिन्दू कल्चर, कलकत्ता 1917, पृ0 15*
3. *'ए0 बी0 कीथ' : हिस्ट्री आव संस्कृत लिट्रेचर, लंदन 1948 पृ0 192.*
4. *'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 165*
5. *'डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी' : सूरदास : विविध संदर्भों में प्रणति पृ0 1*

हिन्दी का विपुल, विस्तृत, वैभवपूर्ण मध्य कालीन साहित्य तो लोक साहित्य के उपादानों पर ही आधारित है इसमें आए चौतींसा, बाईसी, बावनी, ककहरा, बंसत, चांचर, हिंडोला, फाग, वेलि, विरहुली, मंगल, साखी, सबद, रमैनी, नहछू आदि काव्य रूपों का गठन लोक साहित्य के आधार पर ही हुआ है । इस युग में कवियों द्वारा प्रयुक्त कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, चौपाई, सोरठा, एंव बरवै आदि छन्द लोक प्रवृत्ति के द्योतक हैं। कहरवा, फाग, होरी, चांचर, सोहर, पलना, कजरी, चैती, डोमरा आदि गान शैलियों को थोड़ा बहुत परिवर्तित कर कवियों ने अपना लिया है अतः काव्यरूपों, शैली एवं भाषा के द्वारा भी साहित्य का बहुत कुछ निर्माण लोकतात्विक आधार पर हुआ है।

साहित्य–निमार्ण में पहेलियां, कहावतें तथा मुहावरों का स्थान भी यथेष्ट होता है। इनके द्वारा स्थान–स्थान पर कौतुहल, संवर्द्धन, मनोरंजन के साथ ही साथ अत्यन्त क्लिष्ट भावों का स्पष्टीकरण अत्यन्त सहज, सुबोध ढंग से कर साहित्य में चारुत्व का दिग्दर्शन कराया जाता है। यहां तक कि कहावतों एवं लोकोक्तियों के आधार पर तो स्वतंत्र रूप से पूरे ग्रन्थ तक रचे गए हैं। उदाहरणार्थ संत कवि अग्रदास जी द्वारा रचित 'हितोपदेश उपरवाण बावनी' जगतानन्दद्वारा 'उपरवाने सहित भागवत दशमस्कन्ध कथा' तथा जैन मुनियों द्वारा विरचित 'ओहाणक स्त्रोत' आदि ग्रन्थों का निमार्ण इन्हीं विधाओं पर हुआ प्रतीत होता हैं। हिन्दी साहित्य में लोकोक्तियां, कहावतें तथा मुहावरों का प्रयोग तो लोकतात्विक आधार पर ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया गया है।

आज के आधुनिक युग में जब साहित्य की अन्य विधाओं को छोडकर स्वतंत्र रूप से काव्य का सृजन होने लगा है, फिर भी कहावतें, मुहावरें एवं लोकोक्तियों का प्रयोग ज्यों का त्यों हो रहा है। अतः इस दृष्टि से भी लोकतत्व की भूमिका साहित्य के लिए महत्वपूर्ण रही है।

साहित्य के अन्य अवयव कल्पना, दृश्य, वर्णन, विम्ब–चित्र आदि के लिए भी लोक प्रचलित सामग्री का प्रयोग साहित्य के लिए हुआ है। साहित्यकारों की कल्पना की अमरवेलि के लिए लोकतत्व आश्रय का कार्य करता है। जब काव्य निर्माता अगोचर ब्रह्म के सम्बन्ध में कल्पना करता है, तो लौकिक कथाएं, कहानियाँ उसके स्तम्भ का कार्य करती हैं। सारांश यह है कि लोक प्रचलित रीति–रिवाज, अनुष्ठान, पूजा विचार, अन्ध विश्वास, जादू–टोना–टोटका आदि किसी भी साहित्य में वर्णित जीवन्त तत्व होते हैं।

जहाँ तक प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रश्न है वह तो स्वयमेव लौकिक है। उगता एवं अस्त होता हुआ सूर्य, वन, पर्वत, वाटिका, झरना, नदी, कन्दरा, पशु–पक्षी इत्यादि दृश्य एवं ब्रह्म, माया, प्राण आदि उन दृश्य जगत का मनोहारी चित्रण ही तो लोक साहित्य की पृष्ठ भूमियां हैं ।

इनके सौन्दर्य का वर्णन या विम्ब ग्रहण करना शुद्ध लोकतत्व का परिमार्जन करना है। अतः साहित्य के उपादान के रूप में लोकतत्व, उसके भाग–विभाग आदि थोड़े बहुत प्रत्येक क्षेत्र में सहायक रहे हैं ।

❑

द्वितीय अध्याय

बुन्देलखण्ड : एक परिचय

(क) बुन्देली क्षेत्र का भौगोलिक परिचय

बुन्देलखण्ड : नाम

भैंस बंधी है ओरछा, पड़ा हुसंगाबाद ।
लगवैया है सागरे, चपिया रेवा पार ।।[1]

बुन्देली लोक–जीवन में प्रचलित इस बुझौवल का उत्तर है–बुन्देलखण्ड । इस भू–भाग का बुन्देलखण्ड नाम अर्वाचीन है जिसका अस्तित्व चार–पांच सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। ऐतिहासिक, धार्मिक तथा राजनीतिक घटनाचक्रों ने इस क्षेत्र के नाम को एकाधिक बार परिवर्तित किया है। भारतीय ग्रन्थों में इस क्षेत्र का नाम चेदि–देश, दशार्ण, जेजाक भुक्ति, यजुहौती, जुझौति, जुझारखण्ड, विन्ध्यइलाखण्ड, विन्ध्येलखण्ड तथा बुन्देलखण्ड आदि है। 'दशार्ण' कदाचित् इसका सबसे प्राचीन नाम है। 'दशार्ण' शब्द का कोशगत अर्थ–दस दुर्ग, दस जलस्रोत, नदी विशेष, देश विशेष, तथा क्षत्रियों का विशेषण इत्यादि है।[2]

---

1. *शिवसहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत* पृ0 1
2. *दशार्णा : दश ऋणानि (दुर्गभूमयः) येषां ते (बहु0)। ऋण शब्द दुर्ग भूमि और जल का वाचक है। दश+ऋण यहां पर "प्रवत्सतरकम्बलक सनार्णदशानामृणे" इस वार्तिक से आर वृद्धि होकर दशार्ण पद बनता है। बहुव्रीहि समास के अनुसार जिन क्षत्रिय राजाओं के दश दुर्ग (मिले) है उनको 'दशार्ण' कहते हैं। दशार्णानां (क्षत्रियविशेषाणाम्) निवासो जनपदः – दशार्णाः । यहां पर दशार्ण शब्द से "तस्य निवासः इस सूत्र से अण प्रत्यय होकर" जनपदे लुप "इससे उसका लुप् (अदर्शन)* हुआ और 'लुपि युक्त वद्वयक्तिवचने" इस सूत्र से प्रत्यय का अदर्शन होने पर *भी लिग्ङ और वचन का प्रकृति भाव होने से "दशार्णाः" (जनपदाः) ऐसा रूप* हुआ। ऋण शब्द का भी वचाक है अतः दश ऋणनि (जलप्रवाहाः) यस्यां सा (बहु0) *इस व्युपत्ति के अनुसार "दशाणोः" शब्द किसी नदी का वचाक है। विन्ध्य पर्वत से निकली हुई 'दशार्ण' नदी।*

– *श्री शेष राज शर्मा रेग्मो : मेघदूतम (व्याख्या) पृ0 57–58 ।*

महाभाष्य के टीकाकार उद्‌भट् विद्वान वैम्यट ने 'दशार्ण' शब्द पर विचार करते हुये लिखा है –

"दशार्ण शब्दो नदी विशेषस्य देश विशेषस्य च संज्ञा।" अर्थात् नदी विशेष तथा देश विशेष का नाम दशार्ण है। इस कथन के अनुसार यह नदी विशेष का और देश विशेष का भी नाम है। 'नदी विशेष के अर्थ में यह भू–भाग (बुन्देलखण्ड) में प्रवाहित होने वाली नदी 'धसान' का पूर्व नाम 'दशार्ण' जान पड़ता है। 'देश विशेष' के अर्थ में यह वह देश है जिसमें दस नदियाँ प्रवाहित होती हैं। बुन्देलखण्ड निश्चित ही दस नदियों का देश है। जिला जालौन के जगम्मनपुर ग्राम के समीप चम्बल, पहूज, कालीसिंध और कुंवारी नामक नदियों का संगम यमुना से होता है। इस स्थान को पंच–नद कहा भी जाता है। शेष पांच नदियां वेत्रवती, (बेतवा) मन्दाकिनी, केन, तमसा और धसान हैं। अतः इसका नाम 'दशार्ण' होने में भी एक बड़ी सीमा तक सत्यता दिखाई देती है।[1]

महाकवि कालीदास ने 'मेघदूत काव्यम्' में प्रिया–विरही प्रवासी यक्ष द्वारा संदेशवाहक मेघ को अलकापुरी का मार्ग निर्देश करते हुए दशार्ण देश के प्राकृतिक सुषमा–वैभव का वर्णन इस प्रकार किया है –

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै। नीडारम्भैगृह बलिभुजामा कुलग्रामचैत्याः।।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्याम जम्बूवनान्ताः। सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः।।[2]

बुन्देलखण्ड का पुराणकालीन नाम चेदि देश है। कतिपय अनुसंधित्सु विद्वानों ने इसके इस प्राचीन नाम को तरज़ीह दी है। एतद्‌विषयक श्री बलभद्र तिवारी का मत है कि बुन्देलखण्ड के संबंध में अनेक विद्वानों ने यह एकमत से स्वीकारा है कि चेदिदेश ही इसका प्राचीन नाम है। यह तत्कालीन सोलह जनपदों में से एक है। चेदि देश की सीमा दक्षिण में नर्मदा नदी, उत्तर में यमुना, पूर्व में सोन नदी और पश्चिम में धर्षाण नदी द्वारा निश्चित होती है, जिसके अन्तर्गत मालव, दशार्ण, करुष, निषाध आदि का समावेश है। इसे हम प्राचीनतम बुन्देलखण्ड मान सकते हैं ....

---

1. *डॉ0 कृष्ण लाल हंस : बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप पृ0 4*
2. *पूर्व मेघ : श्लोक 23*

चेदि जनपद वास्तव में पुराणकाल की बुन्देखण्डी सीमा का निर्धारण करता है। इसके बाद अनेक शासकों की इच्छानुसार इसकी सीमा में परिवर्तन भी होता रहा है। परंतु 10वीं व 11वीं शताब्दी में चन्देलों ने पुनः इस भूमि पर महत्वपूर्ण शासन किया। चन्देल राज्य की सीमा बहुत कुछ चेदि जनपद से मिलती–जुलती है। इन्होंने भी दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में तमसा, पश्चिम में वेत्रवती और उत्तर में यमुना को चन्देल राज्य की सीमा माना है।[1]

इस भू–क्षेत्र का एक नाम यजुहौती है। वैदिक कालीन यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का यहीं पर प्रथम अभ्युदय हुआ था। इसी कारण यह प्रदेश यजुहौति कहा गया था जिससे अपभ्रंश हो जीजभुक्ति बना था। आर्य संस्कृति में जीजाक भुक्ति, जीजभुक्ति तथा जुझौती आदि नामों से यह प्रदेश प्रतिष्ठित रहा है।[2] प्रसिद्ध चीनी यात्री हुऐनत्सांग ने अपने भारत–भ्रमण (629–643 ई0) में इस क्षेत्र को 'जुझौती' नाम से सम्बोधित किया है।[3]

महाप्रतापी जेजा (जयशक्ति) नामक शक्तिशाली वीर सामंत के शासन काल में इस क्षेत्र का नाम जेजाभुक्ति, जेजाकभुक्ति, या जुझौती पड़ गया, ऐसा समझा जाता है।

विन्ध्य–मेखला–उपत्यका की क्रोड़ में अवस्थित होने के कारण इस क्षेत्र का नाम 'विन्ध्यइलाखण्ड' पड़ा ।

इस भू–भाग का एक नाम 'विन्ध्येलखण्ड' भी है। एतद्विषयक एक लोक कहानी प्रचलित है – बुन्देलखण्ड में बुन्देलों का उदय हुआ था। इन्हें विन्ध्येला भी कहते हैं। दन्तकथा के अनुसार इनके आदि पुरुष हेमकरण ने विन्ध्यवासिनी देवी को अपना मस्तक काटकर अर्पण करना चाहा था, पर कुछ बूँदों के गिरते ही देवी प्रसन्न हो कर प्रकट हो गईं और उसे रोककर वरदान दिया। बूँद अर्पण करने से उसका वंश बुंदेला कहलाया।[4] अतएव अपनी आन–बान–शान और देश–जाति की अस्मिता के रक्षक इतिहास प्रसिद्ध इन बुन्देला क्षत्रियों के शासनाधीन होने से, इस प्रदेश का नाम 'बुन्देलखण्ड' पड़ा माना जाता है।

---

1. *बलभद्र तिवारी : बुन्देली काव्य परम्परा पृ0 54–55*
2. *श्री मोती लाल त्रिपाठी : बुन्देलखण्ड दर्शन पृ0 41*
3. हुऐनत्सांग का भारत–भ्रमण : पृ0 634
4. *ओरछा गजेटियर : पृ0 12*
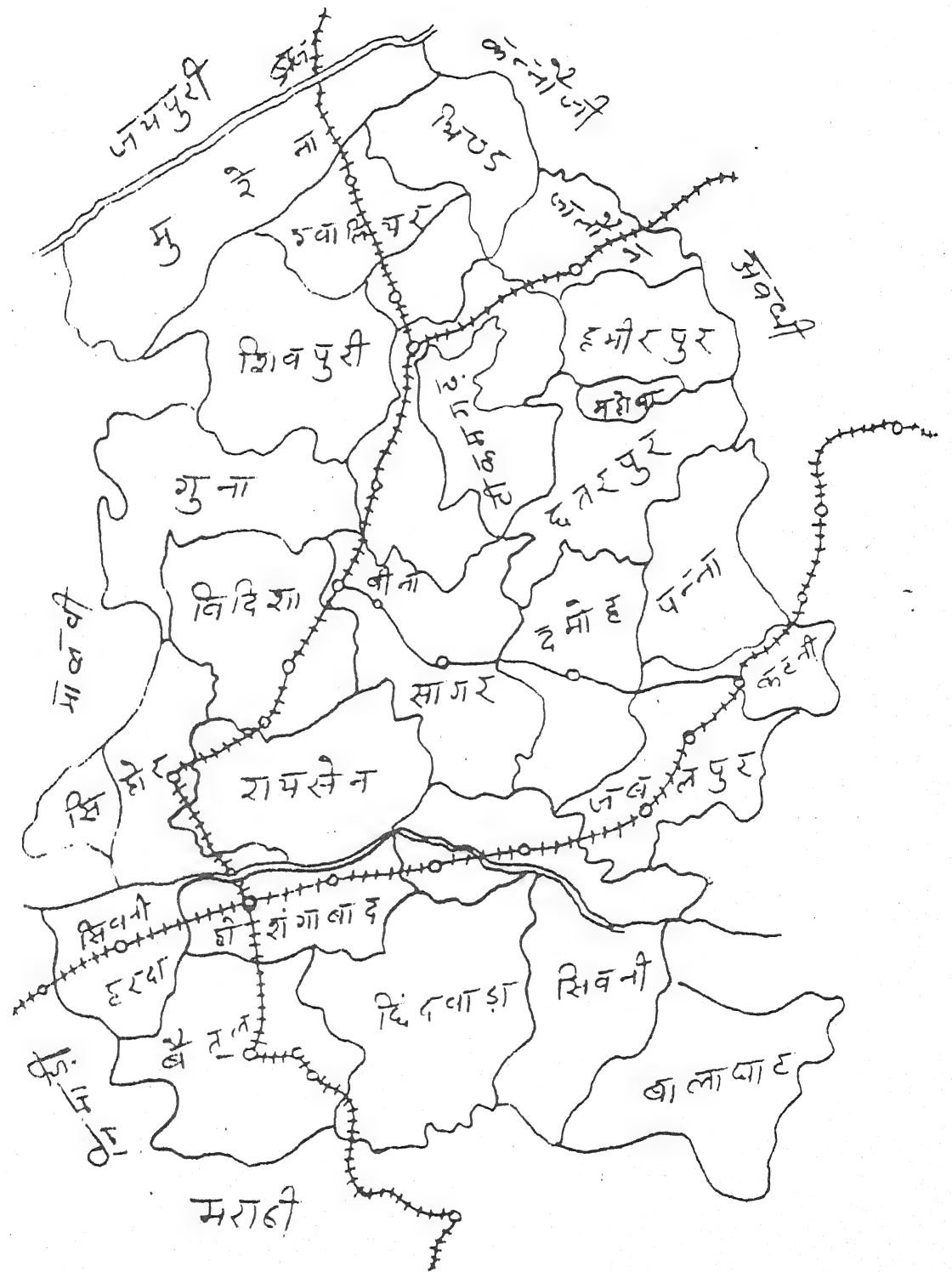
(अ) बुन्देलखण्ड : क्षेत्र–विस्तार

बुन्देलखण्ड भारतवर्ष का हृदय भू–भाग है। यह उत्तर में आगरा तथा इटावा से लेकर दक्षिण में बालाघाट, छिंदवाड़ा से और पूरब में छोटा नागपुर, उड़ीसा सेलेकर पश्चिम में निमाण तथा राजस्थान से परिवृत्त है। इतिहास साक्षी है कि राजनीतिक–पारिस्थितिक परिवर्तनों ने इस क्षेत्र की सीमाओं को अनेक बार प्रभावित किया है जिससे इस प्रदेश की सीमा घटती–बढ़ती और परिवर्तित होती रही है। अनेक इतिहास विद्वानों ने स्थूल रूप में इसकी सीमा उत्तर में यमुना नदी और दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में टोंस और पश्चिम में चम्बल नदी तक मानी है। चारों तरफ से नदियों से घिरा यह आर्यावर्त का वह दक्षिणी भू–भाग है, जो उत्तर की ओर क्रमशः ऊँचा होता गया है तथा जिसके सिरोभाग पर विन्ध्य पर्वत–चोटियां मुकुट की तरह सुशोभित होती हैं। कोम्ब्रियन युग की निर्मित इसकी मिट्टी, इसकी प्राचीनता की स्वयं उद्घोषिका है। नाम प्रकरण पर विचार करते हुए पुराणकालीन चेदिराज्य पर विचार किया गया है। वस्तुतः चेदिदेश की सीमा–दक्षिण में नर्मदा नदी, उत्तर में यमुना, पूर्व में सोननदी और पश्चिम में धर्षाण नदी ही अधुनोपलब्ध इस क्षेत्र की प्राचीनतम सीमा है।

स्व. दीवान प्रतिपाल सिंह जू देव ने महाराज छत्रसाल के शासनाधीन बुन्देलखण्ड की सीमा से संबंधित एक दोहा उद्धृत किया है –

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस ।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस ।।

इसके साथ ही उन्होंने तत्संबंधित अपना स्वरचित एक छंद भी दिया है –

उत्तर समथल भूमि, गंग जमुना सुबहति ।
प्राची दिसि कैमूर, सोन कासी सुलसति है ।।

दक्खिन रेवा, विन्ध्याचल, तन सीतल करनी ।
पश्चिम में चम्बल चंचल सोहति मन हरनी ।।

तिनि मधि राजे गिरि, वन, सरिता, सरित मनोहर ।
कीर्तिस्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड वर ।।

उपरिलिखित सीमा के अनुसार वर्तमान उत्तर–प्रदेश के झांसी, जालौन, बांदा और हमीरपुर जिले, ग्वालियर राज्य के भिंड, ग्वालियर गिर्द, नरवर, ईसागढ़ तथा भेलसा जिले, ओरछा, दतिया, समथर, पन्ना, चरखारी, बिजावर, अजयगढ़, छतरपुर आदि 36 रियासतें– जो अब विन्ध्य–प्रदेश में विलीन हो चुकी हैं; मध्य–प्रदेश के उत्तर के जिले सागर, जबलपुर होशंगाबाद तथा भोपाल राज्य बुन्देलखण्ड की सीमा के अन्तर्गत आते है।[1]

'गजेटियर आफ इण्डिया' के आधार पर डॉ० सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने बुन्देलखण्ड का सीमांकन करते हुये लिखा है कि जो उत्तर में यमुना नदी, उत्तर–पश्चिम में चम्बल नदी दक्षिण में मध्य प्रदेश के जबलपुर और सागर सम्भाग तथा द.पू. में रीवां या बुन्देलखण्ड के मध्य में स्थित है और जिसके दक्षिण तथा पूर्व में मीरजापुर की पहाड़ियां हैं........ राजकीय दृष्टि से इस क्षेत्र में अंग्रेजी राज्य के बांदा, हमीरपुर झांसी और जालौन जिले, ग्वालियर एजेंसी, जिसमें ग्वालियर है, पूरा बुन्देलखण्ड एजेंसी तथा बघेलखण्ड एजेंसी का कुछ पश्चिमी भाग इसमें सम्मिलित है, बुन्देलखण्ड है। [2] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में भी बुन्देलखण्ड की पूर्वी सीमा को बघेलखण्ड की सीमा से मिला हुआ माना गया है।[3]

विसेण्ट ए० स्मिथ० का मत है कि आधुनिक बुन्देलखण्ड से उस सम्पूर्ण क्षेत्र का बोध होता है जिसमें चन्देल शासकों ने राज्य किया था। यह क्षेत्र गंगा और यमुना के

---

1. *श्री शिवसहाय चतुर्वेदी : बुन्देलखण्ड के लोकगीत पृ. 14–15*

2- *"Bundelkhand is the tract lying between the river Jamna on the north, the Chambal on the north-west, the Jabalpur and Sagar Divisions of the Central Provinces on the South and Rewa or Baghelkhand and the Mirzapur Hills on the South and East .... Politically. This area includes the British districts of Banda, Hamirpur, Jalaun and Jhansi, so much of the Gwalior Agency of Central India as Consists of the home districts of the state of Gwalior, the whole of the Bundelkhand Agency and a small portion of the west side of the Baghelkhand Agency."*

— Lingulstic survey of India: Vol IX, Part-I, Page-86.

3. *इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका पृ. 409*

दक्षिण, बेतवा के पूर्व विन्ध्यवासिनी देवी के पश्चिम तथा दक्षिण में नर्मदा महानद तक फैला था। आधुनिक सागर तथा बेलारी के जिले भी उसमें सम्मिलित थे।[1] जनरल कनिघंम ने भी यह सीमा स्वीकार की है।[2]

श्री विद्यालंकार ने इसकी सीमा का निर्देश करते हुए लिखा है– बुन्देलखण्ड में बेतवा (वेत्रवती) धसान (दशार्ण) और केन (शक्तिमती) के कॉठे, नर्मदा की उपरली घाटी और पंचमढ़ी के अमर कंटक तक ऋक्ष पर्वत का हिस्सा सम्मिलित है, उसकी पूर्वी सीमा टोंस (तमसा) नदी है। इस प्रकार बेतवा और केन के कॉठों तथा नर्मदा के उपरले काठे वाला प्रदेश बुन्देलखण्ड है।[3]

श्री भगवान दास गुप्त ने बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में इसकी सीमा परिधि पर विचार करते हुए लिखा है– यह प्रदेश प्राचीनकाल से ही बहुत महत्वपूर्ण रहा है। इसकी सीमा के सम्बन्ध में अनेक मत–मतान्तर हैं, फिर भी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि वैदिक युग में भी इस भूमि पर अनेक ऋषियों ने निवास किया और संस्कृति सम्यता तथा धर्म का संवर्द्धन किया। महर्षि बाल्मीकि को कालपी के दक्षिण में आर्विभूत होना बतलाया जाता है। इसी प्रकार श्री पराशर कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जालौन प्रांत के अन्तर्गत क्रमशः परासन और कालपी में अवतरित सिद्ध किये गये हैं।[4]

श्री गौरीशंकर द्विवेदी शंकर ने बुन्देलखण्ड की सीमा पर विचार करते हुए निम्नांकित फलक दिया है–

(1) उत्तर में यमुना
(2) दक्षिण में नर्मदा
(3) पूर्व में टोंस

---

1. *श्री केशवचन्द्र मिश्र : 'चंदेल और उनका राजत्व काल' पृ 6*
2. *वही ....*
3. *श्री जयचन्द विद्यालंकार : 'भारत भूमि और उसके निवासी' : पृ. 65*
4. *श्री भगवान दास गुप्त : 'महाराज छत्रसाल बुन्देला' पृ. 31*

(4) पश्चिम में चम्बल सीमा के अन्तर्गत आने वाले राज्यों की तालिका इस प्रकार दी है –

संयुक्त प्रान्त	–	झांसी, जालौन, बांदा, हमीरपुर ।
मध्य प्रदेश	–	सागर, दमोह और जबलपुर का कुछ अंश ।
उत्तर प्रदेश	–	मिर्जापुर और इलाहाबाद के कुछ अंश ।
इंदौर राज्य	–	आलमपुर ।
ग्वालियर राज्य	–	भिंड, ग्वालियर, गिर्दनरवर, ईसागढ़ और भेलसा ।
भोपाल राज्य	–	रायसेन, बेरसिया, सांची, राजगढ़, नरसिंहगढ़, कुरवाई, पठारी, मकसूदनगढ़, मोहम्मदगढ़, बासौदा ।

बुन्देलखण्ड की रियासतें और जमीरें –

ओरछा, दतिया, पन्ना, अजयगढ़ चरखारी, बिजावर, छतरपुर, समथर, बावनी, कदौरा, सरीला, दुरवई, बिजना, टोड़ी, फतेहपुर, बंका पहाड़ी, जिगनी, लुगासी, बीहट, बेरी, अलीपुरा, गौरिहार, गरौली, बिलहरी, नेगवांरिबई।[1]

बुन्देलखण्ड के उपर्युक्त प्राचीन तथा अर्वाचीन सीमांकन को यदि मानचित्रीय धरातल पर देखा जाय तो जेजाक भुक्ति के समय की स्थिति मानचित्र पर 22^0 और 27^0 उत्तरीय अक्षांश तथा 75^0 और 85^0 पूर्वीय भू–रेखाओं के मध्य में है। इस पूरे क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग 51,000 वर्ग मील है।[2] डा. सरला कपूर ने अपने शोध प्रबन्ध में बुन्देलखण्ड के मानचित्रीय सीमांकन पर विचार करते हुए लिखा है कि मानचित्र में इसकी स्थिति 23–45 और 26–50 उत्तरीय तथा 77–52 और 80–0 पूर्वी भू–रेखाओं के मध्य में है। इसका क्षेत्रफल 12,000 वर्ग मील है।[3] चीनी यात्री हुसेनसांग 629–643 ई. ने जुझौती (बुल्देलखण्ड) का क्षेत्रफल लगभग 4,000 ली (667) मील माना है।[4]

---

1. *गौरीशंकर द्विवेदी : 'बुन्देल वैभव' पृ. 50–51*
2. *केशव चन्द्र मिश्र : 'चन्देल और उनका राजत्व काल' पृ. 6–7*
3. *डॉ. सरलाकपूर : 'बुन्देलखण्ड के नरेशकवि' पृ. 20*
4. 'हुसेनत्सॉग का भारत–भ्रमण' : पृ. 634
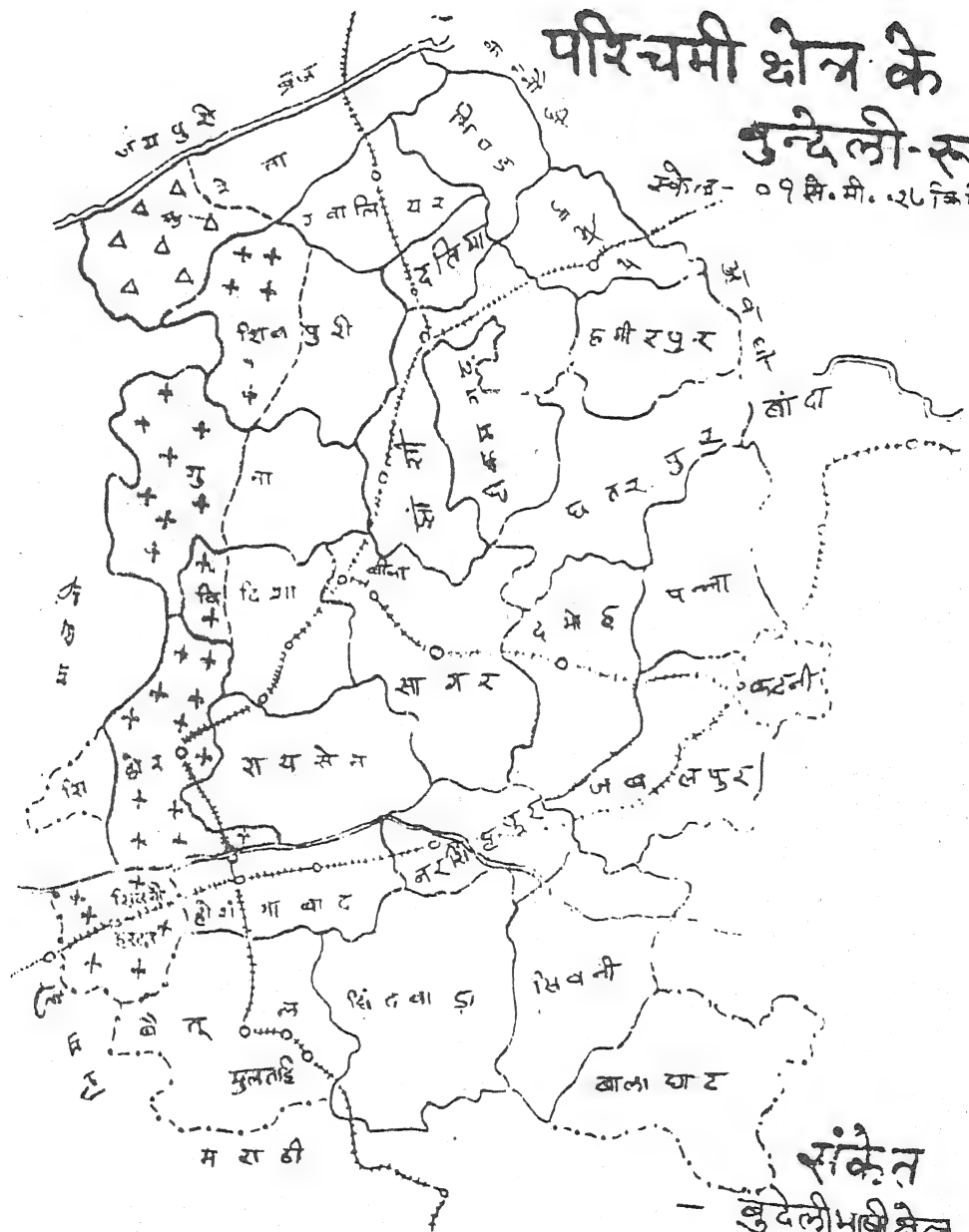
बुन्देलखण्ड की सीमा के सम्बन्ध में उपरिलिखित विद्वानों के मतों पर विचारमंथनोपरान्त निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अतीत में बुन्देला शासकों द्वारा शासित भू–भाग को बुन्देलखण्ड की संज्ञा से अभिहित किया गया, तथा बाद का सीमांकन बुन्देलीभाषी क्षेत्र को दृष्टि में रखकर किया गया है। चूंकि स्वतंत्र भारत में बुन्देलखण्ड की कोई स्वतंत्र राजकीय सीमा रेखा नहीं खींची गई है अतः बुन्देली बोली के आधार पर ही इसका क्षेत्र–विस्तार तथा सीमांकन समीचीन है।

(ब) बुन्देली : भाषायी सीमा

नव्य–भारतीय–आर्य भाषाओं तथा उनकी बोलियों का नाम प्रायः उनके क्षेत्र के नाम पर किया गया है। राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, महाराष्ट्री या मराठी, बंगला या बंगाली नाम क्रमशः राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल तथा ब्रजी, कन्नौजी, अवधी, भोजपुरी आदि ब्रज, कन्नौज, अवध तथा भोजपुर के नाम पर आधारित हैं। इसी तर्ज पर बुन्देलखण्ड की लोक भाषा को बुन्देली या बुन्देलखण्डी के नाम से अभिहित किया गया है। यह संज्ञा स्थानवाची है, वैज्ञानिक नहीं। बुन्देली शौरसेनी प्राकृत और मध्यदेशीय (कान्यकुब्जीय) अपभ्रंश से विकसित हुई है ।

ऊपर बुन्देलखण्ड की जिस शासकीय तथा भौगोलिक सीमा पर विचार किया गया है, उस समस्त क्षेत्र में बुन्देली ही बोली जाती है, ऐसा नहीं है। सच बात तो यह है कि किसी भाषा या बोली को एक निश्चित स्थूल सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। 'कोस–कोस पर पानी बदले पांच कोस पर बानी' कहावत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। एतद्विषयक डॉ० ग्रियर्सन का विचार अन्यन्त समीचीन है– एक तो बुन्देली उपर्युक्त क्षेत्र के बांदा जिले की बोली नहीं है दूसरे, चम्बल नदी ग्वालियर राज्य की उत्तरी और पश्चिमी सीमा का निर्धारण करती है, किन्तु बुन्देली उत्तर में चम्बल तक ही सीमित नहीं है। यह इस नदी को पार कर आगरा, इटावा और मैनपुरी जिले के दक्षिणी भाग में भी बोली जाती है। पश्चिम में यह चम्बल तक ही नहीं बोली जाती है, ग्वालियर राज्य के पश्चिमी भाग में ब्रज और राजस्थान की कुछ बोलियों से मिश्रित बुन्देली बोली जाती है। इसी प्रकार दक्षिण में यह नर्मदा को पार कर आगे बढ़ गई है। यह नर्मदा के पार होशंगाबाद और नरसिंहपुर जिले में ही नहीं, वरन् सिवनी जिले में भी बोली जाती है। यह बालाघाट

के लोधियों द्वारा तथा छिंदवाड़ा जिले के मध्यभाग की जनता द्वारा भी बोली जाती है। बुन्देली के क्षेत्र विस्तार तथा रूप पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है– बुन्देली पश्चिमी हिन्दी की बोली है। यह बुन्देलखण्ड तथा उसके समीपस्थ प्रदेशों में बोली जाती है। इसमें न केवल बुन्देलखण्ड एजेंसी ही सम्मिलित है, वरन इसके अर्न्तगत जालौन, हमीरपुर, झांसी तथा ग्वालियर राज्य का पूर्वी भाग भी आ जाता है। यह भोपाल तथा उसके समीपवर्ती, क्षेत्रों दमोह, सागर, सिवनी, नरसिंहपुर तथा मध्य प्रदेश के होशंगाबाद तथा छिंदवाड़ा जिलों के कुछ भू–भाग में भी बोली जाती है। बांदा यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत ही आता है, किन्तु वहां बुन्देली नहीं बोली जाती । यहां मिश्रित बोली का व्यवहार होता है, किन्तु मुख्यतया यह बघेली ही है।[1]

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा के अनुसार जनपदों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है –

(1) शूरसेन (ब्रज तथा बुन्देली का क्षेत्र)
(2) पांचाल (कन्नौजी भाषा क्षेत्र)
(3) कौशल और काशी (भोजपुरी क्षेत्र)
(4) कुरूक्षेत्र (कुरूभाषा का क्षेत्र)

इन सब भाषाओं को बुन्देली की बहने कहना अनुचित न होगा क्योंकि उनमें अपने–अपने भू–भाग की प्राकृतिक स्थिति, सांस्कृतिक भेद और निजी विशेषताओं के सिवा बहुत कुछ सादृश्यता है।[2]

यहां भारतीय भाषाओं तथा बोलियों के कतिपय अध्येता विद्वान विचारकों द्वारा बुन्देली से सम्बन्धित उसकी शुद्ध तथा मिश्रित सीमाओं पर, किये गये विचारों पर दृष्टिपात अपेक्षित तथा समीचीन जान पड़ता है –

(1) "ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिमी हिन्दी की पांच बोलियों में से एक जो ब्रजभाषा तथा कन्नौजी के साथ पश्चिमी हिन्दी बोलियों का एक वर्ग बनाती है बुन्देली बुन्देलखण्ड की बोली है। शुद्ध रूप में यह उत्तर प्रदेश में झांसी, जालौन, हमीरपुर जिलों तथा

---

1. *डॉ. सरजार्ज अब्राहम गियर्सन : 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' : पृ. 301*

2. *शिवसहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत' पृ. 16*

मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद जिलों में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाये जाते हैं।" (हिन्दी साहित्य के इतिहास)

— *डा. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश पृ. 517*

(2) "बुन्देली शुद्ध रूप से झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा (टीकमगढ़) सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी दमोह, बालाघाट तथा नागपुर में प्रचलित हैं।

— डा. भोलानाथ तिवारीः हिन्दी भाषा पृ. 166

(3) "यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल पूर्व ओर है टोंस, पश्चिमांचल में चम्बल।" बुन्देली इस सीमा के बाहर भी बोली जाती है। इसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में बांदा (पश्चिमीभाग) हमीरपुर, उरई--जालौन, झांसी के जिले, और मध्यप्रदेश में ग्वालियर का पूर्वी भाग, भोपाल का थोड़ा–सा हिस्सा, ओरछा, पन्ना, दतिया, चरखारी, सागर, टीकमगढ़ दमोह, नरसिंहपुर, सिवनी, छिंदवाड़ा, होशंगाबाद और बालाघाट के जिले पड़ते हैं।"

— *डॉ0 हरदेवबाहरी : ग्रामीण हिन्दी बोलियां*

(4) "चम्बल नदी वस्तुतः ग्वालियर की उत्तरी तथा पश्चिमी सीमा निर्धारित करती है, किन्तु उत्तर में बुन्देली चम्बल नदी तक ही नहीं बोली जाती, अपितु उसके पार आगरे–मैनपुरी तथा इटावे के दक्षिण में भी बोली जाती है। पश्चिम में भी इसकी सीमा चम्बल नदी नहीं है,क्योंकि पश्चिमी ग्वालियर में ब्रजभाषा तथा राजस्थानी की विभिन्न उपभाषाएँ बोली जाती हैं। दक्षिण में इसकी सीमा बुन्देलखण्ड की सीमा से बहुत दूर तक आगे चली जाती है। इधर यह केवल सागर, दमोह तथा भोपाल के पूर्वी–भाग में ही नही बोली जाती, अपितु मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर, हुशंगाबाद तथा सिवनी

तक पहुँच जाती है। बालाघाट के लोधी तथा छिंदवाड़ा के मध्यभाग की जनता भी एक प्रकार की मिश्रित बुन्देली बोली बोलती है। इसी प्रकार नागपुर के मैदान की भाषा यद्यपि मराठी है, तथापि यहां भी मिश्रित बुन्देली बोलने वाली अनेक जातियां बस गई हैं"।

– डॉ0 उदय नारायण तिवारी: हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ. 254

(5) "उत्तर प्रदेश के झांसी, जालौन और हमीरपुर के जिले तथा आगरा, मैनपुरी और इटावा का दक्षिणी भाग, ग्वालियर जिले का अधिकांश भाग, भिण्ड, मुरैना, गुना, शिवपुरी, दतिया, टीकमगढ़ छतरपुर पन्ना सागर, दमोह और कटनी तहसील के अतिरिक्त जबलपुर जिला, आप्टा और सिहोर तहसील का कुछ पश्चिमी भाग छोड़कर शेष सिहोर जिला, भोपाल, विदिशा, रायसेन, होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर तहसील, नरसिंहपुर, छिंदवाड़ा जिले की अमरवाड़ा और छिंदवाड़ा तहसील का पूर्वोत्तर एवं मध्यभाग, सिवनी जिले की लखनादौन तहसील तथा सिवनी तहसील का मध्य–पूर्वी भाग"।

डॉ0 कृष्णलाल हंस: बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप पृ. 12

इसके साथ ही डॉ. हंस ने बुन्देली के क्षेत्र तथा उसके भाषायी रूप पर विस्तार से विचार किया है। उन्होंने लिखा है कि भाषायी भूगोल की दृष्टि से सम्पूर्ण बुन्देली भाषी प्रदेश को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है– उत्तरीक्षेत्र, दक्षिणीक्षेत्र, पूर्वीक्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र और मध्यवर्ती क्षेत्र। भाषा की दृष्टि से बुन्देली चार रूपों में विभाजित की जा सकती है – परिनिष्ठित बुन्देली, शुद्धबुन्देली, मिश्रित बुन्देली और विकृत बुन्देली।

मेरी मान्यता है कि उत्तर में ब्रज तथा कन्नौजी, पूर्व में अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी, दक्षिण में मराठी, मालवी और पश्चिम में मालवी तथा राजस्थानी बोलियां बुन्देली की सीमा परिधि का निर्माण करती हैं। इन बोलियों से परिवृत्त बुन्देली में उनके सीमा क्षेत्र में इसमें सम्मिश्रण की स्थिति बनती है तथा अपनी सीमा में ये बोलियां एक दूसरे को प्रभावित करती है। शेष भाग में बुन्देली अपने रूपों के साथ बोली जाती है।

(स) बुन्देलीभाषी–जनसंख्या

भारतवर्ष का हृदय भू–भाग बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल अत्यन्त विस्तृत है तथा बुन्देली इससे भी अधिक विस्तृत भू–भाग की लोकभाषा है। इस लोकभाषा का क्षेत्रफल लगभग 1,10,000 वर्ग कि.मी. है, जिसकी उत्तर–दक्षिण में लम्बाई 483 कि.मी.तथा पूर्व–पश्चिम की चौड़ाई लगभग 362 कि.मी. है। डा. सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' के आधार पर बुन्देली बोलने वालों की संख्या तथा स्थानों के नामों की तालिका निम्नवत दी है –

लोक संख्या

स्टैन्डर्ड बुन्देली –	झांसी	–	6,79,700	
	जालौन	–	3,60,129	
	हमीरपुर	–	3,84,000	
	पूर्वी ग्वालियर	–	20,00,000	
	पूर्वी भोपाल	–	67,000	
	ओरछास्टेट	–	3,80,400	= 3519729
	सागर	–	5,82,500	
	नरसिंहपुर	–	3,63,000	
	सिवनी	–	1,95,000	
	होशंगाबाद	–	3,00,000	
पवारी –	ग्वालियर	–	1,50,000	
	स्टेट दतिया	–	2,03,500	
लोधांतीराठौरी –	हमीरपुर	–	98,000	
	चरखारी	–	39,500	= 137500
	जालौन	–	8000	
खटौला –	पन्ना इत्यादि	–	5,69,200	
	दमोह	–	3,22,000	= 891200
दक्षिण में	बालाघाट	–	18,600	

बुन्देली (रूपान्तर) –	छिंदवाड़ा	–	1,78,792	= 1,95,272
	नागपुर	–	1,09,880	
	कुल योग	–	68,69,201[1]	

इस प्रकार डॉ0 ग्रियर्सन ने स्टैण्डर्ड बुन्देलीभाषा–भाषियों की संख्या 3519,729 बुन्देली के दूसरे रूप के बोलने वालों की संख्या 8,91,200 तथा इसके मिश्रित और विकृत रूप बोलने वालों की संख्या 1,959,272 बताई है। फलतः उनके अनुसार बुन्देली बोलने वालों की कुल संख्या 6,869,201 है ।

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार बुन्देली बोलने वालों की कुल संख्या 69,00000 है।[2] डा. उदयनारायण तिवारी ने बुन्देली भाषा–भाषियों की संख्या लगभग 70 लाख बतलाई है।[3]

डॉ0 हरदेव बाहरी ने 1931 की जनगणना के अनुसार बुन्देली बोलने वालों की संख्या 69 लाख के लगभग बताई है तथा 1961 के ऑकड़ों के अनुसार यह संख्या 89 लाख तक होने का अनुमान किया है।[4]

श्री कृष्णानन्द गुप्त ने बुन्देली भाषी स्थानों तथा बोलने वालों की संख्या पर विचार करते हुए लिखा है– बुन्देली की जनसंख्या (1951) इस प्रकार है रायसेन (93,15,358) और सतना (5,55,603) सीमांती जिले हैं, जिनमें क्रमशः मालवी और बघेली भी बोली जाती है :–

	जिला	जनसंख्या
1.	ग्वालियर	5,30,299
2.	भिंड	5,27,978

1. *बलभद्र तिवारी : 'बुन्देली काव्य परम्परा' पृ. 56 से साभार उद्धृत।*
2. *डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : 'हिन्दी भाषा का इतिहास' (भूमिका) पृ. 65*
3. *डॉ. उदयनारायण तिवारी: 'हिन्दी भाषा का उदगम और विकास' : पृ. 254*
4. *डॉ. हरदेव बाहरी : 'ग्रामीण हिन्दी बोलियां' : पृ. 92*

3.	भेलसा (विदिशा)	2,93,023
4.	गुना	5,05,268
5.	शिवपुरी	4,76,092
6.	दतिया	1,64,314
7.	टीकमगढ़	3,66,165
8.	छतरपुर	4,81,140
9.	पन्ना	2,58,703
10.	सागर, दमोह	9,93,654
11.	जबलपुर	10,45,593
12.	मंडला	5,47,620
13.	होशंगाबाद, नरसिंहपुर	8,47,898
14.	बेतूल	4,51,655
15.	छिंदवाड़ा, सिवनी	10,80,491
	कुल योग	85,69,893 [1]

डॉ0 कृष्णलाल हंस ने बुन्देली भाषियों की संख्या तथा बोलने वाले स्थानों के नामों की एक विस्तृत तालिका प्रस्तुत की है तथा निष्कर्ष रूप में 70 हजार वर्ग खण्ड में बसे बुन्देली भाषियों की कुल संख्या लगभग 1 करोड़ 7 लाख बताई है। डां. हंस का यह आंकलन तथा प्रस्तुत तालिका अनुमानाश्रित है।

बुन्देली भाषियों की सही तथा शुद्ध संख्या का पता लगाना एक दुष्तर कार्य है। एक ही व्यक्ति अपने गांव घर–परिवार में बुन्देली बोलता है, वहीं अपने कार्यालय एवं बाहरी समाज में संपर्क भाषा का प्रयोग करता है। दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति का प्रभाव, मीडियाई ग्लोब्लाइजेशन, औद्योगिक–मशीनी, नगरीकरण, पूंजी की अभिप्सा तथा शिक्षा के प्रचार –प्रसार ने भाषा तथा बोलियों की अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लगाना शुरू कर दिया है।

---

1. *श्री कृष्णानन्द गुप्त : बुन्देली लोक साहित्य 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' पृ. 322*

(ख) सांस्कृतिक स्वरूप

मानव–जीवन के सम्पूर्ण आयामों का संचालन, अंतर्वृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिसके अपनाने से वह सच्चे अर्थो में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है, उसे संस्कृति कहते हैं। यह मानव–जीवन की विशिष्ट पद्धति तथा विकास की दिशा में सतत् गतिशील, किन्तु स्थायी जीवन व्यवस्था है, जिसे मानव–जीवन का सौन्दर्य एवं वैचाारिक केन्द्र बिन्दु से संयुक्त सामूहिक दृष्टि कोण भी कहा जा सकता है।[1] अतः यह एक सामाजिक भाव है। मानव–जीवन तथा समाज की वैविध्यपूर्ण गतिविधियों की संचालिका–शक्ति होने के कारण संस्कृति के इस विराट स्वरूप को किसी सर्वसम्मत परिभाषा में आबद्ध करना एक दुष्तर कार्य है। 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग तथा 'कृ' धातु के संयोग से हुई है, और अर्थ है सामान्यतः परिष्करण या परिमार्जन की किया अथवा सम्यक्रूपेण निर्माण। पण्डित मोती लाल जी के शब्दों में – "संस्कृति शब्द के सम्–स–कृति ये मुख्य पर्व–विभाग हैं। इन तीनों विभागों में भी मुख्य सम्–कृति ये दो ही विभाग हैं। पाणिनीय व्याकरण के नियमानुसार 'सम्' उपसर्ग के आगे रहने वाले कृति –कारादि की अवस्था में सुट् का आगम हो जाता है। फलतः सम्–कृति और सम्–कार आदि विभाग संस्कृति–संस्कार आदि शब्दों में परिणत हो जाते हैं।[2]

वातावरण वैयक्तिक परिस्थितियां, भौतिक साधन, व्यक्ति और समाज की सांस्कृतिक चेतना को स्वरूप देते हैं। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्रियाएं तथा परम्परानुमोदित दीर्घकालीन जीवनागत व्यवस्थाएं किसी जाति एवं समाज की संस्कृति कही जा सकती हैं। सामाजिक तथा धार्मिक क्रियाओं के अर्न्तगत रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज, व्रत–त्यौहार, संस्कारादि उत्सव, परम्परागत क्रियाएं आती हैं आर्थिक तथा राजनीतिक क्रियाओं के अर्न्तगत जीविका के साधन तथा शासन व्यवस्थाजन्य कार्यो की गणना होती है। अतः संस्कृति का अर्थ विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के समुच्चय से है।

बुन्देलखण्ड अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिये प्रसिद्ध है। यहां के सांस्कृतिक परिवेश का विस्तृत विवरण लोकजीवन के विविध आयामों में दिखता है। मूर्तियों से यहां

---

1. *डॉ. मदनगोपाल गुप्त : 'मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति' पृ. 1*
2. *पं. मोतीलाल शर्मा : 'सर्त्ता निरपेक्ष संस्कृति शब्द एवं सत्ता सापेक्ष सभ्यता' पृ. 6*

की संस्कृति टपकती है, लोकगीतों से सजती–सवंरती है तथा लोक कलाओं मे रचती बसती है। संस्कृति के आधारभूत यहां के रहन–सहन, रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार, व्रत–पूजन और शिल्पकला, स्थापत्यकला तथा ललित कला आदि का दिव्यदर्शन आपको इस आधुनिक युग में भी बुन्देलखण्ड के प्रत्येक ग्राम में अवलोकन करने को मिलेगा।[1]

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की संस्कृति समान है तथा परम्परा अक्षुण्ण। श्री उमाशंकर शुक्ल ने लिखा है– आदिकालसे ही बुन्देलखण्ड की जनता में सांस्कृतिक अन्तः प्रवृत्ति **(Cultural Instinct)** व्याप्त रही है।[2] यही कारण है कि यहां व्रत–उत्सव, पर्व–त्यौहार, रीति–रिवाज सभी जगह एक तरह से मनाएं जाते हैं। जो कजलियां महोबा, चंदेरी में बोई जाती हैं वही सागर तथा अन्य जिलों मे भी (फागें, दिवारी, भजन–भगतें, गारी एवं संस्कारजन्य गीत समूचे बुन्देलखण्ड में एक तरह के सुनने को मिलते हैं। बानगी के लिये यह कारूणिक भावना पूर्ण गीत –

कोट नवै पर्वत नवै सिर नवै ना नवाये,
आजुल जी को माथो तव नवै जब साजन आये......।

समूचे बुन्देलखण्ड में कन्या–विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है।

लोक वीरकाव्य 'आल्हा' भी पूरे बुन्देलखण्ड में सुनने को मिलेगा। इस मॉटी के देवपुरूष 'लाला हरदौल' के चबूतरे हर गांव में इस आधुनिक युग में भी देखनेको मिलेंगे जो यहां की सांस्कृतिक एकता के परिचायक हैं। ऊँच–नीच, बड़ा–छोटा, धनी–गरीब सभी के यहां समान रूप से विवाहादि मांगलिक कार्यो के सुअवसर पर 'लाला' का आवाहन तथा पूजन उनके लिये अनिवार्य है।

बुन्देली लोक साहित्य के प्रतिमान–लोकगीत, लोक कथाऐं, लोकगाथाएं, लोकनाटक, लोक सुभाषित आदि में सांस्कृतिक सौन्दर्य तथा एकता का सूर्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है। संस्कारगीतों में वैदिक युगीन कर्मकाण्ड का आभास होता है। श्रृंगार गीत मनुष्य की मूल कोमल भावना वृत्ति के परिचायक हैं तो श्रम गीत उसके पौरूष के द्योतक। मौसमों के बदलते त्योहारों के आने पर उल्लास, उत्साह और देवी–देवताओं की पूजा के गीत

---

1. *रामचरण ह्यारण मित्र : 'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' पृ. 15 (निवेदन से)*

2. *उमाशंकर शुक्लः 'बुन्देलखण्ड के लोकगीत' पृ. 16*

गाएं जाते हैं। यहां का सम्पूर्ण जनजीवन गीतात्मक है। एक हाथ में तलवार तो दूसरे में घुंघरू की झनकार, दोनों का अद्भुत समन्वय बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति में मिलता है। राष्ट्रप्रेम, स्वामी–भक्ति, वचन के प्रति निष्ठा ये इस संस्कृति के अतिरिक्त गुण हैं जो उसे अन्य संस्कृतियों से पृथक करते हैं।[1]

बुन्देलखण्ड की संस्कृति वीर भावना तथा शौर्य–पराक्रम की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। वैसे तो पूरे देश में ही शौर्य–भावना का प्राधान्य रहा है परन्तु बुन्देलखण्ड में यहां के प्राकृतिक परिवेश का जनजीवन पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। पर्वत की भांति शौर्य और स्वाभिमान से सिर ऊँचा कर जीने का स्वाभाविक भाव यहां के लोकगीतों में इन्हीं पहाड़ियों की देन है। दूर–दूर तक फैली विन्ध्य पर्वत–श्रृंखलाओं से परावर्तित दृढ़ता एवं आत्म विश्वास का भाव यहां के लोकसंगीत में भरा हुआ है। कदाचित् इन्हीं पहाड़ियों पर उगी झाड़ियों ने यहां के जनजीवन में विपरीत परिस्थितियों में जीने की प्रेरणा जगाई हों, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप यहां के गीतों में स्पष्ट झलकता है। लेकिन जिस तरह से ये पर्वत ऊपर से कठोर दिखाई देते हुए भी अपने अन्तर में शीतल जल का उत्स छिपाये रहते हैं, जो स्थान–स्थान पर जल प्रपात (निर्झर) के रूप में फूट पड़ा है वैसे ही यहां के व्यक्ति तथा संगीत में शौर्य–उत्सर्ग की शिलाएं हैं, तो अन्तस करूणा तथा स्नेह से परिपूर्ण। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण बुन्देलखण्ड के जननायक 'लाला हरदौल' हैं जिन्होंने अपनी वीरता तथा पराक्रम के बल पर एक बार अपने ज्येष्ठ भ्राता 'जुझार सिंह' का जीवन सिंह के पंजों से बचाया था और जहांगीर को 'कहावत खाँ' की कैद से अकेले जाकर मुक्त कराया था। जहांगीर व नूरजहां ने इस बहादुरी के कार्य हेतु लाला की भूरि–2 प्रशंसा की तथा कृतज्ञतापूर्ण दस हजार के लिये सनद और एक नेकलेस उपहार स्वरूप दिया।[2] वही दूसरी ओर इस देवपुरूष ने अपनी मात्रवत भाभी की चारित्रिक पवित्रता की रक्षा के लिये विषपान कर प्राणों का उत्सर्ग कर दिया –

'चाहत सांचो प्रेम है, त्याग और बलिदान,
ऐही से विषपान कर, लाला त्यागे प्रान ।

---

1. *डॉ. बलभद्र तिवारी : 'बुन्देली लोक काव्य' भाग–3 पृ. 275*
2. *डॉ. मोतीलाल त्रिपाठी : 'बुन्देलखण्ड दर्शन' पृ. 88, 89*

भौजी के लाला पीके विष प्याला,
बुन्देला राजा कर गए जग में नाम ।

तथा मरणोपरान्त अपनी बहन कुंजा को प्रेत रूप में दर्शन देकर उन्होंने अपनी भांजी के विवाह की पूरी तैयारी की –

महासोर भओ मरे हरदौल भात दओ
लाला की करनी कछु बरनी नई जात
मंडप के नैंचे सामान न समात
दान दायजो सुहात जड़े गानें जवारात
सब नऔ–नऔ महासोर भओ।[1]

भारतीय जीवन लोक और वेद से समन्वित तथा संबंधित है। फलतः सांस्कृतिक धरातल पर भी इसके दो रूप दिखाई पड़ते हैं – लोक संस्कृति तथा अभिजात संस्कृति लोक संस्कृति का सीधा जुड़ाव व्यापक जन समुदाय से होता है और उसमें वहां की आंचलिक विशेषताऐ तथा माँटी की सुगन्ध की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। लोक प्रचलित कलाऐं, भाषा प्रयोग की दिशाएं, धार्मिक अनुष्ठान, रीति–रिवाज, आचार–विचार, व्रत–त्यौहार, संस्कार तथा सामाजिक उत्सव, उद्योग धंधे, वस्त्रालंकार, सामाजिक रूढ़ियों, लोक विश्वास तथा मान्यताएं आदि लोक संस्कृति के तात्विक पक्ष हैं ।

बुन्देलखण्ड के निर्माणकाल के समय से ही लोक ने जिस संस्कृति को अपनाया वह इस भू–क्षेत्र की संस्कृति के नाम से पहचानी गई। बुन्देलखण्ड के अस्तित्व का आधार सामन्तवाद है अतः यहां की मूल संस्कृति तो सामन्तवाद की देन है, मूल से तात्पर्य इस आधारभूत तत्व से है जिसके कारण बुन्देलखण्ड बना। काशी की सूर्यवंशी गहिरवार शाखा का एक शासक यदि राज्य में हिस्सा पाने से वंचित न किया जाता तो कदाचित् बुन्देलखण्ड का निर्माण न होकर कुछ और होता । इसलिए मूलरूप में सामन्तवाद से सामन्ती व्यवस्था का जन्म ही बुन्देलखण्ड का आधार है। हेमकरन ने अपना खोया राज्यपाने के लिए विन्ध्यवासिनी देवी का आश्रय लिया और एक नये राज्य की कल्पना को साकार किया।[2]

---

1. *डॉ. मोतीलाल त्रिपाठी : 'बुन्देलखण्ड दर्शन' पृ. 447*
2. *डॉ. बलभद्र तिवारी : 'बुन्देली लोक काव्य' भाग–3, पृ. 272*

शासकों की कुशल चातुरी नीति तथा शौर्य पराक्रम के बल ने बुन्देलखण्ड की विस्तृत सीमा क्षेत्र का विस्तार किया। और लोक–व्यवहार की दृष्टि से अभिजन गौण हो गया। फलतः लोक संस्कृति के अपने मानदण्ड बन गये। और यही मानदण्ड बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक परिधि को स्पष्ट करते हैं ।

लोक संस्कृति का शुद्ध रूप ग्राम्यांचलों में दिखाई पडता है। ग्रामीण जनता का जीवन देवताओं में कृष्ण से अत्यधिक प्रभावित है। रामोपासक भी हैं लेकिन कृष्णोपासकों की तुलना में अत्यल्प। ब्रज के सन्निकट होने के कारण ब्रजी संस्कृति का सम्मिश्रण अवश्यंभावी है। अतः दैनंदिन जीवन तथा लोकसाहित्य कृष्ण भक्ति से पूर्णतया आच्छादित है। शिव, देवी, हनुमान आदि देवी–देवताओं की पूजा उपासना का प्रचलन भी बुन्देलखण्ड में है ।

लोकजीवन धर्माधारित होता है। बुन्देली जनजीवन भी व्रत–त्यौहार पूजा–उपासना से संकलित है। बुन्देलखण्ड में कुछ ऐसे भी व्रत तथा त्यौहार हर्षोल्लास से मनाए जाते हैं जो अत्यन्त कदाचित् ही दिखाई देते हैं। इनमें सीताजन्म, शंकर–विवाह, राधा–जन्म आदि हैं। स्थानीय त्यौहारों में– भुजरियां या कजलियां, जवारा, इच्छानौमी आदि। यहां की कर्मप्रधान संस्कृति तथा धर्मनिष्ठ जनता पर विचार करते हुए डॉ० सरला कपूर ने लिखा है– बुन्देलखण्ड की धर्मप्राण जनता की मनोवृत्ति के प्रत्यक्ष उदाहरण बुन्देलखण्ड के अगणित मंदिर हैं जिनके परिणाम स्वरूप भारत का हृदयस्थल, बुन्देलखण्ड अनेक जातियों के लिये तीर्थधाम बना हुआ है ।

बुन्देलखण्ड में संस्कृति का सामन्तवादी रूप भी दिखाई पड़ता है। यहां के राजे–महराजे–शासकों ने अपनी वीरता, अहयन्मता तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिये किसी के सामने सिर नहीं झुकाया। परिणामस्वरूप ऐतिहासिक कालक्रम में इस क्षेत्र को छोटी–छोटी रियासतों में बँटना पड़ा। कला तथा संस्कृति प्रेमी इन नरेशों ने अपनी–अपनी रियासतों में अनेक बाग बगीचे, ताल–तलैया, महल–मंदिर, दुर्ग स्तूप, छतरियों आदि का निर्माण तथा साहित्य, संगीत, मूर्ति, चित्रकारी आदि कलाओं का उत्थान कराया। आज ये स्थान तथा कलाकृतियाँ बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक चेतना की दस्तावेज हैं।स्थानों में खजुराहो, कालिंजर, देवगढ़, ओरछा, पन्ना, दतिया, तथा चन्देल महत्वपूर्ण है जों कला–प्रेमी तथा इतिहासोत्सुक पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं तथा बुन्देलखण्ड के गौरव में श्रीवृद्धि। ओरछा नरेश वीर सिंह देव द्वारा निर्मित ओरछा के ऐतिहासिक महल तथा

राधा–कृष्ण का मंदिर उनके कला प्रेम तथा भगवद्भक्ति का प्रतीक है। खजुराहो का शिव मंदिर अपनी कलात्मकता के लिये विश्वविश्रुत है तो प्राचीनकालीन शैवोपासना का प्रत्यक्ष प्रमाण। पुरातात्विक वस्तुओं से किसी देश–प्रदेश के उत्थान–पतन की जानकारी प्राप्त होती है। पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा प्राचीन गौरव–गाथा के प्रतीक बुन्देलखण्ड के स्तूप, स्मारक, सिक्के, प्राचीन शिलालेख, मन्दिर, छतरियाँ, किले व महलों के भग्नावशेष इस बात के प्रमाण हैं कि इसका अतीत कितना वैभवपूर्ण, आध्यात्मिक चेतना कितनी विकसित तथा भौतिक एवं बौद्धिक क्षमता कितनी समुन्नत रही है। पाषाणकाल से अद्यतन की संस्कृति–यात्रा के ये पद–चिन्ह इधर–उधर बिखरे पड़े, शासन तथा हमारी उपेक्षा पर आंसू बहा रहे हैं ।

बुन्देलखण्ड का पहनावा सादा है। पुरूष धोती, साफा, टोपी, बनयान, फतूमी, सलूका, लंगोटा, जांघियां पंछा, मिरजई, अंगरखा तथा पांवों में सराई, पनैया पहनते हैं। स्त्रियां–लहंगा, पोलका, धोती, घंघरियां, ब्लाउज, चुनरिया, पिछोरा, ओढ़नी, चोली तथा पाँव में पनैया, खनाऊ पनैया आदि पहनती है ।

आभूषण स्त्रियों की सबसे प्रिय वस्तु है। बुन्देलखण्ड इससे अछूता नहीं हैं। यहां स्त्रियां माँथे पर बेंदा, बीज, शीशफूल, कान में कर्णफूल (तरकुला) नाक में नथनी, बाली पुंगरिया लौंग, बुल्लाक, गले में–खगोरिया, तिदानों, हमेल, मटरमाला, मंगलसूत्र, लर, कमर में–करधौनी, कमरपट्‌टा, लर या सॉकर, उँगली में मुंदरी, कलाई में ककना, बंगरी, नोंगरे, चूरा, बेलचूड़ी, गजरा, पटेली बाँह में बाँके बाजूबन्द, बोटा तथा पॉव में बिछिया, मछरिया, छल्ली, टोडर, रूले, पैजने, लच्छा, पायले आदि पहनती हैं। प्रसाधन में – चोटी, ईंगुर, सिन्दुर, बूंदा, टिकली, काजल, सुरमा लगाती हैं तथा हाथों एवं पाव को मेंहदी और महावर से सजाती हैं। बांह तथा ठोड़ी पर गुदना गुदवाना तथा पान–सुपाड़ी खाना उनका शौक है ।

धार्मिक मान्यताएं तथा लोक विश्वास – बुन्देलखण्ड लोकजीवन अपनी धार्मिक मान्यताओं,देवी–देवताओं, लोक विश्वासों के प्रति सजग तथा सचेत है। टोना–टोटका, शकुन–अपशकुन, गंडा–ताबीज, भूत–प्रेत आदि के प्रति आस्था तथा विश्वास जन–जीवन में व्याप्त है ।

(ग) सांगीतिक स्वरूप

संगीत तथा मानवजीवन का अविच्छिन्न सम्बन्घ है। संगीत एक ऐसी नैसर्गिक ललित कला है,जिसमें स्वर तथा लय के माध्यम से मनुष्य अपने अन्तर्निहित भावों को अभिव्यक्त करता है। सामान्यतः संगीत' शब्द से केवल गाने का बोध होता है। किन्तु वास्तव में संगीत, स्वरों की माधुर्यपूर्ण तथा अमृत सदृश्य मीठी रचना को कहते हैं जिससे मन, चित्त, आत्मा को क्रमशः असीम आनन्द, अमित सुख तथा परम शान्ति की अनुभूति होती है। संगीत शब्द की निष्पत्ति गीत' शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगने से हुई है जिसका अर्थ है गायन के सहित । अर्थात् अंगभूत क्रियाओं के साथ हुआ कार्य (गीतं वाद्यं तथा नृत्यं वयं संगीत मुच्यते) संगीत कहलाता है ।

लोक तथा वेद से अनुस्यूत सामाजिक धरातल पर संगीत के दो रूप–लोक संगीत तथा शिष्ट या शास्त्रीय संगीत हैं। शास्त्रीय संगीत जहां संगीताचार्यों द्वारा स्थापित संगीत शास्त्र के कठिन नियमों तथा मानदण्डों से अनुशासित होता है वहीं लोकसंगीत अपने प्रकृतितः स्फूर्त स्वर–लहरियों में उच्चरित। एतद्विषयक् पंडित कुमार गन्धर्व का विचार अपेक्षणीय है– "शात्रोक्त' संगीत में भावना को स्वरों मे व्यक्त करने के लिये सम्पूर्ण शक्ति खर्च करनी पड़ती है, परन्तु बहुत कम गायकों को भिन्न–भिन्न स्वरूपों को व्यक्त करने की कला हस्तगत हुई है, जबकि लोक गायक उसे सहज ही व्यक्त कर देते हैं।[1]

लोक संगीत के नैसर्गिक प्रवाह तथा समष्टि में इसकी परिव्याप्ति को रेखांकित करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने लिखा है– लोकगीतों में धरती गाती है,पहाड़ गाते हैं, नदियां गाती हैं, फसलें गाती हैं, उत्सव और मेले, ऋतुएं और परम्पराएं गाती हैं।[2] बुन्देली लोक संगीत भी इस परिभाषा के आलोक में खरा उतरता है। बुन्देली धरती पर यह प्रकृत संगीत सहज ही बिखरा है। बुन्देली मॉटी की निजी सुगन्ध से सुवासित इन गीतों की जड़ें सुदूर अतीत तक जाती हैं ।

---

1. *श्री कुमार गन्धर्व : 'भारतीय संगीत का मूलाधार' : लोक–संगीत सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) पृ0 306*

2. *'संगीत' मासिक पत्र – जनवरी 1966 के अंक पृ. 84*

देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि लोकसंगीत है। शास्त्रोक्त संगीत को शास्त्रकारों ने 'देशी संगीत' कहा। 'मतंग' विरचित 'वृहद्देशी' ग्रन्थ देशी संगीत का प्रामाणिक तथा प्राचीन ग्रन्थ है। पं0 कुमार गन्धर्व के शब्दों मे "यदि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक–संगीत से हुई है, तो निश्चय ही लोक–संगीत अपने आप में पूर्ण होना चाहिये। लोक–संगीत का निर्माण स्वाभाविक है। इसको समझकर जब हम विश्लेषण करके नियमबद्ध करते हैं, तब वह लोक से हटकर 'शास्त्रीय' रूप धारण करता है"।[1]

उपर्युक्त धारणा लोकसंगीत मात्र के लिये ही नहीं वरन् बुन्देली लोकसंगीत भी इससे अनुस्यूत है।

बुन्देलखण्ड की संगीत–परम्परा अत्यधिक पुरातन है। विश्वविश्रुत संगीतज्ञ, राग–रागिनियों के सर्जक तानसेन तथा बैजू बावरा की जन्म तथा साधनास्थली होने का गौरव इस भूमि को सहज ही प्राप्त है। इसी से यहां की संगीत परम्परा की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है।

बुन्देलखण्ड के जिला टीकमगढ़ की वयोवृद्ध संगीत साधिका, श्रीमती असगरी बाई ध्रुपद–गायिका, जो लोकसंगीत में भी गहरी पैठ रखती हैं, का कहना था कि – "संगीत जब स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरा तो सबसे पहले बुन्देलखण्ड में उतरा होगा।[1] पारम्परिक लोकगीतों को गाते व सुनाते समय वे यह भी बताती थीं कि अमुक लोकगीत में अमुक राग की छाया है। अर्थात् बुन्देलखण्ड का कोई भी पारम्परिक लोकगीत हो, उसकी धुन को ध्यान से सुनने पर हमें किसी न किसी राग का जड़–बीज मिल ही जायगा। बुन्देली लोकगीतों के गाने–बजाने के लिये ऋतुएं, अवसर, समय आदि ठीक उसी प्रकार निर्धारित है, जिस प्रकार–राग–रागिनियों के गाने–बजाने का समय, काल। और वह समयानुसार ही अच्छी लगेंगी। एतद्विषयक् लोककवि ईसुरी का दृष्टिकोण है –

"भौतई बुरो लगत हैं 'ईसुर' बे अवसर को बाजौ ।

वस्तुतः होली के अवसर पर या फागुन मास में ही फाग गाई जाए तो उसका

---

1. *पं. कुमार गन्धर्व : 'भारतीय संगीत का मूलाधार लोक संगीत' (सम्मेलन–पत्रिका लोक संस्कृति अंक) पृ. 304*

2. *पं. गुणसागर सत्यार्थी : 'ईसुरी पत्रिका' अंक 1–83–84 पृ. 418*

प्रभाव अधिक पड़ेगा अपेक्षाकृत अन्य अवसर से। 'गोटें' (गायकी का एक प्रकार) हर समय, हर जगह नहीं गाई जातीं । भादौं की चौथ पर, देव चबूतरे पर, पूजा के अवसर पर ही ढॉक के साथ गाई जाती हैं । बुन्देलखण्ड के कई गॉवों में जहां बलि का आयोजन किया जाता है उस समय जो धुन गाई जाती है उसकी स्वर–रचना में वीभत्स भावों का संचार होता है। जब उसमें ऋषभ का चमत्कारिक प्रयोग होता है तब व्यक्ति रोमांचित हो उठता है। ठीक इसी प्रकार झूले की धुनों में झूले के दोलन बहुत स्पष्ट और मार्मिक प्रतीत होते हैं। पं0 कुमार गन्धर्व ने लिखा है – "लोकधुनों के स्वर समय के अनुरूप होते हैं। प्रातःकाल मध्याह, सायंकाल और रात्रि के अनुसार स्वर–साम्य लोकधुनों में स्वाभाविक है। शास्त्रोक्त संगीत में यह अत्यन्त महत्व का विषय समझा गया और रागों का समय विभाजन इनके स्वरों के अनुसार किया गया।[1]

यदि हम काव्य को संगीत का ही रूप मानकर चलें, तब तो प्राचीनकाल में जैजाक–भुक्ति के नाम से प्रसिद्ध बुन्देलखण्ड में चन्देलकालीन जनकवि 'जगनिक' को लोकगीतकार के रूप में सदैव याद किया जाता रहेगा। जगनिक का 'आल्हखण्ड' आज भी बरसात के दिनों में चौपालों से लेकर शहरों के गलियारों तक बड़ी मस्ती से गाया तथा सुना जाता है।

नुगल सम्राट अकबर के दरबारी संगीतज्ञ तानसेन को संगीत–सम्राट के रूप में याद करते ही बुन्देलखण्ड का मस्तक गर्व से ऊँचा उठ जाता है। चन्देलकालीन महाप्रतापी राजा 'धंग के शासनकाल में भिलसद (भेलसा–विदिशा) से लेकर गोपगिरि (ग्वालियर) को तानसेन की साधना स्थली होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंनें अनेक राग–रागिनियों का निर्माण किया। तानसेन घराने की अविछिन्न परम्परा–प्रवाह आज भी दिखाई देता है। प्रसिद्ध सितारवादक विलायत खां तथा गायक स्व. नासिर खां आपके ही घराने के उस्ताद रहे हैं ।

अमरकृति रामचरित मानस' के रचनाकार प्रातः स्मरणीय महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी इस धरा–धाम की मुकुटमणि हैं। कवि शिरोमणि द्वारा रचित चौपाई, दोहा, छप्पय, छन्द, सवैया, सोरठा, नहछू तथा मंगलगीत आदि की लयबद्ध लोक एवं शास्त्रोक्त गायकी सर्वत्र सुनाई पड़ती है ।

---

1. *पं. कुमार गन्धर्व : 'भारतीय संगीत का मूलाधार लोक संगीत' –सम्मेलन पत्रिका पृ. 305*

बुन्देलखण्ड की रियासतों का भी इस क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान रहा है। दतिया, ओरछा, पन्ना, बिजावर, समथर, बिजना, टीकमगढ़ आदि आज भी संगीत, चित्र तथा उत्कीर्णकला साधना के अप्रतिम कलाकेन्द्र माने जाते हैं ।

डंगरियायी दादरा, ध्रुपद–धमार तथा लेद की गायकी में दतिया ने अपना विशिष्ट स्थान रखा है।ख्याल की गायकी का तो दतिया प्रमुख केन्द्र ही था। 'लेद' दतिया की निजी पहचान है, अपना गौरव है। यह देश के दूसरे भागों में नही सुनाई पड़ती है। दतिया की शासन परम्परा में महाराजा भवानी सिंह तो एक अद्वितीय उदाहरण रहे। उनके समय में मुगल बादशाह अकबर की भाँति दरबार में नवरत्न की परम्परा प्रचलित थी।[1]

बुन्देली संगीत–गायकी में कलात्मकता की दृष्टि से क्रमशः लेद, डिगाई के दादरा और रसिया का विशेष स्थान है। लेद गायकी की कलात्मकता पर विचार करते हुए उपन्यास सम्राट श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने लिखा है – लेद इकताले से शुरू होती है। गवैया मौज के साथ राग–रागिनी की तानों पर ताने लेता है, अलाप करता चला जाता है, फिर ऐसी कारीगरी के साथ इकताले को दादरे की ताल में परिणत कर देता है, और लय इतनी द्रुत हो जाती है कि उसके कमाल पर आश्चर्य होता है। भारतीय संगीत को दतिया की यह भारी देन है।[2]

ध्रुपद–धमार की गायकी तथा गायक के सम्बन्ध में विचार करते हुए डॉ0 महेन्द्र ने लिखा है– ध्रुपद–धमार के गायकों में लातावारे (भ्राताद्वय) गज्जू राउत, सीताराम बिलथरिया के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ख्याल और दादरा आदि की गायकी में बुन्दू खां भी बेजोड़ थे। तीन सप्तक तक की गायकी में उनकी कोयल जैसी मिठास विद्यमान थी। कंठ का सुरीलापन व गायकी की परिपक्वता दोनों के संगम थे बुन्दू खां, दतिया नरेश महाराज भवानी सिंह के दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ 'लालाराम' बुन्देलखण्डी लेद और डंगरियायी दादरा के ज्ञाता थे। और गायकी में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे।[3]

वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई के पति महाराज गंगाधर राव तथा उनके अग्रज

---

1. *डॉ. महेन्द वर्मा : 'बुन्देल खण्ड की संगीत परम्परा', ईसुरी खण्ड 6 पृ. 12*
2. *दतिया–दर्शन पृ. '51*
3. *डॉ. महेन्द्र वर्मा : 'बुन्देलखण्ड की संगीत परम्परा', ईसुरी – खण्ड 6 पृ. 13*

महाराज रघुनाथ राव जी झाँसी की संगीत परम्परा के उत्थान के लिये सदा स्मरणीय रहेंगे। झांसी की शान तथा गायकी में बेजोड़ स्व. उस्ताद आदिल खां व मास्टर पुरन्दरे अपनी लयकारी युक्त गायकी के लिये प्रसिद्ध हैं। उस्ताद आदिल खां को संगीत की शिक्षा अपने पिता विलास खां से मिली। दतिया की लेद, ठुमरी, दादरा, ध्रुपद आदि के सिद्ध हस्त गायक आदिल खां साहब बुन्देलखण्ड की संगीत परम्परा में अपना अद्वितीय स्थान रखतें हैं। जबड़े की गायकी, उनकी विशेषता थी। उपन्यास सम्राट बाबू वृन्दावन लाल वर्मा, खां साहब की इज्जत तथा उनके हुनर की कद्र करते थे। इसीलिये उन्होंने अपने 'मृगनयनी' उपन्यास में 'बैजूबावरा' के रूप में अपने संगीतज्ञ मित्र आदिलखां को ही प्रस्तुत किया है।[1]

मास्टर पुरन्दरे को संगीत की शिक्षा पं. विष्णुनारायण भातखण्डे से मिली थी। आप ध्रुपद–धमार एवं ठुमरी के अप्रतिम गायक थे। आपकी शिष्य परम्परा में श्री रामेश्वर दयाल सक्सेना तथा शंकर राव पान्से का नाम उल्लेखनीय है।

दतिया के आल्हागायक गंगोले उर्फ गंगाधर श्रीवास्तव पूर्ण रूप से समर्पित कलाकार थे। आल्हा गायकों में दमरू महाराज, जोधा और रामदयाल के नाम भी चर्चित हैं। आल्हा गायकी की बारीकी पर विचार करते हुए महेश कुमार मिश्र ने लिखा है कि दतिया में आल्हा गान का प्रारम्भ 'साखी' से होता है। इसके लिये 'पीलू राग' से मिलत–जुलते 'मल्हार' नामक लोकधुन के स्वर निश्चित हैं। इन स्वरों के आधार पर प्रसंगानुकूल साखी गाई जाती है। 'लय' प्रायः मध्य विलम्बित रहती है; और मृदंग पर ठेका बजाया जाता है।[2] बुन्देली क्षेत्र में आल्हा गायकी में विविधता मिलती है। महोबा की आल्हा गायकी की अपनी अलग पहचान है ।

घंटा पांडे नाम से चर्चित स्व. रामसिंह पाण्डे अपने समय के ध्रुपद, ख्याल, तराना आदि के सिद्धहस्त गायक थे। लोक तथा शास्त्रीय संगीत के सशक्त हस्ताक्षर 'श्री अमरदान जी' ग्राम पचोखरा जिला जालौन अपनी संगीत साधना में रत हैं। उरई के 'पं0 प्रभुदयाल मिश्र' तथा उनकी शिष्य परम्परा में 'श्री विश्वनाथ श्रीखण्डे' आज भी

---

1. *डॉ. महेन्द्रवर्मा : 'उस्ताद आदिल खां की गायकी', ईसुरी 9 पृ. 14*

2. *श्री महेश कुमार मिश्र : 'मामुलिया' अंक 1/पृ. 56*

संगीत साधना में रत हैं। यहीं की लोक गायिका 'श्रीमती पूरन देवी' को लगभग एक हजार परम्परागत बुन्देली लोकगीत कंठस्थ थे ।

बुन्देलखण्ड की संगीत गायन परम्परा के साथ ही यहां की वादन परम्परा भी बेजोड़ रही है। सारंगी वादकों में पन्ना जागंड़ा, हस्सू खां तथा नत्थू खां आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। पन्ना जागंड़ा का सारंगी में गायकी शैली का चमत्कार विशेष स्थान रखता है, प्रसिद्ध पखावजी कुदऊं सिंह (कुदऊ महाराज) की उंगलियों की गति पर पखावज नर्तन करता सा जान पड़ता था। पखावज बजाते समय वे अपने दोनों हाथों से उसे ऊपर उछाल देते थे तथा फिर–सम पर पखावज को पुनः अपने हाथों में ले लेते थे। ये दृश्य दर्शकों को विशेष रूप से प्रभावित करता था, कहा जाता है कि एक बार इन्होंने समथर नरेश के यहां मदमस्त हाथी को गजपर्ण पखावज बजाकर वश में कर लिया था ।

योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र धुन्नू ने तबला वादन में वहीं निपुणता हासिल की थी जो उनके पिता पन्ना जागंड़ा ने सारंगी वादन में। धुन्नू के अलावा भुंजी भी एक अच्छे तबला वादक थे, श्री राम प्रसाद जी हारमोनियम के अप्रतिम कलाकार थे। हारमोनियम वादन में इन्होंने अनेक नये प्रयोग भी किये । हारमोनियम वादन की कला में 98 वर्षीय कालीचरण–मास्टर को महारथ हासिल थी। सारंगी वादन में मास्टर गिरधारी लाल एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। वहीं श्री एम.डी. श्रृंगी ऋषि वायलिन वादन में अपनी सानी नहीं रखते। ढोलक वादन में श्री बफाती खां का अपना विशेष स्थान है ।

'महाराज बिजना' 'श्री छत्रपति सिंह जी' ने पखावज वादन में बुन्देलखण्ड की धरती को गौरवान्वित किया है। उनके पखावज में कुदऊं महाराज की प्रतिमा की झलक मिलती है। इस प्रकार वादन के क्षेत्र में बुन्देलखण्ड का अप्रतिम स्थान है ।

संगीत की अंगीभूत क्रियाओं में गायन वादन पर पर्याप्त विचारोपरान्त इसके तीसरे अंग नृत्य पर यहीं विचार करना समीचीन जान पड़ता है। भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में भरतनाट्यम, कत्थक, कथकली, मणिपुरी आदि का विशेष स्थान है, जिसमें गायन, वादन तथा नृत्य का शास्त्रीय समवेत रूप देखने को मिलता है। इन शास्त्रीय नृत्यों के अलावा प्रत्येक प्रदेश तथा क्षेत्र के अपने नृत्य भी हैं, जो अपनी क्षेत्रीय तथा जातीय विशेषताओं से अभिमण्डित होते हैं।

लोकनृत्य का आरम्भ कब और कैसे हुआ यह कहना कठिन है फिर भी यह सभी

कलाओं में यहां तक कि वाक् कला से भी अति प्राचीन है। कदाचित् सृष्टि के आरम्भ में भावहीन मानव ने भाव–प्रकाशन के लिए शरीर से हाव–भाव का आश्रय लिया होगा। कालान्तर में भाव-प्रकाशन की इन्हीं सार्थक मुद्राओं का नाम नृत्य पड़ा होगा, ऐसा जान पड़ता है। नृत्य के आदि आविष्कारक लोक–देवता शिव–पार्वती कहे जातें हैं। जिन्होंने ताण्डव व लास्य नामक नृत्य की संरचना की। अतः शास्त्रोक्त नृत्य का जन्म लोक नृत्य की कुक्ष से होना स्वतः प्रमाणित है ।

बुन्देलखण्डी लोकनृत्य की परम्परा अति प्राचीन है। बुन्देलखण्ड के सुदूर ग्रामीण अंचलों, पर्वत–उपत्यकाओं तथा वन्य श्रेणियों में बसे आदि वासी जन अपने विभिन्न पर्व, त्योहारों को परम्परागत नृत्यों से सजाते, संवारते तथा सोल्लास मनाते हैं। इन नृत्यों में दीवारी नृत्य अपना विशेष स्थान रखता है। इस नृत्य में श्रृंगार भावना की अपेक्षा वीरता का भाव अत्यधिक प्रदर्शित होता है, जो बुन्देली माटी की निजी विशेषता है ।

आदिवासी स्त्री पुरूषों द्वारा कदम्ब–पेड़ के चारों ओर वृत्ताकार नृत्यायोजन होता है जो कृष्ण की रासलीला की भावना को प्रत्यक्ष उजागर कर देता है। 'मादर' की ध्वनि से मदमत्त इन आदिवासियों के थिरकते अंग–प्रत्यंग अपनी विभिन्न भाव भंगिमाओं से कृष्ण–लीलाओं को सहज ही पुनर्जीवित कर देते हैं। उनके इस नृत्य को 'करमानृत्य' कहते हैं जो भावाकर्षक तथा अत्यन्त प्रभावपूर्ण होता है ।

'सुआनृत्य आदिवासियों का परम्परागत नृत्य है। इनकी स्त्रियां थाली में मिट्टी के तोते को रखकर घर–घर जाकर समूह बद्ध हो ताली की लयात्मक ध्वनि पर भावपूर्ण नृत्य किया करती हैं ।

शास्त्रोक्त नृत्य जहां शास्त्रीय मानदण्डों पर आधारित आडम्बर युक्त बौद्धिक साधना है, इसके विपरीत लोकनृत्य हृदय के प्राकृतिक गुणों के आडम्बरहीन आलम्बन हैं। इसके अभिव्यक्ति करण ने जीवन को सरसता प्रदान कर लोक–संस्कृति और कला को युग–युग से सुरक्षित रखा है। शांति अवस्थी के उपर्युक्त कथन का आलोक बुन्देली लोकनृत्यों में देखने को मिलता है। विवाहादि–संस्कार, जन्मोत्सव, पर्व–त्योहार तथा मांगलिक अवसरों पर बुन्देली–स्त्रियां साभूहिक रूप से अपनी हृदयगत उल्लास को नृत्य तथा गीतों में अभिव्यक्त करती हैं। इनका यह नृत्य आडम्बरहीन प्रकृतितः होता है, जो कलात्मक नृत्य से अत्यधिक आह्लाद–कारी तथा प्रभावपूर्ण होता है।

बुन्देलखण्ड जातीय नृत्यों से भरा पड़ा है। आज भी ढीमर, धोबी, कंजड़, चमार, बसोर, मेहतर, ग्वाला, गौंडवेंगा आदि जाति के लोग विभिन्न पर्व–त्योहार, जन्मविवाहादि अवसरों पर अपने परम्परागत–नृत्यों का प्रदर्शन कर मन को मोह लेते हैं। बुन्देलखण्ड के ग्वाले दीवाली के अवसर पर श्री कृष्ण लीला से सम्बन्धित नृत्य का प्रदर्शन करते हैं। यहां की यह परम्परा अति प्राचीन है यहां के कृष्ण के दही चुराने की लीला पर आधारित 'अहारी नृत्य' अपना विशेष स्थान रखता है। पुत्र–जन्मोत्सव तथा विवाहादिक अवसरों पर हिंजड़े अपनी हास्यपूर्ण भंगिमाओं तथा विशेष प्रकार के गीत व नृत्य द्वारा जनमानस को आह्लादित करते हैं । बसोर जाति की स्त्रियां पुत्र–जन्मोत्सव पर सोहर तथा बधाएं गाती एवं नाचती हैं ।

उपर्युक्त नृत्यों के अलावा बुन्देलखण्ड में देश के अन्य भागों की तरह भिक्षाटन करने वाले लोग बन्दर, भालू, मदारी तथा कठपुतली के नृत्य द्वारा बच्चों का मनोरंजन करते हैं तथा लोक जीवन को सरस एवं उल्लासमय बनाने में अपना योगदान करते हैं।

(घ) संकलन तथा अनुसंधान

भारत में लोकवार्ता तथा लोक–साहित्य के सम्यक अध्ययन का श्री गणेश विद्वान अंग्रेज प्रशासनिकों ने किया। 18 वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में अंग्रेजों का शासन सुदृढ़ हो चुका था। प्रशासनिक दृष्टि से अंग्रेज अधिकारियों के लिए यह आवश्यक था कि वे यहां की बहुसंख्यक ग्रामीण जनता से सीधे जुड़ें। इस दृष्टि से उन्होंने यहा की लोक–संस्कृति तथा साहित्य का अध्ययन शुरू किया। पाश्चात्य ज़गत् में समाज शास्त्र, नृ–विज्ञान, पुरातत्व आदि मानविकी विषयों के अध्ययन, मनन के संस्कार ने उनमें समाज के लोक–तात्विक चिन्तन, मनन तथा विवेचन का बीज डाल दिया था। भारतीय परिवेश ने उस बीज को अंकुरित तथा पल्लवित करने में अपनी अहम् भूमिका निभाई। इसके साथ ही ईसाई मिशनरियों तथा धर्म–प्रचारक पादरियों का एक दूसरा वर्ग था, जो इस देश में मसीही धर्म का प्रचार–प्रसार करना चाहता था अतः यहां की जनता से सम्पर्कित होने के लिए उन्होनें यहां की बोली, रहन–सहन, खान–पान, पर्व–त्योहार की गहरी जानकारी प्राप्त करने के लिए लोकवार्ता तथा साहित्य का अध्ययन करना शुरू किया। इन्हीं दोनों के प्रयत्न तथा अध्ययन ने भारत में एतद्‌विषयक अध्ययन का सूत्र पात किया।

फलतः इसके सुचारू तथा सुव्यवस्थित अध्ययन तथा अनुसंधान के लिए सोसायटीज तथा लोकवार्ता परिषदों की स्थापना हुई। 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' तथा उस जैसी अनेक सोसायटी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित हुईं। अध्ययन के इस नये क्षेत्र ने भारतीय सामाजिक विचारकों तथा साहित्य-सेवियों को अत्यधिक प्रभावित किया और उनमें इस दिशा में अध्ययन की आवश्यकता उद्‌भूत हुई।

डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने डा. सिद्धेश्वर वर्मा को लिखे अपने पत्र में इस विषय के अध्ययन की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है – "हमें अब सामूहिक चिन्ता है कि किस प्रकार हमारी साहित्य श्री हमें फिर प्राप्त हो। इस प्रयोजन के लिए हमारे पास वहां से निमन्त्रण आया है' – जहां भूमि का मीठा दूध प्रतिवर्ष सूर्य की किरणों से दही जमकर जौ, गेहूं के अरबों दानों से हमारे कोठारों को लक्ष्मी से भर देता है। इसी क्षीर-सागर में हमारा साहित्यिक विष्णु सोया हुआ है। उसके पास हमारी साहित्यिक श्री विराजमान है वहां से उसका आह्वान करना हमारी साहित्यिक दीपावली का संदेश है।"[1]

साहित्य के इतिहास का पूर्ण-रूपेण तथा सम्यक् अध्ययन, लेखन में जनता की चित्तवृत्तियों तथा उसके प्रकाशन के माध्यमों की जानकारी पर विशेष बल दिया जाने लगा। इसकी आवश्यकता तथा महत्ता का प्रतिपादन करते हुए महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि -- "ऐसी परिस्थित में हिन्दी साहित्य के इतिहास के सम्यक् अनुशीलन के लिए लोक साहित्य की पृष्ठभूमि से परिचित होना एक आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। अतः हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों का यह धर्म है कि वे लोक-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य के अनुशीलन तथा शोध का प्रयास करें।[2]

इन्हीं विद्वान मनीषियों से प्रेरणा प्राप्त कर देश-प्रदेश तथा क्षेत्रीय स्तर पर लोकवार्ता विषयक अध्ययन, अनुसंधान, संकलन तथा संग्रह का कार्य पूरे देश में द्रुत गति से प्रारम्भ हुआ। प्रस्तुत अध्ययन बुन्देलखण्ड के लोकवार्ता तथा लोक-साहित्य के ऐतिहासिक विकास, अनुसंधान तथा संकलन से सम्बन्धित है। अतएव यहां इस क्षेत्र में किए गए एतद्‌विषयक कार्य का अनुशीलन करना श्रेयस्कर होगा ।

---

1. *'पृथ्वी-पुत्र', पृ. 206, 207*

2. *'हिन्दी-साहित्य का वृहद इतिहास' – षोडस भाग, पृ. 15*

बुन्देलखण्ड की साहित्यिक–ऐतिहासिक विकास यात्रा ने यहां के साहित्य–साधकों, शिक्षा–विदों, अनुसंधानकर्ताओं, संकलन कर्ताओं तथा सामान्यजन ने विशिष्ट तथा बहुमूल्य योगदान किया है। अपनी अलौकिक साधना तथा कठिन परिश्रम से समाज–चेत्ताओं ने इसकी साहित्यिक परम्परा की एक सुदृढ़ आधारशिला रखी है। इस विषय में मुंशी अजमेरी लाल का कथन अपेक्षणीय है ।

"तुलसी केशव, लाल बिहारी, श्रीपति, गिरधर।
रसनिधि, रायप्रवीन, भजन, ठाकुर, पद्माकर।।
कविता मंदिर कलश सुकवि कितने उपजाये।
कौन गिनावे नाम जाये किससे गुण गाये।
यह कमनीया काव्यकला की नित्य भूमि है।
सदा सरस बुन्देलखण्ड साहित्य भूमि है।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कमनीया काव्यकला की सरस भूमि बुन्देलखण्ड की साहित्यिक परम्परा, उसकी गरिमा तथा साधना के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। बुन्देलखण्ड की साहित्यिक परम्परा का इतिहास इसके समुज्ज्वल अतीत को रेखांकित करता है। संस्कृत भाषा के आदि कवि तथा आदि काव्य के सर्जक महर्षि बाल्मीकि, पंचम वेद, आर्षकाव्य 'महाभारत' महाकाव्य के प्रणेता कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास तथा हिन्दी लोक भाषा के आदिकवि 'जगनिक' इसी बुन्देलखण्ड के गौरव हैं ।

जनकवि 'जगनिक' ने संवत् 1230 में बुन्देली लोक–काव्य 'आल्ह–खण्ड' की रचना कर साहित्य जगत में लोकप्रियता प्राप्त की। हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक आचार्य शुक्ल ने 'जगनिक' के सम्बन्ध में लिखा हैं "ऐसा प्रसिद्ध है कि कालिंजर के राजा परमालके यहां जगनिक नाम के एक भाट थे जिन्होंने महोबे के दो देश–प्रसिद्ध वीरों आल्हा और ऊदल के वीर–चरित्र का विस्तृत वर्णन एक वीर गीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था जो इतना सर्वप्रिय हुआ कि उसके वीर गीतों का प्रचार क्रमशः सारे उत्तरीय भारत में विशेषतः उन सब प्रदेशों में जो कन्नौज साम्राज्य के अर्न्तगत थे, हो गया।"[2].... आगे उन्होनें

---

1. *मोती लाल त्रिपाठी अंशान्त : 'बुन्देलखण्ड दर्शन', पृ. 338*

2. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ. 48*

लिखा कि – "अनुमान होता हैं कि आल्हा सम्बन्धी ये वीर गीत जगनिक के रचे उस बड़े काव्य के एक खण्ड के अन्तर्गत थे जो चंदेलों की वीरता के वर्णन में लिखा गया होगा। आल्हा और ऊदल परमाल के सामन्त थे और बनाफर शाखा के क्षत्रिय थे। इन गीतों का एक संग्रह 'आल्ह–खण्ड' के नाम से छपा है। फरूखाबाद के तत्कालीन कलेक्टर मि. चार्ल्स इलियट ने पहले पहल इन गीतों का संग्रह करके 60–70 वर्ष पूर्व छपवाया था।"(1)

जनकवि जगनिक कृत 'आल्ह–खण्ड' में 'आल्हा–ऊदल' की वीरता का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन लोक–रागिनियों के रूप में जनसामान्य को होता है। इस काव्य के गान में ऐसी जान है कि श्रोता उमंग से भर जाते हैं। इसका मौखिक रूप ही प्रधान रहा है इसमें वीरगाथा कालीन वीरता का स्वर तो गुंजित है पर मूल वाणी का पता नहीं है।

बुन्देलखण्ड की साहित्यिक विकास यात्रा आदिकवि बाल्मीकि से प्रारम्भ होकर अद्यावधि अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है। इस धरती ने ऐसे–ऐसे साहित्य–सपूतों को जन्म दिया, जिन्होंने बुन्देलखण्ड को ही नहीं वरन् इस देश के मस्तक को ऊँचा उठाया है। रामचरित मानस के अमर गायक, समन्वय की भावना के प्रतिष्ठापक भारतीय धर्म, भाषा, साहित्य तथा संस्कृत के रक्षक, उन्नायक कवि शिरोमणि, गोस्वामी तुलसीदास को जन्म देकर यह धरती हुलसी हुई। काव्य शास्त्र के प्रणेता महापंडित आचार्य केशव ने अपनी काव्य प्रतिभा से काव्य–जगत को चमत्कृत कर इस भूमि को गौरवान्वित कर दिया। बिहारी जिनके दोहे के एक–एक सफे पर सौ–सौ रीतिकालीन नायिकाएं न्यौछावार की जा सकती हैं इस भूमि के श्रंगार हैं श्री गोरेलाल की ओजस्वी, वीरभाव पयस्विनी रचनाओं ने इस भूमि को वीरता से महिमा–मंडित किया है ।

पन्ना नरेश छत्रसाल की लेखनी की मार तथा तलवार की धार दोनों का एक सा प्रभाव था। मुंशी अजमेरी की अलौकिक प्रतिभा ने जहां इतिहास को जीवित किया वहीं गौरीशंकर द्विवेदी ने इस भूमि के भूले–बिसरे साहित्य मनीषियों से बुन्देली इतिहास की प्राण प्रतिष्ठा की। लोककवि ईसुरी की लोक चेतना ने बुन्देली माटी की गन्ध को फाग–गीतों के माध्यम से फागुनी कर दिया ।

---

1. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ. 49*

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तथा उनके अनुज श्री सियारामशरण गुप्त ने राष्ट्रीय स्तर पर बुन्देलखण्ड के साहित्य की श्री वृद्धि की। श्री रामचरण ह्यारण मित्र का बुन्देलखण्ड की संस्कृति व साहित्य के विकास में अप्रतिम योगदान रहा है।

इस क्षेत्र की साहित्य–वृद्धि में इन साहित्यकारों, रचनाकारों के साथ–साथ यहां की सृजनशील कवयित्रियों का भी विशेष योगदान है। इनमें रायप्रवीण, प्रेमसखी आदि तथा 'खूब लड़ी मरदानी वो तो झांसी वाली रानी थी' की वीरता मूलक काव्य–रचना की अमर गायिका 'सुभद्रा कुमारी चौहान' इन पंक्तियों में झांसी की रानी के रूप मे पुनर्जीवित हो उठी हैं ।

उपरिलिखित साहित्यकारों, काव्यकारों तथा सुधी आलोचकों के सम्बन्ध में जो विचार किया गया है, वह बुन्देलखण्ड की साहित्यिक अभिरूचि तथा सृजनशील परिवेश का दिग्दर्शन कराना मात्र है। प्रायः साहित्य अथवा लोकचेतना की विवृत्ति, स्थान–विशेष के परिवेश तथा वातावरण पर निर्भर करती है। बुन्देलखण्ड की जैसी साहित्यिक उर्जस्विता रही है वैसी ही लोक–साहित्य की महत्ता । लोकसाहित्य तथा शिष्ट साहित्य की गंगा जमुनी अक्षुण्ण नीरा ने इस क्षेत्र को सदा आप्लावित किया है।

बुन्देलखण्ड की लोक–साहित्यिक परम्परा अतिप्राचीन तथा अत्यन्त समृद्ध है। जहां लोक–साहित्य के इस विशाल भण्डार को यहां के विद्वान मनीषियों ने श्रम एवं निष्ठापूर्वक संकलन, सम्पादन एवं प्रकाशन कर क्षतिग्रस्त होने से बचाया है वहीं अुनसंधानकर्ताओं ने विलुप्तप्राय सामग्रियों को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

सन् 1885 में डा. सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'द सांग्स ऑफ आल्हाज मैरिज' नामक लेख 'इन्डियन एन्टीक्वैरी' में लिखा। इस लेख ने सुधी विद्वानों को इस लोक–काव्य की ओर आकर्षित किया। 1893 में पं. राम गरीब चौबे ने "नार्थ इण्डिया नोब्स एण्ड क्वैरीज" नामक पत्रिका में बुन्देलखण्ड के आदर्श 'हरदौल' से सम्बन्धित लोकगीतों को प्रकाशित कराया था ।

सन् 1944 ई. में ओरछा के साहित्य साधक तत्कालीन महाराज के संरक्षकत्व में टीकमगढ़ में 'लोक–वार्ता–परिषद' की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य बुन्देलखण्ड के लोक–साहित्य के प्रतिमानों को वैज्ञानिक सारणी में संकलित तथा प्रकाशित कराना था। इस परिषद के तत्वाधान तथा श्री कृष्णानन्द गुप्त के सम्पादकत्व में 'लोकवार्ता' नामक

त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ यह पत्रिका जून 1944 से अप्रैल 1946 तक मात्र 'छ' अंक प्रकाशित कर असमय ही काल–कलवित हो गई फिर भी अपने शैशव काल में इस पत्रिका ने बुन्देली लोकसाहित्य की जो सेवा की वह अविस्मरणीय है। पत्रिका के निवेदन में इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए श्री गुप्त ने लिखा है – "लेखमाला हर तीसरे महीने नियम से छपेगी। उसमें मुख्यतः बुन्देलखण्ड की जनता में प्रचलित रीति–रिवाजों, विश्वासों, किंवदंतियों, गीतों आदि से संबंधित लेख प्रकाशित होगें । उद्देश्य होगा, बुन्देलखण्ड की लोक वार्ताओं का अध्ययन, अनुशीलन और संकलन ।"[1] श्री गुप्त ने (जनकवि ईसुरी के फाग–साहित्य को) 'ईसुरी की फागें' नामक पुस्तिका का प्रकाशन कराया तथा 'सभा' द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास' (षोडसभाग) में बुन्देली लोक–साहित्य को गद्य तथा पद्य में विभाजित कर उसके पूरे स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया, साथ ही समय–समय पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिखकर श्री गुप्त ने बुन्देली साहित्य को प्रकाश में लाने का भरपूर प्रयास किया। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के सद्प्रयास से 'मधुकर' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ । इस पत्रिका ने यहां के लोक–साहित्य के प्रकाशन में अपनी अहम् भूमिका निभाई ।

बुन्देली लोक साहित्य के संग्रह कर्ताओं में श्री मन्नन द्विवेदी तथा पं. राम नरेश त्रिपाठी का योगदान अविस्मरणीय है। श्री शिवसहांय चतुर्वेदी ने बुन्देली लोक–गीतों का सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सैद्धान्तिक सन्दर्भ निरूपित करते हुए उनका संकलन तथा सम्पादन किया। 'बुन्देलखण्डी लोकगीत' में उन्होंने इस क्षेत्र में विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों का विद्वतापूर्ण संग्रह किया है। इसके साथ ही श्री चतुर्वेदी ने 1947 में 'बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियां 1950 में 'पाषाणनगरी' तथा 1953 में 'गौने की विदा' नामक तीन पुस्तकें बुन्देली लोककथाओं से सम्बन्धित प्रकाशित कराईं। श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने 'बुन्देल वैभव' भाग 1,2,3 में बुन्देली लोक साहित्य पर समग्रता से विचार किया है। बुन्देली लोक–साहित्य से सम्बन्धित छोटी बड़ी 10 पुस्तकों को देकर श्री श्रीचन्द जैन ने बुन्देलखण्ड पर बहुत बड़ा उपकार किया है। उनकी 'आदिवासियों के लोकगीत" 'विन्ध्य के लोक कवि', 'धरती मोरी मइया, आगे गेहूं पीछे धान', 'भुइयां परे मोरे लाल,' 'विन्ध्य भूमि की अमर कथाएं,' 'विन्ध्य के आदिवासियों की कथाएं', 'विन्ध्य के लोकगीत'

---

1. *लोकवार्ता : वर्ष–1, अंक–1, निवेदन, पृ0 4*

तथा काव्य में ' पादप पुष्प आदि पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं श्री श्यामसुन्दर बादल लिखित – 'बुन्देली का फाग–साहित्य एक ऐसी रचना है, जिसमें लोकगीतों के एक विशिष्ट प्रकार (फाग गीत) का रूपगत, छन्दगत तथा काव्य सौन्दर्यगत शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है श्री रामचरण ह्यारण मित्र' ने अपनी पुस्तक 'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' में बुन्देलखण्डी लोकसाहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत करने के साथ ही उसका शास्त्रीय पक्ष भी प्रस्तुत किया है । विद्वान लेखक ने लोकगीत, लोकोक्ति के साथ ही बुन्देली लोककला, चित्रकला, गायनकला तथा वर्ष के उत्सव त्यौहार, मेलों आदि का सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन भी प्रस्तुत किया है ।

पं. मोती लाल त्रिपाठी अशान्त लिखित 'बुन्देलखण्ड दर्शन' में बुन्देलखण्ड अपनी पूर्णता एवं समग्रता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

बुन्देली लोक–साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा लोकगीतों के सम्पादन, प्रकाशन, उनके सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन अत्यधिक हुआ है। लोकगीतों के संग्राहकों में श्री वृन्दावन लाल वर्मा' (बुन्देलखण्ड के लोकगीत), श्री शिवसहाय चतुर्वेदी (बुन्देलखण्डी लोकगीत) श्री उमाशंकर शुक्ल (बुन्देलखण्ड के लोकगीत) श्री हरप्रसाद शर्मा (बुन्देलखण्ड के लोकगीत), श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी (बुन्देलखण्डी लोकगीत) डा. बलभद्र तिवारी (बुन्देली लोककाव्य) श्री वासुदेव तिवारी (बुन्देलखण्डी लोकगीत) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

लोककवि 'ईसुरी' बुन्देली जन के कण्ठहार हैं। इनके फागों की पिचकारी के सतरंगी रंग से बुन्देलखण्ड का जनजीवन सराबोर है। इनके फाग बुन्देली समाज के दर्पण हैं। इसमें श्रंगार तथा अध्यात्म का मणि कांचन योग है। फलतः ईसुरी के फागों के प्रकाशन पर संग्रहकर्ताओं तथा अनुसंधित्सुओं का आलोचनात्मक दृष्टिकोण अत्यधिक रहा है – ईसुरी की फागें (कृष्णानन्द गुप्त) लोककवि ईसुरी और उनका साहित्य (नर्मदा प्रसाद गुप्त) ईसुरी की फागें (धनश्याम कश्यप) बुन्देली का फाग साहित्य (श्याम सुन्दर बादल) बुन्देलखण्ड के लोकगीत तथा लोककवि ईसुरी (डॉ0 शंकर लाल) आदि विद्वान अनुसंधित्सुओं का कार्य प्रशंसनीय है ।

बुन्देली लोक–साहित्य की लुप्त प्राय साम्रगी का प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास एकाधिक पत्र–पत्रिकाओं ने किया है । इनमें लोक–वार्ता, मधुकर, ईसुरी 'मामुलिया',

चौमासा'–'सुराज, छायानट आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है गत पृष्ठों में लोकवार्ता तथा मधुकर पर विचार किया जा चुका है । डॉ0 कान्ति कुमार जैन के सम्पादकत्व में बुन्देली पीठ (हिन्दी विभाग) सागर–विश्वविद्यालय, सागर से निकलने वाली 'ईसुरी' पत्रिका ने बुन्देलखण्ड के लोक–साहित्य की जो अप्रतिम सेवा की है, वह प्रशंसनीय है। छतरपुर मध्यप्रदेश से डा. नर्मदा प्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'मामुलिया' ने यथा नाम तथा गुण को चरितार्थ करते हुए बुन्देली लोक–साहित्य के सम्पादन, प्रकाशन तथा नितनूतन शोधपरक लेखों से बुन्देली लोक–साहित्य को अमूल्य दिशा प्रदान की है। 'चौमासा' मध्यप्रदेश आदि वासी लोककला परिषद भोपाल का प्रकाशन है। स्वतंत्रता के 40 वर्ष पूरे होने पर परिषद ने मध्यप्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम आदिवासी अंचलों और लोकगीतों में उसकी अभिव्यक्ति से सम्बन्धित 'सुराज' पुस्तिका का प्रकाशन डा. कपिल देव तिवारी प्रकाशनाधिकारी की देख रेख में हुआ है। इसमें भतरी, हल्वी, उरांव, गोंडी, कोरक, वैगा, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, बघेली, निमाड़ी बोलियों के 82 लोकगीत संकलित हैं। इसमें 1857 के बाद के लोकगीतों से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले तक के लोकगीतों का संकलन किया गया है। इसमें डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त ने बुन्देली लोककण्ठ में रचे बसे लोकगीतों को लगन, परिश्रम, निष्ठा और सूझबूझ के साथ सन्दर्भात्मक टिप्पणियों और पाठ–निर्धारण के साथ छपवाया है। उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ से प्रकाशित 'छायानट' पत्रिका ने समय–2 पर बुन्देली लोक–साहित्य से सम्बन्धित शोध–परक लेख छापकर बुन्देलखण्ड एवं बुन्देली की अप्रतिम सेवा की है ।

रीवां, सागर, जबलपुर, झांसी, ग्वालियर, खैरागढ़ आदि विश्वविद्यालयों में बुन्देली लोक–साहित्य की विविध विधाओं पर तुलनात्मक आलोचनात्मक तथा गवेषणात्मक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये गए हैं तथा प्रत्येक वर्ष नये–2 विषयों पर शोध प्रबन्ध लिखे व जमा किये जा रहे हैं जिससे बुन्देली लोक–साहित्य का सर्वांगीण विकास तथा सर्वतोभावेन अध्ययन हो रहा है उदाहरणार्थ पी. एच. डी. उपाधि हेतु लिखे गए एतद्विषयक कुछ शोध प्रबन्ध इस प्रकार हैं –

डॉ. आशा खरे – *वरिष्ठ व्याख्याता–लोक संगीत–विभाग इंदिरा कला संगीत विश्व विद्यालय, खैरागढ़, (मध्यप्रदेश)*

शोध उपाधि –'बुन्देली लोकगीत–शास्त्रीय संगीत के दृष्टिकोण से'।

डी. लिट.–'मध्यप्रदेश की लोकगाथाएं – भाग–1, भाग–2, 'संगीत के दृष्टिकोण से'

डॉ. आशा खरे — *सहायक अध्यापक–शासकीय कन्यामहाविघालय छतरपुर (म.प्र.)*
शोध उपाधि–'बुन्देलखण्ड एवं ब्रज के लोकगीत' (एक तुलनात्मक अध्ययन)

डॉ. मोती लाल चौरसिया — 'बुन्देली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन'
डॉ. गनेशी लाल बुधौलिया — ' बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य'

डॉ. शंकर लाल शुक्ल — 'बुन्देलखण्ड के लोकगीत तथा लोककवि ईसुरी *का विशेष अध्ययन'*

डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव — *बुन्देली लोक साहित्य'*

डॉ. (श्रीमती) विनोद कुमारी तिवारी —'बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का *सामाजिक, सांस्कृतिक एवं काव्यगत तुलनात्मक अध्ययन*

डॉ. बलभद्र तिवारी — *बुन्देली भाषा और साहित्य'*

डॉ. वीरेन्द्र सिंह परिहार —बुन्देली लोकगीतों में प्रेमभावना'

डॉ. रमाशकर शुक्ल — *'बुन्देली लोकगीत'*

डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल — *'बुन्देली भाषा का अध्ययन'*

डॉ. शिवदयाल निर्जन — *'बुन्देलखण्डी लोक–साहित्य'*

डॉ. नाथूराम चौरसिया — *'लोककवि ईसुरी जीवन और साहित्य'*

सम्प्रति, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में एम.ए. (हिन्दी) में लोक साहित्य एक स्वतंत्र प्रश्न पत्र के रूप में पढ़ाया जा रहा है अतः विघार्थियों द्वारा एतद्‌विषयक लघुशोध प्रबन्ध भी प्रस्तुत किये जा रहे है बुन्देली अध्ययन से सम्बन्धित कुछ लधुशोघ प्रबन्ध इस प्रकार हैं –

श्री हीरालाल रैकवार — *'सागर जिले के ऋतु और उत्सव के लोकगीत'*

श्री राजेन्द्र मिश्र — *'बुन्देलखण्ड का लोकनाट्य–स्वांग, नौटंकी'*

कु. नीता सोनी — *'बुन्देलखण्ड के लोकनृत्य'*

श्री चन्द्रकांत चौबे — *'बुन्देलखण्ड के लोकवाद्य यंत्र' आदि'*

इस प्रकार संकलन, प्रकाशन, अनुशीलन तथा अनुसंधान की दृष्टि से बुन्देली लोक–साहित्य का भविष्य समुज्जवल दिखाई दे रहा है ।

पदम्श्री असगरी बाई
(ध्रुपद गायिका)

(ड.) लोकगायकों का परिचय एवं साक्षात्कार

शोधकार्य के दौरान बुन्देलखण्ड के शास्त्रीय गायकों, बुन्देली गीत–गायकों, लोकगीत गायकों एवं गायिकाओं को सुनने व साक्षात्कार करने का अवसर मिला। अतः उनका साक्षात्कार एवं कतिपय गायक–गायिकाओं का परिचय संक्षेप में दिया जा रहा है।

'साक्षात्कार'

पद्मश्री असगरी बाई (ध्रुपद गायिका)

आयु – लगभग 86 वर्ष

पता – टीकमगढ़ – म.प्र.

– भारत सरकार द्वारा पद्मश्री की उपाधि से विभूषित

उस्ताद का नाम –

उस्ताद ज़हूर खां (गोहद) जि. भिण्ड

बातचीत के दौरान मैने उनसे प्रश्न किया कि आपने ये कहा है कि स्वर्ग से जब संगीत पृथ्वी पर उतरा तो सबसे पहले बुन्देलखण्ड में ।

वे बोली 'नहीं' ! संगीत तो बुन्देलखण्ड में उपजा है और यहां के राजाओं ने रजवाड़ों में इसको पूजा है। इसकी कद्र की है, परख की है, बुन्देलखण्ड संगीत का गढ़ रहा है ।

अपने उस्ताद के विषय में बताती हैं कि उनके गुरू कोई बुजुर्गानदीन थे। उन्हें, उर्दू, फारसी, अरबी, संस्कृत व हिन्दी का उच्चकोटि का ज्ञान था। वे महाराज वीर सिंह जू देव के दरबार में थे, कहती है कि मेरे गुरू बहुत सख्त थे आज तलक उन्होंने **'बेटा'** नहीं कहा होगा, सर पर हाथ नहीं फेरा होगा परन्तु कभी हमारे दिल में ये नहीं आया कि ये हमें मारते हैं, प्यार नहीं करते हैं। आज हम उनके लिए रोते है और कहते–कहते रो पड़ती हैं ।

स्वर का ज्ञान होना बहुत मुश्किल है। 15 साल की उम्र में सुर का ज्ञान हुआ वे कहते थे कम्मख़त बूढ़ी हो जाएगी क्या तब सुर का ज्ञान होगा। ये लिखना पढ़ना नहीं है जो लिख के दे दिया और याद कर लिया। इसे तो सीखना पड़ेगा। लम्बी सांस

खींचकर बोली– तकदीर बुलन्द थी जो इस मुक़ाम पर पहुंची । कहती हैं हमारे उस्ताद एक 'हस्ती' थे, हंसता हुआ चेहरा था अन्त में किसी को मालुम ही नहीं हुआ, क़लमा पढ़ते हुए इस दुनियां से रवाना हो गए ।

बताती हैं कि उस्ताद ने 10 साल की उम्र में अपने पैर में तीन कड़ी की ज़ंजीर डलवा ली थी व उसका मुंह बन्द करवा दिया था। 40 साल की उम्र में सभी ने ज़ोर ज़बर्दस्ती करके कटवाई कि क्या हाथी हो? कटवा तो ली पर कटवाने में उन्हें बड़ी तकलीफ़ हुई । इसके पीछे न जाने उनका क्या दृष्टिकोण रहा होगा पर इतना अवश्य है कि वे दृढ़ संकल्पी थे। बहुत बड़ी हस्ती थे ।

टीकमगढ़ के महाराज 'असगरी बाई को 'गजासाई सिक्का' कहते थे। एक बार ये दादरा गा रही थी महाराज बोले – असगरी दादरे में नहीं, धमार में सुनाओ? इन्होंने तुरन्त उसी दादरे को धमार ताल में सुनाया। महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

ओरछा के 'रामराजा' के विषय में बताती है एक बार एक छोटी उम्र का लड़का मंदिर में पुजारी रखा गया उसे किसी कारण से निकाल दिया। मुझे बहुत खराब लगा बाद में उसे पुनः रख लिया गया। मैंने कहा अब ठीक है ! नहीं तो कहां के भगवान! मेरे टीकमगढ़ में चलकर आए हो अयोध्या को छोड़कर, और ये करोगे? कोई पुजारी नहीं रहेगा अपनी सेवा खुद करो। खूब लड़ी मैं भगवान से बिल्कुल 'झांसी वाली रानी की तरह' और ये कहकर खूब जोरों से हंसीं । कहती है राम ने बनवास जाकर त्याग किया कोई भोग नहीं भोगे ।

असगरी बाई जी अचार, मुरब्बा व चटनी बनाने की बेहद दर्ज़े की शौकीन है अभी तक बनाती हैं उनके कक्ष में आज भी तरह–2 के अचार व चटनी रखी हैं ।

अकउआ को बवासीर की अचूक दवा बताती हैं। मुनगा – सहजना की फलियां बनाकर उस्ताद को खिलाई थीं पहले तो उस्ताद ने मुंह बनाया, बाद में उंगलियां चाटते रह गए ।

कहती हैं अच्छे गुरू का साथ हो साथ ही अच्छा गुण हो। आजकल लोगों में धैर्य नहीं है। उनके पास आज भी कई लोग सीखने आते है और सीधे कहते है ध्रुपद–धमार–सिखाइये । कहती है सुर का ज्ञान नहीं ध्रुपद सीखेंगे। और खीझ उठती हैं।

मैंने उनसे पूछा कि बुन्देली लोकगीतों के विषय में आपका क्या ख्याल है क्या आपने लोकगीतों को बढ़ावा दिया? क्या गाती भी थी?

वे बोली कि हां मेरे लोकगीतों की भी रिकार्डिंग हुई है पर शास्त्रीय–संगीत की अपेक्षाकृत कम गाते थे। रात–रात भर बैठकर – 'रतयाई दादरा' गाते थे। मुसलमानों में भी पहले ढोलक लेकर बैठते थे । पहले 'अल्ला मियां ! गाये फिर रात भर दादरे गाते थे। गाकर सुनाती है –

कुबजा सैं कर–कर प्रीत, हमारो मीत सांवरिया न भयो,
मानो का जो कहूं जा सौत से, जाने कैसी करी अनरीत,
हमारो मीत सांवरिया न भयो..................................

रतयाई दादरा का एक उदाहरण और गाकर बताती है कि इसमें राधा जी का विलाप देखने को मिलता है –

'तेरी राह देखत मेरे दिलवर, सगरी रैन गई
पंख होय उड़ जाऊं अदम को, बिना पंख क्या करूं सजन
न जाने सइयां कहां बिलम गए, कौन सौत से लगी लगन''।

इसें वे गुणकली, भैरव, कालिंगड़ा व अहीर–भैरव राग में भी गाती थीं ।

चक्की पीसते समय का एक गीत गाकर सुनाती है –

''बारी उमर लरकैंया, नानें नानें मोरे ही जुबनवा
ये जुबना मैंने मायके मैं पाले, हो मिड़न तो देओ परदेसिया
हो नानें नानें ....

सावन के दिनों में झूले पर बैठकर गाती थीं –

सावन बन आयो आज, न आयो संदेस आज
बूंदी झिर लागो आज ....

(इसमें देस राग की झलक दिखाई देती है)।

बुन्देली लोकगीतों के बारे में कहती हैं कि स्थिति तो अब में यह है कि लोग सुनकर हंसेंगे । लोगों की ज़बाने बदल गई हैं। पारम्परिक चीज़ें खत्म हो रही हैं।

अश्लीलता बढ़ रही है। इसे आप लोगों को देखना है। और परम्परा को सहेज कर लोक–अस्मिता को बचाना है ।

मैने उनसे प्रश्न किया कि 'बुन्देलखण्डी दादरा' व उपशास्त्रीय संगीत की गायन शैली दादरा में क्या अन्तर है कृपया गाकर बताएं ।

वे बोलीं कि 'बुन्देलखण्डी दादरा बुन्देलखण्ड की एक अपनी विधा है। इसका कोई शास्त्रीय–विधान नहीं है इसे अधिकाशंतः महिलाएं ही गाती हैं इसमें प्रायः श्रंगारिक विषय ही रहते हैं। दादरा के अलावा ये कहरवा ताल में भी निबद्ध होते हैं। और उपशास्त्रीय संगीत की विधा–'दादरा' किसी न किसी राग पर आधारित होता है और केवल दादरा ताल में ही गाया जाता है अन्त में लय बढ़ाकर 'लग्गी' लगाई जाती है ।

बताती है कि एक बार लखनऊ के नवाब ने उनसे ' बुन्देलखण्डी दादरा' सुनने की फरमाइश की थी। उन्होंनें सुनाया व सुनाते समय उस 'दादरा में बनारस–अंग लखनऊ–अंग व बुन्देलखण्ड–अंग तीनों के सुर व चलन अलग–2 लगाकर दिखाए। वे आश्चर्य चकित रह गए इसकी पुनरावृत्ति उन्होंनें मेरे सामने भी की। जिससे लोक में शास्त्रीयता व शास्त्रीयता में लोक का अपूर्व सामन्जस्य देखने व सुनने को मिला ।

दादरा – 'सखी रतनारे नैना बांके
मुनी संग बालक कांके'

कहती हैं आज तो पक्का सुनने वाले मिलते ही नहीं हैं। एक बार कलकत्ता में बड़े डॉगर साहब के घर जाना हुआ । उनकी मां थी। वो मुझसे बोली– बेटा ये लोग तो घर में रहते नहीं है तुम्ही कुछ सुनाओ मुझसे उन्होंनें 'तोड़ी' राग सुनी और रो पड़ी, बोली–– 'बेटा आज कान तृप्त हुए हैं ।

एक दृष्टान्त बताती है कि – 'दतिया में 'हस्सू–खां साहब सारंगी बजाते थे। उनकी सारंगी में 'तरबे' नहीं थीं पर वाह ! क्या सारंगी बजाते थे, दरो–दीवार में सनसनी गूंज जाती थी। सारंगी में गतें बजाते थे। जब उनका अन्त समय आया तो हमारे उस्ताद के लिए बोले–ज़हूर को बुलाओ ! बताती हैं ये बात उस जमाने की है जब तेल' जलता था और 'घी' खाया जाता था अब तो तेल खाया जाता है। खां साहब ने अपने लड़के को उस्ताद ज़हूर साहब को सौंपा और चल बसे ।

बताती हैं कि हमारे उस्ताद ज़हूर खां साहब ने भजन भी लिखे थे और बड़े तन्मय होकर सुनाया –

'सुमरन कर मन राम नाम की, यही बात है मूल काम की ।
ये संसार रैन का सपना, जाग मूरख यहां कौन है अपना ।
कपट मोह अभमान लोभ तज, काट गाँठ गति क्रोध काम की।
सुमरन कर मन राम नाम की ....

मैनें असगरी बाई जी से आखिरी प्रश्न किया कि क्या आप संगीत को ईश्वर प्राप्ति का साधन या ईश्वर तक जाने का मार्ग मानती हैं ?

वे बोलीं–जी हाँ 100 प्रतिशत। और अपने हाथ को खोलकर सबसे छोटी उंगली कनिष्टिका को पकड़कर कहती हैं देखिए ये लोक गीत है। फिर अनामिका को पकड़कर ये गीत–गज़ल–भजन है फिर तीसरी मध्यमा को पकड़कर ये ठुमरी–दादरा है, चौथी तर्जनी को पकड़कर ये ख्याल है, द्रुत व विलम्बित ख्याल और फिर अंगूठे को पकड़कर ये धमार–ध्रुपद है और अंगूठे को ऊपर आकाश की ओर करते हुए ये सीधे परमात्मा तक जाता है। ये संगीत की यात्रा है, जो इन पड़ावों को पार करती हुई सीधे ईश्वर तक ले जाती है और व्यक्ति का इस सांगीतिक यात्रा के माध्यम से ईश्वर से साक्षात्कार हो जाता है ।

कहते–2 थक जाती हैं कहती हैं भई बस अब मैं आराम करूंगी और एक प्यारी सी मादा–न्योला' उछल कर उनकी गोद में आ जाती है वो उसे और वो इन्हें सहलाने लगती है और मैं कृतज्ञ हो उठती हूं ।

लोक गायक अमरदानजी

साक्षात्कार करती हुई शोधार्थी वीणा श्रीवास्तव

'साक्षात्कार'

नाम — श्री अमरदान--लोक गायक *(लोक भजन शैली के)*
उम्र — लगभग 75 वर्ष
ग्राम — पचोखरा जिला--जालौन (उ0प्र0)
पिता का नाम — श्री कल्याण दास जी (कल्लू)

मैनें श्री अमरदान जी से पूछा, आप कब से गा रहे है ? वो बोले मैं लगभग 50--55 वर्ष से गा रहा हूं, सन 1954 से आकाशवाणी के कलाकार हैं। पहले लखनऊ से गाते थे फिर मेरा स्थानान्तरण छतरपुर आकाशवाणी में हो गया अभी तक वहीं से गाते हैं।

मैनें पूछा क्या आपके पिता जी भी संगीत में रूचि या पैठ रखते थे ? उन्होंनें बताया कि मेरे पिता जी संगीत के बहुत ऊंचे कलाकार थे उनके समय में उनकी सानी का दो चार जिले में कोई नहीं था। मैंने पूछा कि क्या आप शास्त्रीय--संगीत (गायन) भी गाते हैं क्या सीखा भी है ? उन्होंने बताया जी हां ! हमने शास्त्रीय संगीत झांसी के श्री बुन्दूखां साहब से सीखा है ! अपने गुरू के बारे में बताते है – "क्या बात थी बुढ्ढे की आहा ! क्या गाते थे 80 बरस की उमर में ऐसा लगता था कि जैसे 17–18 बरस को कोई लरका गा रओ होय। 3½ सप्तक की आवाज थी। साफा बांधते थे।"

बताते हैं कि अपने उस्ताद को हम अपने पास गांव ले आए थे। गुरू जी शाम को नदी से नहा कर आए खाना खाया और लेट गए। रात हम पैर दबाने बैठे । लगभग आधे घण्टे बाद उन्होनें आलाप कराना शुरू कराया प्रायः रात के दो बज जाया करते थे एक दिन सोने से पहले बोले सुबह 4 बजे लक्ष्मी नारायण मन्दिर जाना है और तुझे वहीं गाना है डर के मारे रात भर बैठ कर अभ्यास किया। दोपहर में सोते थे शाम को 4 बजे फिर गाना शुरू।

अमरदान जी बताते हैं कि बेटा उन्होंने हमें ऐसी पद्धति से सिखाया कि बेटा भगवान की सौगन्ध खाते हैं कि एक कार्यक्रम में आदिल खां साहब को 100/– ही इनाम मिले और हमें 152/– मिले । ये हमारे गुरू महाराज का ही आशीर्वाद था।

बताते हैं वैसे तो हम शास्त्रीय गाते थे और अभी भी गाते हैं लेकिन

लोकगीतों को हमने गाया ही नहीं नचाया हैं"। झांसी, (बड़ा–गांव) में 15 वर्ष जवारे निकाले। 20 गांव का आदमी इकठ्ठा होता था। 5–6 जजमान थे मइया के –

"ककरीले पिया तेरे देस
हमारे बाजन बिछिया घिस जैहें"

"ऐसे गाए कि अब का बताएं। दो–दो अक्षर गा रए हम, सारी भीड़ हमाई तरफ। सबके जवारे 9 बजे खुट गए और हमाए जवारे 1 बजे खुट रए हर सालैं एक कुम्हार श्याम लाल बुलाउत हतो। तीन गांव में लंगोटा फेरत ते । हम और किसोरी (ढोलक वादक), 10–10, 20–20, बेड़निया ढाड़ी रत तीं। किसोरी ढोलक लेकर आए 12–12 घंटे, जा सारदा रखीं, बैठकर गाया हैं लघुशंका तक करने नहीं गए।"

मैने पूछा इतनी देर क्या गाते थे ? बोले–पद–भज़न गाते थे ।

'किसोरी जी के अरूणारे लोचन'.....

बोले–हमारे पास भक्ति से सम्बन्धित लोकगीत मिलेंगे चाहें रेडियों मे सुन लो चाहें हमारे संकलन से। बताते हैं बेटा हमारे पास इतना साहित्य है कि हम क्या बताएं सभी पारम्परिक चीजों का (गीतों) संकलन है। पर हमारे लड़के परवाह नहीं करते! अपने कक्ष मे रखी कपड़े से बंधी पोटली दिखाते हुए कहते हैं – देखो बेटा "ये साहित्य (लोकगीतों को) हमने छांट– छांट कर अलग–2 पुटरियन में बांध कर रख दिया है । हमने जा जीवन संकलन करबे में लगा दओ।"

मैंने कहा कि आपका जो ये संकलन है इसका तो सदुपयोग होना चाहिए कहीं ये ऐसा ही बंधा न रखा रह जाये बोले–"बेटा नहीं मेरी थोड़ी तबियत ठीक हो जाए फिर आपको हम बुलवाएगें आपको ही इसे संभालना है व आने वाली पीढ़ी को इससे लाभ पहुंचाना है और ये अभी तक इसलिए रखा रहा है कि मुझे कोई सुपात्र नहीं मिला इसे मैनें बहुत जतन से संभाले रखा है जिन–2 को दिया उन्होंने इज्जत नहीं की। कई जगह तो ऐसा हुआ कि छाती हमारी जलती है सम्मान दूसरों को मिलता है तब बेटा बड़ा दुख होता है जो असहनीय होता है। हम पुराने गायकों की स्थिति आज बड़ी अजीब है । मंच की स्थिति भी बड़ी विचित्र है हर जगह राजनीति हावी हो गई है। लोग मंच पर पुराने गायकों को लोकगीत गाने के लिए बुलाते है और अध्यक्ष बना कर बैठा देते हैं। नये–नये गायकों को गवाते रहते हैं। उनकी स्थिति व उम्र का ध्यान नहीं रखते हैं।

उन्होंने बताया – "कि एक बार 'व्यास महाराज सिकरी' की बारात में गए थे "बड़े लोगन की बारात थी उतै बैंड हतो। दरबार लगो, ना बाजौ ना गाजौ। महाराज बोले हमसे गाने के लिए। हमने कही महाराज ना ढोलक ना सारंगी कैसे गाएं ? बे बोले एकई गा लेओ ! तब हमने गगरी की खपरिया बजा के बाकी लय में गाओ।"

बताते है कि रामपुरा में एक बार सुनारन की बारात गए वहा तीन लोग थे राम गोपाल ढोलक पर, एक मृदंग पर व एक तबला पर हमने एक से कई ठुमरी बजाओ, एक से ध्रुपद, एक से भजन (अर्थात–तबले पर ठुमरी के साथ 'दीपचन्दी ताल' बजवाई, मृदंग पर ध्रुपद के साथ चारताल तथा ढोलक पर पद–भजन के साथ कहरवा बजवाई) और तीनऊ के संग गाओ उन्हें सम दओ फिर उन्हें। बेटा ये सब प्रभु की कृपा होती है। बिना साधना के कुछ साध नहीं सकते।"

उन्होंने कहा एक बात याद रखो जब भी गाने बैठो अपने बड़ों का, गुरू का नाम लेओ तब गाओ। और शास्त्रीय गायन ध्रुपद से आरम्भ करो। ध्रुपद भक्ति प्रधान होता है अतः सर्वप्रथम ईश्वर को आराधो तब आगे का मार्ग अपने आप प्रशस्त होता चला जाता है।

उन्होंने बताया – हमने 'शास्त्रीय' में 'ध्रुपद धमार' ही अधिक गाए। मेरे ये पूछने पर कि आप लोकगीतों में क्या–क्या गाते थे ? उन्होनें बताया–मुख्य रूप से चौकड़िया गाते थे, भक्ति से सम्बन्धित। हमारी चौकड़िया गायकी की नकल करते–करते लोग मर गए। इसके अलावा काछियन के भजन, कुम्हारन के भजन, ढीमरन के भजन गाते है और गा के सुनाते हैं –

"भर दुपरै आ गओ नास परो जो बैरगिया, भर दुपरै
बाबा सक्कर पीहो – आं हां
बाबा गुड़ खैहौ – आं हां
बाबा चाय पीहो – आं हां
बाबा दम लगाहौ – हौ ।
अरे बरै री जो बैरगिया जो तो गांजौ मांगै री ।

– ये ढीमरों का भजन है खंजरी, चमीटा, केंकड़ी, मंजीरा बज रए और हम गा रए। कुम्हारों के भजन में साथ में मटका भी बजता था ।

लोकगीतों में अश्लीलता के विषय में बात करने पर अमरदान जी ने कहा –"हमारे यहां लोकगीतों में अश्लीलता नहीं है जो अश्लील गाते हैं, वे खुद अश्लील हैं"।

कहते हैं हम तो रजवाड़े के मारे है हमारे यहां चमरयाऊ नहीं होता है यदि जरा सी भी अश्लीलता हो तो खाल उधेड़ दी जाय। अरे ! हमारे यहां के लोकगीतों में साहित्य है, संस्कृति है, सरलता है, स्वाभाविकता है –

"अंगना में हरी–हरी दूबा
घिनौंचिन पीपरैं महाराज"

फागें देख लीजिए छन्दयाऊ, सख्याऊ तबियत खुश हो जाए साहित्य–सागर में गोते लगाते रह जाएं। हमारे यहां लोकगीतों में दर्शन है, अश्लीलता नहीं ।

बताते हैं एक बार 'हरदोई में गूजरों के यहां 'तुलसी राम' (गायक) गा रहे थे–

"उरझो जिन श्याम कही मानो
फट जै हे चुनरिया जिन तानो
राज बुरो है कंस रजा को
मथरा बीच खुलो थानो
जाय कहूंगी कंस रजा से
मथरा की 'गुजरिया' जिन जानो"

वहां सभी गूजर थे आदमी उन पर टूट पड़े। भरी सभा में गाली देते हुए बोले मारो–मारो। तुलसी राम सजे सजाए छम्म–छम्म करते हुए भागे, कुत्ता परे पछांय ।

बताते हैं फिर हमने उन सभी को रोका और कहा कि भई मैंने उसको बहुत रोका था कि ज्यादा गांजा मत पियो ज्यादा भंग मत खा अरे बेहोशी में गा गया। फिर हमने उस फाग की पुनः गाया और अन्त में गाया –

'मथरा की 'ग्वालिन' जिन जानो'

सभी बड़े प्रसन्न हुए। 50 रू. इनाम मिले। भई गाने की भी तरकीब होती है कि हम कैसे गाते हैं, कैसे गाया जाता है, लोग कैसे गाते हैं और कैसे गाना चाहिए।

लोकगीतों में रागों का दर्शन, आभास, छाया–इसके विषय में उन्होनें कहा कि राग

लोकगीतों से बनते हैं। हर गीत में राग लगता है – तमीज़ होनी चाहिए। और एक लोकगीत गाते हुए बताते हैं इसमें सारंग–राग का दर्शन होता है ।

"बमूरा तरैं सोय गई, नींदा की मारी"

लोकगीतों में जंगला, पीलू, सारंग, भैरवी आदि रागों को बताते हैं ।

उन्होंने कहा कि आज प्रयोगवाद का जमाना है। गीतों के क्षेत्र में भी प्रयोग होते रहते हैं एक गायक ने बुन्देली गीत में एक प्रयोग किया बिना किसी मात्रा के गीत लिखा उसका ये कृत्य कितना उतकृष्ट है देखें –

'पतर कमर जल भरतन लचकत
तनक न बनत समरतन'

अन्त में मैंने उनसे एक पद भजन गाने का आग्रह किया उन्होनें मेरा आग्रह स्वीकार करते हुए बड़े तन्मय होकर सुनाया –

'कबिरा नौबद आपनी, दस दिन लेओ बजाय
फिर ये पट्टन पुर गली, फिर ना मिलहैं आय"

रमैया तेरी दुलहन लूटल बजार

सुर पुर लूटो नागपुर लूटो
तीनउ लोक में मच गई हाहाकार
रमैया तेरी ....

ब्रम्हा लूटे बिस्नू लूटो
नारद मुन के पर गई पिछार
रमैया तेरी......

कहत कबीर सुनो भई साधौ
जा ढगिनी से रई होसियार
रमैया तेरी............

'साक्षात्कार'

नाम	–	'श्री देशराज पटैरया' (बुन्देली गायक)
उम्र	–	44 वर्ष
पता	–	सर्किट हाउस के पीछे, छतरपुर (म.प्र.)

श्री देशराज पटैरया जी 16 वर्ष की उम्र से मंच पर बुन्देली गीत एवं लोकगीत गा रहे हैं इनको गाने की प्रेरणा अपने बड़े भाई पं. मदन मोहन पटैरया जी से मिली जो इस समय 63–64 वर्ष के हैं और अभी भी लोकगीत गाते हैं ।

सर्वप्रथम मैनें देशराज जी से प्रश्न किया कि आप बुन्देली लोक–गायक हैं अथवा बुन्देली–गीत गायक?

कुछ रूककर! उनका सीधा उत्तर था मैं तो बुन्देली–गीत–गायक हूं। इसके अतिरिक्त मैं सभी विधाओं के बुन्देली लोकगीत यहां तक कि महिलाओं के द्वारा गाए जाने वाले भी लोकगीत गाता हूं! और साथ ही अपने लिखे हुए बुन्देली–गीत भी गाता हूं।

मैंने प्रश्न किया कि आपके छतरपुर क्षेत्र की तरफ लोकगीतों की कौन सी विधा प्रचलित है जैसे कि टीकमगढ़ में नौरता प्रसिद्ध है ?

उन्होनें कहा कि लोकगीतों की सभी विधाएं पूरे बुन्देलखण्ड में गाई जाती हैं किसी क्षेत्र विशेष की कोई विधा नहीं है, परन्तु यह अवश्य है कि कोई विधा किसी क्षेत्र में अधिक लोकप्रिय है तो निश्चित ही वहां उसको गाने वाले अधिक होगें पर इसके साथ ही समय–समय पर अन्य विधाएं भी गाई जाती हैं ।

मैंने उनसे पूछा कि आजकल लोकगीतों की पारम्परिकता लुप्त होती जा रही है गायक कलाकार सस्ती व शीघ्र लोकप्रियता को हासिल करने के उद्‌दश्य से द्विअर्थी व अश्लील बुन्देली गीतों को प्राथमिकता दे रहे हैं और ये बात, अगर आप अन्यथा न लें, तो आप पर भी लागू होती है। तो क्या आप लोकप्रियता हासिल करने के फेर में ऐसा कर रहे हैं ?

उन्होंने कहा देखिए ! कोई भी कलाकार हो वो लोकप्रियता चाहता है और मैं भी ! साथ ही मैं परम्परा को बनाए भी रखना चाहता हूं पर इसके साथ यह भी बात

है कि जो समाज स्वीकार करे वह करना चाहिए और जो समाज स्वीकार नहीं करे वह नहीं! तो समाज या श्रोता वर्ग ये चाहता है कि मैं वैसे गीत गाऊं तो मैं गाता हूं। और आपको ये भी बताना चाहूंगा कि हमारे कई पारम्परिक लोकगीतों में भी अश्लील शब्द हैं, द्विअर्थी गीत भी हैं और यह सब समाज का यथार्थ चित्रण है ।

मैंने कहा देखिये ! आपकी इन बातों से एक सवाल यह भी उठता है कि समाज को तो जो आप परोसेगें वो खाएगा' मेरा आशय सिर्फ यह है कि ये समाज है और इस समाज में, महिलाएं, पुरूष व बच्चे सभी हैं। हमारी संस्कृति मर्यादित रही है। तो मैं या यह समाज यह चाहेगा कि जो भी कुछ इस समाज के अन्दर हो वह एक मर्यादा में हो। आप मंच पर कोई बुन्देली-गीत गाते हैं, वहां मंच पर या श्रोताओं में कई महिलाएं भी रहती हैं तो कम से कम ऐसी स्थिति तो ना आये कि बीच कार्यक्रम से महिलाओं को उठकर जाना पड़ जाय ।

मैं आपकी यह बात भी मानती हूं कि पारम्परिक -लोकगीतों में अश्लील व द्विअर्थी शब्द हैं। परन्तु उनको गाने की परिस्थिति व समय निश्चित है। जैसे - 'गारी' विधा को ले लें या 'फाग' को। यह हमारी परम्परा में है। विवाहादि अवसर पर कोई 'गाली' (गारी) का भी बुरा नहीं मानता और यह 'गारी' तो महिलाए ही गाती हैं। और फाग (होली) का तो त्योहार ही हंसी-मजाक व बुरा न मानने वाला है । परन्तु यह सब स्थिति साम्य व सामयिक है। कम से कम हम मंच पर तो ऐसी स्थिति को टाल कर मर्यादित रह सकते हैं और साथ ही अपनी धनी पारम्परिकता को अक्षुण्ण बनाए रख सकते हैं।

उन्होंने कहा-देखिए हृदय से तो मैं भी यही चाहता हूं कि हमारी परम्परा को कोई आंच न आने पाये पर आज, मैं मंच पर यह सब नहीं गाऊंगा तो अन्य दूसरे कलाकार गाएगें । मैंने कहा कि देखिए जो आज नये कलाकार मंच पर यह सब गा रहे हैं वो या तो आपके चेले हैं या हम लोगों से उम्र में कम हैं, जूनियर हैं तो क्या हम सभी का ये कर्तव्य नहीं बनता है कि उनको हम पुनः परम्परा से जोड़ें, जिससे एक स्वस्थ परम्परा का निर्वाह किया जा सके। साथ ही उन कलाकारों को भी ससम्मान मंच से जोड़ सकें, स्थापित कर सकें जो लोकगीतों में अश्लीलता व भौंडेपन की वजह से लोकप्रियता नहीं, बल्कि साहित्यिक व मर्यादित लोकगीतों की सर्वग्राहिता से लोकप्रियता के पक्षधर हैं ।

उन्होंने कहा ठीक है मैं आपकी बात का पूरी तरह से समर्थन करता हूं और इसके लिए मैं प्रयास भी करूंगा। इसके लिए देशराज जी ने एक सलाह भी दी कि आप और हम सभी मिलकर ऐसे कार्यक्रम आयोजित करें जिसमें इन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाये और लोकगीतों की स्वस्थ परम्परा को पुनर्स्थापित किया जा सके।

—: परिचय :—

1. पद्मश्री असगरी बाई (ध्रुपद—गायिका) टीकमगढ़ (म.प्र.)
2. श्री अमरदान जी (लोक—गायक) ग्राम—पचोखरा, जि.जालौन (उ.प्र.)
3. श्री शंकर मास्टर, (लोक गायक) उरई, जि. जालौन
4. श्रीमती पूरन देवी (लोक—गायिका) उरई, जि. जालौन
5. श्रीमती मालती विश्वकर्मा (लोक—गायिका) महोबा, (उ.प्र.)
6. श्रीमती मीरा श्रीवास्तव (लोक—गायिका) महोबा, (उ.प्र.)
7. श्री बच्चा सिंह ('आल्हा' लोकगायक) महोबा (उ.प्र.)
8. श्री देशराज पटैरया (बुन्देली लोकगीत गायक) छतरपुर, (म.प्र.)
9. श्रीमती द्रोपदी यादव (लोक—गायिका) ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
10. श्रीमती चन्दा बाई (लोक—गायिका) ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
11. श्री प्रकाश यादव व साथी (लोक गायक व नर्तक) ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
12. श्री राम सहाय पाण्डे (लोकगायक व राईनर्तक)ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
13. श्री टीकाराम कुशवाहा व साथी(लोक गायक व राई नर्तक) ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
14. श्री सन्तोष कुमार पाण्डे (स्वांग कलाकार) ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
15. श्री बाबूलाल कुशवाहा (लोक गायक व राई नर्तक) ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
16. श्री रामलाल (फाग—गायक) ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)
17. श्री कंछेदी लाल कुशवाहा (फाग—गायक)ग्राम—मेनपानी, जि. सागर (म.प्र.)

18. श्री पुरूषोत्तम लाल कुशवाहा (भगत, बीरोठ व अचरी गायक) ग्राम.मेनपानी, जि. सागर (मप्र.)
19. श्रीमती मालती सेन (बुन्देली–गीत–गायिका) सागर, (म.प्र.)
20. श्रीमती रामकली रैकवार (लोक–गायिका) पूर्वयाऊ टौरी, सागर (म.प्र.)
21. श्री शिवरतन यादव (लोक–गायिका) पूर्वयाऊ टौरी, सागर (म.प्र.)
22. श्री चुन्नीलाल रैकवार (ढिमरियाई नर्तक एवं गायक) इतवारी टौरी, सागर (म.प्र.)
23. श्री लक्ष्मीनारायण रजक (कांडरा–नर्तक व गायक) इतवारी टौरी, सागर (म.प्र.)
24. श्री चूरामन यादव (बरेदी नर्तक एवं गायक) ग्वाली मोहल्ला, सागर (म.प्र.)
25. श्री गंगाराम घनघोरिया (रावला, ढिमरियाई नर्तक व गायक) फुटेरा बार्ड, दमोह (म.प्र.)
26. श्रीमती कस्तूरी बाई (लोक–गायिका) दमोह, (म.प्र.)
27. श्री ओम प्रकाश अमर (ख्याल–गायक)
28. डा. दिनेश नन्दिनी (लोक गीत गायिका) सागर (म.प्र.)
29. श्रीमती रन्नोदेवी (लोकगीत गायिका) उरई जि.जालौन (उ.प्र.)
30. श्री मुरारीलाल पाण्डे व साथी (गायक व नर्तक) ललितपुर (उ.प्र.)
31. श्री बालाप्रसाद शर्मा (बुन्देली गायक) टीकमगढ़ (म.प्र.)
32. श्री सत्यनारायण तिवारी (बुन्देली गायक) टीकमगढ़ (म.प्र.)
33. श्री विक्रम देव तैलंग (बुन्देली गायक) टीकमगढ़ (म.प्र.)
34. श्री निरंजन शर्मा (बुन्देली गायक) टीकमगढ़ (म.प्र.)
35. श्रीमती उर्मिला पाण्डे (बुन्देली गायिका) छतरपुर (म.प्र.)
36. श्री आज़ाद रावत (बुन्देली गायक) टीकमगढ़ (म.प्र.)

❑

तृतीय अध्याय

लोकगीत : स्वरूपगत् विश्लेषण

(क) लोकगीत : उद्‌गम और परिभाषा

'वाणी' मानव को प्रकृति का अप्रतिम अमूल्य वरदान है। आदि–मानव ने जब सूर्य की उषःकाल की स्वर्णिम रश्मियों, रात्रि में चन्द्रमा की रजत किरणों, वनस्पतियों का हास, पशु–पक्षी का विलास, मेघाच्छन्न आकाश, रिमझिम बरसात, बादलों का गम्भीरघोष, तड़ित का रोष, वायु, जल, अग्नि का प्रकोप आदि प्राकृतिक उपादानों के मसृण और रौद्र रूपों को देखा होगा तो उसका अन्तस् सुख–दुख से भर गया होगा तथा उसकी भावाभिव्यक्ति वह अपने अन्तस् पर पड़ने वाले प्रभावों के अनुरूप गुनगुनाया या हायतौबा बचाया होगा और इसी भावोच्छ्‌वास ने विकृत रूप में 'गीत' को जन्म दिया होगा तथा भाषा भी अस्तित्व में आई होगी। भाषा–उत्पत्ति के अन्यान्य सिद्धान्तों पर भाषाविज्ञानवेत्ताओं में मतैक्य न होने पर भी उसके 'संगीत–सिद्धान्त' को मान्यता मिली है। ''भाषा की उत्पत्ति भावाभिव्यंजक, अनुकरणात्मक तथा प्रतीकात्मक शब्दों से हुई और इसमें इंगित सिद्धान्त, संगीत सिद्धान्त एवं संपर्क सिद्धान्त से भी सहायता मिली।''[1] इस प्रकार आदि–मानव के जन्म के साथ ही 'गीत' का जन्म भी माना जाना चाहिये। सम्भवतः आदिम मानव ने वाणी का प्रथम दर्शन 'गीत' के रूप में ही किया था। 'पेरी' के अनुसार लोकगीत आदि–मानव का उल्लासमय संगीत है। गुफाओं में पनपते हुये मानव में जब थोड़ी बहुत बुद्धि आई और उसके आधार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो व्यक्त करने के लिये उसने विकृत आलाप लेना प्रारंभ किया, यही आदि संगीत 'पेरी' के शब्दों में 'लोकगीत' है।[2] वाणी की दूसरी प्रवृत्ति वार्तालाप का रूप, निश्चित रूप से गीत के बाद हुआ होगा क्योंकि गीत प्रकृति जन्म आदिम मानव के भावोच्छ्‌वास का प्रतिफलन है। फलतः मानव की वाणी की दो ही प्रवृत्तियां आरंभ में हुई–1 गीत तथा 2–बात। गीत का उदय बात से पहले ही होना चाहिये। क्योंकि गीत प्राकृतिक इकाई है। उसका भावोच्छवास से गहन सम्बन्ध बताना भी गीत के स्वरूप का ठीक से प्रतिपादन करना नहीं, वस्तुतः गीत स्वयं भावोच्छवास

---

1. *डॉ0 भोलानाथ तिवारी : 'भाषा विज्ञान', पृ0 45।*

2. *डॉ0 श्याम परमार : 'भारतीय लोक साहित्य', पृ0 52।*

है। आदिमावस्था में भावोच्छ्वास के रूप में ही गीत उत्पन्न हुआ होगा, उस काल के मानव–जीवन में इस गीत ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया था इसमें संदेह नहीं किया जा सकता। परिणामतः लोकगीत ही आदिम गीत का यथार्थ उत्तराधिकारी है' और यह निरर्थक जंगली गीत ध्वनि से लेकर सार्थक शहरी ख्यालों तक के विविध प्रकारों में व्याप्त है।[1] संस्कृति, कला और संगीत का सृजन आदि मानव ने अपनी गुफाओं मे किया था। इस तथ्य को डा. भगवतशरण उपाध्याय ने अत्यन्त समीचीन उदाहरण देते हुए इस प्रकार लिखा है – "आद्ययुगीन बर्बर मनुष्य अपने शिकारी जीवन में शिकार से बचे हुये समय में अवकाश के क्षणों में जब अपने पत्थर के हथियारों की मूठ पर रेखाएं तथा आकृतियां खींचकर उन्हें आकर्षक बना देता था, तब संस्कृति का रूप सिरजता था। जब बध्य जन्तुओं के टोने–टोटके के लिये आदमी अपनी गुफा की दीवार पर उनका चित्र खींच रेखाओं में रंग भरता था, तब वह कला की दिशा में प्रवेश करता था। जब वह अपने स्वर को उल्लास की स्थिति में, आनन्द के अतिरेक में अनजाने गा उठता था और बारबार गाने के स्वर को एक ही प्रकार से दुहराता और उत्तरोत्तर मधुर बनाता जाता था, तब संगीत की भूमि पर डग भरता था।"[2]

इस प्रकार आदि मानव के अन्तस् में जो अपरिष्कृत भाव–लहारियां उत्पन्न हुई, अपने लयात्मकरूप में वह देशी बोलियों में अनुस्यूत होकर जन–जन का कण्ठहार बनी और उसका नामकरण हुआ लोकगीत। कालान्तर में यही भाव–लहरियां जब लयात्मक आरोह–अवरोह, परिष्कृत भाषा तथा गणितीय छन्द विधान में निबद्ध हुईं तब पण्डितों द्वारा नामित हुईं गीत या संगीत से। दूसरे शब्दों में शास्त्रीय संगीत का उत्स लोकगीत है, कहना अधिक उपयुक्त है। भाषा तथा संगीत का विकास ही नहीं अपितु उसका परिष्कार एवं संस्कार भी इन गीतों से हुआ है क्योंकि वैदिक भाषा छन्दस् का संस्कार एव उसके व्याकरण का सूत्र, महावैयाकरण महर्षि पाणिनि ने जन–देवता शिव के लोकवाद्य डमरू से निःसृत चौदह सूत्रों के रूप में प्राप्त होने को स्वीकार किया है, जो उपर्युक्त स्थापना को प्रमाणित करने का यथेष्ट प्रमाण है।

---

1. *डॉ0 सत्येन्द्र : 'मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन', पृ0 454–55।*
2. *डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय : 'सांस्कृतिक भारत', प्रथम अध्याय, पृ0 11।*

अस्तु! अपने जन्मकाल से ही प्रकृति के ध्वंस–निर्माण की प्रक्रिया से गुजरते ये लोकगीत समय के घात–प्रतिघात को झेलते, तिरोहित एवं नवसृजित होते, नित–नूतन कलेवर में ढलते, अजस् सहस्र–सहस्र धाराओं में अभिव्यक्त होते अद्यावधि जन–मन का रंजन करते रहें है और सृष्टि की लय तक करते रहेंगे। अबाल–वृद्ध–वनिता, खेत–खलिहान, घर–आंगन, गली–चौपाल, मिल–मशीन इनके स्वरों से गूंजते है, श्रम–सीकर का उनसे परिष्कार होता है, परिणामस्वरूप हर क्षण, अवस्था, स्थिति, परिस्थिति में ये गीत जन–जीवन के सच्चे साथी हैं। उनके सुख–दुख के प्रत्यक्षदर्शी हैं। डा. श्याम परमार ने लिखा है– "इन गीतों के प्रारम्भ के प्रति एक सम्भावना हमारे पास है, पर उनके अन्त की कोई कल्पना नहीं। यह वह बड़ी धारा है, जिसमें अनेक छोटी–मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गम्भीर बना दिया है। सदियों के घात प्रतिघातों ने उसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने उसमें अपने मन के ताने–बाने बुने हैं। स्त्री–पुरूष ने थक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन बहलाये हैं, बैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ायें हैं और मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।[1]

लोकगीत व्यक्ति विशेष की रचना नही है और नाहीं ये जन–मानस की अज्ञात सृष्टि हैं, अपितु इनकी सृष्टि जन–मानस में अनुभूतियों की तीव्रता से स्वतः सम्भूत होती है। इन गीतों की रचना व्यक्ति विशेष की न होकर, साधारणीकरण द्वारा सम्पूर्ण जन–मानस की होती है। व्यष्टि से समष्टि की यात्रा करते ये गीत एक कण्ठ से निकलकर सबके कंठ का कण्ठहार बन जाते है। जन–जीवन के सुख–दुख, हर्ष–विषाद ही इन गीतों के बीज होते हैं। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है – "कहां से आते हैं इतने गीत? स्मरण–विस्मरण की आँख मिचौनी से ! कुछ अट्टहास से ! कुछ उदास ह्रदय से। कहां से आते हैं इतने गीत? जीवन के खेत में उगते हैं ये सब गीत। कल्पना भी अपना काम करती है रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी– पर ये सब हैं खाद। जीवन

---

1. *डॉ0 श्याम परमार : 'भारतीय लोक साहित्य', पृ0 53।*

के सुख, जीवन के दुख ये हैं लोकगीतों के बीज।"[1] आदि–मानव का प्रथम परिचय प्रकृति के कोमल और रौद्र रूपों से हुआ। प्रकृति के रौद्र रूपों ने उसे भयभीत किया। फलतः उससे त्राण पाने के लिये उसमें सामूहिकता का विकास हुआ। धीरे–धीरे उसमें सामाजिकता के महत्व की अनुभूति तथा आवश्यकता की प्रतीति हुई। कालान्तर में इसी समूह बद्धता ने उसे प्रकृति पर विजय दिलाई और उसने झूमझूम कर विजय और तद्जन्य उल्लास के गीत गाये। ऋतुओं, पर्व–त्योहारों तथा उत्सव–संस्कारों पर समूहबद्ध गाये जाने वाले ये नृत्य–गीत और कुछ नहीं, वरन् उसके संघर्ष–विजय, सामूहिक–श्रम, हर्ष–उल्लास और जीवन–विकास की वे गाथाऐं हैं, जिसे उसने समूहबद्धता और सामाजिकता से प्राप्त की। लोकगीतों में प्राप्त सामूहिक भावनाएं, व्यष्टि से समष्टि की यात्रा–कथा का यही कारण और कारक है। डॉ0 सत्येन्द्र का कथन है–"लोकगीत के शब्द समस्त लोक के शब्द होते हैं। लोकगीत का ज्ञानकोष समस्त लोक का ज्ञानकोष होता है। इसकी कल्पना–मूर्तियां लोक सम्भव होती हैं। लोकगीत लोक समूह द्वारा ही निर्मित होता है। वस्तुतः ऐसा सम्भव नहीं। गीत का निर्माण तो व्यक्ति ही करता है, पर उस व्यक्ति का लोक से ऐसा तादात्म्य होता है कि न निर्माण के समय ही, न उसके प्रसार के समय ही यह विदित हो सकता है कि उसे कोई बना रहा है या वह बनाया जा रहा है। कभी–कभी ऐसे गीतों के निर्माण में यह भी होता है कि एक व्यक्ति आरंभ करता है, या दूसरा भी या तीसरा भी उसमें कोई कड़ी जोड़ देता है और वह कड़ी या कड़ियां भी उस मूलगीत में अपनी बनकर परम्परा में चल पड़ती हैं।[2]

लोकगीत सतत् प्रवहमान हैं। ये अजर–अमर होते हैं। समय के उतार–चढ़ाव के साथ इनमें बदलाव अवश्यंभावी है। गीत बनते हैं! गाये जाते हैं! लोक गायकों के कण्ठों पर तरंगायित तथा श्रुति परम्परा के चलते इनमें परिवर्तन–परिवर्द्धन होता रहता है। रूप बदलता है, नये गीत जन्म लेते हैं और इस प्रकार लोकगीतों के नव–निर्माण की यह प्रक्रिया लोक–जीवन में सतत् चलती रहती है।[3] इस प्रकार इन गीतों में किसी देश–जाति की सभ्यता एवं संस्कृति

---

1. *श्री देवेन्द्र सत्यार्थी : 'धरती गाती है', पृ0 178।*
2. *डॉ0 सत्येन्द्र : 'लोक साहित्य विज्ञान', पृ0 390–91।*
3. *"A folk song is neither new nor old, it is like a forest tree with its*

अन्तर्निहित रहती है। डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में– 'लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र हैं''[1] फलतः ''लोकगीतों का मूल जातीय संगीत में है''[2] कथन सत्य हैं। शहरी बनावट, दिखावटी शिष्टता, आधुनिकता के कोलाहल से परे, सरल, शान्त, निश्च्छल, बेलाग, गांव–देहातों, गली–गलियारों, आंगन, चौपालों, खेत– खलिहानों, वन–बाग–बगीचों के प्राकृतिक वातावरण में लोकगीतों का निर्माण एवं प्रवाह प्रकृति के स्पन्दन पर, नर्तन कर, सतत् चलता रहता है। विद्वान मनीषियों द्वारा दी गई, लोकगीतों की एतद्विषयक कतिपय परिभाषाएं यहां विशेष रूप से दर्शनीय एवं विचारणीय हैं –

> ''ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है! छन्द नही, केवल लय है!! लालित्य नहीं केवल माधुर्य है!!! ग्रामीण मनुष्य के, स्त्री पुरूषों के मध्य में ह्रदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम गीत हैं।''[3]
>
> *– पं. रामनरेश त्रिपाठी*

> ''लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उघान के कृत्रिम फूल नहीं वे मानों अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास हैं। वे भारी विद्वता के भार से, सूक्ष्म बुद्धि की नली के हजारे से छूटने वाला तर्क–वितर्क का फौबारा नहीं, अज्ञात मलयाचल से आने वाली सुगन्धित लहरियों उद्भूत ह्रदय की सूक्ष्म तरंगे हैं। वे सहजानन्द में से ही

---

roots deeply burried in the past, but which continuously puts further new branches, new leaves, new fruits."

— Ralph V. Williams : Encyclopaedia Britanica. Vol-IX Page 447.

1. *डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल : आजकल–नम्बर, 1951।*
2. *Its seed lies in community singing. Devender Satyarthi. : 'Meet my people', Page 194*
3. *पं0 रामनरेश त्रिपाठी : 'कविता कौमुदी', भाग–5 प्रस्तावना, पृ0 1–2।*

उत्पन्न होने वाली तथा श्रुति मनोहरता से सहजानन्द में ही विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफायें है'[1]

– डॉ0 सदाशिव फड़के

"लोकगीत की एक–एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ–सौ मुग्धाएं, खण्डिताएं और धाराएं निछावर की जा सकती हैं क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र–विशेष की मुखापेक्षी नहीं है और अपने आप में परिपूर्ण हैं"[2]

– पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

"ग्रामगीतों का समस्त महत्व उनके काव्य–सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है एक विशाल सभ्यता का उद्‌घाटन ! जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई है या गलत समझ ली गई हैं।...... जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ग्रामगीतों द्वारा आर्य पूर्व सभ्यता का ज्ञान हो सकता है। ईट पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्रामगीतों का महत्व 'मोहन–जोदड़ो' से कहीं अधिक है। मोहनजोदड़ो सरीखे भग्न–स्तूप ग्रामगीतों के भाष्य का काम दे सकते हैं।"[3]

– श्यामचरण दुबे

---

1. डॉ0 सदाशिव फड़के : 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका' (लोक संस्कृति अंक) पृ0 250–51।
2. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ0 138।
3. डॉ0 श्याम चरण दुबे : 'छत्तीसगढ़ी, लोकगीत का परिचय', भूमिका से उद्धृत।

प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वान–विचारकों की लोकगीत सम्बन्धी की गई परिभाषाओं के आलोक में समाहार स्वरूप डॉ0 कुन्दन लाल उप्रेती ने लिखा है –

> "अतः हमारी दृष्टि से लोक संस्कृति, लोक विश्वास एवं लोकपरम्परा की रक्षा एवं निर्वाह करते हुए लोकजीवन अपनी रागात्मक–प्रवृत्तियों की तत्स्फूर्त लयात्मक अभिव्यक्ति जिस माध्यम से करता है उसे लोकगीत कहते हैं।"(1)

समाहारतः लोकगीत जन–जीवन में अनादिकाल से प्रचलित हैं और अपनी पूर्ण व्यापकता एवं भव्य सार्थकता के आधार पर इनकी लोक–जीवन में इतनी गहरी पैठ बन चुकी है कि ये जन–मानस के संस्कार बन चुके हैं। ऐसे नैसर्गिक साहित्य में न किसी को शिल्प की चिन्ता रहती है और नहीं विशेष आचार्यत्व की। इनमें समाज, उसके संस्कार, उसकी परम्परा तथा संस्कृति की आत्मा संनिहित रहती है। अतः लोकगीत चाहे अंचल की रचना हो अथवा विरही आदिवासी बाला की अंगड़ाई में उभरता स्वर, सभी का अपना व्यक्तित्व है और अपना–अपना रूप।

मेरे विचार से लोकगीत प्रकृति के आंचल में स्वतः स्फूर्त धरती–फोड़ वे कुसुम हैं जिन्हें श्रम–सीकर अबटता है, वर्षा नहलाती है, ओस मुंह धोती है, सूर्य–रश्मियां गुदगुदा कर जगाती हैं, हवा सहलाती है, कोयल लोरियां सुनाती है, चांदनी अपनी रजत हथेलियों से थपकी देकर सुलाती है, चातक–पपीहा, विरह–मिलन के गीतों द्वारा जीवन की विषमता का स्वप्न दिखाते हैं, जन–जीवन अपनी धड़कनों से प्राण–प्रतिष्ठा करता है। इनमें संस्कृति पलती है, सभ्यता सवंरती है तथा परम्परा बोलती है।

(ख) लोकगीत : पृष्ठभूमि

कोई भी रचना किसी रचनाकार के अन्तर्मन का प्रकाशन होती है। इसके आकार ग्रहण करने में रचनाकार की रंग–बिरंगी कल्पना एवं सुनहले सपने तो सहायक होते ही हैं, साथ ही उसके चिन्तन–मनन और परिवेश का योगदान भी रेखांकित करने योग्य होता

---

1. *डॉ0 कुन्दन लाल उप्रेती : 'लोक साहित्य के प्रतिमान', पृ0 47।*

है। वस्तुतः जब किसी रचनाकार की चेतना जीवन के खारे सागर से आत्म–सूर्य की तेजोमयी रश्मियों से आकृष्ट, वाष्प की भांति उन्नतता प्राप्त करती है और तापमान की अनुकूलता प्राप्त करते ही जीवन–धार बनकर बरस जाती है, तब बरसने के पहले वह सघन भी होती है, तड़ित पूर्ण भी होती है और हुंकार तथा वेदना से विह्वल भी बनती है। इसीलिये उसमें कभी तड़ित–तर्जन होता है, कभी घन–नाद का गुरूगर्जन, तो कभी रसधार का बरसन। ठीक इसी समय आत्म–चेतस् कलाकार की कल्पना, तड़ित–तर्जन एवं घन–नाद के गुरू–गर्जन से उद्भूत भीष्म सौन्दर्य का पान करते ही पीन हो उठती है और तभी उसके भीतर से आकारित होती है एक कालजयी सार्वभौम रचना। यही कारण है कि कला की सरिता अनादिकाल से अनुभव की छाती फोड़कर विविध रचनाओं के माध्यम से कल–कल करती शत्–शत् निनादित अपनी अजस्र–सहस्र–सहस्र धाराओं में जन–मन को आप्लावित करती चली आ रही है और अनन्तकाल तक चलती रहेगी।

लोकगीत भी अन्य रचनाओं की भांति लोककलाकार की जीवनानुभवों की लयात्मक भावाभिव्यक्ति है। वे भाषा तथा शास्त्रीय छन्द–विधान की जटिल प्रक्रियाओं से मुक्त, स्वतंत्र एवं स्वच्छन्द रूप से अभिव्यक्त होते हैं। जीवन और प्रकृति के घात–प्रतिघात, घटनाएं, विषमताएं तथा पारिस्थितिक विवशताओं का लयात्मक भावोच्छ्वास इन गीतों में मिलता है। इन सहज, सरल गीतों के मूल में विश्व की प्रतिफल घटित और परिवर्तित परिस्थितियां ही प्रेरणारूप में विद्यमान रहती हैं। लोक–जीवन के अन्तर्मन को अपनी विविधता से मेंथकर शत्–शत् रूपों में प्रकाशित करने वाली ये परिस्थितियां लोकगीतों की पृष्ठभूमि हैं। कालक्रमानुसार इन परिस्थितियों में बदलाव होता है। वे बनती और बिगड़ती हैं। फलतः इनके बदलाव का प्रभाव लोकगीतों के वर्ण्य–विषय पर प्रत्यक्षतः परिलक्षित होता है।

लोकसांस्कृतिक धरातल पर विश्व–मानव की अनुभूति तथा पारिस्थितिक संदर्भ एक सा रहा है। अतएव परिस्थितिजन्य वैविध्य की अनुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति भी एक सी है। यह तथ्यगत सत्य है कि मनुष्य के जीवन में भौगोलिक स्थिति, भाषा, धर्म–सम्प्रदाय, जाति, वर्ण, रंग, लिंग आदि तो विषमता पैदा कर सकते हैं लेकिन संस्कृति सदैव समन्वयकारी रही है। यही कारण है कि पूरे मानव–समुदाय की मानवीय धरातल पर लोकाभिव्यक्ति एक सी है। अतः भौगोलिक तटबन्धों को तोड़कर, परिस्थितिजन्य मसृण–रौद्र, सुख–दुख, हर्ष–विषाद, सुन्दर–विद्रुप, समता–विषमता आदि की अभिव्यक्ति

लोकगीतों में भावात्मक धरातल पर एक तरह की दिखाई देती है। उदाहरणार्थ देश के विस्तृत भू–भाग में फैली हुई जनजातियों, अर्द्धसभ्यजातियों में प्रचलित रीति–रिवाज, विश्वास, परम्पराएं मान्यताएं, नृत्य तथा गीतों में अद्भुत साम्य दिखाई पड़ता है।

अस्तु! यह तथ्यात्मक सत्य सार्वभौम तथा सर्वमान्य है कि लेखक, साहित्यकार या लोकगीतकार तथा परिस्थितियां परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। 'साहित्य समाज का दर्पण है' इस उक्ति के आलोक में समाज में जो कुछ भी है या घट रहा है उससे लोकगीतकार भी कहीं–न–कहीं प्रभावित अवश्य होता है तथा इसी घटना चक्र के क्रम में उसके द्वारा सृजित लोकगीत भी प्रभावित होता है। लोकगीतकार जिस समाज में श्वास लेता है उसकी परम्पराएं, घटनाएं, स्थितियों, परिवेश तथा परिवर्तन उसके मन–मस्तिष्क, चिन्तन–मनन पर प्रभाव डालते हैं और इसी से उसकी रचना भी प्रभावित होती है। समाज की अनुभूति ही लोकगीतों में अभिव्यक्त होती है। उसमें कल्पना का मिश्रण अवश्य होता है किन्तु वह सदैव वायवी या आधारहीन नहीं होती। दूसरी ओर यही स्थिति जन–जीवन की भी है। जन–सामान्य भी समाज में घटित घटनाचक्र या व्याप्त स्थितियों–परिस्थितियों से प्रभावित होता है। जन–सामान्य की चित्तवृत्ति या मनोवृत्ति भी देश या परिवेश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिवर्तित होती रहती है। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने साहित्य का सम्बन्ध 'जनता की चित्तवृत्तियों' से जोड़ते हुए कहा है कि "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्रवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"(1)

अतः परिवेश और परिस्थितियां साहित्य को नियंत्रित करने वाली शक्ति के रूप में जानी जाती हैं। इसीलिये लोकगीतों के निर्माण में अपनी अप्रतिम तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली परिस्थितियों की चर्चा सदैव की जाती रही है। स्थितियां, परिस्थितियां चित्तवृत्तियों को प्रभावित करती हैं और चित्रवृत्तियां रूचि, परिप्रेक्ष्य तथा दिशा को निर्धारित करती हैं। उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि लोकगीतों की पृष्ठभूमि में भी अभिव्यक्ति की वही मूल प्रेरणाएं विद्यमान हैं और इन मूल प्रेरणाओं को सुविधा की दृष्टि

---

1. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', काल विभाग पृ0 1।*

से हम पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के रूप में देख सकते हैं।

(अ) पारिवारिक परिस्थितियां :–

मानव–समाज का इतिहास, परिवार का ही इतिहास हैं, क्योंकि मानव–जीवन के प्रारम्भ से ही परिवार उसके साथ है और किसी–न–किसी रूप में यह सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों पर पाया जाता है। परिवार व्यक्ति के सामाजिकरण का एक प्रमुख साधन भी है क्योंकि बच्चे के सामाजिक जीवन एवं आदर्शो का विकास स्तम्भ परिवार ही होता है। माता–पिता स्वयं तो कष्ट उठाते हैं लेकिन बच्चों के सुख–दुख का पूरा ध्यान रखते हैं और ऐसा ही व्यवहार बच्चे भी बड़े होने पर अपने माता–पिता के साथ करते हैं। सच्चाई यह है कि परिवार ही वह पाठशाला है, जहां व्यक्ति त्याग, बलिदान, परोपकार, सहिष्णुता, प्रेम–सौहांर्द और दूसरे के लिये जीने की प्रेरणा ग्रहण करता है, आर इस तरह वह समाज का अच्छा नागरिक बनने के लिये अपने आपको तैयार करता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर, पूरे परिवार की हित–साधना के लिये प्रयत्नशील रहता है। इस तरह सभी अपने को ऐसे भावात्मक सूत्र में बांध पाते हैं, जो उन्हें प्रेरित करता है कि वे स्वयं अपने लिये ही नहीं वरन् सभी के लिये जियें, सभी के दुख–सुख में सहभागी बनें। इसी भावात्मक सूत्र के कारण व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास और विस्तार करता है। परिवार में सदस्यों के पारस्परिक स्नेह, सौहार्द, बलिदान एवं त्याग की भावना उसे यह सीख देती है कि वह समाज नामक वृहत्तर इकाई के प्रत्येक सदस्य के प्रति इन्हीं भावनाओं से संचालित हो। आज से कुछ दशक पहले हमारे देश में संयुक्त परिवार का आम प्रचलन था। इसमें परदादा का परिवार, दादा एवं उनके भाइयों और उन सबका परिवार, ताऊ–पिता एवं चाचाओं का परिवार और उसमें अविवाहित पुत्रियां भी सम्मिलित रहती थीं। कतिपय सामाजिक, आर्थिक, आधुनिकीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया ने संयुक्त–परिवार को एकल–परिवार के रूप में स्थानान्तरित कर दिया है। उपर्युक्त पारिवारिक समाजशास्त्रीय अवधारणा का पूरा और विशद चित्र–विम्ब लोकगीतों में देखने को मिलता है।

लोकगीतों में पारिवारिक–अन्तर्सम्बन्धों, स्थितियों तथा तत्वों का चित्रण व्यापक

फलक पर हुआ है। परिवार के दुख–सुख, हर्ष–विषाद, प्रेम–सौहार्द, राग–द्वेष ने लोकगायकों को पूर्णतया प्रभावित किया है और तद्जन्य प्रभावाभिव्यक्ति इनके गीतों में मुखर हुई है। लोकगीतों से हम अपने अतीत के परिवार विषयक् स्थितियों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। लोकगीतकारों का परिवार उनके घर–बाहर समान रूप से विद्यमान रहता है। इसीलिये पारिवारिक संदर्भो की जानकारी उन्हें अन्य की अपेक्षा अधिक रहती है तथा पारिवारिक अनुभूति की अभिव्यक्ति उनके गीतों के विषय होते हैं। नगरी आपाधापी, कोलाहल, बनावट–दिखावट, तथा ओढ़ी हुई सभ्यता से दूर, गांवों का अस्तित्व–अस्मिता, उनके परस्पर आन्तरिक ह्रदय की शुद्ध तथा सच्ची प्रेम–भावना पर टिके हुए है। परिवार तो प्रेम की पाठशाला ही है। माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी, देवर–भाभी, ननद–भावज, देवरानी–जेठानी आदि का अटूट सम्बन्ध, वह परस्पर प्रेम ही है जिसकी मजबूत नींव पर परिवार का भव्य–भवन खड़ा रहता है। लोकगीतों में इसका विशद् एवं मनोहारी चित्र–विम्ब देखने को मिलता है। स्त्रियों में मातृत्व–भावना अपना एक विशेष महत्व रखती है। उनके जीवन की सबसे बड़ी लालसा संतति प्राप्त करना है। पुत्र–जन्म से तो ममतामयी, वात्सल्यमूर्ति मात्र–ह्रदय अनन्त उत्साह एवं उछाह से भर उठता है। पुत्र–जन्म की वह शुभ घड़ी माता के जीवन की स्वर्णिम घड़ी होती है। उसके रात–दिन सोने के हो जाते हैं–

> आज दिन सोने सों महाराज,
> सोने के दिन और सोने की रातें,
> सोने के सब दिन होएं महाराज।[1]

भला! पुत्र–जन्म पर माता का रात–दिन सोने का क्यों न हो? निःसंतान स्त्री को परिवार एवं समाज की अवहेलना, तिरस्कार, भर्त्सना एवं उपेक्षा को झेलना और सहना पड़ता है। यहां तक की उसका प्रियतम भी उसे छोड़कर दूसरी शादी करने के लिये उद्दत दिखता है–

> कुल कीं तो तुम दो तिल आगरी भौतक सेवा जोंग।
> कूँखरियां बैरन भई जेने घटाये तोरे मान, ब्याव करैं हम दूसरो।[2]

---

1. *वासुदेव गोस्वामी : 'बुन्देली लोकगीत', पृ0 16।*
2. *शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ0 32।*

एक बांझ स्त्री, सास–ननद और पति द्वारा घर से निकाल दी जाती है। वह जंगल में बाघिन एवं नागिन से प्रार्थना करती है कि वह उसे खा लें जिससे उसका यह संताप समाप्त हो जाय। लेकिन बाघिन और नागिन उसे खाने से यह कहकर मना कर देती हैं कि यदि वे बांझिन को खायेंगी तो वे भी वन्ध्या हो जायगी। इसके बाद वह अपनी जन्मदायी माँ तथा सब कुछ धारण करने वाली धारित्री के पास जाती है। वे भी उसे तिरस्कृत कर देती है।[1] करूणा की यह पराकाष्ठा लोकगीतों में यत्र–तत्र मिलती है। बांझिन स्त्री ही क्यों? निःसंतान पुरूष को भी समाज की घोर उपेक्षा सहनी पड़ती है। 'निरवंशी' पुरूष का प्रातः मुंह देखना, समाज में पाप माना जाता है। इनकी छाया तक अस्पृश्य मानी जाती है।[2]

ऐसी पारिवारिक–सामाजिक स्थिति में पुत्र का जन्म निश्चित रूप से माता के हृदय में परम हर्षोल्लास को उत्पन्न करता है। एक स्त्री को पुत्र–रत्न की प्राप्ति हुई है। हर्षातिरेक से भरी वह अपने संबंधियों से इस खुशी में सर्वस्त्र लुटा देने, न्यौछावर कर देने की प्रार्थना करती है –

मोरे डरे डरे कहरॉय गोविन्दलाल भौं में डरे।
जाय जो कैयो उन राजा ससुर से थैली देय लुटाय।
जाय जो कैयो उन राजा जेठ से बजाजी देय लुटाय।
जाय जो कैयो उन राजा देवर से गन्ता देय कराय।
जाय जो कैयो पुरा–परोसिन से सरियां देवे गुआय।।[3]

पति–पत्नी का परस्पर प्रेम ही वह कुंजी है जिससे परिवार में सम्पन्नता, समरसता तथा सरसता का सृजन होता है। गृहकार्य के लिये पानी लाते समय रास्ते में वर्षा से भीगती प्रिया, प्रियतम से अपने आकर्षक अंगों को बचाने के लिये प्रार्थना करती है –

फुल बगियों हो राजा बरसे मेंह गोरी भींज गई गलियों में।

---

1. *पं० रामनरेश त्रिपाठी : 'कविता कौमुदी', पृ० 181*
2. *डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय : 'भोजपुरी ग्रा० गीत', पृ० 10*
3. *शिवसहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ० 62*

गोरी जो भींजे भींजत जान दो, घुँघटा हो राजा लियो बचाय।
घुंघटा भींजे तो भींज जान दो, नैना हो राजा लियो बचाय।[1]

निश्चित ही यह गीत दाम्पत्य जीवन में सरसता का संचार करने में सक्षम है तथा पति के प्रति पत्नी के हृदय सागर से छलकता प्रेमरस का एक अनूठा नमूना है। पति–पत्नी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम भारतीय परिवारों की सबसे बड़ी विशेषता है। एक उपेक्षिता पत्नी अपने सुहाग से एक नजर भर देख लेने तथा प्रेम–सम्बन्ध बनाये रखने के लिये अनुनय–विनय करती है अन्यथा वह मृत्युवरण करना श्रेयस्कर समझती है –

नजर भर हेरत काय नैयां ? हम तो राजा बन की हिरनियां,
बन की हिरनियां तुम ठाकुर के लरिका, तुपकतीर मारत काय नैयां?[2]

पारिवारिक जीवन में परिहास का अत्यधिक महत्व है। इससे पारिवारिक–जीवन की एकरसता में नवीन सरसता का संचार होता है। हिन्दू–परिवारों में संस्कार के अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली 'गालीगीत' इसके ज्वलंत उदाहरण है। देवर–भाभी, ननद–'भौजाई का सरस परिहास पारिवारिक एकरसता को दूर करता है तथा आनंद की सृष्टि करता है। लोकगीतकारों ने इन परिहासों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। भौजाई को ननद के आशीर्वाद से [3] चिरप्रतीक्षित पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है। वह ननद से कहती है कि ननदबाई मांगों–मांगों, आज जो मांगोगी, वही तुम्हें दूंगी, एक ओर तो वह ननद को इस खुशी के मौके पर अन्न, वस्त्र, बर्तन, जेवर आदि सब कुछ देने को कहती है लेकिन देती कुछ भी नहीं। और अन्त में वह कहती है कि कहीं तुम मेरे लाल को ही मत मांग बैठना। वह मेरी गोदी का आभूषण है। यदि तुम उसी का हठ करोगी तो मैं उसके बदले अपनी सेज का श्रृंगार अपने राजा (तुम्हारे भाई) को दे दूंगी. पर जाते समय

---

1. *वही : वही पृ0 68 ।*

2. *वही : वही पृ0 145 ।*

3. *जेय जूंठ बैया ओबरों पौची भौतक देत असीस। फरियो भौजी करई नीम सी छिछलो बूढ़ी दूब–अचल तोरे हुइयें ऐबात ।*
   – शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ0 33।

तुम्हें चार धक्के लगाकर घर से निकाल दूंगी –

मांगो–मांगो री ननद बैया जो माँगों सो देंय।
ललुवा तो जिन माँगो बैया गोदी को सिंगार री।
पलका पै के राजा लैजा धक्का दैहों चार।[1]

सद् और असद्, मृदु और तीक्ष्ण, सुन्दर और विद्रुप मनःप्रवृत्तियों के कारण कभी–कभी आनन्दपूर्ण पारिवारिक वातावरण विषाक्त, विद्रुप और शोकाकुल हो जाता है। लोकगीतों में इन असुन्दर तत्वों की सुन्दर अभिव्यक्तियां देखने को मिलती है। एक ओर सर्वगुणसम्पन्न कुलवधू अपनी सेवा–भावना, विनयशीलता, मर्यादाभावना तथा सदाचरण से परिवार को स्वर्ग बना देती है तो दूसरी ओर निर्लज्ज, कुलटा, कटुभाषिणी स्त्री परिवार की सुख–शान्ति में विष–घोल देती है। एक ईर्ष्यालु, उदृण्डवधू अपनी देवरानी–जेठानी को नीचा दिखाने के लिए उस कुएं पर पानी लाने के लिये भेजती है जिसमें एक बूंद पानी नहीं है और स्वयं ऐसे कुएं पर जाती है, जिसमें अथाह पानी है। विलम्ब से आने के कारण ससुर जब उसे फटकारता है तो वह अपने मायके को भाग जाती है। उसकी इस उदण्डता पर माँ–बाप उसे भला–बुरा कहते हैं –

पानी भरकें पौरन आई, ससुरा कहे बहू दारी लाल।
दारी तोरी बैन मतारी मैं हो बड़े की बेटी लाल।
लीलो सो घुड़ला बगल बंधो है ओई चढ़ मायके जैहों लाल।
दादा मारे भाई मारे तो मामन के भग जैहों लाल।[2]

ननद–भावज का चिरंतन विद्वेष–भाव प्रसिद्ध है। यह विद्वेष–भावना उतनी ही पुरानी है जितना परिवार का अभ्युदय। ननद–भौजाई की विद्वेष–भावना का कितना सुन्दर और अनूठ चित्रण इस गीत में हुआ है देखने योग्य है–

लरका के नाना को गोत बांच सुनवाइयो महाराज।
नाना उसके असल चमार नानी जोरे जूतियां महाराज।

---

1. *शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ0 60।*

2. *वही, पृ0 69*

भैया उनके मृदंग बजावें, बहन जगबेड़नी महाराज।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पारिवारिक परिस्थितियां लोकगीतों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान करती है।

(ब) सामाजिक परिस्थितियां :–

समाज–परिवार की वृहत्तर इकाई है। यह मानव द्वारा निर्धारित व स्वीकृत वह जीवन पद्धति है, जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य जीवन–पर्यन्त संचालित होता है। भारतीय समाज–निर्माताओं ने मानव की बौद्धिक क्षमताओं द्वारा मात्र भौतिक जीवन से ही नहीं अपितु आध्यात्मिक जीवन से भी सम्बद्ध संस्थाओं –धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, अर्थव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, आश्रम, परिवार, विवाह आदि अनेक संस्थाओं द्वारा समाज को सुदृढ़ता एवं निरंतरता प्रदान की। और यही कारण है कि जिस समय अधिकांश विश्व का मानव बर्बरता के सघन तिमिराच्छन्न से आच्छांदित पाश्विक जीवन व्यतीत कर रहा था उस समय भारतीय समाज ने सभ्यता और संस्कृति की अखण्ड ज्योति को जागृत कर प्रकाशमय प्रांज्जल पथ पर निरंतर आगे बढ़ते हुए अपने भौतिक जीवन को सुखी तथ सम्पन्नता प्रदान की। उन्होंने अर्थ, धर्म, काम में सामंजस्य स्थापित कर तथा आध्यात्मिकता का संबल लेकर मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त तथा परिष्कृत कर दिया था। इस सुसंस्कृत सभ्य समाज के समानान्तर अनादिकाल से लोकसमाज और जीवन अपनी लोक संस्कृति, लोक धर्म, लोक साहित्य, लोकविश्वास, लोकपरम्परा आदि को अक्षुण्ण बनाये हुये निरंतर प्रवहमान होता रहा है। लोक और समाज में कोई स्पष्ट पार्थक्य रेखा नहीं खींची जा सकती है क्योंकि किसी भी काल या परिस्थिति में लोकविहीन समाज और समाज विहीन लोक की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। लोक और समाज का अटूट सम्बन्ध है फिर भी लोक अपनी परिव्याप्ति, विशालता एवं विराटता में अद्वितीय है तथा उसमें सामाजिकता और असामाजिकता का मणिकांचन योग रहता है।

लोकसाहित्य लोकजीवन की विवृति है तो लोकगीत उस विवृति के अभिव्यक्ति की एक विधा। लोकसाहित्य के निर्माण में समाज की सम्पूर्ण मानवी भावनाएं विश्वास और

---

1. *शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ० 49–50*

मान्यताएं, परम्पराएं, खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज, आदि सहायक होते हैं और यही कारक उसकी उद्‌भावना की प्रेरक परिस्थितियां भी हैं। लोकगीतकार समाजचेत्तर प्राणी होता है। वह समाज के हत्‌स्पन्दन एवं नब्ज़ पर सदैव अपनी अंगुली रखे रहता है। लोकमानस के कोने–कोने से सुपरिचित वह उसका प्रत्यक्षदर्शी, अनुभवी दृष्टा और भोक्ता होता है। उसकी रचनाओं में लोकजीवन और समाज अपनी पूर्णता के साथ प्रकट होता है। वह अपने गीतों में समाज में व्याप्त उसकी विशेषताओं, न्यूनताओं एवं विद्रुपताओं को बेलाग और स्वच्छन्दभाव से व्यक्त करता है। उसमें न कोई बनावट होती है न वाह्य दिखावट व सजावट। समाज की जो भावनाएं, चेष्टाएं, क्रिया–कलाप उसके मानस को आन्दोलित करती है उसकी रागात्मक परिस्थिति उसके गीतों में अनायास, प्रकृतितः शत्–शत् रूपों में फूट पड़ती है। और यही कारण है कि भेद–विभेद से ऊपर उठकर उसकी अभिव्यक्ति निज की न होकर सर्व की हो जाती है। व्यष्टि का लय समष्टि में हो जाता है।

भारतीय मनीषा ने समाज के सुव्यवस्थित एवं सुसंस्कारित नियमन के लिये धर्म को समाज का मूलाधार बनाया तथा धर्मविहीन मनुष्य को पशुवत माना।[1] उसमे पूरे समाज को कार्य–शक्ति के आधार पर चार वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र में विभक्त किया। आज के वैज्ञानिक–उद्देश्यों की दृष्टि से इसे ज्ञान, रक्षा, जीविका और सेवा के रूप में देखा जा सकता है। व्यक्ति का जीवन जड़ व स्थिर नहीं वरन् चेतन और शतत् गतिमान है। जीवन की इस सम्पूर्ण गति को नियमित, सुसंचालित तथा नियंत्रित करने के लिये उसने चार आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास की व्यवस्था की। त्याग–मय भोग का आदर्श इस आश्रम व्यवस्था में मूर्त होता है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मचर्याश्रम ज्ञान प्राप्ति का, गृहस्थाश्रम भोग का, वानप्रस्थाश्रम भोग से निर्लिप्तता का तथा संन्यास पूर्ण वैराग्य का द्योतक है। मानव के व्यक्तिगत जीवन का परमलक्ष्य भगवद्प्राप्ति या मोक्ष है। इस मोक्ष की प्राप्ति वह पुरूषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम के सम्यक् और धर्मपूर्ण पालन से कर सकता है। फलतः पुरूषार्थ उस सार्थक जीवन–शक्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को सांसारिक सुखोपभोग के बीच अपने धर्म पालन के माध्यम से भगवद्प्राप्ति या मोक्ष

---

1. *'महाभारत' : 'शान्ति पर्व', 294/29*

की राह दिखाता है। आत्मगत् अज्ञानावस्था का पूर्णतया विनाश तथा पूर्णज्ञान की प्राप्ति ही मोक्ष है।[1] वर्णव्यवस्था आश्रमव्यवस्था तथा पुरूषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत मनुष्य अपने वर्ण धर्म के अनुरूप कार्य करता हुआ सद्गति को प्राप्त होता है। अपने वर्ण–धर्म के प्रतिकूल किया जाने वाला उच्चकोटि का कर्म मोक्ष में बाधक है। दूसरे वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मणोचित कार्य को करके भी मोक्ष का भागी नहीं हो सकता। अतः वर्णानुसार विभिन्न कर्म–संस्कारों की व्यवस्था की गई। संस्कार का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक परिष्कार के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों से है जिससे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन सके। वेदों में, विशेषतः ऋग्वेद में मात्र तीन संस्कारों की चर्चा है – गर्भाधान, विवाह और मृत्यु। यजुर्वेद में इनके अतिरिक्त उपनयन तथा मुण्डन संस्कारों का उल्लेख है। ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों में संस्कारों का कोई व्यवस्थित रूप नहीं दिखता। पर इसके बाद इनकी व्यवस्थित संख्या निश्चित की जाने लगी थी। बाद में धर्मसूत्रों में तो संस्कारों की संख्या बढ़ाने की होड़–सी लग गई प्रतीत होती है। अश्वालयन ने ग्यारह, पारस्कर, बौद्धायन व मनुस्मृति में तेरह, जबकि गौतम धर्मसूत्र ने चालीस संस्कारों का उल्लेख किया है। महर्षि दयानन्द ने सबको समन्वित कर सोलह संस्कार निर्धारित किये हैं। पर समाज में मुख्य रूप से पांच प्रकार के संस्कारों का प्रचलन है – (1) प्राग्जन्म संस्कार (2) जन्म संस्कार (3) यज्ञोपवीत संस्कार (4) विवाह संस्कार तथा (5) मृत्यु संस्कार । इन मुख्य संस्कारों के अतिरिक्त अनेक उपसंस्कार भी देश के विभिन्न भागों में प्रचलित है। प्राग्जन्म संस्कार के अन्तर्गत– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, संस्कार आते हैं। जन्म संस्कार के अन्तर्गत जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण अन्नप्राशन, चूड़ाकरण एवं कर्णछेदन संस्कारों का समावेश है। यज्ञोपवीत संस्कार में उपनयन एवं विद्यारम्भ संस्कारों का उल्लेख रहता है। विवाह संस्कार के अन्तर्गत अनेक प्रकार के वैवाहिक–मांगलिक विधि–विधानों का समावेश रहता है तथा अन्त्येष्टि संस्कार में हुतात्मा की शान्ति के लिये अनेक कर्मो का विधान है। भारतीय हिन्दू समाज में प्राग् संस्कार से लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कारों तक के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले विभिन्न गीतों की अभिव्यंजना है। इन संस्कारों ने लोकगीतों के निर्माण में अपनी

---

1. *मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामातर मेव वा।*
अज्ञानहृदय ग्रन्थिनाथो मोक्ष इति स्मृतः ।। शिवगीता 13/32

अहम् तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अतः संस्कारों के नाम एवं गुणानुसार ही लोकगीतों के विविध रूपों का सृजन हुआ है। प्राग्–जन्म और जन्म संबंधी संस्कारों के अवसर पर 'आगन्नों' या 'फूलचौक' के गीत, संचत, सोहर, भौलटंवी, कॉवे, दस्टोन, सरिया, नरा छीनने, छठी, कुआंपूजन, कर्णछेदन, अन्नप्राशन, झूलना, पलना, लोरी, चूड़ाकरण आदि के गीत गाये जाते हैं।[1] यज्ञोपवीत के अवसर पर मांटी खुदाई, मण्डप, तेल–हल्दी उबटन, जनेऊ,

---

1.(क) जन्म संस्कार से संबंधित कुछ बुन्देलखण्डी लोकगीतों के उदाहरण –

1. आगन्नों या फूलचौक संस्कार (यह वैदिक पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार के समान है)

धन्न मोरी कूंख सुलोचनी, जिन मोरे राखे हैं मान, पिया ब्याव रचतते दूसरों।।

– शिवसहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ0 34

2. प्रसव पीड़ा – *मोरे उठत कमर धन पीर अब नैयां जीने की*

सुन राजा रे, महाराजा रे, मोरी सासू को देव बुलाय

अब नैयां जीने की

– शिवसहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ0 36

3. जन्म – भोर भये भुनसार, ललन प्यारे हो गये।

सुनो राजा रे, महाराजा रे, ल्यावो सोंठ बिस्वार।

लड्डुवा बंधाओं, तुम बांधो हम खांय, ललन प्यारे हो गये।

– वही पृ0 38

4. बधावे – बाजे बाजे बधाये आज बहू के ललन भये।

– डॉ0 मोती लाल चौरसिया, 'बुन्देली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ0 51

5. कुआं–पूजन – ऊपर बदल घुमड़ाय गोरी धन पनियां खों निकरीं।

– शिवसहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ0 67

6. लोरी – तू सोजा बारे वीर, वीर की बलैयां लैहों जमना के तीर। वही पृ0 73

7. मुण्डन – झालर जबई मुड़ाय हो, जब आजुल घर होंय

– शिवसहाय चतुर्वेदी, बुन्देलखण्डी लोकगीत, पृ0 75

पदप्रक्षालन, भिक्षा, स्नान, वस्त्रधारण आदि के गीत गाये जाते हैं[1] विवाह संस्कार के शुभ अवसर पर बन्ना–बनरी (वर–कन्या) पक्ष के भेद से अनेक विधि–विधानों से सम्बन्धित गीतों का प्रचलन है जिसमें मुख्यरूप से बन्ना ढूंढना, पक्कयात, लगुन, तिलक, सगुन के गीत, देवी के गीत, माटी खुदाई के गीत, तेल–हल्दी–उबटना के गीत, हरदौल लाला की मनौती के गीत, द्वारचार के गीत, ऊबनी, चढ़ाय, भांवर, पांव पखराई, सिन्दूरदान, कोहबर, पंगत एवं विदाई आदि के गाये जाते हैं।[2] इसी प्रकार मृत्यु के अवसर पर शोकगीत गाये जाते हैं। बुन्देली में मृत्यु गीत का प्रचलन नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज में

1.ख. यज्ञोपवीत संस्कार से संबंधित लोकगीत –

1. यज्ञोपवीत (जनेऊ)
तीन तगा को डोरा री, दमरी कौ सूत ए मैया।
तीन तगा को जनवा री कैसो मजबूत ए भैया।।
– शिवसहाय चतुर्वेदी, 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ0 9

2. बरुआ – कहांना से बरुआ चले यारों ठाढ़े कहना दोर
काशी से बरुआ चले यारो ठाढ़े आजुल दरबार।
भीखों दे आजी, भीखो दे, तेरो बरुआ उपासो हो।। वही पृ0 9

2. विवाह संस्कार से संबंधित कुछ बुन्देलखण्डी लोकगीतों के उदाहरण –

(क) बन्ना ढूढ़ना –
पास गांव ढूंढयों दूर गांव ढूंढ़यों, ढूंढ़यों शहर गुजरात।
कतहूँ न मिलै तोर धिया वर सुन्दर, तोर धिया रहै कुंवार।।
– बलभद्र तिवारी : 'बुन्देली लोक काव्य', भाग–1, पृ0 43

(ख) लगुन –
सो आज मोरे रामजू रवों लगुन चढ़त है, लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है।। वही पृ0 43

(ग) मण्डप–छादन –
मंडवा भीतर लगी अथाई के बोल मोरे भाई।
ऐसे गनेस देव करें बढ़ाई के बोल मोरे भाई।।
– बलभद्र तिवारी : बुन्देली काव्य परम्परा, (प्रा0का0) 18

प्रचलित प्रत्येक संस्कार, प्रत्येक अवसर, प्रत्येक घटना तथा प्रत्येक क्रिया ने लोकगीतों के नव–निर्माण में अपना अप्रतिम सहयोग, निर्वाध सहायता तथा अहम् भूमिका का निर्वहन् किया है।

(घ) *हल्दी–तेल–उबटन –*

सो आज मोरे रामजू खों तेलो चढ़त है, तेलो चढ़त है फुलेल चढ़त है।
सोने के कटोरा में तैलो भरायो, सो हरदी मिलाकैं कैसों झलकत है।।
– डॉ० मोती लाल चौरसिया : 'बुन्देली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ० 56

(च) *हरदौल लाला की मनौती –*

नजरियों के सामने तुम हरदम लाल रहियो।
तुमने करी भाभी से प्रीति जैसे सब दुनियां की रीति।।
– वही पृ० 56

(छ) *मातृ पूजन तथा देवी–देवताओं को निमंत्रण –*

सरग नसेनी पाट की यारो जे चढ़ नेवतो देंय।
तुम मोरे नेवते गनेस देव तुम मोरें आइयो।।
– शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ० 99

(ज) *चीकट–गीत –*

सास–ननद खों छींट छिमरिया देवरानी जिठानी खों चूनरी।
हम खों वीरन मोरे जेबर गढ़ैयो पाट बरैयो बहनेऊ खों पचरंग पागड़ी।।
– शिवसहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', पृ० 107

(झ) *ऊबनी के गीत –*

कंहना के भले मालिया जिन लगाये? कंहना की बेटी कोकिला फुल बीनन आई?
कंहना के भले कोटिया जिन कोट उठाये? कंहना के बड़े तापसी चढ़ ब्याह आये?
वही पृ० 109

(ह) *हास–परिहास के गीत –*

मन कौ एकऊ नै आओ, बड़ी बड़ी मूंछो कै आये। बड़ी बड़ी नाकों के आये।।
वही पृ० 112

पर्व--त्योहारों का मानव--जीवन से गहरा सम्बन्ध है। हमारी पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक--एकता तथा भाईचारे की भावना को मजबूत करने की दिशा में विभिन्न पर्वो, त्योहारों, उत्सव--मेलों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जहां धार्मिक पर्व--त्योहारें से हमारी सामाजिक--सांस्कृतिक एकता सुदृढ़ होती है वही राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़े पर्वो से भाईचारे की भावना, राष्ट्रीय एकता--अखण्डता और आपसी सौहार्द की भावना बलवती होती है। ये पर्व--त्यौहार जहां जनमानस में उल्लास, उमंग--तरंग एवं खुशियां भर देते हैं, वहीं हमारे अन्दर देश--भक्ति, राष्ट्रीय गौरव की भावना के साथसाथ विश्वबन्धुत्व एवं समन्वय की भावना भी पनपाते तथा बढ़ाते हैं। हमारे देश में अनेक पर्व--त्योहारों तथा ऋतुओं के परिवर्तन चक्र से उत्पन्न हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति, लोकगीतकारों ने अपनी भावनामयी रागात्मक वृत्तियों द्वारा की है। पर्व--त्योहारों की मनभावनी विशेषताओं ने नवीन लोकगीतों की उद्‌भावना व

(ठ) *भांवर के गीत –*

पहली भांवर जब फेरियो बेटी अबलौ हमारी।
दूजी भांवर जब फेरियो बेटी अबलौं हमारी।।
X X X
सातईं भांवर जब फेरियो बेटी तब हो गई पराई।
वही पृ0 114

(ड.) *पांव पखरई के गीत –*

बिचगंगा बिच जमुना तीरथ बड़े हैं पिराग।
जहां बिच बैठे बाबुल मोरे, देत कुआंरन दान। वही पृ0 115

(ढ़) *विदाई के गीत –*

माया के रोये से नदिया बहत है, बाबुल के रोए बेला ताल मोरे लाल।
बीरन के रोए छतियां फटत है, भौजी को जिया कठोर मोरे लाल।
– डॉ0 विनोद तिवारी, 'लोकगीत का तुल0 अध्याय' पृ0 68

(ण) *कंगन छोड़ने के गीत –*

जो नै होय धनुष को टोरबो, कठिन कंकन छोरबो।
– शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देल खण्डी लोकगीत', पृ0 122

रचना में अभूतपर्व योगदान किया है। बुन्देलखण्ड अपने तीज–त्योहार, पर्वोत्सव और मेले के लिये प्रसिद्ध है। चैत्र से लेकर फाल्गुन तक के बारहों महीने किसी न किसी पर्व त्योहार एवं उत्सवों से सम्बन्धित हैं तथा सभी पर्वो, त्योहारों एवं उत्सवों के अपने–अपने लोकगीत हैं। फिर भी फागे, स्वांग, राई, दिवाली, दशहरा, तीजा, आरती, भजन, तुलसी विवाह तथा हिंडोले, कजलियां, बारहमासा, आल्हा, ढोलामारू, पंडवा, होली[1] इत्यादि के सुमधुर, भावपूर्णगीतों से वातावरण प्रभावित तथा जनमानस आप्लावित रहता है।

---

1. *पर्व–त्योहार तथा ऋतुओं से संबंधित कुछ बुन्देली लोकगीतों के उदाहरण –*

(क) *रक्षा बन्धन के गीत –*

बहिना ने बांधा छोटा सा डोरा, भइया की कलाई में,
और भइया ने खाई कसम, बहिना की रक्षा की।
– डॉ० मोती लाल चौरसिया : 'बु० लो० गी० का सां० अध्याय', पृ० 70

(ख) *दिवारी के गीत –*

तुलसा बोबई दो, जनीं, बेनई बैने आंय
तुलसा पूजें बामना, बोबई नंद के लाल रे। वही पृ० 64

(ग) *फाग –*

डारे अबीर मेरी आंखन में नोखो खिलवार,
रंग केसर ऊपर से बोल आय अचानक घूंघट खोले।
कर भींजत चोली दई फार।
– वही पृ० 66

(घ) *कजरी –*

हरे रामा उठी घटा घन घोर बदरिया कारी रे हारी। वही 61

(च) *बारह मासा –*

आषाढ़ मास घन गर्जन लागे, सहुना गगन गंभीरा,
भादों में नभ बिजली चमके, जौ मन धरत न धीरा। वही पृ० 62

(छ) *आल्हा –*

जगनिक ने मल्हना की पाती, दीन्ही उठि आल्हा के हाथ।
हाल हकीकत मलखाने की, पूंछी जबै देवला माय।। वही पृ० 81

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त जातीय भावना,[1] श्रम परिष्कार,[2] समूहबद्ध लोकनृत्य, यात्रा, धार्मिक स्थितियां, भिक्षावृत्ति[3] तथा राष्ट्रीय भावना[4] आदि ने लोकगीतों के नवसृजन में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

---

1. जातीय गीत –

(क) ढीमर – पथरा पै मिंदरिया कौने धरी, मोड़ा मोड़ी जाने के बतू धरी।

– डॉ0 मोती लाल चौरसिया : 'बु0गी0कासां0अ0', पृ0 74

(ख) अहीर – बिन्द्रावन बसवो तजोरे, भैया होंन लगी अनरीत रे,
तनक दही के कारणों मोरी बैंया गहत अहीर रे।

वही पृ0 76

(ग) गोंड – पैले रे पार की नौरंग गोरी हरे हरे गुंडा रिझाउन खों।

वही पृ0 76

(घ) धोबी – सै राम, सै राम, सै राम। वही पृ0 76

2. श्रम गीत – अनबोले रहो न ननद बाई बीरन तुमारे अनबोला।
गैया दुहावन तुम जैयो उतै बछरा खों देव छोर।

– बलभद्र तिवारी – 'बु0लो0का0', भाग–1, पृ0 67

नृत्य गीत–राई – बजरई आधीरात बैरन मुरलिया जा सौत भई।

वही पृ0 67

3. भिक्षावृति–गीत – उठो लक्ष्मी करो सिंगार के जै गंगा।
उठो लक्ष्मी दे दो दान के हर गंगा।

– डॉ0 मोती लाल चौरसिया : 'बु0लो0गी0का0सां0अ0', पृ0 83

4. राष्ट्रीय गीत – बापू तुम नैनन के तारे। रहे प्राण के प्यारे।
भारत के थे हिमगिर रक्षक, खम्भा अटल सहारे।
निरधन के धन हरिजन के मन, भूतल के उजियारे।
खेत सिंह थे हीरा जग में, से अनमोल हमारे।

वही 81

(स) धार्मिक परिस्थितियां :–

मानव अपने उत्सकाल से ही अखिल ब्रह्माण्ड की रहस्यमयी संचालिका शक्ति के प्रति जिज्ञासु तथा उसके अन्वीक्षण में निरंतर प्रयत्नशील रहा है। निःसंदेह प्रकृति के भयंकर दृश्यों को देखकर आदि–मानव भयभीत हुआ होगा तथा उसके मनोहारी दृश्यों को देख वह आह्लादित हुआ होगा। और इसी तत्व ने उसके मन में उस सर्वशक्तिमान परमसत्ता के प्रति भय तथा जिज्ञासा का संचार किया होगा। इसी भय और जिज्ञासा की क्रोड़ से धर्म का अभ्युदय हुआ होगा। क्योंकि "धर्म किसी–न–किसी प्रकार की अतिमानवीय या अलौकिक या समाजोपरि शक्ति पर विश्वास करता है, जिसका आधार भय, श्रद्धा, भक्ति और पवित्रता की धारणा है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना, पूजा या आराधना है।"[1] डॉ० राधाकृष्णन ने प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थों में धर्म–विषयक् अवधारणाओं की अन्वीक्षा करते हुये, धर्म को इस प्रकार पारिभाषित किया है– "यह 'घृ' धातु (बनाये रखना, धारण करना, पुष्ट करना) से बना है। यही वह मानदण्ड है जो विश्व को धारण करता है, किसी भी व्यक्ति का वह मूल तत्व है जिसके कारण वह वस्तु है। वेदों में इस शब्द का प्रयोग धार्मिक विधियों के अर्थ में किया गया है। 'छन्दोग्य–उपनिषद' में धर्म की तीन शाखाओं (स्कन्धों) का उल्लेख किया गया है, जिसका सम्बन्ध गृहस्थ, तपस्वी, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों से है। जब तैत्तिरीय उपनिषद् हमसे धर्म का आचरण करने को कहता है, तब उसका अभिप्राय जीवन के उस सोपान के कर्तव्यों के पालन से होता है, जिसमें कि हम विद्यमान हैं। इस अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग भगवद्गीता और मनुस्मृति दोनों में हुआ है।...... वैशेषिक सूत्रों में धर्म की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि जिससे आनन्द और परमानन्द की प्राप्ति हो, वह धर्म है।..... अपने प्रयोजन के लिये धर्म की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं कि चारों वर्णों और चारों आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन

1- *Religion is the belief in one or the other superhuman or supernatural or super-social power which (The belief) has for its basis the fear, the reverence, the devotion and the idea of sacredness and which is expressed through prayer worship or submission - The Author*

– डॉ० रवीन्द्र नाथ मुकर्जी : 'भारतीय समाज व संस्कृतिक', पृ० 49 पर उद्धृत

के चार प्रयोजनों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के सम्बन्ध में पालन करने योग्य मनुष्य का समूचा कर्तव्य है"।[1]

भारत धर्मप्राण देश है। यहां की जनता तथा समाज धर्मपरायण है। भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व धर्म है और अपनी इसी विशेषता के कारण भारत विश्व में समादृत है तथा विश्वगुरू की उपाधि से विभूषित। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, समाज और साहित्य सब में धर्म के तत्व अनुस्यूत हैं। धर्म की यह परम्परा भारतीय समाज की अति प्राचीन परम्परा है। पूर्व वैदिक युग से इसकी निरंतरता अविच्छिन्न रूप से बनी हुई है। भारतीय प्राचीन वाङ्मय— वेद, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, पुराण, श्रीमद्भागवत, मनुस्मृति आदि का मुख्य स्वर धर्म ही है। गीता ने तो भगवान का अवतार ही धर्म की संस्थापना तथा अधर्म के नाश के लिये माना है।[2] "धर्म नष्टे कुलं कृत्सूमधर्मोऽभिभवत्युत"।[3] मनुष्य–जीवन में धर्म की परिव्याप्ति का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है ?

भारतीय लोक जीवन धर्म से अनुप्राणित, अनुशासित तथा सर्वतोभावेन आच्छादित है। उसमें धर्म के प्रति असीम आस्था अटूट विश्वास तथा एकनिष्ठ श्रद्धा है। जन–जीवन की श्वास–प्रश्वास में रचा–बसा यह धर्म उसे जन्म–घुट्टी सदृश्य प्राप्त है। लोक की विवृति होने के कारण लोक–साहित्य और उसकी समस्त विधाएं धर्माधारित हैं। भारतीय लोक साहित्य, लोक संस्कृति, लोकगाथा, लोकनाटक, लोकसंगीत, लोकगीत, लोकसुभाषित आदि सभी पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से धर्म के प्रभाव को देखा जा सकता है। एतद्विषयक डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय का विचार अत्यन्त समीचीन है – "लोक साहित्य के सभी अंगों में धर्म उसी प्रकार से विद्यमान है जिस प्रकार से माला की प्रत्येक मनिका में सूत्र। धर्म की अनुस्यूतता के कारण ही जनता का साहित्य इतना लोकप्रिय हो सका है। इसी हेतु इसको इतना स्थायित्व प्राप्त हो सका है।..... जनता के इस लोकप्रिय साहित्य में

---

1. *डॉ0 राधाकृष्णन : 'धर्म और समाज', पृ0 127*

2. *यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।*
परिभाणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।
– 'गीता' 'अध्याय 4, श्लोक 7, 8

3. *वही अध्याय 1, श्लोक 40*

वर्णित विधि–विधानों, रीति रिवाजों, विश्वास परम्पराओं तथा रहन–सहन का अनुशीलन किया जाय तो इससे ज्ञात होता है कि इनको धर्म से कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई है, कितना बल मिला है। किंबहुना, यदि लोक साहित्य के निर्माण में धर्म का आधार प्राप्त न होता तो उसका इतना सजीव, स्वस्थ तथा संबल होना सम्भव न था।[1] अतः भारतीय लोक साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है।

लोकजीवन में व्याप्त समस्त धार्मिक भावनाओं का प्रकाशन लोकगीतों में दिखाई पड़ता है। लोकजीवन में धर्म का कोई व्यवस्थित, दार्शनिक तथा तार्किक स्वरूप नहीं होता। कर्म मार्ग, ज्ञानमार्ग, योगमार्ग तथा भक्तिमार्ग की जटिल दार्शनिक प्रक्रियाओं से शून्य लोक मानस अपने आराध्य का दर्शन, उसकी कृपाकांक्षा को सहज–सरल भावना, निष्कपट आस्था तथा निश्च्छल विश्वास से अर्जित करता है। वह अपने भाव रूप मे ही धर्मारूढ़ होता है तथा उसका भोला–भाला निर्मल मन सकारोपासना का सर्वतोभावेन अभ्यासी होता है। उसे कर्म, ज्ञान, योग रास नहीं आता, बह्म की निर्गुणोपासना उसके पल्ले नहीं पड़ती। एक ईश्वर ही क्यों हित–कल्याण, मंगल तथा सुख–सम्पन्नता की योजना करने वाला प्रत्येक उपकरण उसके विश्वास, आस्था तथा उपासना का आधार बन जाता है। सगुण ब्रह्म के समस्त अवतारों की पूजा–उपासना का प्रचलन लोक–जीवन में दिखाई पड़ता है। चराचर जगत् उसकी आस्था का केन्द्र है। लोकमन हर कंकड़ में शंकर का दर्शन करता है। गौ, गोरस, गोबर उसके पूज्य हैं। पेड़–पौधों के प्रत्येक पत्ते पर उसके देवी–देवता वास करते हैं तथा पशु–पक्षियों पर सवारी। नदी–नाले, झाड़–झंखाड़, पर्वत–पहाड़, कुंआ–तालाब आदि सबमें उसका ईश्वर वास करता है। सर्प, गोजर, बिच्छू पर उसकी आस्था होती है। मंदिर, मस्जिद, गिरजा, गुरूद्वारा ही नहीं वरन् ब्रह्म स्थान, सतीचौतरा, हरदौल चौतरा, समाधि, कब्र, मजार आदि सब उसके आस्था–विश्वास के केन्द्र होते हैं। इस प्रकार भारतीय जन–जीवन धर्म में जागता तथाधर्म में सोता है। वर्ष के सभी तिथि वार तथा नक्षत्र किसी न किसी देवी–देवता तथा उसकी पूजा–उपासना से संबंधित हैं।[2] घर बाहर की

---

1. *डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका', पृ0 221 तथा 297*

2. *परिवा को होली भैया दूज द्वितीया को होत, तीज हरतालिका को घर–घर मनाते हैं।*
चौथ को गणेश पूजा, नाग पूजा पंचमी को, षष्ठी को सूर्यव्रत हिन्दू रचाते हैं।
सप्तमी को अचला श्री कृष्ण जन्माष्टमी को, नवमी रामजन्म उत्सव मनाते हैं।

वे सभी वस्तुएं जो उनके दैनन्दिनी जीवन से संबंधित और संपर्कित हैं– चूल्हा–चक्की, सिल–लोढ़ा, ऊखल–मूसल, हल–हरिस यहां तक की कूड़े के ढेर 'घूरे' की भी पूजा करता है। लोकजीवन में समाविष्ट इस बहुदेवो पासना के मूल में सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद की प्रेरणा ही विद्यमान है। यहां कोई भेद–भाव नहीं, दार्शनिक मतवाद नहीं, तात्त्विक विचार नहीं, बौद्धिक संघर्षजन्य टकराव नहीं बल्कि वे सरल–सहज, निश्च्छल भाव, अटूट श्रद्धा–विश्वास तथा परम्परागत प्रचलन के अनुसार अपने स्वाभाविक हित–साधना, सर्वतोभावेन मंगल–कामना तथा सर्व–विधि उत्थान–भावना से धार्मिक अनुष्ठानों में प्रवृत होते हैं।

लोक साहित्य की सशक्त तथा जनप्रिय विधा लोकगीत अपनी धार्मिक भावनाओं में ओतप्रोत होते हैं । लोकगीतों में धार्मिक भावनाओं के प्रायः सभी आलम्बन–उपादान अपनी पूर्णता के साथ उपस्थित होते हैं। राम–सीता, शिव–पार्वती, कृष्ण–राधा, हनुमान, सूर्य, शीतला, दुर्गा, गंगा, तुलसी, लोकदेवता, ग्रामदेवता तथा कुल देवता आदि देवी–देवताओं के भक्तिपरक, धार्मिक भावना तथा मंगल कामना से परिपूर्ण लोकगीत अपनी अनन्यतम छटा बिखेरते समाज में अहर्निशि दिखाई एवं सुनाई पड़ते हैं।[1] इन समस्त

दशमी को विजय एकादशी को व्रत करें, द्वादशी को वामन की पूजा कराते हैं।
त्रयोदशी को दिन–रात्रि जल चढ़ै शंकर पै, चतुर्दशी को अनन्त सूत्र हाथ में बंधाते हैं।
पूर्णिमा को दान–पुण्य अमावस्या को दीपदान हिन्दुओं के दिन कब रोने को आते हैं।
– एक अज्ञात कवि की रचना।

1. लोक प्रसिद्ध देवी–देवताओं से संबंधित बुन्देली लोकगीतों के उदाहरण –

(क) सीताराम – भजन करो सिया रघवर के रे।
सिया रघवर के ऐसी देहरा तें मिलहे बारम्बार रे।
– डॉ० मोती लाल चौरसिया : 'बु० लो० सा०का सां० अ०', पृ० 65

(ख) शिव – सपरबे कों कासी जू बना दई
कासी जूं बना दई दरसन कौ बना दये भोले नाथ रे।
– वही पृ० 65

(ग) कृष्ण – सखी री मैं तो भई नै बिरज की मोर।
काहां रहती काहा चुनती काना करत किलोल।
– शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बु० लो० गी०', पृ० 161

देवी–देवताओं लोकमानस, अपनी दैहिक, दैविक, भौतिक त्रय तापों से मुक्ति तथा परिवार समाज एवं लोककल्याण की मंगल कामना की याचना करता है। पुत्राभाव से पीड़ित वन्ध्या स्त्री जालपा माता से पुत्र की भीख मांगती दिखती है।[1] इस प्रकार जितने धार्मिक अनुष्ठान, पर्व–त्योहार, पूजा–उपासना, व्रत–उपवास आदि लोक में प्रचलित हैं, उन सभी से संबंधित लोकगीत भी समाज में दिखाई पड़ते हैं। समाहारतः इन धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा–अर्चनाओं में गाये जाने वाले ये लोकगीत और कुछ नहीं, वरन् लोकमानस से सिद्ध वे लोक–मंत्र हैं, जिन्हें लोकसमाज अपने आराध्य को अनुकूल करने के लिए झूमझूम कर गाता है। इस तरह धार्मिक भावनाओं ने नये–नये गीतों की उद्‌भावना में अपना अप्रतिम योगदान किया है।

(घ) हनुमान – तैने मोरो दूध लजायो पवन सुत, तैने मोरो दूध लजायो।
होतऊं सें सूरज खों लीलो, लाला जगकर डारो अंधयारो।

(च) दुर्गा – जगतारन आ गई मोरे पाहुनी हो माय।
हिंग लाजन आ गई मोरे पाहुनी हो माय।

– डॉ0 मोती लाल चौरसिया : 'बु0लो0गी0को0सां0अ0', पृ0 67

(छ) भैरों – छबीले भैरों लाल हो, दरस की हो–ओ ... ओ...।

– शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बु0लो0गीत', पृ0 170

(ज) हरदौल लाला – नजरियों के सामने तुम हरदम लाला रहियो

– डॉ0 मोती लाल चौरसिया : 'बु0लो0का0सां0अ0', पृ0 56

(झ) तुलसी – तुलसी महारानी नवो नवो
इन तुलसा ने कौन तप कीनें, सालिग राम भई नवो नवो।
– डॉ0 मोती लाल चौरसिया : 'बु0लो0गी0का0सां0अ0', पृ0 71

1. घरई के राजा मोहे बांझ कहत हैं, जो दुख सहो न जाय हो माय।
देवी जालपा पूजा में बैठी, तिरिया ठाड़ी द्वार हो माय।

– वही पृ0 63

(द) राजनीतिक परिस्थितियां :–

आदि–मानव ने तत्कालीन स्थितियों परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिये समूहबद्धता की आवश्यकता को महसूस किया। धीरे–धीरे उसमें सामाजिकता के महत्व की अनुभूति तथा आवश्यकता की प्रतीति हुई। कबीलों का उदय हुआ। कबीले का प्रधान, सरदार या मुखिया होता था जिसका दायित्व अपने कबीले की दूसरे कबीलों से रक्षा, जीवन की सुविधाएं तथा व्यवस्थित जीवन–यापन की व्यवस्था करना होता था। इसे प्राप्त करने के लिये, उसे अपने कबीले के लिये कुछ नियम–कानून तथा अनुशासन की आवश्यकता महसूस हुई। आज के राज्य, राजनीति तथा राजाज्ञा की यही प्रारम्भिक अवस्था थी। मनुष्य में ज्यों–ज्यों सभ्यता का विकास होता गया उसमें अनुशासन की भावना त्यों–त्यों प्रबल होती गई और इस समूहबद्ध नियम– अनुशासन पर वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा स्वच्छन्दता को त्यागता गया। मनुष्य की अनेक भावनाओं तथा प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति एवं निष्ठा विभिन्न संघों में होती है। ये सभी संगठन एवं संघ स्वयं निर्धारित नियमों के नियंत्रण में रहते हैं। राज्य भी एक संगठन है जिसके अन्तर्गत मनुष्य की सुरक्षा, संरक्षा, सुव्यवस्था तथा सुशासन का संचालन होता है। राज्य व्यक्ति विशेष के हितों के लिये नहीं, वरन् समस्त जनसमुदाय के हितों के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है। राज्य के बिना सुरक्षा शान्ति तथा प्रगति के नये आयामों की कल्पना करना बेमानी होगी।

राजनीतिक परिस्थितियां राज्य में निलसित जनसमुदाय को पूर्णरूपेण प्रभावित करती हैं। जैसा राजा तथा उसके राज्य संचालन की जैसी नीति तथा व्यवस्था होती है तद्नुरूप प्रभाव वहां की जनता पर पड़ता है। जैसा राजा वैसी प्रजा। यही कारण है कि प्रत्येक राज्य की जनता ने अपनी तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की भावाभिव्यक्ति की है। विश्व के सभी देशों में समय–समय पर राजनीति आन्दोलन चलते रहे हैं, उथल–पुथल होती रही है, सत्ता बदलती रही है, नियम–कानून बनते बिगड़ते रहे हैं, जनता प्रभावित होती रही है और समाजचेत्ताओं द्वारा तज्जन्य प्रभावाभिव्यक्ति होती रही है। इन राजनीतिक परिस्थितियों ने लोकगायकों के मन–मस्तिष्क को प्रभावित किया है और उसकी भावाभिव्यक्ति तत्कालीन लोकगीतों में स्पष्ट दिखाई देती है। इन गीतों तथा गाथाओं में इतिहास की झाँकियां तथा झलकियां दृष्टिगोचर होती हैं। लोकगीतों में इतिहास भाव रूप में अन्तर्भूत रहता है। इस संबंध में डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय का यह कहना अत्यन्त महत्वपूर्ण

तथा समीचीन है – "लोकसाहित्य में इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है जिनके सम्यक् अध्ययन तथा अनुसंधान से हमारा ऐतिहासिक भण्डार भरा जा सकता है। लोकगीतों तथा गाथाओं में स्थानीय इतिहास का पुट बड़ा गहरा है जिनके उद्घाटन से हमारे विलुप्त तथा विस्मृत इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ सकता है तथा बिखरी हुई इतिहास की अनेक कड़ियां जोड़ी जा सकती हैं।"[1]

राजनीतिक दृष्टि से भारत का मध्यकाल अत्यन्त अस्थिर तथा अराजकता पूर्ण रहा है। इसे पठानों–मुगलों के निरंतर आक्रमणों तथा तज्जन्य प्रभावों एवं कठिनाइयों को झेलना तथा सहना पड़ा है। पठानों–मुगलों द्वारा भारत को पददलित करना, यहां के ऐश्वर्य को लूटना तथा अपने अमानुषिक अत्याचार से जनता को आतंकित करना, इतिहास प्रसिद्ध है। तत्कालीन अनेक गीतों में इसका सटीक वर्णन मिलता है। ऐसी ही एक लड़ाई का चित्रण, जिसमें राजा जगत सिंह का मुगलों–पठानों की विशाल सेना से लोहा लेने का वर्णन है, आल्हा गायकों द्वारा किया जाता है।[2] इसी प्रकार जौनपुर जनपदान्तर्गत कोइरीपुर–चॉदा नामक गांव में सन् 1857 के सिपाही विद्रोह के अवसर पर अंग्रेजी फौज के साथ प्रतापगढ़ जिले के कालाकांकर के विशेनवंशी राजा के साथ दुघर्ष–संघर्ष हुआ था। आज भी यहां की जनता में उस समय के युद्ध के गीत बड़े चाव से गाये जाते हैं जिसमें राजा की वीरता तथा उनके रण–कौशल का बहुत ही सुन्दर एवं सटीक वर्णन हुआ है।[3]

बुन्देलखण्ड की मॉटी अपनी वीरता की सोंधी गन्ध के लिये प्रसिद्ध है। आल्हा–ऊदल, विराटा की पादिमनी, वीर सिंह जू देव,रानी दुर्गावती, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, छत्रसाल, लाला हरदौल, मर्दन सिंह, जगतसिंह आदि की वीरता, शौर्य, पराक्रम

---

1. *डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक–साहित्य की भूमिका', पृ0 298*

2. *"इक लख चढ़ो मुगलवा रे, दो लख पठान, तिन लख चढ़ो तुरकिया, दिल्ली सुलतान। राजा जगत रन खौं चढ़ै हो माव। चिट्ठी भेजी मुगल नें रे जगदेव दरबार के तो राज करो खाली, न लेव लड़ाई, राजा जगत रन खौं चढ़ै हो मां।"*

3. *"काले कांकर क बिसेनवा, चांदे गाड़े बा निसनवा।"*
   – पं0 रामनरेश त्रिपाठी : 'क0कौ0' (भाग–5) पृ0 97

की गाथाओं से यहां का लोकसाहित्य गौरवान्वित तथा समृद्ध है। बुन्देली लोकगीतों में लाला हरदौल की तीक्ष्ण–तलवार की चर्चा सदैव होती है। बुन्देली नारियों ने प्रसन्नतापूर्वक उत्साहवर्द्धन करते हुए अपने भाई, पति, तथा पुत्रों को लड़ाई के मैदान में भेजा है। लोकगीतों में इन वीरांगना नारियों के अदम्य उत्साह, त्याग, बलिदान के साथ ही रण–बांकुरे वीर–सपूतों के शौर्य, पराक्रम, वीरत्व तथा देश–जाति की अस्मिता–रक्षा की जिगीषा की प्रशंसा उन्मुक्त कंठ से की गई है। एक बहन ने दूध पिलाकर अपने भाई को मुगलों से लड़ने के लिए भेजा है।[1] दूध पिलाकर रण–क्षेत्र में भाई को भेजना बुन्देलखण्ड का अपना गौरव है। एक 'पुंआरा' में राजा जगत्देव और मुसलमानों के बीच के युद्ध का वर्णन है जिसमें लोकगायक द्वारा राजा जगत्देव का देवी के माध्यम तथा आशीर्वाद से विजयी होना बार–बार वर्णित होता है।[2]

वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई का देश की स्वतंत्रता–स्वाधीनता के लिये किया गया आत्मोत्सर्ग इतिहास ग्रन्थों में स्वर्णाक्षरों तथा देश की जनता के मानस–पटल पर शौर्याक्षरों में अंकित है। महारानी की वीरता से संबंधित वीरत्व, देशभक्ति तथा क्रान्ति की चिनगारी को प्रज्जवलित करने वाला बुन्देली लोकगीत अपने आन–बान–शान के लिये विश्व–विश्रुत है।[3] राजनीति विषयक् प्रत्येक आन्दोलनकारी तथा क्रांतिकारी घटना ने लोक गायकों को प्रभावित किया है 1857 में अंगेजों ने अवध नवाब वाजिद अली शाह से उनकी

---

1. *"छोटी–मोटी दोहनी दूधो भरी, बिना आगी बाफ ले, सुनो भैय्या वीरन।*
   जोंई दूध पियो भया मोरे, लड़ो मुगलों के साथ, बलैया ले लऊँ वीर की"।
   – डॉ0 विनोद तिवारी : 'लो0गी0कातुल0अध्य0', पृ0 6

2. *"राजा जगत के मामले हो मां*
   ये अरे कौन लगाये तोरे आम नीम महुआ गुलझार"।
   – बलभद्र तिवारी : 'बु0 लो0का0', (भाग–1) पृ0 68

3. *"खूबई लरी मरदानी, अरे भई झाँसी वारी रानी*
   सिगरे सिपइयन खों पेरा जलेबी, आपन खाई गुरधानी। अरे भई ...
   बुरजन बुरजन तोपें लगैं दईं, गोला चलाय आसमानी"।
   – मोती लाल त्रिपाठी 'अशांत' : 'बुन्देल खण्ड दर्शन', पृ0 429

अवध की गद्दी छीनकर लखनऊ से निर्वासित कर दिया था। उनकी बेगमों पर अमानुषिक अत्याचार किया था। शोकाकुल बेगमों की करूण चीत्कार से प्रभावित होकर लोकगायकों ने तत्संबंधी अनेक लोकगीतों की रचनाएं की हैं।[1]

स्वतंत्र भारत ने अपने पड़ोसी चीन तथा पाकिस्तान से अब तक तीन लड़ाइयां लड़ी है। सन् 1962 में चीन ने मित्रता की आड में हमारे ऊपर हमला कर दिया था जिसकी अभिव्यक्ति लोक कवि ने "मति भभक चीन बुतइब तू" द्वारा की। सन् 1965 में पाकिस्तान ने अपराजेय समझे जाने वाले अमेरिकी हथियारों के नाज में भरत पर आक्रमण कर दिया था। स्व. लाल बहादुर शास्त्री के नेतृत्व में भारतीय जवानों ने उसके पैंटनटैंक तथा सेवरजेट को धूलधूसरित कर दिया तथा पाकिस्तानियों को खदेड़ते हुए वे लाहौर तक पहुंच गये थे। शान्तिवार्ता हेतु गये भारतीय वीर सपूत शास्त्री जी का ताशकंद में निधन हो गया।[2] पुनः सनः 1972 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर

---

1. *"गलियन गलियन रैयत रोवे, हटियन बनिया बजाज रे।*
महल में बैठी बेगम रोवैं, डेहरी पर रोवै खवास रे।
मोती महल की बैठक छूटी, छूटी है मीना बजार रे।
बाग जमनियां की सैरैं छूटी, छूटे मुलुक हमार रे।
जो मैं ऐसी जानती, मिलती लाट से जाय रे।
हा हा करती, पैंया परती, लेती सइयां छोड़ाय रे।
– डॉ0 कृष्ण देव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका', पृ0 302,

2. *हमरे बलमुवा बाड़े, सीमा के पहरुआ पतिया भेजेला*
पतिया में रन के बेयान, पतिया ...
पैंटन टैंक सेवरजेट, मारि के गिरवली, पतिया ...
जे पर रहे अमेरिका के नाज, पतिया ......
नहर इछोगिल के, पार कइले बानी, पतिया .....
लवलीं लाहौर पर निसान, पतिया ....
तासकंद बारता में, सास्त्री जी के खोवलीं, पतियां ....
जेकर बिना सूना सब जहान, पतिया भेजेला।
– डॉ0 के0 तिवारी, रीडर – हिन्दी विभाग, ए0सी0कालेज, बलिया से प्राप्त।

दिया। स्व. श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में भारतीय रण–बांकुरों ने उसे मुंह तोड़ जवाब दिया। श्रीमती गांधी के आह्वान पर देश की ललनाओं ने सोना–चांदीं ही नहीं अपितु अपने सौभाग्य चिन्ह मंगल–सूत्र तक राष्ट्रीय कोष में सहर्ष दान दे दिये थे।[1] इन लड़ाइयों का अत्यन्त भावपूर्ण, शौर्य, वीरता तथा देश भक्ति से पूर्ण स्वाभाविक एवं सटीक चित्रण लोकगीतों मे देखने को मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्वतः सिद्ध है कि राजनीतिक परिस्थितियों ने लोकसाहित्य के श्रीवृद्धि में अपना अमूल्य योगदान तथा गीतों के नवसृजन में लोककलाकारों के लिये प्रेरक पृष्ठभूमि का कार्य किया है।

(ग) लोकगीत : लक्षण, विंशेषता तथा महत्व

लोकगीतों के लक्षंण तथा विशेषताओं के सम्बन्ध में अनेक लोकसाहित्य मर्मज्ञं मनीषियों ने विचार किया है सन् 1853–54 में फ्रेंच विद्वान मोशिये आंयरे ने लोकगीतों के निम्नलिखित प्रमुख लक्षणों को गिनाया था –

(1) अन्त्यानुप्रास के स्थान पर ध्वनिसाम्य का प्रयोग ।

(2) पुनरूक्ति (कथोपकथन में)

(3) तीन, पांच, सात आदि संख्याओं का बार–बार प्रयोग।

(4) दैनिक व्यवहार की वस्तुओं को सोने–रूपे की कहना।[2]

---

1. *देसवा जो हाई बेपानी, का करी रहि के जवानी*
जवानी–जवानी, जवानी–जिन्दगानी देसवा ....
सुन कासमीर हमरा धरती के जान ह, हमनी के बाबा दादी सब कर परान ह
ए पर लुटा द सोना–चानी, सोना–चानी, देसवा ....
अइसन पकिस्तानियन के मजवा चिखा द, काटि मूड़ि सिब जी के हरवा पिन्हा द
तबे तू कहइबा हिन्दुस्तानी–हिन्दुस्तानी, देसवा ....
– डॉ0 के0 तिवारी, रीडर–हिन्दी विभाग , सतीश चन्द्र कालेज बलिया से प्राप्त।

2. *डॉ0 श्याम परमार : 'भारतीय लोक साहित्य', पृ0 59 से उदधृत।*

लोकगीतों के लक्षण तथा उपलक्षण पर विचार करते हुये डॉ० तेजनारायण लाल ने लिखा है –

(1) लोकगीत का कोई विशेष गीतकार नहीं होता। वह सामूहिक रचना होती है। जब तक कोई रचना लिपिबद्ध नहीं होती तब तक लेखक का महत्व नहीं होता है और वह रचना परिवर्तित होती रहती है।

(2) लोकगीत का कोई परिणित स्वरूप नहीं है। कविता की भांति वह ज्यों का त्यों नहीं रहता, बल्कि बदलता रहता है।

(3) प्रत्येक लोकगीत का ठीक रचना काल मालूम नहीं हो पाता है, बाद में पद भी उसमें जुड़ जाते हैं।

(4) लोकगीतों का मौलिक प्रचार ही अधिकतर होता है। सम्भवतः वेद को लिखकर पढ़ते तो स्वरभंग हो जाता और अर्थभंग भी। इसी से उसे 'श्रुति' कहते हैं। वेदों और लोकगीतों में यह बड़ी समानता है। वेद भी लिखित नहीं आया और न लोकगीत ही।

(5) लोकगीतों की शैली सहज होती है। सभी लोकगीत गाने योग्य होते हैं। कविता भी गेय होती है, लेकिन उसमें गेयता का तत्व प्रधान और अनिवार्य नहीं है। एक व्यक्ति उसे गा सकता है, लेकिन समूहिक रूप से जब उसे गाते हैं तो गेयता का निर्वाह करना कठिन हो जाता है।

लोकगीतों के उपलक्षण :–

(1) आशुरचना : लोकगीतों की रचना अति भावावेग में होती है। अपने आप मुँह से स्वर–लहरी फूट पड़ती है। जो गाया वही गीत बन गया।

(2) पुनरावृत्ति : लोकगीतों में कहीं न कहीं एक टेक होती है। एक पंक्ति जो पहले आती है वह प्रायः प्रत्येक कड़ी में दुहरायी जाती है।

(3) परिचित वस्तुओ का प्रयोग : तत्कालीन समाज में जिस विषय को प्रत्येक व्यक्ति

जानता है उसका ही विशेष उल्लेख लोकगीतों में होता है।[1]

लोकगीतों की सर्वग्राहिता एवं लोकप्रियता का मुख्य कारण उसमें लोक जीवन की सम्पूर्ण संवेदना तथा निष्कपट अनुभूतियों की सरल व स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें कविता के भाव व उसकी धुन में एक समानता होती है जिसके कारण ये गीत हृदय को छू लेते हैं। "लोकगीतों के भी शास्त्रीय गीतों की भांति दो अंग होते हैं — कविता और धुन अथवा शब्द और स्वर। गीत की रचना तीन प्रणालियों से हो सकती है। कुछ रचयिता पहले धुन बनाकर उस पर शब्द बैठाते हैं। कुछ पहले कविता बनाते हैं और फिर उसे संगीत देते हैं। तीसरे प्रकार के रचयिता वे होते हैं जिनके हृदय से शब्द और स्वर एक साथ निकल पड़ते हैं अर्थात् जब वे किसी भाव–विशेष में निमग्न होते हैं, तब अन्तः प्रेरणा से वे अपने मुख से कविता के शब्द स्वयं गाते हुये निकालते हैं। उनसे शब्द–रचना और स्वर–रचना एक साथ होती है। उत्तम लोकगीत अधिकतर तीसरी प्रणाली से रचे गये हैं। लोकगायक मुख्यतः कवि न होकर गायक होता है। वह सुख दुख के समय अपने अनुभवों को गीतों के माध्यम से प्रकट कर देता है। ऐसे लोकगीत की कविता और धुन–दोनों में प्राण होता है, जीवन होता है। लोकगायक अपने व्यक्तित्व का और अपने समाज के व्यक्तित्व का मानसिक चित्र खींच देता है।"[2] जार्ज सैपंसन के मतानुसार लोकगीत में स्वरों और शब्दों का ऐसा गत्यात्मक संयमन होता है जो गीत को छन्दोबद्ध करके नृत्य की ताल और लय के अनुकूल बना देता है।[3] "लोकगीतों की ये विशेषता है कि वे संक्षिप्त, सरल, स्पष्ट, स्वाभाविक, सुन्दर, अनुभूतिमय और संगीतमय होते हैं। कदाचित् ही ऐसा कोई लोकगीत हो, जो संगीत से अनुप्राणित न हो। उसका संगीत भी लोकजीवन का उतना ही सफल परिचायक होता

---

1. *डॉ0 कुन्दन लाल उप्रेती : 'लोक साहित्य के प्रतिमान', पृ0 47–48 से उद्धृत*
2. *'संगीत' : लोक संगीत अंक, जनवरी 1966 पृ0 46*
3. *The Characteristics of Folksongs are as to substance repetitions, inter jeetion and reference as to from a verse accommodated to dame.*

   - C. Sampans Cambridge History of English Literature Page 106

है जितनी उसकी कविता।"[1] इस प्रकार लोकगीतों की कुछ सार्वभौम तथा सामान्य प्रवृत्तियां होती हैं। लोकगीतों की विशेषताओं पर विचार करते हुए डॉ0 यदुनाथ सरकार ने लिखा है – "प्रबन्ध की द्रुतगति, शब्द–विन्यास की सादगी, विश्व–व्यापक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आदिम मनोराग, सूक्ष्म किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र–चित्रण, क्रीड़ास्थली अथवा देशकाल का स्थूल अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार–सच्चे लोकगीत की ये नितांत आवश्यक विशेषताऐं हैं।"[2] डॉ0 श्याम परमार ने लोकगीतों की विशेषताओं को गिनाते हुए कहा है– "लोकगीत निर्वैयक्तिक हैं। उन्हें समूह द्वारा निर्मित माना जाता है, इसलिये व्यक्तित्व का अभाव और समूह अथवा जातीय विशेषताओं के लक्षण उनमें मिलते हैं । संक्षेपतः – (1) अकृत्रिमता, (2) सामूहिक भावभूमि, (3) परम्परात्मकता तथा मौखिक परम्परा के गुण, (4) रूढ़ अतिशयोक्ति, (5) संगीतात्मकता आदि गीतों की विशेषताएं हैं।"[3] लोकगीतों के लक्षणों, उपलक्षणों तथा विशेषताओं के सम्बन्ध में डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय का मत है –

(1) लोकगीतों में मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं एवं विभिन्न राग–वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है।

(2) भावों को प्रकट करने के लिये वाणी का जो आश्रय लिया जाता है, वह लयात्मक होता है।

(3) गान में सामूहिक प्रवृत्ति अधिक व्यापक है।

---

1. *'संगीत' लोक संगीत अंक जनवरी 1966 पृ0 47*

2. *"Rapidity of movement, simplicity of diction, Primary emotions of universal, appeal action rather then sulotle analysis, Broad striking, characterization, thumb-nail sketches of background and the sparest use (or rather complete avoidance) of literary artifices-these are the essential requisites of the true ballad."*

   – डॉ0 विद्या चौहान : 'लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', पृ0 90 से उद्धृत

3. *डॉ0 श्याम परमार : 'मालवी लोक साहित्य', पृ0 33*

(4) लोकगीतों का रचयिता अज्ञात होता है, व्यक्ति–विशेष की रचनाएं भी सामूहिक भावनाओं में ढलकर सामान्य हो जाती हैं।

(5) लोकगीतों में मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं।

(6) लोकगीतों से मनोरंजन भी होता है।[1]

लोकगीतों की अन्यान्य विद्वानों द्वारा विचारित विशेषताओं का समाहार तथा कतिपय नयी विशेषताओं की उद्भावना करते हुए डॉ० मोहन लाल बाबुलकर ने इनकी विशेषताओं को बढ़ाकर 21 तक पहुंचा दिया है तथा विभिन्न विचारकों द्वारा दी गई लोकगीतों की विशेषताओं को उनके नाम के सम्मुख नामित कर अपनी ईमानदारी तथा पूरी जिम्मेदारी का परिचय भी दिया है। डॉ० बाबुलकर ने लोकगीतों की निम्नलिखित विशेषताएं बताई है –

1. गीत मौखिक परम्परा से सिंचित निधियां हैं।
2. ये अपौरूषेय (वेदों के रूढ़िवादी अर्थ में) हैं।
3. इनमें नाम और यश की लालसा नहीं मिलती है।
4. ये बनते और बिगड़ते हैं।
5. इसलिये इनकी मौलिक प्रति अप्राप्त है।
6. गीतों में संगीत ओर गेयता होती है।
7. इनमें लम्बे–चौड़े कथानकों का अभाव होता है।
8. देशकाल की सीमा का बन्धन उनके साथ नहीं होता हैं।
9. ये अपौरूषेय (यानी पुरूष द्वारा नहीं, स्त्रियों द्वार रचित) काव्य है।
10. इनमें जीवन के अभाव व्यक्त होते हैं, अंकित नहीं।
11. इनमें मानव संस्कृति का सारल्य और भावों का व्यापक उभार होता है।
12. इनके स्वरूप में देश की प्रकृति और संस्कृति अपने रूप का बखान करती हैं।
13. कृत्रिमता के अभाव में लोक की ये स्वाभाविक सजावट रहित अभिव्यक्तियां हैं।
14. इनकी भाषा लोक की बोली है, छन्दोबद्ध काव्य की भाषा नहीं।
15. यह शहरी वातावरण से दूर हैं। इनमें ग्राम्यांचल की प्रकृति, वातावरण,

---

1. *डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय : 'मालवी लोकगीत, एक विवेचनात्मक अध्ययन', पृ0 9*

लोकगीतों की सामान्यतः निम्नलिखित विशेषताएं हैं :–

निर्वैयक्तिकता :–

लोकगीत व्यक्ति की रचना न होकर समूह की रचना होती है। इसलिये इसमें वैयक्तिकता या निजीपन का अभाव होता है। "लोकगीतों के रचनाकार अज्ञात स्त्री तथा पुरूष हैं।"[1] कोई भी रचना नामित तब होती है जब वह लिखित तथा व्यक्ति–विशेष की हो। लोकगीत तो लोककण्ठ की संपत्ति हैं। कोई एक पंक्ति (कड़ी) शुरू करता है तो दूसरा, दूसरी। इस प्रकार ये बराबर बनते, बिगड़ते सजते तथा संवरते रहते हैं, इनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संवर्द्धन अवश्यंभावी है। अतः ये जातीय सृष्टि हैं। इनके सृजन में व्यक्ति का नहीं, वरन् समूह का सहयोग रहता है। आत्मश्लाघा से दूर, अपनी भावभूमि में पूर्ण तथा हृदयगत संवेदनाओं से उद्वेलित लोक–रचनाकारों को यह ध्यान कहां कि वे रचना को अपने नाम से नामित करें। इस संदर्भ में राबर्ट ग्रेम्स का मत है कि वर्तमान सामाजिक संगठन में किसी लेखक का अपनी कृति में नाम न देने का अभिप्राय अपनी रचना के प्रति लज्जा–भाव अथवा नाम न देने में किसी प्रकार का भय या आशंका हो सकती है, परन्तु आदिम समाज में यह बात लेखक के नाम की असावधानी के कारण होती थी। सामूहिक तथा जातीय रचनाओं में समूह का महत्व होता है, किसी व्यक्ति–विशेष का नहीं। जिस प्रकार छोटे–छोटे बच्चे, छोटे–छोटे गीत बनाते, गुनगुनाते और गाते जाते हैं परन्तु इनमें से कोई भी एक बालक गीत का रचयिता होने का दावा नहीं करता और न यह याद रखता है कि उस गीत में कौन–से बालक ने कौन–सी कड़ी जोड़ी है, उसी प्रकार जातीय रचना में व्यक्ति–विशेष की महत्ता नहीं होती, रचयिता का श्रेय समूह को प्राप्त होता है।[2] ये गीत सहज, सरल, प्रकृतितः जीवन व्यतीत करने वाले लोगों के

---

1. *पं० रामनरेश त्रिपाठी : 'ग्राम गीत' पृ० 21*

2. *Anonymity in the present structure of society usually implies that the author is ashamed of his authorship are afraid of the consequences if he reveals himself; but in a primitive society is due just to carelessness of the author's name ----- The ballad is important, the group is important, but the individual couts for little. Rudimentary, balladry is common among*

निश्चछल भावोल्लास हैं, जो बनावट से दूर, प्रेम–सौहार्द से पूर्ण होते हैं। पं0 रामनरेश त्रिपाठी का यह कहना अत्यन्त समीचीन हैं– "ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है! छन्द नहीं, केवल लय है!! लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है!!! ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री–पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्रामगीत हैं।"[1]

मौखिक प्रवृत्ति :–

लोकगीत मौखिक परम्परा के रूप में आदिकाल से सतत् प्रवहमान् हैं। सच बात तो यह है कि हमारा भारतीय साहित्य तथा वाङ.मय आरम्भ काल में मौखिक ही था। वेद, श्रुति, स्मृति सभी मौखिक ही थे तथा गुरू–शिष्य परम्परा में ये अनवरत गतिमान रहे हैं। लोक साहित्य भी उसी प्रकार मौखिक परम्परा का साहित्य है और यह समाज के मन–मस्तिष्क में वास करता है तथा लोककंठ में जीवित रहता है। लिपिबद्ध कर देने पर इसका सतत् प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है तथा इसका निजीपन समाप्त हो जाता है। इस पर विचार करते हुए प्रसिद्ध विद्वान सिजविक ने लिखा है कि लोक–साहित्य को लिपिबद्ध करना उसकी हत्या में सहायता देना है। जब तक यह मौखिक है तभी उसमें जीवनी शक्ति है, अन्यथा नहीं।[2] प्रोफेसर गूमर ने मौखिक परम्परा को लोकगीतों तथा गाथाओं की वास्तविक कसौटी माना है।[3] किटरेज का यह मत सत्य है कि लिपिबद्ध

---

group of small children and it will be noticed that no child will claim authorship of the sing song; no one remembers who added which phrases to the common store.

- Robert Gummare 'The English ballad', Introduction Page 12-13

1. *पं0 रामनरेश त्रिपाठी : 'कविता कौमुदी', (भाग–5) प्रस्तावना हा0 1–2*
2. *It lives only while it remains what the french with a charming confusion of ideas, call Orall literature.*

   - Frank Sidzwick : 'The Ballad' P. 29
3. *These are the cordinal virtues of the ballad; with respect to its conditions, critics unite in regarding oral transmission as its chief availble test.*

   - F. B. Gummare : 'Old English Ballad', P. 29

लोकगाथाएं तथा गीत लोक की संपत्ति न रहकर साहित्य की संपत्ति हो जाती हैं।[1] डॉ० वैरियर एलविन के मतानुसार गीतों को लिपि की श्रृंखला में बद्ध करना उनके स्वाभाविक विकास को नष्ट करना है। अतः लोक–साहित्य प्रेमी इनका संग्रह करके एक प्रकार का अपकार कर रहे हैं।[2] परिणामस्वरूप लोकगीतों की मौखिक परम्परा का अक्षुण्ण प्रवाह ही उसकी जीवनीशक्ति है।

लयात्मकता :–

लयात्मकता लोकगीतों का प्राण है। लोकगीतों के शब्द और अर्थ उसकी लयकारी में निहित होते हैं। लय दो प्रकार की होती है। (1) द्रुत–शीघ्रता पूर्वक गाए जाने वाले गीतों में द्रुत लय प्रयुक्त होती है। बुन्देलखण्ड में सैरा नृत्य–गीत के अन्त में लय बढ़ाकर 'पाई' गाते है। पाई अति द्रुत लय में ही गाई जाती है। (2) विलम्बित–मंद गति से गाए जाने वाले गीत विलम्बित लय पर आधारित होते हैं। 'राछरे' प्रायः विलम्बित लय में गाए जाते हैं।[3] लोकगीतों में स्वर और शब्द परस्पर गुंथे रहते हैं और इस प्रक्रिया में अवसरानुकूल अथवा प्रकृत्यानुकूल कहीं स्वर की प्रधानता रहती है, कहीं शब्द की। प्रश्न यह है कि लोकगीत स्वर प्रधान होता है या शब्द प्रधान। तभी कैन्नेथ रिचमण्ड को यह लिखना पड़ा – "शब्द या स्वर–सभी लोकगीतों में सामान्यतः यह बात मिलती है कि शब्द गौण होते हैं लय (ट्यून्स) से, और इसी कारण कभी–कभी यह कहा जाता है कि यह लय ही है जिसका सर्वापेक्षा अधिक महत्व था....... लोकगायक के लिए गीत का सम्पूर्ण अर्थ आवेग से है उसमें जनक–जन्य भाव भी माना जा सकता है, और उससे भी, अधिक उन्हें सहजात कहा जा सकता हैं। एक के साथ दूसरा स्वयं ही प्रस्तुत होता है, अतः ऐसे अवसरों पर जिन पर कि आवेग प्रबल होता है लोकगीतों में नी स्वर की प्रधानता हो जाती है यहां तक कि शब्द–क्रम बिल्कुल ही लोप हो जाता है, और स्वर संगीति ही रह जाती है।[4] गांव–देहात के भोले–भाले स्त्री–पुरुषों की भावाभिव्यक्ति जब

---

1. *किटरेज : 'इंग्लिश एण्ड स्कॉटिश पापुलर बैलेड्स', इन्ट्रोडक्शन, पृ0 12*
2. *डॉ0 विद्या चौहान : 'लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि', पृ0 92 से उद्धृत।*
3. *डॉ0 सत्येन्द्र : 'लोकसाहित्य विज्ञान', पृ0 325*
4. *(क) पाई – ' बही जाऊं मोरे राजा हिलोरों में, मरी जाऊ मोरे राजा मरोंरों में'*

लय से संस्पर्श करती है तब वह हृदय को अनायास ही छू लेती है। शुष्क, नीरस, अनगढ़े या अर्थहीन शब्द भी लयकारी में सरस, रूचिकर तथा अर्थवान हो जाते है। लोकगायकों में गीतों की लयकारी करने की अद्‌भुत क्षमता होती है।

पुनरावृत्ति :–

लोकगीतों के गायन में किसी पंक्ति विशेष की पुनरावृत्ति एक महत्वपूर्ण क्रिया है। इसको 'टेक' कहते है।[1] सामान्यतया पहली या दूसरी पंक्ति प्रत्येक कड़ी में दुहराई जाती है इस पुनरावृत्ति से गीत में संगीतात्मकता बढ़ जाती है जो सुनने वाले के अन्दर हर्ष, उल्लास तथा आनन्द का संचार करती है। प्रसिद्ध विद्वान सिजविक के अनुसार 'टेक' पद–गीत तथा गाथाओं की एक दूसरी विशेषता है जिससे पता चलता है कि ये गीत सामूहिक रूप से पहले गाये जाते थे। गाने वाला जब गीत की एक कड़ी गाता है तब समुदाय के अन्य लोग मिलकर टेक पद की आवृत्ति करते हैं। कीट्रिज ने इन्हें लोकगीतों तथा गाथाओं की मुख्य विशेषता बताई है।[2] ये टेक पद कुछ तो सार्थक होते हैं तथा कुछ निरर्थक। लोकगीतों में टेक पद प्रायः प्रत्येक पंक्ति में, दो तीन पंक्तियों के बाद तथा पूरे पद के बाद आते हैं, साथ ही ये एक दो शब्द के, एक अर्द्धाली के अथवा

---

4. *(ख) राछरे– 'सबरे उरगिया उरई गए भैया हमई उरई खों जायं भैया भली है उरई की चाकरी'*

   – बलभद्र तिवारी, 'बुन्देली लोक काव्य', भाग–3 , पृ0 245, 788

1- *The refrain is another peculiarity, of the papular ballad that establishes its derivation from the choral song. "The rest shall bear this burden." The singers Monotone is regularly relieved by the audience joining in with a repeated phrase.*

   - Frank sidgwick : 'The ballad.' P. 27

2. *What is meant is, rather that there is abundant evidence for regarding the refrain in general as a characteristic feature of ballad poetry.*

   - 'English and seoltish popular ballad.'s' Introduction P. 2

पूरी पंक्ति के होते है।[1]

निरर्थक शब्द योजना :–

लोकगीतों में लय योजना को पूर्ण करने के लिये कभी–कभी गायक ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जिसका उस गीत से कोई तादात्म्य नहीं होता है। कविता की भांति लोकगीतों की रचना नहीं होती। अतः उसके समान गीतों में तुकबन्दी भी नहीं होती। लोकगीतकार स्वतंत्र रूप से गीत को लयात्मक बनाने के लिये कभी–कभी अर्थहीन शब्दों का प्रयोग करता है।[2]

प्रश्नोत्तर शैली :–

लोकगीतों में मनोभावों की अभिव्यक्ति प्रश्नोत्तर शैली में होती है। गायक या समूह गीत के माध्यम से कोई प्रश्न करता है दूसरा व्यक्ति या समूह, गीत द्वारा उसका उत्तर देता है। प्रश्न और उत्तर शैली से गीतों में रोचकता तथा सुनने वाले में जिज्ञासा का भाव जागृत होता है। मिर्ज़ापुर की कजली तथा बनारस का बिरहा इस शैली के ज्वलंत उदाहरण है।[3]

1.क– *हरे रामा उठी घटा घनघोर बदरिया कारी रे हारी,*
कौना दिशा से उठी बदरिया कहाँ बरस गए मेह बदरिया कारी रे हारी,
पूरब दिशा से उठी बदरिया पश्चिम बरस गए मेह, बदरिया कारी रे हारी।
-- डॉ0 मोती लाल चौरसिया, 'बु0लो0का0सां0अ0', पृ0 61

ख– *ढीमर कक्का ने डार दओ जाल, बींद गई जल मछरी*
मौड़ी मौड़ा के खुल गए भाग, बींद गई जल मछरी

2. *बरस जा दो बुंदिया रे ....ए....ए*
दो बुंदियां रे मोरे कंता घरई रह जांय, बरस जा हो ... ओ ....ओ
इसमें रे...ए....ए तथा हो...ओ...ओ आदि निरर्थक शब्द हैं, इनका प्रयोग केवल लय–संतुलन के लिए किया गया है।

3. प्रश्न –
सरग तरैयें रे कौनें गिनीं, कौनें मूंड़ के बार।

वस्तुनाम गणना :—

लोकगीतों में वस्तुओं, स्थानों, संबंधियों, आभूषणों तथा मेवा—मिष्टान्नों आदि के नामों की गणना होती है। लोक गीतों की यह विशेषता परम्परागत है। इन गणनाओं से क्षेत्रीय विशेषताओं की जानकारी सहज ही प्राप्त हो जाती है। क्षेत्र—विशेष के गीतों में वहां की प्रसिद्ध तथा बहुप्रचलित वस्तुओं की परिगणना का समावेश होता है।[1]

संख्याओं का प्रयोग :—

लोकगीतों में संख्यापरक शब्दों का प्रयोग होता है। प्रायः तीन, पांच, सात, आठ, नौ,

---

बंसा की पतियें रे, कौनें गिनीं, हिलोरो ताल।

X X X

उत्तर — *सरग तरैयें रे चंदा गिनीं, कखई मूंड़ के बार।*
बंसा की पतियें रें भौंरा गिनी, राजा राम हिलोर दयं ताल।।

— *डॉ0 मोती लाल चौरसिया : 'बु0लो0गी0का0सा0अ0', पृ0 60*

1.(क) *सिगरे सिपइयन खों पेरा जलेबी आपन खाई गुरधानी।*

— *मोती लाल त्रिपाठी : 'बुन्देलखण्ड दर्शन', पृ0 421*

(ख) *भोज्य पदार्थों से संबंधित नामों का एक नमूना।*
अम्मा की पातर बर को दोना, सोने के सींक लगाव रूच दोना।
भात जो परसो बेला कैसी कलियां, दार जो परसी मूंग मसुरिया।
इंजन बिंजन सरस निगौना, बेसन के दस बीसक दौना।
बरा जो परसे खैरे खारे अदरक लोंग मिरच दधिवारे।
पापर परसे चुररे मुररे सुगर सुबासिन रूच बेलन बेले।
माड़े जो परसी मुठी बगराई, ऊपर घी की धार लगाई।
घिया जो परसो तुरत को ताजो, सगरी सभा में जाय महकानो।
अम्मा की फांक मिरच को चूरो परसत सुगर कछू नई भूलो।
निबुआ पौल घरो ठिंग आधो, भोजन करो मनोहर माघो।

— *शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बु0लो0गी0', पृ0 119*

दस, बत्तीस, छत्तीस, छप्पन, सौ आदि संख्याओं का प्रयोग लोकगीतों में दिखाई देता है।[1]

उपदेशात्मकता :-

अधिकांश लोकगीतों के अन्त में एक उपदेश देने की प्रवृत्ति पाई जाती है।[2]

सहजता, अकृत्रिमता तथा स्वच्छन्दता :-

लोकगीतों की भावभिव्यक्ति सहज–सरस, भाषा सरल तथा शैली स्वच्छन्द होती है। कृत्रिमता से दूर, भावों से भरपूर, छन्द की कारा से मुक्त ये गीत सच्चे निश्छल ह्रदय की प्रकृतितः भावोच्छ्वास होते हैं। छोटे–बड़े, नीच–ऊंच के भाव इन गीतों को स्पर्श नहीं करते। राजा दशरथ सबके पिता है कौशिल्या माँ तथा राम सबके लाडले पुत्र। यहां सभी बराबर हैं सभी रस में सराबोर।

1.(क) "इक लख चढ़ो मुगलवा रे दो लख पठान,
तीन लख चढ़ी तुरकिया, दिल्ली सुलतान।"

(ख) "बे बंदेज डरी बेबाड़ा ओई में 'दस' दुआरे की"।

– ईसुरी पत्रिका अं0 10 मार्च, 1993 पृ0 4

(ग) पैले में बिस्नु, दूजे में बिरमा, तीजो सूत शंकर अवधूत सुन भैया।

X X X

तीजे तगा में नाग वास है चंद विराजें चौथे सूत ए भैया ।
पांचे सूत में पितर बिराजे प्रजापती है छटवें सूत ए भैया।
सातयं तंत अस्थान पवन को सूरज को है आठों सूत ए भैया ।
नमें तंत में विश्वे देवा हीरा कातें कन्या सूत ए भैया ।

– बलभद तिवारी : 'बु0लो0का0', (भाग–1) पृ0 42

2. "राखे मन पंछी ना राने, इक दिन सब खां जाने
खालो पीलो लैलो दैलो, मै ही लगै ठिकाने
कर लो धरम कछू बा दिन खां, गा दिन होत रवाने
ईसुर कहत मान लो गोरी, लगी हाट उठ जाने"।

– ईसुरी पत्रिका अंक 10 मार्च 1993

(घ) लोकगीत : भारतीय परम्परा

अखिल विश्व में लोकगीतों का उद्भव मानव–उत्स के साथ ही हुआ, माना जाता है। मानव ने वाणी का प्रथम दर्शन गीत के रूप में ही किया था, परन्तु इन गीतों का आविर्भाव कब हुआ इसके कालावधि का कोई स्पष्ट तथा निश्चित सीमांकन नहीं किया जा सकता। जनकण्ठ पर तरंगायित, अविच्छिन्न परम्परा, काल–गाल के गहन–गह्वर में इनके सुदूर अतीत को रेखांकित करती है। मानव–मन के वैविध्य तथा पारिस्थितिक परिवर्तन के सम्वाहक ये गीत उसकी सभ्यता एवं विकास के ऐतिहासिक दस्तावेज़ हैं। अतः मानव–जन्म तथा उसके विकास की यात्रा–कथा ही इन गीतों की यात्रा–कथा है।

भारत–भूमि में लोकगीतों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। हमारे अधुनोपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ 'वेद' में इनका दर्शन 'गाथा' के रूप में होता है। इन ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर गाथाओं का उल्लेख हुआ है वही आज के लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि रूप है। भारतीय प्राचीन वाग्ड.मय में संस्कारादि अवसरों पर सुन्दर कर्ण–प्रिय तथा मधुर गीतों को गाने का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में 'गाथा' शब्द गीत तथा 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग गाने वाले के अर्थ में हुआ है।[1] संस्कारादि मांगलिक अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को 'रैमी', 'नाराशंसी' तथा 'गाथा' शब्द से अभिहित किया गया है यथा –

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंशी न्योचनी।
सूर्यायाभद्रमिद्वारासो गाथीयैति परिष्कृतं।।[2]

परन्तु, 'गाथा' शब्द यहां रैमी तथा नाराशंसी से पृथक एवं विशिष्ट अर्थबोधक प्रतीत होता है। इसी प्रकार ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में 'ऋक्' तथा 'गाथा' के पार्थक्य भेद को स्पष्ट किया गया है। 'ऋक्' दैवी होती थी तथा मंत्रों के रूप में इनका प्रयोग होता

---

1. *गाथा – अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिःशीरशोचिषम्।*
– ऋग्वेद : 8/71/14
गाथिन् – इंद्रमिद् गाथिनो बृहदिंम्रर्कोभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत।
– ऋग्वेद : 1/7/2

2. *ऋग्वेद : 10/25/6*

था जबकि 'गाथा' मानुषी तथा राजन्य वर्ग के उदात्त चरित्र से संबंधित। ऋक् यजुः तथा साम से पृथक इन गाथाओं का प्रयोग मंत्र के रूप में नहीं किया जाता था। बल्कि राजाओं के उदात्त महनीय तथा यशः चरित्र से अभिहित सामाजिकों द्वारा गाये जाने वाले गीत ही 'गाथा' के नाम से प्रचलित थे। महर्षि यास्क विरचित 'निरूक्त' की व्याख्या करते हुए महापण्डित दुर्गाचार्य ने लिखा है – कि वैदिक सूक्तों में यत्र–तत्र ऐतिहासिक संदर्भ कहीं ऋचाओं में तथा कहीं गाथाओं में निबद्ध है –

'सपुनरितिहासः ऋगबद्धो गाथाबद्धश्च, ऋक् प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते।
गाथाः शंसति, नाराशंसीः शंसति, इति उक्तं गाथानां कुर्वीतेति'।।[1]

वैदिक गाथाओं के उदाहरण हमें शतपथ ब्राह्मण[2] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[3] में देखने को मिलते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इन गाथाओं को कहीं 'श्लोक' कहीं 'यज्ञगाथा' तथा कहीं पर केवल 'गाथा' कहा गया है।[4] इन गाथाओं के विषय राजसूय या अश्वमेघ यज्ञ करने वाले प्रतापी राजाओं के उदात्त तथा महनीय चरित्र से संबंधित हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में दुष्यन्तपुत्र भरत की चर्चा निम्नांकित गाथाओं में मिलती है –

हिरण्येन परीवृतान्कृष्णाञ्शुक्लदंतो मृगान्, मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च।।
भरतस्यैष दौष्यन्तेराग्निः साचीगुणे चितः, यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मण बद्वशो गा विभेजिरे ।।[5]

ऐतिहासिक गाथाओं की यह परम्परा अविच्छिन्न प्रवहमान् महाभारत काल में अपने पूरे रूप में उभर कर आई है। दुष्यन्त–पुत्र भरत से संबंधित अनेक गाथाएं महाभारत में दिखाई पड़ती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित गाथाएं श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध में प्राप्त

---

1. *निरूक्त : 4/6 की व्याख्या*
2. *शतपथ ब्राह्मण, काण्ड 13, अध्याय 1, ब्राह्मण 5*
3. *ऐतरेय ब्राह्मण, 8/4*
4. *तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते। तां गाथां दर्शयति।*
   – ऐतरेय वाहनण 39/7
   तत्र प्रथमं श्लोकमाह। – वही 39/9
5. *ऐतरेय ब्राह्मण, 39/9, श्लोक 1,2*

होती हैं। इन गाथाओं का गायन विशेषतः राजसूय यज्ञ के अवसर पर होता था। लेकिन मैत्रायिणी संहिता में विवाह के अवसर पर गाथाओं के गायन का प्रमाण मिलता है।[1] पारस्कर गृहसूत्र में स्त्रियों द्वारा गाई गई विवाह संबंधी गाथाएं हैं –

अथ गाथां गायति, सरस्वति प्रदेमव सुभगे वाजनीवती। यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः यस्यां भतंसम्भवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः।।[2]

सीमन्तोन्नयन के शुभ अवसर पर सोम की प्रशंसा में गाई जाने वाली गाथा का विवरण आश्वलायन गृह्यसूत्र में इस प्रकार है –

तौ चैतां गाथां गायतः, सोमो नोराजाऽवतु मानुषीः प्रजा निविष्ट चक्रासौ।[3]

अस्तु! गीत विषयक् वैदिक साहित्य के इस दुस्तर मंथन का तात्विक निष्कर्ष यह इंगित करता है कि लोक गीत का प्रारंभिक ऐतिहासिक स्वरूप गाथा ही था। ये गाथाएं प्रथमतः तो देवविषयक् थीं जिनका गायन संस्कारादि अवसरों पर देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया जाता था तथा द्वितीयक् वे गाथाएं है जो अश्वमेघ या राजसूययज्ञों के अवसर पर राजन्यवर्ग की प्रशस्ति में गाई जाती थीं।

पालि भाषा में निबद्ध भगवान बुद्ध के पूर्व जीवन–चरित्र तथा तज्जन्य उपदेशात्मक प्रवृत्ति से संबंधित कथाओं को 'जातक' संज्ञा से अभिहित किया गया है। अपनी अति प्रचीनता को उद्घोषित करने वाली ये लौकिक कहानियां तत्कालीन परिस्थितियों की स्वमेव उद्घोषिका हैं। अति प्रसिद्ध तथा मनोरंजन से परिपूर्ण एतद्विषयक् एक कथा यहां उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

अथस्स गद्रभभावं गत्व बोधिसत्तो पठमं गाथमाह –
नेत सहिस्स नदितं न व्यग्धस्स न दीपनो।
पारुतो सहिचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो'ति।।[4]

---

1. *मैत्रायिणी संहिता : 3/7/3*
2. *पारस्कर गृहयसूत्र, काण्ड 1, खण्डिका 7*
3. *आश्वलायन गृहय सूत्र, 1/15*
4. *श्री बटुकनाथ शर्मा : 'पालिजात कावलि', पृ0 17*

भावार्थतः यह कथा एक ऐसे चतुर गधे से संबंधित है जो सिंह चर्म ओढ़, किसानों को भ्रमित कर उनकी धान, जौ की फसलों को खा जाता था तथा जिसका रहस्योद्‌घाटन बोधिसत्व ने उसकी आवाज को पहचान कर किया। यहीं पर दूसरी कथा गधे के स्वामी एक बनियां द्वारा कही गई है जो इस प्रकार है –

'चिरम्पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवं।
पारुतो सीहचम्मेन रवमानो च दूसयी'ति।।[1]

प्राकृत भाषा ने अपने पूर्व प्रवाहित इस गाथा रूपी गीत परम्परा को अक्षुण्ण ही नहीं रखा वरन् शत्–शत् रूपों में इसका विकास भी किया। हाल सात वाहन ने एक करोड़ गाथाओं में से अतिसुन्दर तथा प्रभावशाली सात सौ गाथाओं को संकलित कर उन्हें काल कलवित होने से बचा लिया तथा साहित्य के श्री भण्डार को अपूर्णीय क्षति से उपकृत भी किया। ये गाथाएँ अपनी मधुरिमा तथा प्रभाव–प्रवणता में बेजोड़ तथा सहृदय रस अनुसंधित्सुओं को रस सिक्त कर देती हैं। प्रिय के गये आज का दिन गया, आज का दिन गया, आज का दिन गया। इस प्रकार गिनने वाली नायिका ने पहले दिनार्द्ध में ही 'भीत' को रेखाओं से चित्रित कर डाला। यह गाथा निश्चित रूप से विरह–विदग्धा उस नायिका के विरहाकुल मनः स्थिति का अनुपम चित्र–विम्ब है –

अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्तिअज़्जं गमोत्ति गणरीए।
पदम ज्विअ दिअहद्धे कुड्ढो रेहाहिं चित्तलियो।।[2]

वहीं पर एक दूसरी गाथा में विवाह के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मंगलगीत गाने की चर्चा भी हुई है –

मण्णे आमण्णन्ता आसण्णविआहमग्ड.लुग्गाइइं।
तेहिं जुआणेहिं समं हसन्ति मं वेअसकुऽग्ड.ण।।[3]

---

1. *श्री बटुकनाथ शर्मा : 'पालिजात कावलि', पृ0 17*

2. *हाल सात वाहन : 'गाथा सप्तशती', 3/8*

3. *वही : वही , 6/43*

गीत संबंधित वैदिक वाग्डमय की यह विकास परम्परा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओ में अविरल प्रवाहित होती हुई महाकाव्य काल में पूर्ण विकसित दिखाई देती है। आदि कवि महार्षि बाल्मीकि ने रामजन्मोत्सव पर गन्धर्वों द्वारा गायन तथा अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का वर्णन किया है।[1] महार्षि वेदव्यास ने श्रीमद् भागवत् में श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर स्त्रियों द्वारा मिलकर गीत गाने का उल्लेख किया है –

कदाचिदौत्थानिक कौतुकाश्लवे अन्मर्थ योगे समवेतयोषिताम्।
वादित्र गीत द्विज मन्त्रवाच कैश्यकार सूनोरभिषेचनं सती।।[2]

महाकवि कालिदास ने अज के शुभ जन्म पर महाराज दिलीप के महल में वारवनिताओं द्वारा नृत्य तथा मंगलवाद्य बजाने का वर्णन किया है –

सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्विनाः प्रमोदनृत्यैः सहवारयोषिताम।
न केवलं सदमनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौक सामपि।।[3]

प्रसिद्ध कवयित्री 'विज्जिका' ने गीत गाते हुए ग्रामीण स्त्रियों द्वारा धान कूटने का सुन्दर, मनोरम तथा जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है –

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली, परस्परपरिस्खल द्वलयनिः स्वनोद्बन्धुराः।
लसन्ति कलहुंकृति प्रसभकम्पितोरः स्थल, ऋद्गमकसंकुलाः कलभगण्डनी गीतयः।।[4]

स्त्रियां धान कूट रहीं हैं, समवेत स्वर में गा रही हैं, उठते–गिरते मूसल की धमक, चूड़ियों की झनक तथा गीतों की खनक – स्वर–शब्द, लय–ताल एवं वाद्य के इस एकीकारण के सम्मिलित रूप को कोई लोक संगीत की संज्ञा से अभिहित कर सकता

---

1. *जगु : कलं च गन्धर्वा : ननृतुश्चाप्सरोगणाः।*
   देवदुन्दुभयो नेदु : पुष्पिवृष्टिश्च खात्पतत्।।
   – बाल काण्ड 18/16
2. *श्री मद् भागवत, दशम स्कन्ध*
3. *रघुवंश : 3/19*
4. *'हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास', भाग 16, पृ0 20 से उद्धृत।*

है लेकिन इस श्रम–परिष्कार के प्रकृतितः सांगीतिक संयोजन पर शास्त्रीय संगीत को न्यौछावर करने का मन करता है। महाकवि श्री हर्ष ने चक्की चलाती स्त्रियों का एक विम्ब चित्र प्रस्तुत किया है –

प्रतिहदृ पथे घरदृाजात्, पथिकाह्लादन सक्तु सौरभैः।
कलहान्न घनान् यदुत्थितात्, अधुनाप्युज्झति घर्घरस्वनः।।[1]

स्त्रियाँ चक्की चला रही हैं, साथ ही गीत गाती जा रही हैं। भुने–पिसे सत्तू की सोंधी गन्ध राहगीरों को आकृष्ट कर रही है। मेरा मानना है कि बटोहियों को सत्तू की गन्ध नहीं अपितु चक्की की घरघराहट की लय पर नर्तन करती गीत की सुमधुर स्वर लहरियां ही आकृष्ट कर रही हैं।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल पदों–गीतों का काल है इस काल के सभी भक्त कवि और गायक दोनों ही हैं। इन कवियों ने अपनी भक्ति भावना की पाती को अपने आराध्य के श्रीचरणों में पदों छन्दों को रचकर नहीं अपितु गा कर अर्पित किया है। भक्त गायकों ने लोक तथा शास्त्र का समन्वय किया है – भाव, भाषा, लोक, जीवन की झांकी ही नहीं वरन् लोक काव्यरूपों को भी उसी सहृदयता तथा सदाशयता से अपनाया है जितनी शास्त्रीयता को। प्रियतम राम आज अपनी प्रियतमा को परिणय–सूत्र–बन्धन में आबद्ध करने के लिए बारात के साथ पधार रहे हैं। ऐसे वैवाहिक शुभ अवसर पर सुहागिनों द्वारा मंगलगान करने का अपूर्व चित्र कबीर ने प्रस्तुत किया है।[2] समन्वयकारी तुलसी का काव्य कानन स्त्रियों के गीतों की मधुर ध्वनि से पूर्णरूपेण गुन्जायमान है। रामचरित मानस, कवितावली, गीतावली, पार्वती–मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा–प्रश्न, कृष्ण गीतावली आदि काव्य–ग्रन्थ 'गीत' ही नहीं बल्कि 'लोक–काव्य–रूपों' से भरा पड़ा है।[3] महाकवि सूर ने

---

1. *नैषधीय चरित, सर्ग 2, श्लोक 85*

2. दुलहनी गावहु मंगलचार।
   हम घरि आये हो राजा राम भरतार। क०ग्र०पद–1, पृ० 69

3. (क) *रामचरित मानस : बालकाण्ड –194/2, 228/2, 329/3, 297/2 तथा 4*
   (ख) *कवितावली, बालकाण्ड सवैया 17*

अपने लोक नायक श्रीकृष्ण के जन्म, यज्ञोपवीत तथा होली के शुभ अवसरों पर स्त्रियों तथा लोक गायकों द्वारा मंगल गीतों को गाने की विस्तृत चर्चा की है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकगीतों का प्रवाह अनादिकाल से हमारे देश में प्रवाहित हो रहा है तथा जब तक यह सृष्टि रहेगी भारत भूमि इस प्रवाह से सदैव आप्लवित होती रहेगी।

(ङ.) लोकगीत–एक वर्गीकरण ('बुन्देली' परिप्रेक्ष्य में)

लोकगीत जनजीवन का उज्ज्वल दर्पण हैं। यह ऐसी झांकी है, जो जीवन के विविध रूपों को बड़े रंजक, मधुर, तिक्त एवं भावावेषपूर्ण शैली में प्रस्तुत करती है। लोकगीत में जो सरलता, विविधता, सजीवता, स्वाभाविकता एवं संगीतात्मकता पाई जाती है, वह वास्तव में सामान्य मनुष्य की जीवनचर्या की विशिष्टता है। जनसाधारण का जीवन सुख–दुख के भावों से आलोकित होने पर भी जितना जीवन्त और प्राणवान होता हैं, उतना ही उसके भावों को व्यक्त करने वाले लोकगीतों में गहराई और प्रभुविष्णुता पाई जाती है।

लोकगीत मूल रूप से भावप्रधान होते हैं। ये किसी विचार, आदर्श या सिद्धान्त

(ग) रामलला नहछू – 1, 8, 18

(घ) पार्वती मंगल – 154

(च) जानकी मंगल – 127, 146, 160

(छ) रामाज्ञा प्रश्न – सप्तक 4 (5)

(ज) गीता वली – 9

(झ) कृष्ण गीता वली – 20

– तुलसी ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड) 'मानसेत्तर एकादश ग्रन्थ', ना0 प्र0स0का0 सं02031

1 *(क) यज्ञोपवीत – जदुकुल भयौ परम कौतुहल, जहां–तहं गावति नारि।*

(ख) होली – गावत दै–दै गारि परस्पर, उत हरि इत वृषभानु किसोरी।

(ग) जन्म–ठाढ़ी और ठाढ़िनि गावैं, ठाढ़े हुरके बजावैं, हरषि असीस देत मस्तक नवाइकै।

सूरसागर नं0प्र0स0का0, पद 711, 3486, 649

से उत्प्रेरित नहीं होते बल्कि जीवन के छोटे–छोटे सरोकार एवं तालाब में फेंके गए कंकड़ की तरह लोकगीतकार के हृदय में भावों के स्फुरण के परिणाम हैं। और ये भाव उर्मियां ही हृदयग्राही लय और–धुनों में परिवर्तित होकर लोकगीत का रूप धारण कर लेती हैं।

इस प्रकार लोक गीत की मूल भावना और उसकी प्रकृति को न समझ कर केवल वाह्य रूपाकार या नामों द्वारा विभिन्न वर्गो के चौखटों में बलपूर्वक उन्हें बिठाने की कोई भी चेष्टा दोषरहित नहीं हो सकती। अभी तक लोकगीतों के वर्गीकरण का जो भी प्रयास किया गया है, वह स्थूल, वाह्य एवं विहंगम दृष्टि पर आधारित है। गीतों की मूल भावना प्रकृति और उसके परिवेश को लक्ष्य कर यदि इन्हें ऐसे व्यापक वर्गों में बांटा जाए, जो जनजीवन की विविधता और सम्पूर्णता को समाहित करते हों, तो विश्वास है कि ऐसा वर्गीकरण लोकगीतों की अपरिमित संख्या को ऐसे स्पष्ट वर्गो में बांट देगा, जिनका अध्ययन सरल, स्पष्ट एवं भ्रम रहित होगा।

जहाँ तक बुन्देली लोकगीतों के वर्गीकरण की बात हैं, इसके वैविध्य ने विचारों को चमत्कृत कर दिया है। सच बात तो यह है कि प्रत्येक देश–प्रदेश तथा क्षेत्र विशेष के लोकगीत भाव तथा क्रिया की दृष्टि से एक होते हैं, परन्तु स्थानीयता का रंग तथा गंध उसके निजीपन को रेखांकित करती है। बुन्देली गीतों की विविधता तथा निजत्व पर डॉ0 भगीरथ मिश्र का अभिमत है कि – "इस लोककाव्य में जहां एक ओर–वीरता और राष्ट्रीयता है, वहीं दूसरी ओर श्रृंगार, प्रेम, प्रकृति, ऋतु और संस्कार से संबंध रखने वाले गीत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अपने क्षेत्रीय आघातों और लयों को लेकर प्रायः इन गीतों की भावनाओं का प्रचार सारे बुन्देली क्षेत्र पर हैं इतना ही नहीं, कुछ इन गीतों के संस्कार बघेली, छत्तीस गढ़ी, मालवी और ब्रज के लोक–काव्य में भी देखे जा सकते हैं।"(1) ये लोकगीत बुन्देलखण्ड के गौरवमय अतीत के दस्तावेज़ हैं, तथा वर्तमान के गवाह। इनमें उसकी गौरव–गाथाएं परम्पराएं, सांस्कृतिक–ऐतिहासिक सन्दर्भ तथा जनजीवन की अस्मिता का ज्ञान तथा वर्तमान का अजस्त्र–सहस्त्र प्रवाह दिखाई देता है। डॉ0 उमाशंकर शुक्ल ने लिखा है –"बुन्देलखण्ड के लोकगीत जागृत जनता के प्रतीक हैं। इन पर गांवों,

---

1. डॉ0 भगीरथ मिश्र : 'बुन्देली लोक काव्य', भाग –1 (प्राक्कथन) पृ0 अ

खेतों–खलिहानों की छाप है। इसमें जन्म भूमि की गौरव शाली और यशस्वी आत्मा की पुकार निहित है। इनमें एक विशाल संस्कृति का गर्वीला इतिहास अभिव्यक्त हुआ है। इनमें गति भी है, तीव्रता भी और मर्म को छू सकने की शक्ति भी। कला और जनजीवन का संबंध धरती के गीतों की विशेष पहचान है।[1] इस प्रकार सुदूर अतीत से वर्तमान तक की बहुआयामी यात्रा करते अनगिनत मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्ति देते सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण करते इन सहस्त्रों–सहस्त्रों गीतों का सीमांकन एक अति दुस्तर–कार्य है। लोकगीतों के वर्गीकरण की दुःसाध्यता को इंगित करते हुए डॉ0 सत्या गुप्ता ने कहा है – "अधिकांश गीतों में एक साथ ही कई रस आ जाते हैं तथा वे ऋतु–गीतों में भी आ सकते हैं और जातिगत गीतों में भी।"[2] 'फिर भी जिन विद्वान अध्येताओं ने अध्ययन की सुविधा तथा वैज्ञानिकता के परिप्रेक्ष्य में बुन्देली लोकगीतों को खानों, चौखटों में बांधने का स्तुत्य प्रयास किया है। उनमें पं0 गौरी शंकर द्विवेदी, श्री उमाशंकर शुक्ल, देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री शिव सहाय चतुर्वेदी, श्री कृष्णानन्द गुप्त, डॉ0 बलभद्र तिवारी, डॉ0 कृष्णलाल हंस, डॉ0 सरला कपूर तथा डॉ0 विनोद कुमारी तिवारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं –

प्रस्तुत अध्ययन बुन्देलखण्डी लोकगीतों के सांगीतिक पक्ष से संबंधित है और संगीत की दृष्टि से बुन्देली लोकगीतों का अध्ययन किं बहुना नहीं के बराबर हुआ है, फलतः सांगीतिक दृष्टि से वर्गीकरण के पूर्व इन गीतों के जो अन्य दिशाओं से वर्गीकरण हुआ है उनका यहाँ दिग्दर्शन कराना आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि ये वर्गीकरण सांगीतिक वर्गीकरण को स्पष्ट करने में सहायक होगें, ऐसी मेरी मान्यता है।

विद्वान लोक चेत्ताओं द्वारा बुन्देली लोकगीतों की कोटियां इस प्रकार निर्मित की गई हैं –

पं0 गौरीशंकर द्विवेदी का वर्गीकरण :–

सैरे – ये आषाढ़ और सावन मास में गाये जाते हैं ।

---

1. *डॉ0 उमाशंकर शुक्ल : 'बुन्देलखण्ड के लोकगीत', पृ0 36*
2. *डॉ0 सत्या गुप्ता : 'खड़ी बोली का लोक साहित्य', पृ0 30*

राछरे – ये ज्येष्ठ से श्रावण तक गाये जाते हैं।

मल्हारें और सावन – ये श्रावण और भाद्रपद में गाई जाती हैं ।

बिलवारी, दिवारी, – ये क्वांर और कार्तिक में गाई जाती हैं।

बाबा या भोला के गीत – ये संक्रान्ति आदि तीर्थ यात्रा के अवसर पर गाई जाती हैं।

फागें और लेदें – माघ, फाल्गुन में गाई जाती है।

गारी – विवाहादि के अवसरों पर गाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त खेत काटते समय चक्की पीसते समय, मजदूरी करते समय, इत्यादि अनेक अवसरों पर भिन्न–भिन्न प्रकार के गीत, भजन, दादरे आदि गाये जाते हैं।[1]

श्री उमाशंकर शुक्ल का वर्गीकरण :–

(1) उत्सव गीत

(2) प्रेम संबंधी गीत

(3) राजनीतिक, सामाजिक और वीरपूजा गीत इस प्रकार उन्होंने पौराणिक, कथागीत, संस्कारगीत और नृत्यगीत में सभी गीतों को रखा है।[2]

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का वर्गीकरण :–

(1) माता के गीत

(2) कार्तिक गीत

(3) बाबा के गीत

(4) नौरता के गीत

वीरगाथाओं का अलग स्थान है, इनमें कथागीतों के मुख्य विभाग ये हैं – (1) राछरे , (2) पँवारे

एक और विभाजन यों हो सकता है :–

(1) लोरियां (2) बच्चों के खेल गीत

---

1. 'बुन्देलखण्ड के ग्रामगीत' (मधुकर पत्रिका) पृ0 6

2. श्री उमाशंकर शुक्ल : 'बुन्देलखण्ड के लोकगीत', पृ0 38

फिर संस्कार गीत :–

(1) सोहरें (2) विवाहगीत–साजन, बनरा, बधाई, गारी

फिर ॠतु गीत :–

(1) सावन, मल्हारें (2) बिलवारी जिसे क्वांर में गाते हैं (3) दिवाली जो कार्तिक में गाई जाती है।

(4) फागें – ये चार प्रकार की होती है :–

(1) सख्याउ, (2) खुरयाउ (3) चौकड़याउ (4) छन्दयाउ ।

इनके अतिरिक्त रसिया और दादरों का अपना अलग स्थान है। 'लेदें' भी बहुत शौक से गाई जाती हैं और सैरों को तो हम खेल की कविता कह सकते हैं। अलग–अलग जातियों के कुछ गीत भी मिलते हैं, जैसे धोबियों के धुबयाउ, ढीमरों के ढिमरयाउ, गड़ेरियों के 'गड़रयाउ' इनके अतिरिक्त एक विभाजन और हो सकता है – (1) नृत्य गीत (2) कथा गीत[1]

श्री शिवसहाय चतुर्वेदी का वर्गीकरण :–

(1) जन्म समय के गीत – इसमें सोहरे, बधाएं, संचत, तथा जन्म संबंधी सभी संस्कारों, मुंडन, पसनी आदि के गीत शामिल किये जा सकते हैं।

(2) खेल कूद के गीत – इसमें लड़कियों के विविध खेलों के गीत तथा नौरता आदि के गीत सम्मिलित हैं।

(3) वैवाहिक गीत – इसमें बनरा, बनरी, रघुपतगारी, बींध और विवाह संबंधी नेग–दस्तूरों के गीत आते हैं।

(4) श्रृंगार रस संबंधी गीत – इसमें श्रृंगार तथा रसिकता संबंधी सभी प्रकार के गीतों का समावेश हो सकता है।

---

1. देवेन्द्र सत्यार्थी : 'धरती गाती है', पृ0 117,118

(5) धार्मिक गीत — इसमें मीरा के गीत, भजन, भगतें तथा रामकृष्ण की प्रेमलीला संबंधी गीतों का समावेश किया जा सकता है।

(6) फागें — ये फागुन के महीने में गाई जाती है।

(7) राछरे — ये श्रावण में गाये जाते हैं ।

(8) दिवारी — ये दिवाली के अवसर पर गाई जाती हैं ।

(9) सैरा — ये श्रावण–भादों में गाई जाती हैं।

(10) 'रसिया मलारें — ये श्रावण भादों में गाई जाती हैं ।

(11) राई — बारहों महीने गाई जाती हैं ।

(12) भोला के गीत — तीर्थ यात्रा के समय गाये जाते हैं ।

(13) श्रमदान के गीत — फसल की बुवाई कटाई आदि के समय गाये जाते हैं ।

(14) खास जातियों के गीत

(15) मौसम के गीत — इसमें फागें, दिवारी, कार्तिक के गीत आते हैं।[1]

श्री कृष्णानन्द गुप्त का वर्गीकरण :–

बुन्देलखण्ड के लोकगीतों को उनके विषय और गाने के अवसरों की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकारों में बांटा जा सकता है – (1) ऋतु गीत, (2) श्रमगीत, (3) त्योहार गीत, (4) संस्कार गीत, (5) यात्रा गीत, (6) धार्मिक गीत, (7) बाल गीत, (8) विविध गीत[2]

डॉ0 बलभद्र तिवारी का वर्गीकरण :–

(1) ऋतुगीत तथा आख्यान गीत – आल्हा, कार्तिक के गीत, ढोला–मारू, धरमा सांवरी, पुवारो, पंडवा, सौरंगा–सदावृक्ष।

(2) उत्सव और त्योहार – फागें, स्वांग, राई, दिवारी, तीजा, आरती, तुलसी का ब्याह।

(3) रीति रिवाज संबंधी गीत – बनरा, गारी, बिदा के गीत, बधाई, भांवर, तेल, सोहरे (जन्म के उत्सव मनाते समय गाया जाने वाला गीत)

---

1. *शिव सहाय चतुर्वेदी : 'बुन्देलखण्डी लोकगीत', (भूमिका) पृ0 क0ख0ग0*
2. *श्री कृष्णानन्द गुप्त : 'हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास', पृ0 335 (षोडष भाग)*

(4) श्रमगीत (कार्यों के अवसर पर) दिनरी, बीरोठी, अनबोलना, बिलवारी

(5) भिक्षा वृत्ति के गीत – बसदेवा के गीत (हास्य रस पूर्ण)

(6) लोकनृत्य के साथ गाए जाने वाले गीत – राई, ढिमरियाई, सैरो, दिवारी।

(7) यात्रा के समय के गीत – भोला के गीत (बंबुलिया)

(8) धार्मिक गीत – प्रभाती, भगतें, जस, गोटें, बीरोठी।[1]

डॉ0 कृष्ण लाल हंस का वर्गीकरण :–

(1) धार्मिक गीत

(2) सामाजिक गीत

(3) सामयिक गीत

(4) ऐतिहासिक गीत

(5) जीवन–गीत[2]

डॉ0 सरला कपूर का वर्गीकरण :–

(1) धार्मिक – माता के गीत, कार्तिक गीत, गोटें, लावा के गीत, नौरता, दमेटवा एवं अन्य देवी–देवताओं के भजन ।

(2) औत्सविक – साजन, बनरा, बधाई, सोहरे ।

(3) सामाजिक – गड़रयाउ, विदा, कछयाउ और राछरे ।

(4) सामयिक – मल्हारें, सौरें, बिलवाई और फागें। फागों के प्रकार निम्न हैं – सख्ययाउ, खरयाउ, चौकड़याउ, छन्दयाउ, खिरें, राहला, ख्यालफाग, स्वांग, राछरे, दिवारी, उजैकी चाचरी, अघरी होली, रसिया, लेद, दतिया का भाउदी, सावन, बनजारा, कबीर साखी आदि।

(5) ऐतिहासिक गीत – रासें, आल्हा, ढोला मारू, चौपाई ।

---

1. बुन्देली काव्य परम्परा (प्रथम खण्ड) पृ0 9

2. 'बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप', पृ0 91

(6) वीर रस – सिर्फ कड़रवा ही विशेष रूप से सम्मिलित हैं। आल्हा भी वीर रस में आ सकता है।[1]

डॉ0 विनोद कुमारी तिवारी का वर्गीकरण –

लोकगीत वर्गीकरण [2]

1. रूपगत
   - कथात्मक (कथागीत)
   - मुक्तक
     (1) संस्कार गीत
     (2) ऋतु गीत
     (3) क्रिया गीत
     (4) भक्ति गीत
     (5) क्रीड़ा गीत
2. भावगत
   (1) प्रेमभावना
   (2) राष्ट्रीय चेतना
   (3) भक्ति भावना
   (4) वात्सल्य
3. विषयगत
   (1) क्रियागीत
   (2) संस्कार गीत
   (3) ऋतु वर्णन
   (4) बाल वर्णन
4. जातिगत
   समस्त जाति गीत व नृत्यगीत
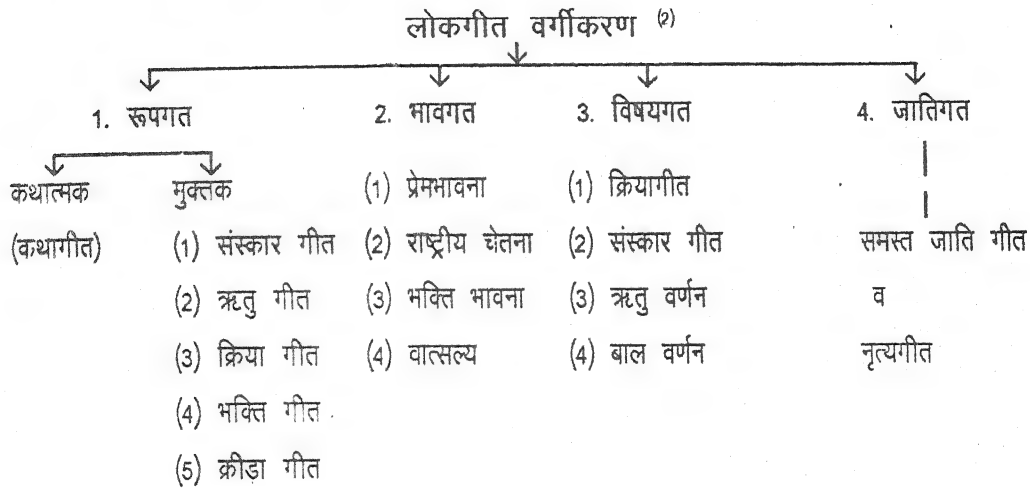
डॉ0 मोती लाल चौरसिया का वर्गीकरण :–

(1) संस्कार गीत – मनुष्य जीवन के सोलह संस्कारों को इस विभाजन में रखकर प्रमुख संस्कारों का उल्लेख ।

(2) ऋतु गीत – प्रचलित ऋतुओं को ध्यान में रखकर गाये जाने वाले गीत ।

(3) व्रत गीत – व्रत, उपवास, त्यौहार के समय गाये जाने वाले गीत।

(4) जातिगीत – बुन्देलखण्ड में प्रचलित जातियों के विशेष गीत।

(5) क्रियागीत – कार्य करते समय गाये जाने वाले गीत ।

---

1. बुन्देल खण्ड के नरेश कवि
2. बुन्देली एवं बघेली लोकगीतों का सामाजिक सांस्कृतिक एवं काव्यात्मक तुलनात्मक *अध्ययन (शोध ग्रन्थ) पृ0 112*

(6) विविध गीत — उपर्युक्त गीतों के अतिरिक्त बचे हुए सभी गीत इसमें सम्मिलित किये गये हैं।[1]

बुन्देली लोकगीतों के प्रस्तुत वर्गीकरणों पर सम्यक् दृष्टिपात करने से स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि उपर्युक्त वर्गीकरण अव्याप्ति अथवा अतिव्याप्ति दोष से रहित नहीं हैं। इनमें कहीं विषयवस्तु की प्रधानता है तो कहीं गायिकी की। कहीं रचना शिल्प को प्रधान माना गया है तो कहीं परम्परागत संदर्भ को, और कहीं–कहीं तो पूर्ववर्ती वर्गीकरण का मात्र भाषान्तर कर सतोष व्यक्त किया गया है। फलतः वर्गीकरणों का आधार वैज्ञानिक तथा दृष्टि शोधपरक न होने से अस्पष्टता सृजित हुई है।

श्री गौरीशंकर द्विवेदी का वर्गीकरण 'बारहमासा' परक है। इस दृष्टि से बारहों महीने के कुछ गीत ही अलग रख कर देखे जा सकते हैं। संस्कार गीत, श्रमगीत, नृत्यादि गीतों का बहुत बड़ा भाग अछूता रह जायगा । अतः यह वर्गीकरण अव्याप्ति दोष से ग्रसित तथा अवैज्ञानिक की श्रेणी में आता है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी तथा उमाशंकर शुक्ल का वर्गीकरण प्रायः एक तरह का है। श्री शुक्ल ने पौराणिक गीत, कथागीत, संस्कारगीत, नृत्यगीत आदि को एक श्रेणी में रखा है, जो कथमपि उचित तथा वैज्ञानिक नहीं है। प्रायः यही स्थिति श्री सत्यार्थी जी की है उनका वर्गीकरण अतिव्याप्ति के दोष से पूरित हैं। श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, श्री कृष्णानन्द गुप्त तथा डॉ0 बलभद्र तिवारी का वर्गीकरण बहुत अंशों में वैज्ञानिकता के सन्निकट तथा सत्य की परिधि को स्पर्श करता है, बावजूद इसके ये विभाजन भी सर्वथा दोषमुक्त तथा सर्वमान्य नहीं हैं।

इधर डॉ0 सरला कपूर तथा डॉ0 विनोद कुमारी तिवारी ने अपने–अपने ढंग से वैज्ञानिकता के आलोक में बुन्देली लोक गीतों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। ये वर्गीकरण भी न्यूनताओं से सर्वथा वंचित नहीं कहे जा सकते। यद्यपि डॉ0 कपूर ने एक नई पद्धति से बुन्देली लोकगीतों की कोटियां निर्मित करने का प्रयास किया है फिर भी अस्पष्टता के कारण उसमें भ्रम उत्पन्न हो जाता है। लोकगीत तो समाज का समाज द्वारा तथा समाज के लिये ही होते हैं अतः डॉ0 कपूर का यह 'सामाजिक विभाग' समझ के परे है।

---

1. बुन्देली लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 40

डॉ0 तिवारी का वर्गीकरण भी सर्वथा दोष रहित वैज्ञानिक तथा पूर्णतापरक नहीं है। यह विभाजन भ्रमात्मक है क्योंकि रूपगत वर्ग के गीत विषयगत, भावगत, तथा जातिगत सभी वर्गों में आते हैं। अतः इस वर्गीकरण ने पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति से भ्रम की स्थिति पैदा की है।

समाहारतः अध्ययन की सुविधा तथा लोक–प्रचलित गीतों की उपलब्धता के आधार पर हम लोकगीतों का स्थूल विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं –

1. संस्कार संबंधी गीत
2. ऋतु संबंधी गीत
3. व्रत उपासना तथा त्यौहार संबंधी गीत
4. श्रम तथा जातीय गीत
5. विविध गीत

उपरिलिखित विभाजन में प्रायः सभी प्रकार के लोकगीतों का समायोजन हो जाता है। यह अध्ययन लोकगीतों के सांगीतिक पक्ष से संबंधित है अतएव लोकगीतों का संगीत की दृष्टि से वर्गीकरण अपेक्षित है संगीत की दृष्टि से लोकगीतों का वर्गीकरण एवं विस्तृत विवेचन पांचवें अध्याय में किया गया है।

❐

चतुर्थ अध्याय

बुन्देली लोकगीत : विस्तृत विवेचन

(क) संस्कार गीत

भारतीय समाज में परम्परागत सोलह संस्कारों की, मनुष्य जीवन में अनिवार्यता स्वीकार की गई है। इन संस्कारों द्वारा मनुष्य संस्कारित होता है। इन सोलह संस्कारों में जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह तथा मृत्यु चार का अत्यधिक महत्व तथा प्रचलन है, शेष संस्कार अपेक्षतया लोक–जीवन में कम प्रचलित हैं। इन संस्कारों को करने के दो विधान–शास्त्रीय तथा लौकिक हैं। जो पुरोहित द्वारा शास्त्रसम्मत कर्मकाण्डीय पद्धति से किये जाते हैं उन्हें शास्त्रीय विधान कहा जाता है तथा जब गांव–घर, पास–पड़ोस की स्त्रियां मिल–बैठ कर परम्परागत विधि से इन विधानों को करती हैं तब ये विधान लौकिक कहे जाते हैं। इन विधानों को करने में स्त्रियों द्वारा जो गीत गाये जाते हैं, वस्तुतः वे लोकमंत्र हैं।

(अ) जन्म संस्कार :–

बुन्देलखण्ड में जन्म संस्कार से संबंधित अनुष्ठानों का लम्बा सिलसिला चलता है और सभी अनुष्ठानों के समय गीत गाये जाते हैं। संततिहीन व्यक्ति समाज तथा स्वयं की दृष्टि में हीन होता है तथा बाँझ–बाँझिन से सम्बोधित। स्त्री के लिये वन्ध्याकरण अभिशाप है तथा मातृत्व उसकी पूर्णता। संतानहीन स्त्री परिवार–समाज में तो निरादृत होती ही है, पति की दृष्टि में भी उपेक्षित। वंश–वृद्धि तथा उत्तराधिकारी की अपेक्षा में पुरुष दूसरी शादी कर लेने की धमकी तक देता है। ऐसी स्थिति में ननद, भाभी को पुत्र–प्राप्ति की कामना करती तथा आशीर्वाद देते हुए ढाढस बंधाती हैं।

हंसत खेलत राजा आ गए बात कहौं धन एक
सुनियों मन चित लाय ब्याव रचैं हम दूसरो
X X X X
जेय जूंठ बैया ओबरों पौंची भौतक देत असीस
फरियो भौजी करई नीम सी,
घिसलो बूटी दूब अचल तोरे हुइये ऐबात।

ऐसे में स्त्री का गर्भवती होना स्त्री तथा पूरे परिवार के लिए नैसर्गिक सुख तथा असीम प्रसन्नता का कारक होता है। गर्भधारण के छठे या आठवें महीने में 'आगन्नों' या 'फूलचौक'

संस्कार होता है। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को 'संचत–गीत' कहा जाता है। ये गीत मातृत्व की कामना तथा पुत्र–प्राप्ति के आशीर्वाद से संबंधित होते हैं। प्रसव काल में स्त्री को मर्मान्तक पीड़ा होती है। लोकोक्ति भी है कि "प्रसव के बाद स्त्री का दूसरा जन्म होता हैं।" इस पीड़ा की अभिव्यंजना एक गीत में इस प्रकार हुई है।

मोरे उठत कमर धन पीर अब नैंया जीने की
सुन राजा रे, महाराजा रे, मोरी सासू कों देव बुलाय अब नैंया जीने की ।

प्रसव–पीड़ा का सुखद अन्त पुत्र–जन्म के साथ होता है। नवागंतुक के आगमन से घर–बाहर चारों ओर खुशी व प्रसन्नता का वितान तन जाता है। दर्द से पीड़ित जच्चा जो ननद, भौजाई, देवरानी–जेठानी, सास–ससुर की मुखापेक्षी थी, व सभी का मार्गदर्शन चाहती थी, पुत्र–प्राप्ति के बाद उसके तेवर व व्यवहार में बदलाव आ जाता है अब उसे किसी की आवश्यकता नहीं। वह गर्व से भरी अपने पति से गुड़, सोंठ, बिस्वार आदि सामग्री लाने का आग्रह करती है। पति लड्डू बनाए और वह खाए –गर्व से परिपूर्ण मातृत्व का एक सटीक उदाहरण है –

'पसेरी भर जामे घी डरो री, गरी के नौ गोला जामें डरी री।'

बुन्देलखण्ड में पुत्र जन्म के साथ मांगलिक कार्यक्रमों का लम्बा दौर शुरू हो जाता है। इसमें भौं लोटनी, कांके, दस्टौन, सरिया, नरा छीनना, पालना, कुंआ पूजन, कर्ण–छेदन, अन्न–प्राशन, मुण्डन आदि संस्कारों का विधान किया जाता है। पुत्र–जन्मोत्सव पर मित्र–संबंधीजन विशिष्ट प्रकार के उपहार देते हैं। इस अवसर पर बुआ का पलड़ा सबसे भारी पड़ता है बुआ द्वारा दिये गये उपहारों को 'बधावा' कहा जाता है। बुआ को जैसे ही ज्ञात होता है कि उसे भतीजा हुआ है वह अपने पति से 'बधावे' में ले जाने वाली वस्तुओं–उपहारों को शीघ्र बनवाने का आग्रह करती है –

बाजे–बाजे बधाये आज बहू के लालन भये
मोरी भौजी के लला भये
नन्द लाल भये मैंने खबर जो पाई आधी रात
अबै मोरें को सुनरा के जैहें, बहुर मोरें को सुनरा के जैहें
उठो मोरे राजा खोलो कुची–तारे ऐंचो मुहरें पचास
अबै मोरें को सुनरा कै जैहैं ।

जन्म के दसवें दिन गाजे–बाजे के साथ वह 'बधावा' लेकर भाई–भावज के पास जाती है। हर्षोल्लास पूर्ण वातावरण में कई प्रकार के नेग–दस्तूर के साथ यह रस्म पूरी की जाती है।

पुत्र–जन्म पर 'कुंआ–पूजन' बुन्देलखण्ड की अपनी निजी–परम्परा है। महीने भर तक प्रसूता घर के अन्दर पूर्ण विश्राम करती है तत्पश्चात् घर–गृहस्थी के कार्यों में पुनः भागीदारी के लिए वह कुआ–पूजने के लिए घर से बाहर जाती है। सास–ससुर की लाडली, देवर की प्यारी तथा पति की दुलारी बहू भला बाहर कुएं से पानी कैसे लाए अतः वह परिवारजनों से आंगन में ही कुआं खुदवाने, सोने का कलश तथा रेशम की डोरी मंगवाने की प्रार्थना करती है –

ऊपर बदर गहराएं हो तरैं गोरी पानी खों निकरी
जाय जो कहियो उन राजा ससुर सें
अंगना में कुइयां खुदाय हो
तुमाई बहू पानी खों निकरीं
जाय जो कहियों उन राजा बलम सें
सौने के घेलना मंगाय हो
तुमाई धाना पानी खों निकरीं

इन संस्कारों के पश्चात् मुण्डन तथा अन्न–प्राशन का संस्कार होता है। मामा नये बर्तनों मे खीर तथा मिष्टान्न आदि से बच्चे का अन्नप्राशन संस्कार करता है तथा नेग देता है। गर्भ काल के बालों को किसी देवालय, तीर्थ स्थल एवं अपने कुल देवता के स्थान पर बनाया–उतारा जाता है इसे 'मुण्डन' या 'छौर–कर्म' संस्कार कहते हैं। उपयुक्त सभी संस्कारों पर बुन्देलखण्ड में 'सोहर' गाने की प्रथा है।

(ब) यज्ञोपवीत–संस्कार :–

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजा पतेर्यत्सपजं पुरस्तात।
आयुव्यमग्रथं प्रति मुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः।।[1]

यज्ञोपवीत परम पवित्र है जो प्राचीन काल में प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ। यह आयुबल और तेज को प्रदान करने वाला है।

---

1. पं0 रामनरेश त्रिपाठी, 'ग्राम साहित्य', पृ0 230 से उद्धृत ।

यज्ञोपवीत को ब्रह्म–सूत्र कहा जाता है। बोल–चाल की भाषा में इसे 'उपनयन–संस्कार' या 'जनेऊ' कहते हैं। मनु तथा याज्ञवलक्य स्मृतियों में यज्ञोपवीत–संस्कार के विधि–विधानों का पूर्णता के साथ विवेचन किया गया है। मनुष्यों में केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिए यज्ञोपवीत का विधान है। शूद्रों को जनेऊ पहनना वर्जित है। सभी मनुष्य जन्म से शूद्र होते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा ही वह 'द्विज' संज्ञा से विभूषित होता हैं। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद द्विज उच्यते' शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत–संस्कार ब्राह्मण बालक का 8 वर्ष की अवस्था में, क्षत्रिय बालक का 11 वर्ष तथा वैश्य बालक का 12 वर्ष की अवस्था में होना चाहिए। परम्परा के अनुसार 6 से 12 वर्ष के अन्दर 'बरुआ' हो जाना चाहिए।

बुन्देलखण्ड में यज्ञोपवीत–संस्कार को 'बरुआ' कहा जाता है, जो 'बटुक' का बिगड़ा हुआ रूप है यज्ञोपवीत 96 अंगुल के हाथ से काते सूत से तीन तागों का शास्त्रीय विधि से बनाया जाता है। इस शास्त्रीय विधान का लोकीकरण कर बड़ा सुन्दर चित्रण बुन्देली लोकगीत में हुआ है –

तीन तगा को डोरारी, दमरी कौ सूत ए भइया।
पैले में विस्नू, दूजे में बिरमा,
तीजो सूत संकर अवधूत सुन भैया।

राम, कृष्ण, शिव लोक–जीवन के अभिन्न हैं। किसी परिवार में जब बच्चा जन्म लेता है, वह राम–कृष्ण आदि का स्वरूप होता है। उसका यज्ञोपवीत्त रामकृष्ण का यज्ञोपवीत होता है शादी–ब्याह, लड़के–लड़कियों का नहीं राम–सीता, शिव–पार्वती का होता है। इन मांगलिक अवसरों पर स्त्रियां झूम–झूम कर सीता–राम, उमा–महेश्वर तथा राधा–कृष्ण से संबंधित गीतों को गाती हैं। लड़के का यज्ञोपवीत हो रहा है, स्त्रियां गीत गा रहीं हैं। दशरथ–पुत्र राम के यज्ञोपवीत का। इस भावना को एक बुन्देली लोकगीत में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है –

जनेऊ आज पैरत दशरथ के लाल, दशरथ घर मोद बढ़े।
तीन तगा में बिरमा बांधे, दशरथ घर मोद बढ़े।
बिस्नू बांधे विस्व करतार, दसरथ घर मोद बढे।
बिरमा ठाड़े, विस्नू ठाड़े, त्रिपुरार, दशरथ घर मोद बढे।

जनेऊ आज पैरत दसरथ के लाल, दसरथ घर मोद बढ़ै.।[1]

बुन्देलखण्ड में यज्ञोपवीत की तैयारी विवाह के समान की जाती है। मण्डप–छादन बरुआ को तेल–उबटन छौर–कर्मादि के पश्चात मूंज–मेखला तथा जनेऊ पहनाया जाता है बटुक–वेशधारी बरुआ' विधि–विधानों के पश्चात अपने परिवार के बड़े बूढ़ों, रिश्तेदारों आदि से भिक्षा मांगता है। भिक्षा लेकर वह देवालय में चला जाता है वहां से उसकी बहन, बुआ उसे मनाकर घर लाती हैं भारतीय–संस्कृति में काशी विद्याध्ययन का एक मात्र केन्द्र है। 'बरुआ' के गीतों में इसका वर्णन सर्वत्र होता है –

'कहानां से बरुआ चले यारो ठाड़े कहंना दोर
काशी से बरुआ चले यारो ठाड़े आजुल दरबार
भीखों दे आजी भीखो दे, तेरो बरुआ उपासो हो
भीखो दे आजी भीखो दे, तेरो बरुआ रिसानो जाय।[2]

मंहगाई के इस समय में परम्परागत जनेऊ की स्थितियां समाज में भिन्न होती जा रही हैं, तथा परम्परा–निर्वाह तक ही सीमित होती जा रही हैं।

(स) विवाह–संस्कार :–

धर्म और नियम से आबद्ध सामाजिक अनुमति से स्त्री–पुरुष के पारस्परिक संबंध को विवाह कहा जाता है। हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक प्रथा के रूप में प्रचलित है। प्राचीनकाल से भारतीय समाज के सुसंचालन के लिये आश्रम–धर्म की व्यवस्था की गई तथा मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम में विभक्त किया गया है। इन चारों आश्रमों के निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करता हुआ मनुष्य, पुरुषार्थ चतुष्ट्य–धर्म, अर्थ काम तथा जीवन का परमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। इन चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम का विशेष महत्व है। हिन्दू–धर्मानुसार मनुष्य तीन ऋण–ऋषि ऋण, देव–ऋण तथा पितृऋण के साथ जन्म लेता है जिनसे उस उऋण होना होता है। वह ब्रह्मचर्य तथा विद्याध्ययन द्वारा ऋषिऋण, यज्ञादि कर्मों द्वारा देव ऋण तथा अनुकूल वर्ण, गोत्र व गुणवती स्त्री से विवाह और संतानोत्पत्ति कर पितृ ऋण से

---

1. *बलभद्र तिवारी, 'बुन्देली लोक काव्य', भाग–1, पृ0 42*

2. *वही !*

मुक्त होता है। भारतीय चिन्तनधारा में विवाह का उद्‌देश्य काम–वासना की तृप्ति नहीं अपितु पवित्रता पूर्वक धर्म का पालन करते हुए अपने व्यक्तित्व, परिवार और समाज का विकास करना है।

बुन्देली समाज अपनी परम्पराओं में जीवित है। कतिपय विसंगतियों के बावजूद आज भी यहां वैवाहिक विधि–विधान परम्परागत हैं। विवाह का कार्यक्रम बहुत लम्बा चलता है। इसमें विवाह योग्य कन्या के लिये योग्य वर ढूंढने से लेकर बरात की विदाई तक के अनेक मांगलिक कार्यक्रम होते हैं। बुन्देलखण्ड में इन सभी कार्यक्रमों से संबंधित अवसर–प्रसंगानुकूल लोकगीत स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं।

"धिया ब्याहन जोग हो गई" मां–बाप को इसकी चिन्ता खाये जा रही है। स्त्री–पति से लड़की–योग्य–वर ढूंढने की प्रार्थना करती है। पति योग्य वर की तलाश में गांव–देहात से लेकर सुदूर शहर तंक खाक छानते हैरान–परेशान है। लगता है लड़की कुंवारी ही रह जाएगी –

देस निकर स्वामी धिया वर खोजौ, धिया भई ब्याहन जोग।
पास गांव ढूढयों दूर गांव ढूंढयों, ढूंढयों शहर गुजरात।
कतहूं न मिलै तोर धिया वर सुन्दर, तोर धिया रहै कुंवार।

– बुन्देली लोक काव्य, भाग–1 पृ0 42–43

बहरहाल, परिश्रम सफलीभूत होता है। योग्य वर मिल जाता है। विवाह की बात पक्की हो जाती है। इस अवसर पर कन्या पक्ष द्वारा लड़के को फल, मिठाई, पैसा आदि दिया जाता है जिसे पक्कयात, फलदान या टीका चढ़ना कहते हैं। इसके पश्चात् शुभ मुहूर्त पर लगुन–रस्म पूरी की जाती है। यहां से वैवाहिक कार्यक्रम विधिवत प्रारम्भ हो जाते हैं।

आज राम (वर) की लगुन चढ़ रही है। सजा–सवंरा वर चौरे पर बैठा है। चारों ओर आनन्द–उत्साह का वातावरण है। वर के रूप–सौन्दर्य को देखकर स्त्रियाँ गा उठती हैं –

सो आज मोरे रामजू खों लगुन चढ़त है, लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है।
कानन कुंडल मोरे रामजू खों सोहें, सो गालन बिच मुतियन लर सरकत है।
केसर खौर मोरे रामजू खों सोहें, सो गर बिच गोप जंजीर लसत है।

– बुन्देलखण्डी लोक गीत, पृ0 93–94

लगुन के दिन से ही लड़का और लड़की को बन्ना–बन्नी अथवा बनरा बनरी कहा जाने लगता है। वर–कन्या दोनों पक्षों के यहां उनके विवाह से संबंधित गीत गाये जाने प्रारम्भ हो जाते हैं। लड़के–लड़की के यहां शुभ–मुहूर्त पर मण्डपाच्छादंन, हल्दी–तेल का विधि–विधान होता है। लड़के–लड़की को पीढ़े पर बिठाकर बहन, भौजाई, गांव–घर की पांच–सात कन्याएं तेल–हल्दी चढ़ाती हैं तथा गाती हैं –

कौना ने तेलो चढाव को राये बैंह दुलिया।
बहनी ने तेलो चढ़ाव जीजा राये बैंह दुलिया।
चढ़ गव तेल फुलेल छुटक रहीं पांखुरियाँ।
को ल्याव तेल फुलेल को ल्याव पांखुरियाँ।
तेलन ल्याई तेल फुलेल तलिन ल्याई पांखुरियाँ।
भाभी ने तेलो चढ़ाय बीरन राये बैंह दुलिया।

– *बु० ख० लो० गी० पृ० 98*

तेल–हल्दी के पश्चात परम्परागत कुलदेवता, ग्राम देवता, मातृका पूजन, बाबूपूजन के साथ ही निर्विघ्न कार्य सम्पादन के लिये विभिन्न देवी–देवताओं को आमंत्रित किया जाता है। इस अवसर पर लाला हरदौल को निमंत्रित करना बुन्देलखण्ड की अपनी परम्परा है। हरदौल इस महायज्ञ के श्रेष्ठ रक्षक होते हैं, ऐसा लोक विश्वास है। उनको आमंत्रित करती स्त्रियाँ गाती हैं –

'हरदौल लाला मोरी कही मान लियो हो हरदौल लाला।
कहूँ भूला परै कहूँ चूका परै तो संभाल लियो हो हरदौल लाला।
माथे हो सैरो हरदौल जू के सोहें,
कलियों की लटकन संभाल लियो हो हरदौल लाला।
कानों को कुंडल हरदौल जू के सोहें,
झुमकों की लटकन संभाल लियों हो हरदौल लाला।

– *बु० ख० लो० गी० पृ० 102*

बरात जनवासे में सज–धज रही है। बाजे बज रहे हैं। बाजे की आवाज सुनकर लड़की के यहां चीकट की बीघ की जाती है। लड़के के यहां यह रस्म बरात विदाई के पहले की जाती है। लड़की का मामा अपनी बहन–बहनोई, बहन की जिठानी–देवरानी

को उपहार में वस्त्रादि देता है। बहन भाई से किसे क्या देना है, बताती है। बहन–भाई के इस सलाह को इस गीत में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है –

चलो देवरनियां चलो जिठनियां राजा बीरन खों आगो दे ल्याइये।
भैया–बहन बैठ दोई मतो करत हैं कौन खों का पहिराइये।
सास–ननद छींट छिमरिया देवरानी जिठानी खों चूनरी।
हम खों वीरन मोरे जेवर गढ़ैयो पार बरैयो बहनेऊ ख़ों पचरंग पागड़ी।

– बु0लो0का0 पृ0 39

जनवासे से बरात लाव–लस्कर, हाथी–घोड़े, धूम–धड़ाके, गाजे बाजे के साथ ऊबनी के लिये दरवाजे पर पहुंच जाती है। बरात का स्वागत–सत्कार किया जाता है तथा द्वार पर वर की पूजा की जाती है। लड़की का पिता कितना भी बड़ा आदमी क्यों न हो? उसे समधी के आगे झुकना ही पड़ता है –

कंहना के भले मालिया जिन बाग लगाये, कंहना की बेटी कोकिला फुल बीनन आई।
कंहना के भले कोटिया जिन कोट उठाये, कहना के बड़े तापसी चढ़ ब्याहन आये।
सागर के बड़े कोटिया जिन कोट उठाये, देवरी के बड़े तापसी चढ़ ब्याहन आये।
कोट नवै पर्वत नवै सिर नवै नई कोई, बाबुल राये माथो जब नवैं जब साजन आवें।

– बुन्देली लोक काव्य, पृ0 41

ऊबनी द्वारचार के पश्चात् चढ़ावा का कार्यक्रम होता है। वर पक्ष द्वारा कन्या को सोने–चांदी के जेवर, कपड़े आदि दिये जाते हैं जिसे पहनकर वह मण्डप में बैठती है। दूल्हा राजा भी मण्डप में पधारते हैं। पुरोहित शास्त्रीय विधि विधानों के पश्चात् शाखोच्चार तथा भांवर को कराता है। बुन्देलखण्ड में कहीं कही भांवर के समय मृत्यु के बाजे (उल्टे बाजे) बजाये जाते हैं। कारण है लाड़–प्यार से पाली गई पुत्री आज पराई हो जाती है। उसे एक अजनबी परिवार को सौंप दिया जाता है। अतः भांवर का गीत बहुत ही कारुणिक तथा भाव पूर्ण होता है। इसका प्रभाव वहां उपस्थिति लोगों की आंखों से छलकते हुए आंसुओं में देखा जा सकता है।

पहली भांवर जब फेरियों बेटी अबलौं हमारी।
दूजी भांवर जब फेरियों बेटी अबलौं हमारी।

सातईं भांवर जब फेरियों बेटी तब हो गई पराई।

— बु०लो०का० — 46

इसी प्रकार पांव पखराई, पंगत, कंकन छोड़ना, बरात विदाई, कुंवर कलेवा, रहस बधायो आदि कार्यक्रम होते हैं। सभी अवसरों पर स्त्रियां हास–परिहास युक्त मंगल गीतों को गाती हैं। वैवाहिक कार्यक्रमों में सबसे अधिक कारुणिक ह्रदय विदारक स्थिति उस समय पैदा होती है जब बेटी की विदाई होती है। जब संयमी कण्व जैसा ऋषि भी शकुंतला की विदाई के समय आत्मसंयम न संभाल सका[1] तो सामान्यजन की बात ही क्या है। एक भोजपुरी गीत में लड़की की विदाई से उत्पन्न वेदना–विह्वल पिता की आंखों से अनवरत अश्रु प्रवाह से गंगा में बाढ़ आ गई है। रोते–रोते मां की आंखों में अंधेरा छा गया है। माई की धोती आंसुओं से पैर तक भींग गई है लेकिन भाभी की आंखें गीली भी नहीं हुई हैं।

बाबा के रोवले गंगा बढ़ि अइली, आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरण धोती भींजे, भऊजी नयनवा ना लोर।[2]

इसी भाव की अभिव्यंजना बुन्देली लोकगीत में इस प्रकार हुई है —

माई के रोवे से नदिया बहत है, द्वारे से इटियां न ढईयों मेरे बाबुल।
बिटिया न दईयों परदेस, द्वारे की इटियां खिसक जैहैं बाबुल।
बिटिया बिसूरे परदेस, बे मइया बिटियां बिसरत हैं, बाबुल की गई सुध भूल।
मइया की गलियां बिसर गईं हैं, भौजी का जिया सुख चैन।[3]

---

1. *यास्यत्यद्य शकुन्तलेति ह्रदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया।*
कण्ठः स्तम्भित बाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः।
पीड्यन्ते गृहिणः कथ नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।

— 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' अंक — 4, पद—6

2. *डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका' पृ० 249*

3. *डॉ० बलभद्र तिवारी : 'बुन्देलीकाव्य परम्परा', (प्राचीन काव्य) पृ० 21*

(द) मृत्यु–संस्कार :–

मृत्यु सत्य है, जीवन मिथ्या है, नश्वर है। मृत्यु संस्कार मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। यह संस्कार प्रत्येक देश जाति, धर्म के व्यक्तियों की मृत्यृ पर किसी न किसी रूप में अवश्य किया जाता है। हमारे देश में प्रत्येक संस्कार पर गीत गाये जाते हैं। मृत्यु संस्कार इससे अछूता नहीं है अन्तर मात्र इतना है कि दूसरे संस्कारों पर गाये जाने वाले गीत हर्षातिरेक से पूर्ण होते हैं वही मृत्यु संस्कार पर गाये जाने वाले गीत शोक संतप्त, करूणा विगलित तथा विलाप–युक्त।

भारत में वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक सभी में मृत्यु पर शोकाभिव्यक्ति की गई है। ऋग्वेद् में मृत व्यक्ति की आत्मा की रक्षा और उसके स्वर्ग तक निर्विघ्न पहुंचने की बात कही गई है –

प्रेहि प्रेहि पथिमिः पूर्व्येमिः यत्रा नः पूर्बे पितरः परेयुः।[1]
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यामि बरूणं च देवम्।।

रामायण, महाभारत, कुमार सम्भवम् आदि महाकाव्यों में प्रिय व्यक्ति की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया गया है। कामदेव की मृत्यु पर रति के विलाप का मर्मस्पर्शी चित्रण महाकवि कालिदास ने इस प्रकार किया है।

मदनेन बिना कृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवतीति मे।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण! त्वामनुयाामि यद्यपि।।[2]

कृष्ण द्वारा कंस बध पर उसकी रानियों द्वारा घोर विलाप इस प्रकार किया गया है –

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करूणानाथ वत्सल, त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रथाः।
त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरूषषम, न शोभते व्यभिव निवृतोत्सवं मंगरवा।।[3]

---

1. *ऋग्वेद : 10:14:7*
2. *कालिदास : 'कुमार सम्भव'*
3. *श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध अध्याय 44 श्लोक 44–45*

अभिमन्यु की मृत्यु पर शोकाकुल उत्तरा विक्षिप्त होकर उससे पूछती है कि स्वामी तुम तो स्वर्ग चले गये, बताओ ! मैं कहां रहूंगी । इसकी अभिव्यंजना राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इस प्रकार की है –

होकर रहूँ किसकी अहो, अब कौन मेरा है यहाँ?
कह दो तुम्हीं बस न्याय से, अब ठौर है मुझको कहाँ?[1]

स्वर्गिया पुत्री सरोज की स्मृति में महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' विरचित 'सरोज–स्मृति' हिन्दी साहित्य का एकल और अप्रतिम 'शोकगीत' है।

उर्दू साहित्य में मृत्यु गीत को 'मर्सिया' कहते हैं। यह बहुत ही कारुणिक तथा वेदना युक्त होता है। मुहर्रम में जब ताज़िये पहनाम के लिये जाते हैं उस समय मुसलमान लोक मर्सिया पढ़ते हैं तथा हा! हुसैन, हा! हुसैन कह कर अपनी छातियों को पीटते हैं। हुसैन की वीरता से संबंधित भोजपुरी के 'मर्सिया' की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य है –

हसन हुसेन दुनु भइया, करे चलेले लड़इया, हाय हाय करे चलेले लड़इया।
बगल में से कढ़ले छुरिया, छुट्टी करेले लड़इया, हाय हाय छुट्टी करेले लड़इया।[2]

अंग्रेजी साहित्य में मृत्यु पर गाये जाने वाले गीतों को 'एलेजी' कहते हैं। महाकवि होमर विरचित 'इलियड' महाकाव्य में ट्राय की जनमा के दुख तथा विलाप का जो वर्णन किया गया है, वह मृत्युगीत का प्राचीनतम उदाहरण है। इटली में मृत्यु के समय रोने के लिए किराये की स्त्रियां बुलाई जाती हैं जो विशेष धुन में शोक गीत गाती हैं।[3] डॉ0 सत्येन्द्र ने लिखा है कि ब्रज में चतुर्वेदियों में मृत्यु के अवसर पर जो स्त्रियों का रुदन होता है, वह संगीत–गीत के साथ होता है। संगीत–गीत का अभिप्राय किसी वाद्य–यंत्र के साथ होने का नहीं है। इस रुदन में भी एक लय व अभिप्राय भी होता है। इसमें प्रायः मृत पुरुष के विविध प्रिय पदार्थों का नाम ले–लेकर शोक प्रकट किया जाता है। सामाजिक रूप में मृत्यु के अवसर पर इस प्रकार लय से सधा हुआ, संगीत जैसा रूदन अन्यत्र नहीं मिलता।[1]

---

1. *मैथिलीशरण गुप्त : 'जयद्रथवध'*
2. *यह मर्सिया डॉ0 के0 तिवारी, रीडर, हिन्दी विभाग स0च0 कालेज बलिया से सुना था।*
3. *मेरिया लीश : 'डिक्शनरी आफ फोकलोर', वाल्यूम–2, पृ0 755*
4. *डॉ0 सत्येन्द्र : 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन', पृ0 208*

बुन्देलखण्ड में मृत्यु पर गाये जाने वाले गीतों का प्रचलन नहीं है। यहाँ मृत व्यक्ति का धार्मिक तथा परम्परागत विधि विधानों से संस्कार किया जाता है। मृतक के गुणों, आचरणों, उसके पारिवारिक जिम्मेदारियों का स्मरण कर स्त्रियां रोती हैं, विलाप करती हैं।

सच तो यह है कि स्त्री के लिये उसका पति ही सर्वस्व होता है। पति–मृत्यु से वह अनाथ व श्रीहीन हो जाती है। एकाकी जीवन व्यतीत करना उसके लिए दूभर हो जाता है। जीवन रस से विरत र.ड़ाया की दु:सह्य स्थिति उससे काटते नहीं बनती। एक विधवा विलाप करती हुई कहती है –

हाय हाय, मोरो खिवैया, का होनो, का हो गयो, हाय हाय मोरो पालक हा।
आंखों में नीर छोड़ गये, हम अकेलो छोड़ गये, अब का हुइये आगे नहीं हमें कछु पता।
अब तो हमें रंडापो गंवाने है, चली गई बहार, चले गये रंग, अब नें आहें वो दिन।

– बु0लो0गी0का सांस्कृतिक अध्ययन पृ0 177

इस प्रकार मृत्यु की भयंकरता से भयभीत स्त्री–पुरुष के शोकोद्गार ही बुन्देलखण्ड में मृत्युगीतों के रूप में प्रकट होते हैं।

(ख) ऋतुगीत

भारत षट् ऋतुओं (ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त, बसंत) का देश है। इन छः ऋतुओं का समाहार वर्षा, शरद तथा ग्रीष्म के अन्तर्गत हो जाता है। प्रत्येक ऋतु अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य–सुषमा, मोहकता की विशेषताओं के साथ इस धरा पर उतरती है तथा अपनी निजता से मानव–मन की एकरसता में सरसता का संचार करती है। मनुष्य जीवन प्रकृति के इस बदलते तेवर से पूर्णतः तादात्म्य स्थापित करता है। कोलाहल, कृत्रिमता, स्वार्थपरता में डूबी नगरीय सभ्यता से परे लोकजन अपने राग–विराग, हर्ष–अवसाद, को प्रकृति से सम्पृक्त कर सुख–शान्तिमय जीवन जीने का अभ्यासी जो होता है।

उषःकाल का सूर्य जब अपनी स्वर्णिम रश्मियों से धरती आकाश को सोने का बना देता है, चन्द्रमा अपनी रजत चांदनी का चतुर्दिक वितान तानता है तब गांव–देहात का दिन सोने तथा रात चांदी की हो जाती है और लोककण्ठ से प्रकृतितः स्फूर्त लोकगीतों के एक–एक बन्द सोने रूपे में नहाये होते हैं। पावस में मेघाच्छन्न आकाश अपनी नन्हीं–नन्हीं मरहमी बूंदों से जब धरती के ग्रीष्म आतपतप्त हृदय को सहलाता है और

उसके इस दुलार से धरती का रोम रोम पुलकित हो उठता है, वह अपनी सतरंगी छींटदार चुनरी के आंचल को लहराती है तब ग्राम-बधूटियां कजली, सैरा, झूला पेंग से अपने मन भावन की भावनाओं को उद्वेलित करती हैं तथा विरही विरहिणियों की आंखें सावन-भादों हो उठती हैं। शिशिर की कड़ाके की ठंड, सरसराती शीत भरी वायु जब धरा-वधू के प्राणों को प्रकम्पित करती जड़ता का विस्तार करती है तब झुग्गी झोपड़ी में कथरी-गुदरी में लिपटा, अलाव की ताप से जड़ता से लड़ता लोकजीवन भगवान की चरण-शरण में अपनी भक्ति-भावना का सुमन अर्पित करता इह तथा परलोक को सुधारता है। वसंत की मदमत्त पवन जब नवजागृति का संदेश देती है, प्रकृति-नायिका सोलहो श्रृंगार तथा बत्तीसों आभरण से सजती सवंरती है, तब अल्हड़ लोक जीवन होली, फाग, चाँचर-चैती के सतरंगी-रंग से सराबोर हो उठता है। ग्रीष्म के आतप से तप्त भाड़ में वातावरण जब भुन रहा होता है, सूर्य की प्रचण्डता से भयाक्रान्त जगत तपोवन बना होता है तब गांव-देहात के लोग रात-रात भर बेड़िनों की अंगड़ाई और दिनरी-राई की चन्दनी-शीतलता से ग्रीष्म की करालता को मात देते हैं। इस प्रकार ऋतु-पाहुंने का स्वागत-सत्कार बुन्देलीजन अपने विविध लोकगीतों के अर्घ्य-पाद्य से करते, उससे पूर्ण रूपेण तादात्म्य स्थापित करते हैं।

(अ) वर्षा ऋतु :-

आकाश में काले-मतवाले बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं। अपने मंत्र-पूरित छींटों से मृत्यु-शैय्या पर पड़ी धरती में नवजीवन का संचार कर रहे हैं। ऐसे में प्रकृति की गोद में बसे-फैले बुन्देलखण्ड के छोटे-छोटे गाँवों की अमराइयां कृषक-कन्याओं के सुमधुर गीतों से गूंज उठती हैं। एक ओर दादुर, मोर, चकोर, कोयल अपनी मीठी बोलियों से चहुंओर शहद घोलते हैं तो दूसरी ओर कजली, सैरा, रैया, पाई, बारह मासा, आल्हा आदि की दिलकश धुनें वातावरण को सजीव एवं संगीतमय बना देती हैं।

> घन घुमड़ उमड़ आये सावन के।
> सरजू तीर मोर चातक पिक, बोलत पिया मन भावन के। घन उमड़ .
> वन प्रमोद विहरत कुंजन में, पावस रितु दर सावन के। घन उमड़ ...
> झूलत नवल हिंडोलन प्यारे, अली ब्रजनारि सुहावन के। घन ....
>
> *– बुन्देली लोक-काव्य, 9*

अमराइयों में डालों पर झूला पड़ जाता है। झूला झूलती स्त्रियां झूले की पेंग की लय पर समवेत स्वर में कजली गा उठती हैं --

हरे रामा उठी घटा घनघोर बदरिया कारि रे हारी।
कौन दिशा बदरा भये कौन बरस गये मेह, बदरिया कारि रे हारी।।
अग्गम दिशा बदला भये पच्छम बरस गये मेंह, बदरिया कारि रे हारी।।

-- मोतीलाल चौरसिया : बु०लो०गी० का सांस्कृ०अ०, पृ० 61

प्रियतम परदेस में हैं। वे सावन में आने की सौगन्ध उठाकर गये थे, प्रियतमा को विश्वास है, वे अवश्य आयेंगे। इसी बीच सावन सदल बल उस पर जैसे चढ दौड़ा है। वह श्रृंगार--पटोर कर प्रिय प्रतीक्षारत है। इसकी अभिव्यक्ति इस सैरा में देखने योग्य है --

साहुन सुहानी अरे मुरली बजे, भादों सुहानी मोर, तिरिया सुहानी जबई लगे, ललुवा झूले पौर के दौर।
कजरा के काँटें लगे, बेंदी सौत की कोर, आरों के नेहा लगें मोय सालें आधीरात।
लगीं रे सुख साहुन की झिरिये, दादुर बोले पपीरा बोले बोल रहें बगियें।
रिमझिम रिमझिम मेहा बरसें, कीच मची गलियें, गोरी गोरी बैंया गुदन गुदाये हरे कांच चुरियें।
माथे बीच रवारी सोहे नथ लटकें मुतियें, सावन में पिया आवन कह गये कौल करी किरियें।
जिया बिस्वासी खबर न लीन्हीं सोच करे सखियें, लगेरे सुख साहुन की झिरियें।

-- बु० लो०का० 29

नवविवाहिता लड़कियां पहले सावन में अपने पितृ--गृह अवश्य आती हैं। वे सावन में कजलियों (भुजरियों) को लगाती हैं। भादों में उसे खोंटती तथा ताल--तलैये में उसे सिरवाती हैं। इसके गीतों से पूरा वातावरण रसमय हो उठता है। श्रावण का महीना लग गया है ऐसे में पीहर में बिसुरती एक बहन अपने भाई की राह देख रही है उसे चिन्ता है यदि वह मायके नहीं गई तो कौन कजलियों (भुजरियों) को सिरवायेगा?

साहुन महीना नीको लगे, अरें गेंवड़े भई हरयाल, साहुन में भुजरियां बै दईं, भादों में दई है सिराय।
ऐसो है कोऊ भैया धरमी, बहिन को लव है बुलाय, आसों के सहुना घर के करों, आगे कें दैहों कराय।
सोने की नादें दूधौ भरी सों भुजरियां लेय सिराय, कै जैहें तला की पार भैया रे के जेहें भुजरियां सूख।
धरी भुजरियां मानक चौक में वीरा रहे बुलाय, कैसी बहिन हटें परी बरबस लेत पिरान।

-- बु० लो०का० 26

इसी तरह राछरे का क्रम बढ़ता जाता है। इस गीत को 'रैया' या 'राछरा' कहा जाता है। बुन्देलखण्ड में स्त्री–पुरुष गोले में चक्कर लगाते, मदमत्त होकर नाचते–गाते हैं। यह बड़ा ही मर्मस्पर्शी होता है। 'पाई' जिसे लाई भी कहते हैं सैरे की लय बढ़ाने के लिए इसे गाया जाता है।

बुन्देलखण्ड में इन्हीं दिनों 'बारहमासा' गाया जाता है जिसमें बारहों महीने की प्रकृति का उतार–चढ़ाव तथा तज्जन्य जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का सुन्दर चित्रण होता है। लोक कवि एक मासा, चौमासा तथा छःमासा भी गाते, देखे सुने जाते हैं।

बरसात, बुन्देलखण्ड और वीर लोककाव्य आल्हा एक दुसरे के पूरक हैं। महोबा के राजकुमार आल्हा–ऊदल के जीवन से संबंधित श्रृंगार मूलक इस काव्य की क्रोड़ से वीरता झंकृत दिखाई देती है। बुन्देलखण्ड के लोग बरसात के दिनों में अपने घरों–चौपालों में आल्हा गाते–गवाते आनन्द मनाते हैं। ढोल की थाप पर कड़कती आवाज में अल्हैत जब इस वीरकाव्य की पंक्तियों में हुंकार भरता है तब दिल धड़कने लगता है। शिराएं कड़कने तथा भुजाएं फड़कने लगती हैं –

बारह बरस लौं कूकर जियें, और तेरह लौं जिए सियार।
बरस अठारह छत्री जियें, आगे जीवन को धिक्कार।।

(ब) शरद ऋतु :–

बरसात के समशीतोष्ण मौसम के पश्चात शरद ऋतु का आगमन होता है। धीरे–धीरे ठंडक बढ़ने लगती है और एक समय ऐसा आता है जब जड़–चेतन में यह जड़ता पैदा कर देती है। कार्तिक का महीना धार्मिक महीना माना जाता है। पूरे महीने भर स्त्रियाँ नदी सरोवरों में घाट बदल–बदल कर स्नान करती हैं डुबकी लगाती हैं। कार्तिक स्नान को 'बुड़की लेना' कहा जाता है।

धार्मिक आस्थाओं से परिपूर्ण बुन्देलखण्ड का जनजीवन कार्तिक (कतकारी) स्नान को अत्यधिक महत्व देता है। इसके कारण तथा महात्म्य पर विद्वानों ने लिखा है – डॉ० शालिग्राम गुप्त के मतानुसार कार्तिक व्रत के महात्म्य को स्पष्ट करने के लिये पद्म पुराण एवं स्कंद पुराण में सत्यभामा के पूर्व जन्म और फिर दूसरे जन्म में कार्तिक व्रत के प्रभाव के कारण कृष्ण को प्राप्त करने से संबंधित एक कथा दी गई है। सम्भवतः

अन्य कथाओं के साथ–साथ इस कथा के श्रवण से प्रभावित हो स्त्रियां कार्तिक व्रत का पालन करती हुई कृष्ण की विविध लीलाओं का मास पर्यन्त गायन करती हैं। डॉ0 विनोद तिवारी के शब्दों में पौराणिक कथा के अनुसार ब्रज कन्याओं ने कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए इस व्रत को किया था। यही परम्परा बुन्देलखण्ड में प्राप्त है। किन्तु अब यह व्रत मनोकामना पूर्ण करने वाला महान व्रत माना जाता है। अतः समस्त नारियां अत्यन्त मनोयोग से इसे पूर्ण करती हैं। डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' ने इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि कुमारियां एवं विवाहित युवतियां पूरे कार्तिक मास भर कार्तिक स्नान करती हैं। इसके करने से स्त्रियों के घर सम्पूर्ण देवताओं और ऋद्धि–सिद्धि का वास रहता है तथा समस्त पाप नष्ट होते हैं और अन्त में स्वर्ग की प्रप्ति होती है।[1] इन विचार धाराओं की अभिव्यक्ति लोकगीतों में दिखाई देती है –

कुआंरी गावैं सुघर वर पावैं, ब्याही पुत्र खिलावैं।
बूढ़ी डुकरियां बेहू गावैं, बसि बैकुण्ठ लौट नहि आवैं।।

इस प्रकार ब्राह्म मुहूर्त में स्नान कर कृष्ण की तलाश में घूमती इन स्त्रियों की भक्ति भाव रस पूरित "कतकिया 'गीतों से सम्पूर्ण वातावरण भक्तिमय हो जाता है।

सुन मुरली के टेर, अचक गई राधा, सुन मुरली की टेर
होत भोर राधा, राधा पनियां खों निकरी गऊअन ढिलन की बेर, अचक गई राधा, सुन
छौड़ो कनैया प्यारे बांह हमारी हम घर सास कठोर, अचक गई राधा, सुन...
कहा करै सास कहा करै ननदी चलौ कदम की ओट, अचक गई राधा, सुन मुरली की टेर

– हि0 सा0 का0 वृ0 इति0 (षोडस भाग) पृ0 341

कार्तिक स्नान से संबंधित विधि–निषेध का वर्णन लोकगीतों में दिखाई पड़ता है–

राई दमोदर की बलि जइऔं, बासे कूसे कौ नेम लओ है।
सद भोजन कर खइऔं, बालफरी कौ नेम लओ है।
भुटिया झुरि–झुरि खइऔं, राधा कातक जा विध नहइऔं।

कृष्ण अपनी वाक् चातुरी से राधा को मोह लेते हैं। राधा दूसरे दिन प्रातः काल कृष्ण से मिलने का वचन देती है और कहती हैं – यदि तुम्हें विश्वास न हो तो पूरे

---

1. चौमासा : वर्ष 12 अंक 36 पृ0 43 'गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त का लेख' ।

ब्रज की कीमत वाली मेरी मटकी, मोती एवं ज़री की कामदार मेरी कुड़री, पपीहा और मोर चित्रित मेरी चुनरी, मेरे बाजूबंद व हमेल रख लो। फिर भी नहीं मानते हो तो मुझे ही रख लो क्योंकि मेरी–तुम्हारी जोड़ी अनमोल है –

आ जाऊंगी बड़े भोर, दहीरा लैकें, आ जाऊंगी बड़े भोर,
नै मानों मटकी धर राखौ, सबरे बिरज कौ मोल
नै मानों कुड़री धर राखौ, मुतियन लागी कोर
नै मानों चुनरी धर राखौ, लिखे हैं पपीरा मोर
नैमानों गहनों धर राखौ, बाजूबंद हमेल
नै मानों मोई खां बिलमा लो, जोड़ी बनत अमोल
चंद्रसखी अस बस भई राधका, छलिया जुगल किशोर।

– संकलित

इस प्रकार सामाजिक जीवन में राधा की प्रतिकृति बनीं कतकारियों का कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम, अडिग विश्वास, आस्था तथा जन्म–जन्मान्तर के निश्छल संबंध की अभिव्यक्ति कतकिया लोकगीतों के विषय होते हैं जो पूरे कार्तिक मास में गाये जाते हैं।

दीपावली के अवसर पर 'दिवारी गीत' गाने की प्रथा बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। टिमकी, नगड़िया की ध्वनि के साथ अहीर जाति के लोग एक विशेष प्रकार के वस्त्रों में सुसज्जित होकर दिवारी गीत गाते तथा नाचते हैं। प्रश्नोत्तर शैली में पहेली–युक्त इन गीतों की धुनें अपना अलग स्थान रखती हैं –

बाजत आवे बांसरी, ढमकत आवें ढोल रे,
नाचत आवे ग्वाल ग्वाल को, गलियों में उड़ा रओं धूल रे।
बिन्द्रावन बंसी बजी, मोलय तीनऊं लोक रे
तनक दही के कारने, मोरी बैयां गहे अहीर रे।

– बु0का0परम्0 (प्रा0का0) पृ0 16

दीवारी प्रश्नोत्तर शैली के गीतों की यह विशेषता होती है कि इसमें गीत प्रायः पहेलियों में गाये जाते हैं। पहेली युक्त प्रथम पंक्ति गाने के पश्चात उसका उत्तर भी पहेली में गाया जाता है। यथा –

प्रश्न – कब कब धरनी नें काजर दए और कब कब करे सिंगार। हो, ओ,

उत्तर – जेठ के महीना काजर दए, असाड़ करे सिंगार। हो ओ,

– हिन्दी साहित्य का वृहद इति० (षोडस भाग) पृ० 340

इसी प्रकार दो–दो पंक्तियों को गाते नाचते ग्वाल लोग अपने मालिकों से टीका कराते तथा पारितोषिक लेते हैं। एक गांव से दूसरे गांव प्रस्थान करते समय ये दीवारी गायक प्रायः इस गीत को गाते हैं –

धनुष चढ़ाये राम ने भैया चकत भये सब भूप रे ।
मगन भई श्री जानकी जू, देख राम को रूप रे ।
आज दीवाली गालौ भैया, काल की जाने राम रे ।
बाजत आवे ढोल रे भैया, नाचत आवें गुवार रे ।

– बु०लो०गी०का सां०अ, पृ० 200

मकर संक्राति के अवसर पर ग्रामीण जन डुबकी लगाने के लिए नदी तालाब–जलाशयों एवं धार्मिक स्थलों को जाते हैं। रास्ते की थकान मिटाने के लिये ये लोग गीत गाते हैं। इन गीतों को भोला के गीत, बंबुलियां, रमटेरा, अथवा 'टिप्पे' कहा जाता है। ये गीत धार्मिक भावना से ओतप्रोत होते है –

निकर चलौ देकैं टटियां रे देकै टटियां रे मौड़ा–मौड़ी के श्री भगवान रे। निकर चलौ निकार बन अरे जोगी तो भये रे, जोगी तो भये रे कौसल्या के लक्षमन राम रे। निकर वन हो, सपरबे कों कासी जू बना दई कासी जू बना दई दरसन कौं बना दये भोला नाथ रे। सपरवें को हो ....

X X X X X X X X

भजन करो सिया रघवर के रे सिया रघबर के ऐसी देहरा तें मिलहें बारम्बार रे।

– बु०लो०गी०का सांस्कृ० अध्य० पृ० 65

इस प्रकार के भक्तिभावना युक्त लोकगीतों से लोग अपनी भक्ति भावना को अपने इष्टदेव के श्रीचरणों में समर्पित करते हैं।

माघ–शुक्ल बसंत पंचमी से फाग–गायन शुरू हो जाता है। भोजपुरी प्रदेश में इस दिन 'ताल ठोका' जाता है। अर्थात् भगवान शंकर या दूसरे देवी देवताओं के मंदिरों में

अबीर–गुलाल चढ़ाया जाता है। तथा फाग का गायन आरम्भ किया जाता है। बुन्देली फाग गायन का आरम्भ प्रायः इस गीत से होता है –

सिर बांधे मुकुट खोले होरी।
पैली फाग कासी जू में खेली, गौरी महादेव की है जोड़ी।
दूजी फाग मथुरा जू में खेली राधा कन्हैया की है जोड़ी।
तीजी फाग अवधपुर में खेली, रामलक्ष्मन की है जोड़ी।

लोक कवि अपने आराध्य देव उमा माहेश्वर, राधाकृष्ण तथा राम लक्ष्मण के फाग खेलने के पश्चात् अपने परिवार के फाग खेलने की चर्चा करता है –

चौथी फाग मायके में खेली ननद भौजाई की है जोड़ी,
पांची फाग सासरे में खेली देवर भौजाई की है जोड़ी।

– बु0लो0का0 भाग 3 पृ0 228

(स) ग्रीष्म ऋतु :–

ग्रीष्म ऋतु का प्रथम चरण सुहावना, मादक तथा आनन्ददायक होता है। बसंत को ऋतुराज कहा जाता है।, भगवान श्री कृष्ण ने "मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूना कुसुमाकरः" कह कर इस ऋतु की महत्ता का प्रतिपादन किया है। फागुनी बयार शिशिर की जड़ता को भगा कर जीवन–जगती में नई चेतना का संचार करती है नव जागृति का संदेश देती है। एक ओर पकी फसल से खेत सोने चांदी के दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर रंग–बिरंगे ताजे फूलों से प्रकृति अपना श्रृंगार करती है। कृषि प्रधान इस देश के खेत–खलिहान साक्षात् लक्ष्मी की प्रतिमूर्ति हो उठते हैं। विपन्नता कुछ दिनों के लिए तिरोहित सी हो जाती है। धन–धान्य से पूर्ण हर्षोल्लास के इस वातावरण में होली का त्योहार जैसे सोने में सुगन्ध पैदा कर देता है। रंग, गुलाल, अबीर, पुआ–पकवान, भक्ति–श्रृंगार' हंसी–ठिठोली के अद्भुत चटपटे रसमय गीतों से वातावरण उत्तेजक एवं श्रृंगारपरक हो उठता है।

यह बरजोर मौसम लोगों को मुंहजोर बना देता है। "होरी में जेठ कहै भौजी' तथा 'भरि फागुन बुढ़वा देवर लागे' जैसी उक्तियां चरितार्थ होने लगती हैं। स्त्री–पुरुष अपनी हृदय गत वासना मयी भावनाओं को सीता–राम के होली खेलने के बहाने प्रकट करने में हिचकते नहीं। सीता राम के होली खेलने का एक चित्र लोकगीत में इस प्रकार

व्यक्त हुआ है –

ऐसी होरी में करे बरजोरी पकर रंग बोरी लला।
मुखमल रोरी बइयां मरोरी, चोली के बन्द छोरी, ताज दई टोरी भला ।
ऐसी होरी में करे बर जोरी, मिथिला गोरी राज किशोरी
होली खोले गोरी करे झझकोरी लला।
ऐसी होरी में करे बरजोरी, औचक आवे, पकर नचावे,
हंस अखियां मटकावे, कर चितचोरी लला।
ऐसी होरी में करे बरजोरी, रस निधि प्यारो, राजदुलारो
रघुवर चित्त बलिहारो, सिया संग कोरी सला।
ऐसी होरी में करे बरजोरी लला।

– बु0 लो0का0 (भाग–3) पृ0 20–208

फाग के इन गीतों में नायक–नायिकाओं के मांसल सौन्दर्य का विकृत चित्रण ही नहीं हुआ है वरन् उनके देह यष्टि का स्वस्थ्य तथा सहज आलंकारिक वर्णन भी हुआ है।. गोरी के सलोने गोरे गाल पर काले तिल की उत्प्रेक्षा की छटा इस लोकगीत में दर्शनीय है –

जो तिल लगत गाल को नीको, मन मोहत सब ही को।
कै पूरन पूनो के सस में, कुरा जमौ रजनी कौ।
गरल कंठ पै आय बिराजो, कै पत पार्वती कौ।
कै निरमल दरपन के ऊपर, सुमन धरौ अरसी कों।

– डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव : बुन्देलखण्ड लो0सा0, पृ0 128

सांवरिया छैला ने हरे बांस की बनी नई पिचकारी में केशर मिश्रित रंग भर कर नई नवेली दुल्हन पर सामने से छोड़ दिया है। उसकी पूरी साड़ी रंग से सराबोर हो गई है। सास, ससुर, जेठ एवं प्रिय–पति जागेंगे तो क्या कहेंगे? अवश्य ही डांट पड़ेगी! लोक लज्जा में गड़ी रंग न डालने की बिनती करती, कुलबधू कह उठती है –

मों पे रंगा ने डारो सांवरिया मो पे रंगा न डारो सांवरिया
मैं तो ऊंसई अतर में भींजी लला, मो पे रंगा ...

काहे की रसरंगा बनाई, काहे की पिचकारी लला
केसर की रस रंगा बनाई, हरे बॉस पिचकारी लला
भर पिचकारी मोरे सम्मुख मारी, भींज गई कुल सारी लला।
जो सुन पाहैं ससुरा हमारे, आउन ने दैहैं बरवरियों लला।
जो सुन पाहैं जेठ हमारे, घुसन न दैहै रसोइयों लला
जो सुन पाहैं सैया हमारे, चढ़न न दैहै सिजरियां लला।
मोंपे रंगा ने डारो सांवरिया।

– बु0 लो0का0 (भाग–3) पृ0 225

होली में पुरुष ही स्त्रियों से बरजोरी, छेड़खानी, या मनमानी करते होंए ऐसा नहीं है। दांव लगने का है। रसिया आज दांव पर चढ़ गया है अकेला स्त्रियों के हाथ लग गया है। एक स्त्री दूसरे से कहती है आज इनको लहंगा पहनाओं, इनकी आंखों में काजल, मांग में सिन्दूर, माथे पर बिन्दी लगाओ तथा पांवों में घुंघरु, अंगुलियों में बिछुवा पहनाकर पूरी तरह इन्हें स्त्री बना दो जिससे ये पुनः हमसे मनमानी, छेड़खानी न कर सकें –

रसिया कों नार बनाव गोरी, रसिया खों
सालू सरद कसब को लैंगा, कर दयें कजरा, ऊपर दयें सिंदरा
रसिया को नार बनाव गोरी, रसिया खों, बैयां बरा बाजूबंद सोकें,
माथे पे बेंदी लगाव गोरी, रसिया खों नार ....
पाहुन घुंघरू कलई के देहर, पाहुन तो बिछिया पैनाव गोरी,
रसिया खों नार, सालू सरद कसब को लेंगा
दरकन चोली, पैनों गोरी, रसिया खों नार ....

– बु0लो0का0 (भाग–3) पृ0 224–225

होली के गीत कई प्रकार के होते हैं। बुन्देलखण्ड में फागें, होली की साखें, लेद, स्वांग, ख्याल, रसिया तथा भक्ति–श्रृंगार के मणिकांचन योग परक ईसुरी, गंगाधर, ख्याली, खूबचन्द आदि लोककवियों की चौकड़याऊ, छंदयाऊ, डिड़खुरयाऊ, साखी इत्यादि फाग गीत रूप प्रचलित हैं। लोक कवि ईसुरी चौकड़याऊ फाग के जनक कहे जाते हैं। इनमें प्रायः चार अथवा पांच कड़ियाँ होती है। एक चौकड़याऊ फाग का नमूना दृष्टव्य है –

बखरी रहियत है भारे की, दई पिया प्यारे की।

कच्ची भींत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।
बे बंदेज बड़ी बेबाड़ा, जीमें दस दुआरे की।
किवार किवरिया एकऊ नइयां, बिना कुंची तारे की।
ईसुर चाय निकारौ जिदना, हमें कौन उबारे की।

– हि०सा०का०वृ० इति० (षोडस भाग–1) पृ० 337

बैसाख–ज्येष्ठ के सूर्य ने प्रचण्ड ताप से बुन्देलखण्ड जब भाड़ बन जाता है, पृथ्वी पंचाग्नि साधना करती सी जान पड़ती है तब हमारे गांव–देहात रात रात भर बेड़िनों के कामुक अंग–संचालन परक नृत्यों तथा श्रृंगारिक गीतों की छांव में भयंकर गर्मी को चुनौती देता सा जान पड़ता है। अश्लीलता परक इन गीतों के बोल होते हैं –

बर्फी हो गये गाल, जोबन मगद कैसे लड्डुआ
अथवा
जोबन ते जब रूप के गाहक ते सिंसार
जोबन ढुलक गये जब सखी, सो घट गये मान गुमान।

– बु०लो०गी० का सांस्कृ० अध्य० पृ० 65

(ग) व्रत तथा उपासना संबंधी गीत

धर्म, भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। मनुष्य का नैत्यिक जीवन धर्माधारित है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है धारण करना। अर्थात् जो समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करे वही धर्म है। भारतीय तत्व चिन्तन और आध्यात्मिक–धार्मिक ग्रन्थों में धर्म की मीमांसा की गई है। महाभारतकार ने धर्म को रूपायित किया है। उसका कहना है कि जो धारण करने की योग्यता रखता है वही धर्म है। धर्म प्रजा को धारण करता है –

धारणाद् धनीमत्याहुधुर्मेष विधृता प्रजाः।
या स्याद् धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।[1]

वहीं, इसके कतिपय लक्षणों को निर्दिष्ट करते हुए कहा गया है कि मनसा, वाचा, कर्मणा

---

1. *महाभारत : 'शान्तिपर्व', 109/11*

से समस्त प्राणियों के प्रति अद्रोह का भाव रखना, उन पर दया करना तथा उन्हें दान देना यही सज्जनों का सनातन (शाश्वत) धर्म है –

अदोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहःश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।।[1]

मनुष्य–जीवन का उद्देश्य पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति है। वह सत्कर्मों से धर्म, धर्म द्वारा अर्थ–लाभ, सम्यक् काम तथा जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति को प्राप्त करता है। अतः मोक्ष तत्व नैत्यिक जीवन में सम्यक् धर्माचरण करने से ही प्राप्त होता है। महर्षि मनु ने धर्माधारित प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए इनकी संख्या दस निर्धारित की है –

धृतिः क्षमा दयोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[2]

पद्मपुराण में भी धर्म के दस लक्षण–ब्रह्मचर्य, सत्य, पंचमहायज्ञ, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, शान्ति और अस्तेय बताये गये हैं। यथा –

ब्रह्मचर्येण सत्येन मखापंचक वर्तनेः।
दानय नियमेश्चापि श्चनान्त्या शौचेन वल्लभ।।
अहिंसया शुशान्त्या च अस्तेयेनावि वर्तनेः।
एतैर्दशभिरंगैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत्।।[3]

इस प्रकार सर्वसमर्थवान ईश्वर की परमसंचालिका शक्ति ही इस निखिल ब्रह्माण्ड को धारण कर सकती है और उस परम शुद्ध–बुद्ध ब्रह्म द्वारा निर्धारित न्याय नियमों का पालन करना ही धर्म है। इसीलिए समस्त धार्मिक ग्रन्थों तथा तत्व चिन्तकों ने मनुष्य जीवन में उस परमतत्व की प्राप्ति का मूल साधन धर्म को माना है।

भारतीय लोक–जीवन ईश्वर के प्रति समर्पित तथा धर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान

---

1. *वही : 'वनपर्व', 297/35*
2. *मनुस्मृति : 6/92*
3. *'पद्म पुराण' : द्वितीय खण्ड, अध्याय 22/46–47*

है। वह वेद–पुराण, औपनिषदिक, ब्रह्मतत्व के सैद्धान्तिक पक्ष की जटिलताओं से दूर, बिना तर्क–वितर्क की कसौटी पर कसे, परमात्मा के व्यावहारिक तथा परम्परानुमोदित स्वरूप से अपना भावात्मक संबंध स्थापित करता है। इसी प्रकार वह धर्म के शास्त्रीय, मौलिक तथा यथार्थ पक्ष से परे श्रृद्धा–विश्वास के साथ उसके लोकीकृत एवं लोकस्वीकृत रूप को ही ग्रहण करता है। यह अलग बात है कि लोक–जीवन में व्याप्त ईश्वर व धर्म के प्रति यह अटूट श्रृद्धा–विश्वास कहीं–कहीं पर घोर अन्धविश्वास की श्रेणी में पहुंच गया है, फिर भी भावात्मक धरातल पर इसमें कोई विभेद नहीं है। लोकजीवन में शास्त्र सम्मत देवी–देवताओं, की भी पूजा की जाती है। राम, कृष्ण, शिव, गणेश, हनुमान, दुर्गा आदि ईश्वरावतारों के साथ कंकड़, पत्थर, समाधि–मजार, टीला–चबूतरा, भैरव, हरदौल लाला, ब्रह्मबाबा, सती माई, कारसदेव आदि की भी पूजा की जाती है। जल स्रोतों, पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों, अधिभौतिक शक्तियों, भूत–प्रेत, जिन्नात, सांप, बिच्छू, गोजर, गोबर–धूरा, घास–पांत सभी इनके आस्था–विश्वास के केन्द्र हैं। सच पूछा जाय तो जीवन–जीने के जितने साधन हैं, उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा करना तथा उनसे पूज्य भाव रखना लोक जीवन की विशेषता है यहां हल–जुंआ, ऊखल–मूसल, फावड़ा–कुदाल, चूल्हा–चक्की, सिल–लोढ़ा, बर्तन–भाड़ा, टिमकी–नगाड़ा, ढोलक आदि की समयानुसार पूजा–प्रतिष्ठा की जाती है अतः "सीय राम मैं सब जग जानी" की उक्ति लोकजीवन में प्रत्यक्षतः स्वीकार्य तथा चरितार्थ होते देखी जाती है।

धर्म प्रधान इस देश के लोकजन की धार्मिक भावनाएं उनके व्रत–त्योहारों पूजा–उपासनाओं में दिखाई देती है। व्रत–पूजा–उपासना का वाच्यार्थ है – किसी पुण्य तिथि को पुण्य प्राप्ति की कामना से, ईश्वर या किसी देवी–देवता के प्रति दृढ़ निश्चय के साथ अनन्यभाव से अपने को समर्पित करना। और इसका मूल उद्देश्य है इन्द्रियां–निग्रह। लोकजीवन ईश्वर और धर्म को परम्परानुमोदित रीतियों–नीतियों, आस्था–विश्वासों के साथ ग्रहण करता है। यहां तर्क–वितर्क अथवा एतद्विषयक मानसिक व्यायाम का कोई स्थान नहीं होता। वरन् समस्त शोभन–अशोभन, करणीय–अकरणीय कर्मों को पाप पुण्य के रूप में देखा जाता है। पाप कर्मों से बचना और पुण्य कर्मों को करना लोकजीवन का उद्देश्य होता है। और यही पुण्य प्राप्ति की कामना उसे व्रत–पूजा उपासना के प्रति प्रेरित करती है। लोकजन के धर्म–कर्म, व्रत–उपवास का सीधा संबंध सुखमय जीवन बनाना, पुण्य कमाना एवं स्वर्ग प्राप्त करना अर्थात् मुक्त हो जाना है।

बुन्देलखण्ड के जनजीवन में तीर्थ–व्रत, पूजा–उपासना, त्योहार–मेलों की भरमार है। उनके तैंतीस करोड़ देवी–देवता हैं। प्रतिपदा से अमावस्या व पूर्णिमा तथा चन्द्रवार से रविवार सभी तिथि–वार किसी न किसी देवी–देवता से संबंधित हैं अर्थात वर्ष के तीन सौ पैंसठों दिन व्रत–उपासना वाले हैं। यहां पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में धार्मिक भावनाएं प्रायः अधिक दिखाई देती हैं। फलतः व्रत–उपासना में वे पुरूषों से अधिक बढ़–चढ़कर हिस्सा लेती हैं। वे प्रायः पति,पुत्र तथा परिवार की मंगल कामना के लिऐ व्रत करती हैं। इन व्रत–त्योहारों, पूजा–उपासनाओं के जैसे अलग–अलग लोक स्वीकृत विधि–विधान है, वैसे ही इनके अलग–अलग लोकगीत भी हैं। इन्हें लोकगीत रुपी मंत्रों, परम्परागत लौकिक रीतियों–नीतियों से वे व्रत–त्योहारों को करतीं तथा उनमें अन्तर्भूत फलितार्थ को अपने अखण्ड विश्वास से प्राप्त करतीं हैं। इन व्रतों उपासनाओं के महात्म्य संबंधित कथा–कहानियों को यहां कहने–सुनने की प्रचलित परम्परा है। ये कथा–कहानियां प्रत्येक व्रत के लिए अलग–2 होती हैं। बहरहाल, बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में इन अनेक व्रत–त्यौहारों में कुछ ऐसे व्रत–त्यौहार हैं जो अत्यधिक प्रचलित व विशेष महत्व के हैं। वे इस प्रकार हैं –

मास–तिथि	–	व्रत–त्योहार
चैत्र कृष्ण तृतीया	–	गनगौर
चैत्र शुक्ल पड़वा से नवमी	–	नवदुर्गा
चैत्र शुक्ल. नवमी	–	रामनवमी
वैशाख शुक्ल तृतीया	–	अखतीज (अक्षय तृतीया)
ज्येष्ठ शुक्ल दशमी	–	गंगा–दशहरा
ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी	–	निर्जला–एकादशी
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा	–	राखी–पूनों, सलूनो (रक्षा–बन्धन)
भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा	–	भुजरियां
भाद्रपद कृष्ण षष्ठी	–	हरछठ
भाद्रपद शुक्ल तृतीया	–	हरतालिका–तीज
भाद्रपद शुक्ल पंचमी	–	रिस–पंचमी (ऋषि–पंचमी)
भाद्रपद शुक्ल सप्तमी	–	संतान–सातें
भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी	–	अनन्त–चौदस
आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी	--	नवदुर्गा (न्यौरता)

आश्विन शुक्ल दशमी	–	दशहरा
सम्पूर्ण कार्तिक–मास	–	कार्तिक–स्नान
कार्तिक–कृष्ण–चतुर्थी	–	करवा–चौथ
कार्तिक कृष्ण अष्टमी	–	अहोई–आठें
कार्तिक कृष्ण अमावस्या	–	लक्ष्मी–पूजन (दीपावली)
कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा	–	गोवर्धन–पूजा
कार्तिक शुक्ल द्वितीया	–	भइया–दूज (यम–द्वितीया)
कार्तिक–पूर्णिमा	–	तुलसी–पूनो (तुलसी–विवाह)
पौष–14 जनवरी (प्रतिवर्ष)	–	मकर–संक्रान्ति
माघ शुक्ल पंचमी	–	बसंत–पंचमी
फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी	–	शिव–रात्रि
फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा	–	होलिका–दहन
चैत्र प्रतिपदा	–	होली

बुन्देलखण्ड के कतिपय व्रत एवं त्योहारों तथा इन अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीतों का विवेचन इस प्रकार है –

1. गनगौर :–

चैत्र शुक्ल तृतीया को मनाया जाने वाला 'गनगौर' लड़कियों के लिए खेल–पूजा तथा विवाहिताओं के लिए व्रत है। सौभाग्यवर्धक इस व्रत में स्त्रियां निराहार रहती हैं। मध्याह्न में स्नानादि से पवित्र होकर नये वस्त्र पहनती हैं। नदी–तालाब की पवित्र मिट्टी से शंकर पार्वती की प्रतिमा बनाकर प्रचलित विधि–विधान से उसकी पूजा करती हैं। गौरा देवी को सौभाग्य सूचक ईंगुर, बिन्दी, महावर, चूड़ी, नया वस्त्र इत्यादि अपर्तित करने के पश्चात् प्रसाद स्वरूप सिंदूर आदि अपने माथे पर लगाती हैं। पूजा में उपयोग किए गये हल्दी मिश्रित जल को दूब, अकौआ के फूल से वहां उपस्थित सधवा स्त्रियों पर छिड़ककर उनके अचल–एहबात की कामना करती हैं। शिव–पार्वती को भोग लगाए पकवान खाती हैं। पूजा के समय शिव–पार्वती के महात्म्य संबंधी परम्परागत कथा–कहानियां कहती व सुनती हैं तथा अपने लोकगीत–मंत्रों से उनकी अभ्यर्थना करती हैं –

पार्वती तोरो सइयां मै देख आई, पार्वती तोरो सइयां हो मां।
बिच्छू ततैयन के कुण्डल पहरें, जटा पे गंगा लहरइयां मै देख आई।

अंग भभूत बगल मृग छाला, सो डम–डम–डमरू बजइयां मैं देख आई।
अस्सी बरस के भोले बाबा, पार्वती लरकइयां मैं देख आई।
डूड़ा बैल की करत सवारी, धमना चढ़ो है कनैया मैं देख आई।

– *संकलित*

2. नौ–दुर्गा (देवी–माता) :–

भक्त वत्सला देवी शक्ति स्वरूपा हैं। मातृरूपा है! ऋग्वेद के देवी–सूक्त, मार्कण्डेय–पुराण, देवी भागवत् से लेकर अधुनातन भारतीय धर्म ग्रन्थों, तन्त्र शास्त्रों में देवी के महात्म्य एवं पूजा–उपासना की प्रतिष्ठा हुई है। पूरब में कामरूप की कामाख्या देवी, पश्चिम में काश्मीर की वैष्णव देवी, उत्तर में ज्वाला तथा सुदूर दक्षिण में कन्या–कुमारी शक्ति–पीठों के साथ ही सम्पूर्ण भारत में देवी की किसी न किसी रूप की प्रतिष्ठा यह द्योतित करती हैं कि प्राचीन काल से यहां शक्ति की उपासना होती रही है। शास्त्र–सम्मत देवी के नौ रूपों का क्षेत्रीय आधार पर लोकीकृत रूप तथा नामकरण यह सिद्ध करता है कि जन–मन में देवी के प्रति कितनी श्रद्धा तथा विश्वास है।

बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में मातृकाएं–शीतला माता, बड़ी माता, छोटी माता, महामाई, हुलकी माता, अछरु माता, संकटा–माता, करौली की कैला देवी, नगर कोट की ज्वाला, नरी–सेंमरी की देवी, जालपा देवी आदि की प्रतिष्ठा है।

वर्ष में वासंतिक तथा शारदीय नवरात्रि का विशेष महत्व है, जो क्रमशः चैत्र तथा आश्विन मास में होती है। इन दिनों स्त्री–पुरुष समान रूप से देवी का व्रत उपवास करते हैं। वासंतिक नवरात्र चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक किया जाता है। प्रतिदिन देवी–उपासना के साथ ही रात्रि–जागरण किया जाता है। गांव–देहात के लोग देवी के विभिन्न मंदिरों में दर्शनार्थ जाते व यात्राएं करते हैं शीतला माता की भी पूजा इसी समय की जाती है। 'चेचक' की बीमारी को शीतला माता कहा जाता है, भयंकर ताप की इस बीमारी को शीतला कहना यह इंगित करता है, कि लोक–जन कुरुप तथा भयंकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। इस भयंकर छूत तथा ताप की बीमारी को कदाचित् इसी कारण शीतला माता के नाम से पुकारने की परिपाटी चली हो। देहात के लोग इस बीमारी में औषधीय उपचार नहीं करते बल्कि रोगी को माता की कृपा पर छोड़ देते हैं। इस समय घर को साफ–सुथरा रखकर धूप, गोगन लोबान

आदि जलाया जाता है तथा कीटाणु–विषाणु नाशक नीम, दवना, मड़ुआ, गुड़हल आदि से रोगी को झाड़ा (सहलाया) जाता हैं संक्रमित घर के लोग नये वस्त्र, जूते नहीं पहनते, बाल नहीं कटवाते, भोजन में हल्दी का प्रयोग नहीं करते। छौंक–बघार व तलना–भुनना भी नहीं करते हैं। प्रतिदिन रात को माता की प्रशंसा में भजन, भेंटें व 'अंचरी' गाई जाती हैं। लोगों में ऐसी मान्यता एवं विश्वास है कि इन विधि–निषेधों के द्वारा माता प्रसन्न होती है और रोगी अति शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करता है।

दोनों नवरात्रों में माता के नाम पर देवी मढ़िया पर या घर पर 'जवारे' बोए जाते हैं। प्रतिपदा के दिन मिट्टी के घड़ों पर मूंज व कांस की मोटी कुडरी डाल कर उस पर अथवा खप्पर में गेहूँ या जौ बोए जाते हैं। जौ बोने के कारण कदाचित् इसका नाम 'जवारे' पड़ा है। छोटी जातियों में जवारे बोने का प्रचलन अपेक्षतया अधिक दिखाई देता है। ज़वारे के स्थान पर अखण्ड दीप जलाया जाता है। तथा प्रतिदिन भगतें व देवी के गीत गाए जाते हैं। नवमी के दिन सजी–धजी स्त्रियां अपने सिर पर पीले–पीले जौं के लहराते अंकुरों को लेकर गाजे–बाजे के साथ नृत्य करती हुई देवी के मंदिर में जाती है। पूजा–आरती के पश्चात जवारे नदी या तालाब में सिरा दिये जाते हैं।इस अवसर पर भगत, ओझा, गुनी भाव खेलते हैं। भगतें, इमाहे, जस तथा बीरोठ गाई जाती है। इस सब का सम्मिलित रूप वातावरण को भाव–भक्ति पूर्ण एवं रहस्यमय बना देता है।

देवी का दर्शन सहज नहीं। उनकी कृपा–कटाक्ष को पाने के लिए भक्त को कठिन मार्ग पर चलना है पग–पग पर उसके धैर्य की परीक्षा ली जाती है प्रतिरोधी शक्तियां मार्ग में तरह–तरह की बाधाएं खड़ी करती हैं। दर्शनाकांक्षी मन अपनी असमर्थता का इज़हार मां से करता है –

माई की मड़ की बारह द्वारी, कौन विध दरसन पाऊं हो मां।
पहली द्वारी में बैठी भागवत, दूजी में रनिया मान की मां।
तीजी द्वारी में बैठे नादिया, चौथी में बैठे महादेव हो मां।
पंचऊ द्वारी में पाचऊं पान्डवा, छटये बिराजे नारायण हो मां।
सतई द्वारा बैठी जगत देव, अठएं ध्वजा फहराय हो मां।
नमई द्वारी में सिंह पलाने, दसयें गड़े तिरसूल हो मां।
ग्यारई द्वारी में चौसठ जोगिन, बारहें बिराजी आप हो मां।

– संकलित

भक्त वत्सला मां उपासिका की प्रार्थना पर प्रसन्न हो उठती है। स्वयं चलकर उसके आंगन में पहुंच जाती हैं, सेविका मां के चरणों में झुककर प्रणाम करती है। अपने आराधिका के दूध–पूत और भरे–पूरे परिवार को देखकर मां हर्षित होती है। प्रसन्नवदना आराधिका मां का यथाशक्ति यथोचित् सत्कार करती है।

यथा –

माई मोरे अंगना आई, निंहुर के पइयां लागू..........
काहा देख मइया अंगना आई, काहा देख मुस्क्यानी, निंहुर के..........
दूधा देख मइया अगंना आई, पूता देख मुस्क्यानी, निंहुर के..........
चन्दन पटली बैठत डारो, दुधुअन चरन पखारों, निंहुर के...........
ताती जलेबी दूधा के लडुआ, मइया मोरे जेवन आईं, निंहुर के........
सोने के गडुआ गंगाजल पानी, मइया मोरे अचवन आई , निंहुर के......

– संकलित

'मालिन, मां शीतला की विशेष सेविका समझी जाती है। 'माता' निकलने' पर रोगी की सेवा सुश्रूषा के लिए इसको बुलाया जाता है। इसकी सेवा से रोगी शीघ्र निरोग हो जाता है, ऐसा लोक में विश्वास है। एक लोकगीत में मालिन द्वारा मां की पूजा के लिए नन्दन–वन से फूल चुनने का स्वाभाविक चित्रण हुआ है –

सजो मलिनिया फुलवा ल्याओ नदन बन कें बीरा ओई बन कें
ऊंची नीची घाटिया मइया भीकम उजार नदन बन के
अरे छिंगरी पकर लंगरे लै जाएं नंदन बन के, बीरा..........
छोटी–छोटी मालन बिटिया लम्बे–लम्बे केस नदन बन के
अरे फुलवा बीने रे मरद के भेस नदन बन .के, बीरा..........
बिन–बिन फुलवा लगाईं रे रास नदन बन के
अबरे उड़ गए फुलवा सो रह गई बास नदन बन के, बीरा........
फुलवा बिनत भई दुफरिया नदन वन के
अरे फुलवा बिनत मोई छि, गरी पिराय नदन वन के, बीरा........
जो मैं जनती लंगरवा मोरे जेठ नदन वन के
काढ़ लेती घुंघटा संवार लेती केस नदन वन के, वीरा.......

बिन–बिन फुलवा रे हो गई रात नदन वन के
अरे आज के बसेरो मोरी माई के दुआर नदन वन के
वीरा ओई वन के, ...

— *संकलित*

शीतला मां को झूला झूलना अति प्रिय है। छोटी जातियों में मां को पलना भेंट करने की परम्परा है। अखैबर, (अक्षयवट) नीम, खैर, चन्दन, लौंग आदि पेड़ों की डाल पर पड़े झूले पर मां को झूलना अच्छा लगता है। झूला संबंधी गीत की एक झांकी यहां दर्शनीय है –

मइया झूला अखैबर पालना हो मां, अरे डरे हैं लौंग की डार रे, मइया.
ओ मइया, काहे के पलना बने हो मां, अब काहे की लागी डोर रे माई.
पूरब झूला, पच्छिम झूला, उत्तर झूला, दक्खिन झूला............
झूला होबे अर र र, झूला होबे सर र र, झूला लौंग की डार रे, मइया.
मइया चन्दन के पलना बने हो मां, अब रेसम लागी डोर रे मइया.....
मइया को जो पलना झुलियो हो मां, अब को जो झूलावन हार रे मइया.
देवी पलना झुलियो हो मां, ओ अब लंगुरा झुलावन हार रे, मइया......
मइया सुमर–सुमर जस गा लिएं हो मां, अब नोहरें छुएं दोई पायं रे मइया।

— *संकलित*

मां के गीतो में 'लांगुरिया का विशेष स्थान है! 'लंगुरा' देवी का प्रिय पुत्र है, ऐसी लोक में धारणा है! देवी के गीतों के साथ लंगुरिया गाना ब्रज क्षेत्र की विशेषता है। बुन्देलखण्ड के भिण्ड, मुरैना, भदावर क्षेत्रों में स्त्री–पुरुष देवी–दर्शन जाते समय लंगुरिया बड़ी मस्ती तथा श्रद्धा–विश्वास के साथ गाते देखे जाते हैं। एक लंगुरिया गीत इस प्रकार है –

देवी मइया के भवन में घुटुरुन खेलें लांगुरिया
खेलें लागुरिया तुमाई सौं खेलें लांगुरिया
छोटी सी किरपान हाथ में छोटों सो तिरसूल
बिफर–बिफर के लांगुर खेलें नभ सें बरसे फूल
देवी तेरी गैल में एक लम्बो पेड़ खजूर
ता पर चढ़कर लांगुर हेरें मइया कितनी दूर।

— *संकलित*

देवी इच्छित फलदायनी है। वे कोढ़ी को काया, निर्धन को माया, बांझिन को पुत्र अर्थात् रन–बन में सर्वत्र विजय प्रदायिनीं हैं। अत्एव लोकजीवन में जितने देवी–देवताओं संबंधी गीत प्रचलित हैं उनमें सर्वाधिक संख्या देवी के गीतों की है।

3. रामनवमी :–

चैत्र शुक्ल नवमी दिन भौमवार मध्यान्ह में रामजन्म हुआ था। राम जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में स्त्रियां व्रत रखती हैं तथा राम–जन्म से संबंधित गीत गाती हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह लोकगीत प्रायः 'सोहर' तथा 'चैता' लोकधुनों में गाए जाते हैं।

बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में श्री राम की भक्ति धरा का अजस्र प्रवाह चिरंतन काल से हो रहा है। इतिहास साक्षी है कि कुंवरि गणेश ने अयोध्या से 'रामलला' के विग्रह को लाकर ओरछा में प्रतिष्ठापित किया तथा ओरछा–राज्य 'रामराजा' को सौंप दिया। श्रीराम दिन भर ओरछा तथा रात में अयोध्या में रहते हैं , ऐसी जनश्रुति है। रामकाव्य के अमर गायक तुलसी, केशव तथा मैथिली शरण गुप्त इसी धरती की देन है और विश्व–विश्रुत 'रामचरित मानस', 'रामचन्द्रिका' तथा 'साकेत' इस बुन्देली माटी की सुगन्ध। अत्एव लोकमानस में रचे बसे श्री राम के जन्मोत्सवोपलक्ष्य में स्त्रियां व्रत रखती हैं तथा लोकगीत गाती हैं –

दसरथ जू की रनिया, रामा लयं कइयां।
कौना के रामा भये कौन के लछमनियां।
कौसिल्या के रामा भये सुमित्रा के लछमनियां।
कौन बेरा रामा भये कबै लछमनियां।
संजा बेरा रामा भये भोरैं लछमनियां।
कौन धरी राम भए कौन घरी लछमनियां।
शुभ घरी ललन राम भये भूल परे लछमनियां।

– संकलित

महाराज दसरथ के यहां राम, लक्षमण, भरत, शत्रुघ्न पैदा हुए है उनकी माता तथा उनके जन्म समय का कितना सुन्दर चित्रण और लोकचित्र में उनके प्रति कितना उछाह है इस लोकगीत में देखते ही बनता है। इस व्रत पर स्त्रियां रामचरित्र के अनेक प्रसंगों से संबंधित लोकगीतों को गाती हैं। कुछ चित्र यहां दर्शनीय है।

इस संसार में सुख के साथी तो सभी होते हैं, दुख में कौन किसका साथ देता है? इस उक्ति को अयोध्यावासी झुठलाते से वन–गमन करते राम से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु हमें भी अपने साथ वन में ले चलो! इससे संबंधी एक 'बिलवारी गीत देखने योग्य है –

रथ ठाड़े करो रघुवीर तुमाए संगै, हमई चलै बनवासा खों
काए के रथला बने तुमारे, काए के डरे बुनाव
चन्दन रथला बने हमारे, रेसम डरे बुनाव
को तुमरे रथला में बैठो, को है हांकन हार
जनक दुलारी रथ में बैठीं, राम हैं हांकन हार।

– *संकलित*

जनकपुर की दुलारी, अयोध्या की प्यारी सुकुमारी सीता, कंटकाकीर्ण वनपथ पर चलते निढाल हो जाती हैं। भूखी–प्यासी थकान से चूर सीता द्विवर लक्ष्मण से धीरे–धीरे चलने का आग्रह करती हैं –

धीरें चलो मैं हारी लछमन, धीरें चलो मैं हारी
एक तो हारी दूजे सुकमारी, तीजे मजल की मारी
संकरी गलियां काट कटीली, फारत है तन सारी
गैल 'चलत मोय प्यास लगत है, दूजे पवन प्रचारी
धीरें चलो मैं हारी लछमन, धीरे चलो मैं हारी।[1]

4. अखतीज :–

अखतीज, अक्ति, अकती, अक्षय तृतीया या युगादि तृतीया व्रत वैशाख शुक्ल तीज को मनाया जाता है। सतयुग का प्रारम्भ इसी तिथि को हुआ, माना जाता है। देवाधि देव महादेव ने कामदेव की पत्नी रति को अनंग रूप में पति का वरदान इसी तिथि को दिया था। अतएव सौभाग्यवती स्त्रियां अपने पति की दीर्घायु की कामना हेतु इस व्रत को करती हैं। कुमारिकाएं अपने–अपने भाइयों, पिता, काका, बाबा एवं गांव के लोगों को पीपल के पत्ते तथा अन्न का 'सगुन' बांटती हैं। अतः कुमारी और विवाहिताओं दोनों

---

1. *डॉ० बलभद्र तिवारी, 'बुन्देली लोक काव्य', भाग–2, पृ० 147।*

में समान रूप से इस व्रत की प्रतिष्ठा है। इस व्रत में मिट्टी की पुतरिया वट–वृक्ष के नीचे रखकर वे पूजा करती हैं व गीत गाती हैं –

अकती खेलन कैसें जाऊंरी, बर तरें मेले लिबउआ
पैले लिबउआ मोरे ससुरा जी आए, ससुरा के संग नईं जाऊं री, बर तरें.
दूजे लिबउआ मोरे जेठा जी आए, जेठा के संग नईं जाऊं री, बर तरें.
तीजे लिबउआ मोरे देवरा जी आए, देवरा के संग नईं जाऊं री, बर तरे
चौथे लिबउआ मोरे राजा जी आए, राजा के संग चली जाऊं री, बर तरें

– *संकलित*

5. कजरियातीज (हरियाली तीज) :–

अखण्ड सौभाग्य प्रदायी यह व्रत कहीं श्रावण शुक्ल तृतीया और कहीं भाद्रपद शुक्ल तृतीया को रखा जाता है। क्षेत्रीय विशेषताओं एवं मान्यअवधारणाओं के कारण इस व्रत के विविधरूप तथा विविध नाम लोक में प्रचलित हैं। इसे 'स्वर्ण–गौरी–व्रत', हरितालिकातीज, हरियालीतीज, कजरिया तीज आदि कहते हैं।

मूलतः यह गौरीशंकर का व्रत है। शिव पार्वती के परिणय से संबंधित होने के कारण ही इसे 'स्वर्ण–गौरी–व्रत' कहा जाता है। पौराणिक कथा के अनुसार पिता दक्ष प्रजापति की शिव अवमानना से क्रुद्ध होकर सती ने स्वयं को यज्ञकुण्ड में भस्म कर डाला था। राजा हिमाचल के यहां सती का पार्वती–रूप में पुनर्जन्म हुआ। पिता किसी दूसरे से विवाह न कर दें, अतः पार्वती सखियों के सहयोग से गहन वन में जाकर शिवाराधना करने लगीं। उनकी कठिन तपस्या तथा एकनिष्ठ प्रेम से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने भाद्रपद शुक्ल तृतीया को दर्शन तथा उनको अपनी पत्नी बनाने का वरदान दिया। चूंकि पार्वती सखियों द्वारा अपहृत होकर जंगल गईं थीं इसलिये इस व्रत का नाम हरिता+आलिका 'हरितालिकातीज' पड़ा। चूंकि सावन–भादों में चारों ओर हरितिमा का वितान तन जाता है। धरती शस्य श्यामला की संज्ञा से अविहित होती है ऐसे हर्षोल्लास पूर्ण वातावरण में मनाये जाने के कारण कदाचित् इस व्रत का नाम 'हरियालीतीज' रखा गया।

सावन–भादों में गाये जाने वाले गीतों को प्रायः कजरी–धुन में गाते हैं। मीरजापुर की कजरी का विशेष स्थान है। कजली की उत्पत्ति तथा प्रचलन के संबंध में श्री कमलाकर तिवारी ने लिखा है – दादू राय किसी राजा ने राज्य में पड़ने वाले भयंकर अकाल के

निवारण हेतु देवाराधन किया था। फलस्वरूप पानी बरसा और प्रजा सुखी हो गई। इससे वह राजा प्रजा में इतना लोकप्रिय हो गया कि उसके मरने के बाद, जब रानी भी उसके साथ सती हो गई तो प्रजा ने उन दोनों के प्रति अपना विषाद मिश्रित प्रेम–भावना प्रकट करने तथा स्मृतियों में जीवित रखने के लिये कजली नामक गीत का प्रचलन किया। यही इस लोकगीत विशेष के आरम्भ का प्रवाद परक इतिहास है। इसे कजली इसलिये भी कहा गया क्योंकि कारूणिक वातावरण और विषय में बांधकर गाते समय स्त्रियों के नेत्रों में लगा हुआ काजल निरंतर अश्रु–प्रवाह से धुल जाता है और काजल मिश्रित अश्रुधारा से उनके कपोल काले हो जाते हैं। इस संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि उक्त राजा के राज्य में कोई 'कजलीवन' था जिसके आधार पर गीत विशेष का नामकरण हुआ। इसके अतिरिक्त चूंकि यह गीत 'कजली तीज' के अवसर पर गाया जाता है इसलिये इसका नाम कजली पड़ गया।[1]

बहरहाल, बुन्देलखण्ड में यह व्रत परम्परा से श्रावण शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। यह व्रत मूलतः नव विवाहिता तथा कुल–वधुओं का है लेकिन इच्छित घर–वर प्राप्ति की कामना से कुमारियां भी इसे मनाती हैं। घरों को लीप–पोत कर स्वच्छ किया जाता है। स्त्रियां दिन भर पवित्रभाव से व्रत रखती हैं। सन्ध्या समय स्नानादि से पवित्र, नव वस्त्राभरण से सुसज्जित होकर स्वच्छ मिट्टी की गौरा–महादेव की मूर्तियां बनाकर मौसमी फल–फूल पकवानादि से उनकी पूजा करती हैं। सौभाग्य सूचक सभी वस्तुओं को गौरा पर चढ़ाती हैं तथा दान करती हैं। इस समय शिव–पार्वती की प्रशंसा में वे गीतों को गाती हैं। एक शिव की अराधिका भोलेशंकर पर इत्र चढ़ाने के लिये आतुर है। वह उनसे पट खोलने, दर्शन देने की प्रार्थना करती है –

पट खोल दो संभू चढ़ाऊं सिसियां, पट खोल दो ...
एक डर है, मोय हां अरे भोला सास ससुर कौ
दूजैं भोलन सौं लागी अंखियां, पट खोल दो ....
एक डर है, मोय हां, अरे भोला जेठ जिठानी कौ,
दूजैं भोलन सौं लागी अंखियां, पट खोल दो......

– संकलित

---

1. *गॉडीव (रविवारी विशेषांक) 29 अगस्त 1967*

एक दिन गौरा अपनी मढ़िया बनाने के लिये भोला से हठ कर बैठीं। वे सोने की मढ़िया तथा उसमें रूपे की किवाड़ लगाना चाहती हैं। घर–गृहस्थी में पत्नी–सुलभ इस हठ की व्यंजना इस गीत में देखने योग्य है –

हट पर गईं गौरा नार, महादेव, मढ़िया बना देओं बाग में ।
काये की मढ़िया बने, उर काये के लगे किवार, महादेव मढ़िया
सोने की मढ़िया बने उर रूपे के लागे किवार, महादेव मढ़िया.

– संकलित

इस प्रकार के शिव–पार्वती की उपासना, प्रशंसा में गाये जाने वाले गीतों से वातावरण भक्तिमय हो उठता है।

सावन–भादौं, हरियालीतीज और मेंहदी एक दूसरे के पूरक हैं। विभिन्न शोभन आकृति खचित, प्रिय–नाम–सुसज्जित, गोरी–गोरी हथेलियों पर मेंहदी की लाल लाल रेखाएं ऐसी जान पड़ती हैं मानों हृदय में पड़ा प्रिय–प्रेम–बीज ही सुअवसर पाकर लाल–लाल अंकुरों के रूप में उनकी हथेलियों पर फूट पड़ा हो। मेंहदी की प्राप्ति, उसे बनाने, रचाने की विधि तथा उसके चित्ताकर्षक सौन्दर्य का चित्रण इस लोकगीत में देखने योग्य है–

मेंदी के दो दस पान लौंचन मेंदी हम गये मोरे लाल
कौना नें टोड़ी मुठी दो कौना नें टोड़ी छबलन मोरे लाल
देवरा ने टोड़ी मुठी दो तो भौजी ने टोड़ी छबलन मोरे लाल
तो लौंचन मेंदी हम गये मोरे लाल
काहे की सिल मंगवाय काहे के लोड़ों बांटइयो मोरे लाल
रूपें की सिल मंगवाये वोठी का लोड़ों मोरे लाल
कौन रचाई दो छींगुरी मोरे लाल भौजी रचाई दोई हाथ
दो देवरा रचाये दोई छींगुरी मोरे लाल
तौ कौना की रचगई लाल भुलल तो देवरा की पर गई केवली
तो देवरा बताये अपनी माय तो हम धन कौन बदायें मोरे लाल

– बु0लो0का0, भाग–3, पृ0 190

इस रह हास–परिहास, आनन्दपूर्ण वातावरण में शिव–पार्वती की आराधना करती स्त्रियां इस व्रत को मनाती हैं और अचल एहबात की कामना करती हैं।

6. **रक्षाबन्धन :–**

रक्षाबन्धन भाई–बहन के परस्पर विशुद्ध प्रेम का त्यौहार है। इसे "भ्रातृ–पूजन" कहना अनुचित न होगा। यह श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस दिन रक्षाबन्धन और श्रावणी दो त्यौहार किये जाते हैं। 'साहुन' श्रावणी या श्रावण का बुन्देली रूप है। बहनें साल भर इस त्यौहार की बेसब्री से प्रतीक्षा करती हैं। इस दिन घर को लीप–पोत कर साफ सुथरा किया जाता है। भाई–बहन नये परिधान में सुसज्जित होते हैं। बहन भाई के माथे पर रोली–अक्षत का टीका करती है। उसकी कलाई में रक्षा–सूत्र बांधकर आरती उतारती है। फल–मिठाई खिलाती है और एवज में नेग–दस्तूर प्राप्त करती है।

इस त्यौहार की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए काका कालेलकर ने लिखा है– 'यह दिन रक्षा बन्धन का है। जिस तरह भाई दूज निष्काम प्रेम का दिन है, वैसा यह दिन नहीं, यह तो निष्काम–रीति से रक्ष्य–रक्षक का नाता जोड़ने का दिन है। जो लोग स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते, दया करना नहीं चाहते, वे जिन लोगों पर उनका पूरा–पूरा भरोसा होता है, उनसे रक्षा की अपेक्षा रखते हैं। इसका प्रतीक है राखी। स्त्रियां, ब्राह्मण और गाय ये तीन वर्ग रक्षा के अधिकारी माने जाते हैं।[1]

इस दिन दरवाजे के दोनों ओर राखी चिपका कर उसकी पूजा की जाती है बहुत घरों में कुलदेवी–देवताओं की पूजा–अर्चा भी इस दिन किया जाता है। ससुराल में भाई के लिये बिसुरती एक बहन की हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति दर्शनीय है –

वीरन ! तेरे बिन कोई नइयां, राखी का बन्द बैया।
एक दिना सावन में रै गओ, लेव सुद मोरें भैया।
को ल्याहै मोय मोर–पपीरन–बारी छपी चुनरिया।
को कुष्टन की बनी फूल–बेलन की लाल घंघरिया।
को चंदन को हार, भाल टिकली–की छपक जुनैंया।
वीरन ! तेरे बिन कोउ नैंया राखी को बंदवैया।

– संकलित

श्रावणी मूलतः ब्राह्मणों का त्यौहार है। वे "येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रों महाबलः। तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल" मंत्र से अपने यजमानों की कलाइयों में रक्षा–सूत्र

---

1. *काका कालेलकर : 'जीवन का काव्य अनु0 श्रीपाद जोशी', पृ0 87*

बांधकर उनकी मंगल की कामना करते हैं। आशीर्वाद देते हैं तथा दक्षिणा हस्तगत करते हैं। इस दिन गीत विशेष गाने की प्रथा नहीं है। बल्कि श्रावण मास में गाये जाने वाले सावनगीत, झूलागीत, सैरा, राई, पाई, राछरे आदि गाये जाते हैं। इन गीतों का विवेचन पीछे किया जा चुका है।

7. जन्माष्टमी :—

कृष्णजन्मोत्सव से संबंधित यह व्रत भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को रखा जाता है। कृष्ण का जन्म अर्द्धरात्रि में रोहिणी नक्षत्र में हुआ था फलतः इसमें दिन भर व्रत रखा जाता है तथा जन्म होने पर प्रसाद ग्रहण किया जाता है। घरों—मंदिरों को साफ—सुथरा कर बाल—गोपाल की विग्रह को पंचामृत में स्नान और श्रृंगारादि करा कर सिंहासन में प्रतिष्ठित किया जाता है। झाँकियां सजाई जाती हैं। प्रतिमा को झूले पर बिठाकर झुलाया जाता है।

यह एक ऐसा व्रत—पर्व है जो राजकीय स्तर पर भी मनाया जाता है। चूंकि कृष्ण का जन्म कंस के कैदखाने में हुआ था इसलिये जेल, थाने पुलिस लाइनो आदि में यह उत्सव अधिक हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। स्त्री—पुरुष समान रूप से इस व्रत को करते हैं। इस समय श्रीकृष्ण की भक्ति से संबंधित गीत गाये जाते हैं। इस अवसर पर प्रायः सोहर गीत गाने का प्रचलन है।

कृषक के संगी—साथी पशु—पक्षी होते हैं। मोर, गाय, भैंस, घोडी सभी ने बच्चा जना है। यशोदा गर्भ से हैं अतः उनको भी बच्चा ही होगा, ऐसा लोगों को विश्वास है। और यह विश्वास कृष्ण—जन्म पर बधाई बजने की आवाज सुन कर पूरा होता है। इस भाव से पूरित यह लोकगीत देखने योग्य है –

बधाई बाजे नन्द घर मोरी आली,
कि मोरी आली पहला मोर बियानी, कि मुतियन चुन धरे मोरी आली।
कि मोरी आली दूजे गाय बियानी, कि बछरन हर चलें मोरी आली।
कि मोरी तीजे भैंस बियानी, कि मटकन दध भमें मोरी आली।
कि मोरी आली चौथे घोड़ी बियानी, कि बछेड़न खुर धरें मोरी आली।
कि मोरी आली पांचे जसोदा गरभ से, कन्हैया जनम लये मोरी आली।

– *संकलित*

कंस की जेल मथुरा में कृष्ण जन्म के साथ पहरेदारों का सो जाना, वसुदेव का नवजात शिशु को लेकर उफनती यमुना को पार करना, यशोदा की गोदी में कृष्ण को सुलाकर उनकी नवजात कन्या को मथुरा ले आना, कृष्ण की सोने की छुरी से नार छीनना आदि पौराणिक कथा के समानान्तर बुन्देलखण्ड में प्रचलित इस गीत को कृष्ण जन्म पर गाया जाता है –

आली ब्रज में महाराज भये सखी ब्रज में गोपाल भये
जब हरि जन्म लये मथुरा में जगत पहरुवा सोय रहे
लै वसुदेव चले गोकल खों झपट कै जमना मइया चरण गहे
आंगू धसे जमना जल गहरी पीछूं सिंघ गुंजार रहे
उलटी रीति भई गोकुल में कन्या दे गोपाल लये
कौना जाये कौना खिलाये कौना के लाल कहाये?
देवकी ने जाये जसोदा खिलाये नन्द के लाल कहाये
काहे के छुरा नरा छीनियों काहे खपर असनान
सुन्नें छुरा नरा छीनियों रूपे खापर असनान
काहे के सूप संजोइयो, काहे के आखत डार दये
उरहई के सूप संजोइयों, मुतियन आखत डार दये

– *संकलित*

भारतीय वर्ण व्यवस्था में सभी जातियों को समयानुसार महत्व दिया गया है। आज यशोदा ने कृष्ण को जन्म दिया है। उनके नारे को छीनने के लिए यशोदा दाई से मनुहार कर रही हैं। ठसक से भरी दाई भारी नेग लिए बिना नारा कैसे छीने। आज उनका कितना महत्व बढ़ गया है। यशोदा रानी हैं तो रहें, उसका भी कम महत्व नहीं है। एक तो वह कुछ बोलती नहीं ऊपर से उन्हें मुंह चिढ़ाती है –

ऐसी मिजाजिन दाई, लाल कौ नरा ने छीनै
नरा न छीनै मौं हूं न बोलै, ठाड़ी औंठ बिदोरे।
कन्यैया को नरा न छीनै। ऐसी ....

– *संकलित*

मां यशोदा ने नवजात कन्हैया को सजा–धजा कर मोती–माणिक्य जटित, रेशम

की डोरी लगे चंदन के पलने पर पौढ़ा दिया है। सखियां धीरे–धीरे पलने को झुला रही हैं। प्रातः कोई ग्वालिन आती है। कन्हैया को भरी आंखों से निहार देती है। बच्चे को नज़र लग जाती है। वह डर जाता है। दूध नहीं पीता। यशोदा राई, नोंन से उसकी नज़र उतारती हैं तथा नन्द बाबा बच्चे की स्वास्थ्य कामना से दान–पुन्न करते हैं –

कन्हैया झूले पालना सुनो मोरी गुइयां
काहे के हरि बने पालना, काहे की लागी डोर, काहे के लगे फुंदना। सुनो मोरी........
चन्दन के हरि बने पालना, रेसम लागी डोर, मोतिन के लगे फुंदना। सुनों मोरी.........
एक सखी भुंसारे से आय गई, नजर भर देखे कन्हैया, दूध डारै ललना। सुनो मोरी...
राई नोंन उसारें जसोदा, नन्द बाबा करें गऊदान, खेलन लागें ललना। सुनो मोरी......
कृष्णा झूलें सखियां झुलावे, नन्द बाबा लै रहे बलैंया, जसोदा मुख चूमना। सुनो मोरी..

इस प्रकार जन्म संस्कार के जितने गीत लोक में प्रचलित हैं। चाहे वे रामजन्म से अथवा कृष्ण जनम से संबंधित हैं। सभी इस अवसर पर गाये जाते हैं। साथ ही कृष्ण–भक्ति–परक गीतों को गाकर लोक जन कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति भावना ज्ञापित करते हैं।

8. शारदीय नवरात्र तथा दशहरा :–

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नौ–दुर्गाओं की पूजा–उपासना की जाती है तथा दसमी को विजय दशमी या दशहरा का त्यौहार मनाया जाता है। अत्एव यह व्रत तथा त्यौहार दोनों है।

घरों को स्वच्छ कर प्रतिपदा के दिन कलश स्थापन किया जाता है। मां का आवाह्न कर नौ दिन दुर्गासप्तशती का पाठ तथा माता जी की पूजा–उपासना की जाती है। कुछ लोग प्रतिपदा और अष्टमी दो दिन और कुछ लोग नौ दिन उपवास व्रत करते हैं। मां की प्रशंसा में गीत गाये जाते हैं। मां के काली रूप का चित्रण इस गीत में देखने योग्य है –

लट छुटकारे लम्बे केस कलाधारिन, लट छुटकारे लम्बे केस हो मां।
सिर में मइया तोरे मुकुट विराजे, तो वे ही सोहे माल कला धारिन।
बगम्बर की सारी पहरे, गले मुण्ड की माल कलाधारिन.। लट छुटकारे......
कमर करधनी मइया भुजंग की सोहे तो, रक्त चुअत मुण्ड हाथ कला धारिन। लट छुटकारे

दायें हाथ मइया खप्पर बिराजे, बायें तलवार और ढाल कला धारिन। लट छुटकारे...
मधु कैटब मइया समर संहारे तो, सुंभ से चण्ड और मुण्ड कला धारिन। लट छुटकारे
सुमर सुमर मइया तोरो जस गावे, भगतन पे रहियों दयाल कला धारिन। लट छुटकारे

इस प्रकार चैत्र नवरात्र की तरह ही इस नवरात्र में लोग देवी के विभिन्न मंदिरों में जाते हैं। जात्राएं करते हैं। गीत गाते हैं देवी के चरणों में शीश झुकाते हैं। इसका विशद विवेचन चैत्र नवरात्र पर विचार करते समय किया गया है।

विजय दशमी को दशहरा का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी। इसलिये यह विजय का त्यौहार है। शस्त्र और शौर्य का त्यौहार है। कुवृत्तियों पर सद्वृत्तियों का त्यौहार है। भारतीय वर्ण व्यवस्थापकों ने चारों वर्णो के लिये वर्ष में चार त्यौहारों–श्रावणी ब्राह्मणों, विजयदशमी क्षत्रियों, दीपावली वैश्यों तथा होली–शूद्रों के लिये बनाया। इस प्रकार दशहरा क्षत्रियों का त्यौहार है।

इस दिन क्षत्रिय लोग अपने अस्त्र–शस्त्र, हाथी–घोड़े की पूजा करते हैं। दशहरा सम्पूर्ण भारत में किसी–न–किसी रूप में प्राचीन काल से मनाया जा रहा है। राजा–महाराजाओं के जमाने में इसकी विशेष धूम थीं। इस दिन उनकी सवारियां निकलती थीं। प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है – यह उत्सव शंभु–निशंभु, महिषासुर आदि प्रबल दैत्यों पर भगवती दुर्गा की विजय अथवा दुर्दान्त रावण पर भगवान राम की विजय के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। यह 'शक्ति पूजा' अथवा 'वीर–पूजा' का त्यौहार है। इसे विशेष रूप से क्षत्रिय वर्ग से संबंधित माना जाता है, किन्तु अब यह अनेक रूपों में सभी वर्णों अथवा जातियों के नर–नारियों द्वारा मनाया जाता है। इस त्यौहार को दशहरा भी कहते हैं। प्राचीन काल में उस दिन योद्धागण विजय अभियान किया करते थे। मध्यकालीन रियासतों में यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। उस दिन समस्त अस्त्र–शस्त्रों की सफाई होकर उनकी विधिवत् पूजा की जाती थी और उनका भव्य प्रदर्शन किया जाता था। राजागण बड़ी तैयारी के साथ जुलूस निकालते थे।[1] इस दिन नीलकण्ठ या मछली का दर्शन तथा छेंकर (शमीवृक्ष) का पूजन किया जाता है। इस त्यौहार पर गीत गाने का प्रचलन नहीं है।

---

1. प्रभुदयाल मीतल : 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास', पृ0 263 ।

9. दीपावली :–

प्रकाश पर्व दीपावली अज्ञान पर ज्ञान का अन्धकार पर प्रकाश का और दारिद्र पर लक्ष्मी के विजय का पर्व–त्यौहार है। यह कार्तिक की अमावस्या को मनाया जाता है। वैसे यह कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से प्रारम्भ होकर कार्तिक शुक्ल द्वितीया अर्थात् पांच दिनों तक चलता है। त्रयोदशी को 'धनतेरस' मनाई जाती है। इस दिन नये बर्तनों की खरीदारी की जाती है। सन्ध्या समय स्त्रियां 'यमदीप' जलाकर घर के बाहर रखती हैं। दूसरे दिन 'नरक चौदस' होती है। पौराणिक कथा है कि इस दिन भगवान श्रीकृष्ण ने नरकासुर राक्षस को मारा था। एक दूसरी कथा के अनुसार वामन भगवान ने इन्हीं तीन दिनों में राजा बलि द्वारा दान की गई भूमि को नापा था। अतः त्रयोदशी से अमावस्या–तीन दिनों तक दीपदान का पौराणिक महत्व है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवर्धन पूजा तथा दूसरे दिन यमद्वितीया या भैयादूज का पर्व मनाया जाता है।

दीपावली वणिक् वर्ग का त्यौहार है किन्तु सभी वर्णों के लोग इसे धूम–धाम से मनाते हैं। बरसात से घरों में सीलन और कीड़ें–मकोड़े हो गये होते हैं जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होते हैं। इसके बहुत पहले से ही घरों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों की मरम्मत व साफ–सफाई की जाती है। दीपावली की संध्या पर लक्ष्मी–पूजन किया जाता है। दीपमालिका सजायी जाती है। व्यापारी लोग नये बही–खाते, कलम–दवात की पूजा करते हैं। व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा नये बही–खातों पर ।।श्रीगणेशाय नमः।। ।।श्री लक्ष्मै नमः।। आदि लिखा जाता है। इस दिन जुएं खेलने की परम्परा चल पड़ी है जो सभ्य समाज पर कलंक है।

दीपावली के दूसरे दिन यानी कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवर्द्धन पूजा की जाती है। कथा है कि इस दिन कृष्ण ने ब्रज में प्रचलित इन्द्र पूजा के विरोध में गोवर्धन पूजा की महत्ता को प्रतिष्ठापित किया था। हरिवंश पुराण में कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन पर्वत उठाये जाने की लीला को 'गिरिमह' गिरियश' शब्दों से व्यक्त किया गया है। श्री कृष्ण ने इन्द्र की पूजा के निमित्त मनाये जाने वाला 'इन्द्रमह' नामक उत्सव यह कह कर बन्द करा दिया कि हमारी जीविका कृषि तथा पशुपालन से चलती है। क्यों न हम अपनी गोधन की पूजा करें? गोवर्द्धन पूजा के साथ जो अन्नकूट का उत्सव होता है, वस्तुतः वह इन्द्र महोत्सव का ही अंग है।

बहरहाल, यह स्त्रियों का व्रत है। वे गोबर से इन्द्र–इन्द्राणि की प्रतिमाएं बनाती है। रेगनी कांटा, गूम, मटकोइयां से गांव घर के सभी पुरुषों को शाप देती हैं। शापित वस्तुओं को गोधन में डालती हैं। पूजनोपरान्त प्रतिमाओं को कूटती हैं। स्त्रियां व्रत रखती हैं। मध्यान्ह में गोधन कूट कर चढ़ाये गये पकवानादि को खाती हैं। गांव के श्रेष्ठ व्यक्तियों को मरने का शाप देती, वे गाती हैं –'गांव के अगुवा हो कवन राम, उनहू के दइब हर ले जाय।'

गांव के कयथा हो कवन राम, उनहू के दइब हर ले जाय।।
गांव के सोनरा हो कवन राम, उनहू के दइब हर ले जाय।
गांव के बामना हो कवन राम, उनहूं के दइब हर ले जाय।।

– भोजपुरी ग्राम गीत पृ0 83

इस भोजपुरी गीत में गाँव के श्रेष्ठ व्यक्ति, कायस्थ, सुनार तथा ब्राह्मण की मृत्यु की कामना की गई है। एक दूसरे भोजपूरी गीत में भाई को शाप देने के पश्चात बहन ने उसकी दीर्घायु की कामना इस प्रकार की है –

कवन भइया चलले अहेरिया कवन बहिनी देली असीस हो ना।
जियसु रे मोरे भइया मोरा भउजी के बाढ़े सिर सेनुर हो ना।

– भो0ग्रा0गी0, पृ0 84

भैया दूज के दिन बहने अपने भाइयों को टीका लगाती है। उनके आयुर्बल की कामना करती हैं। मथुरा में यमुना नदी में इस दिन भाई बहन का साथ स्नान करना, यमराज के कराल--पास से मुक्ति दिलाने का प्रचलित लोक विश्वास है।

दीपावली पर गाये जाने वाले गीतों को 'दिवारी गीत' कहा जाता है। इस पर्व पर बरेदी (अहीर) अपने मालिकों के घर जाकर दिवारी गीत गाते हैं। नाचते हैं। इनाम पाते हैं। कंधे पर मयूर पंखों का मूठा, कमर में जाँघिये पर घुंघरु, सलूका या बंडी पहने, टिमकी नगड़ियां के समवेत स्वर में दो–दो पंक्तियों के हास्य, व्यंग, नीति, भक्ति, श्रृंगार परक गीतों की कड़ियों को बार–बार दुहराते नाचते, गाते ये लोग खुशियां मनाते हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

ब्रिन्द्रावन की गैल में, होन लगी अनरीत। तनक दही के कारने, मौरी बैयां गहत अहीर रे।।

गांव गांव चक्की चली, बउएं भई सुकमार। काम दंद की हैं नहीं, पै लरबे ख़ों तैयार रे।।
गड़रा की छिरियां बड़ी, अहिरा की बढ़ गई गाय। बामन के बेटा बड़े बऊओं के पर गय काल रे।।

— बु0लो0का0 (भाग–3) पृ0 192

10. कार्तिक पूर्णिमा (कातिकी पूनो) :–

यह व्रत कार्तिक पूर्णिमा को किया जाता है। स्त्रियां उपवास रखती हैं। तथा तुलसी की पूजा उपासना करतीं हैं। वैसे तो प्रत्येक दिन प्रातः स्नान के बाद तुलसी को जल–पुष्प चढ़ाया जाता है लेकिन कार्तिक मास की पूर्णिमा को तुलसी की पूजा का विशेष महत्व है कारण तुलसी के विवाह की तिथि जो है। यह विवाह कहीं अक्षय नवमी और कहीं एकादशी को कराया जाता है। इस दिन विष्णु–प्रतिमा को वर–वेष में सजाया जाता है तथा गाजे–बाजे के साथ तुलसी–चबूतरे के पास ले जाकर विधि पूर्वक उनका विवाह कराया जाता है। इस अवसर पर स्त्रियां वैवाहिक मांगलिक, भक्तिपरक गीतों को गाती हैं।

विष्णु प्रिया, हरि की पटरानी तुलसी को लोक जीवन में अत्यधिक महत्व दिया गया है। कोई भी ऐसा हिन्दू घर नहीं होगा जिसमें तुलसी का चौरा न हो और उस घर की स्त्रियां स्नान के पश्चात् उनकी पूजा न करती हों। तुलसी अखण्ड एहबात की प्रतीक जो हैं। जब छप्पन भोग सामने रखने पर भी भगवान शालिग्राम तुलसी–पत्र की अनुपस्थिति में भोग नहीं लगाते तब ऐसी, प्रभु प्रिय को लोक जीवन कैसे छोड़ सकता है वह तो उनकी पूजा उपासना तथा अपने ऊपर उनकी कृपा कटाक्ष की कामना ही करेगा –

तुलसा महारनी नवो नवो।
इन तुलसा ने कौन तप कीने, सालिगराम भई पटरानी नवो नवो। तुलसा महारानी.....
साखा पत्र मंजरी कोमल, पुष्पन की बरसा बरसानी नवो नवो। तुलसा महारानी........
छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन, बिन तुलसा हरि एक न मानी। तुलसा महारानी.......

— बु0लो0का0 (भाग–1) पृ0 49

पूर्णिमा ही नहीं, वरन कार्तिक का पूरा महीना ही पुण्यार्जन के लिये अत्यधिक महत्व का होता है। स्त्रियां पूरे महीने भर प्रातः काल नदी–तालबों में स्नान करतीं हैं। मिट्टी की राई–दामोदर की मूर्तियां बनाकर पूजा करती हैं। तथा राधा–कृष्ण के भक्तिपरक

गीतों को गातीं हैं। इन कतकारियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों को 'कतकारीगीत' कहते हैं। ऋतुगीत पर विचार करते समय इन गीतों का विश्लेषण किया जा चुका है। यहां कार्तिक स्नान करते महात्म्य से जुड़े लोक विश्वास पर इतना ही कहना अलम् है –

कुंवारी गावें सुघर वर पावें, ब्याही पुत्र खिलावें।
बूड़ी डुकरिया बे हू गावें, बसि बैकुंठ लौट नहिं आवें।।

11. मकर संक्रान्ति :–

यह एक ऐसा पर्व–त्यौहार है जो चौदह जनवरी को ही होता है। इस दिन सूर्योपासना की जाती हैं। भारतीय लोक जीवन में सूर्य का अत्यधिक महत्व है। यहां सूर्य एक ग्रह नहीं अपितु देवता है! भगवान है! अन्न–धन प्रदाता, रोगनाशक, आयुर्बलदाता है। हम समय–गणना सूर्य से करते हैं, सूर्योपासक जो ठहरे। प्रातः स्नान के पश्चात् सूर्य देवता को जल देकर लोकजन अपनी आस्था–विश्वास और पूजा उन्हें समर्पित करता है। अधिकांश लोग सूर्य को प्रसन्न करने के लिये वर्ष पर्यन्त रविवार व्रत रखते हैं।

खगोलशास्त्र के अनुसार पृथ्वी सूर्य के चारों ओर जितने समय में एक चक्कर लगाती है, वह एक सौरवर्ष कहलाता है। और जिस गोलाकार मण्डल पर वह चक्कर काटती है उसे सूर्य का 'अयन' कहते हैं। भारतीय ज्योतिर्विदों ने इस वृत्त को बारह भागों–मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह आदि बारह राशियों में बांटा है। पृथ्वी एक राशि को छोड़कर दूसरी राशि में प्रवेश करती है उस मध्यकाल को संक्रान्तिकाल कहते हैं। इस प्रकार वर्ष में बारह संक्रान्तियां होती हैं। इन संक्रान्तियों में मकर संक्रान्ति का लोकजीवन में अत्यधिक महत्व है इसे 'खिचड़ी' का त्यौहार कहा जाता है। भारत के विभिन्न भागों में यह व्रत–त्यौहार अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं तथा मान्यताओं के अनुसार विविध रूपों में मनाया जाता है।

इस दिन लोग नदी, तालाबों–जलाशयों में स्नान करते हैं। तिल, गुड़, चावल–दाल, पैसा आदि का दान करते हैं तथा पुण्य कमाते हैं। इस दिन खिचड़ी खाने का महत्व है। पर्व का अपना कोई गीत नहीं है वरन् स्नान करने आते–जाते समय स्त्रियां भक्ति परक गीत गाती हैं। इन गीतों को 'रमटेरा' कहा जाता है। एक रमटेरा इस प्रकार है–

दरस की तो बेरा भई रे
बेरा भई रे पट खोलो छबीले भैरो लाल, दरस की तो हो ऽ ऽ।

कुसुम रंग फीके लगे रे, फीके लगे रे सुआ पंखी रंगा दो असदार हो।
दरस की तो हो ऽ ऽ, मिलन को तो बइयां फरके रे।
बइयां फरके रे दरसन खां फरके रहे नैन हो

— *संकलित*

इस प्रकार राम, कृष्ण, शिव, देवी आदि देवी—देवताओं के भक्तिपरक गीतों को गाते स्त्री—पुरुष यात्रा अपनी थकान मिटाते हैं। पुण्य कमाते हैं।

12. शिव रात्रि :—

यह व्रत फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को किया जाता है। वैसे तो प्रत्येक महीने में स्त्रियां पार्वती—व्रत प्रदोष तथा स्त्री—पुरूष शंकर व्रत शिवरात्रि का व्रत करते हैं किन्तु फाल्गुन मास की शिवरात्रि का लोकजीवन में अत्यधिक महत्व है। इस तिथि को शिव—पार्वती का विवाह हुआ था। अत्एव मंदिरों को सजाया जाता है। शिव की वरयात्रा निकाली जाती है।

इस दिन स्त्री—पुरुष पवित्र भाव से निराहार व्रत रखते हैं। स्नानादि से पवित्र होकर अक्षत, चन्दन, पुष्प विल्बपत्र, धतूरा, मदार, बेर, ईख आदि से शिव का पूजन करते हैं। परछन करते हैं। रात्रिजागरण करते हैं तथा शिव—पार्वती के विवाह संबंधित मंगल गीत गाते हैं। वर—वेषधारी भगवान भोले नाथ के सौन्दर्य का चित्रण एक लोकगीत में इस प्रकार हुआ है —

पार्वती तोरो सइयां मै देख आई, पार्वती तेरो सइयां हो मां।
बिच्छु ततैयन के कुण्डल पहरे, जटा पें गंगा लहरइयां। में देख आई..
अंग भभूत बगल मृगछाला, तो डम डम डमरु बजइया। मैं देख आई...
अस्सी बरस के भोले बाबा, पार्वती लरकइयां मैं देख आई...
डूंड़ा बैल की करत सवारी सो, धमना चढ़ो है कन्हैया। मै देख आई..

— *संकलित*

एक सखी वर—वेश धारी शंकर को देख आई है। वह पार्वती से दूल्हे राजा का सौन्दर्य का वर्णन करती कहती है कि पार्वती! तुम्हारे वर ने बिच्छू—ततैया का कुण्डल पहना है। गले में विषधर लिपटा है तथा सिर पर लम्बी जटाओं में गंगा अठरवेलियां कर रही हैं। वस्त्र के नाम पर मात्र कमर में मृगछाला है। नंग—धड़ंग पूरे शरीर में विभूति

ही दिख रही है तथा हाथ में डिम–डिम करता डमरु है। बूढ़े बैल पर सवार यही कोई अस्सी वर्ष के आस–पास का वह बूढ़ा नौजवान है। तुम्हारी उम्र तो किशोरावस्था की है अतएव वर–कन्या की यह जोड़ी खूब जमेंगी। यह गीत का स्तुति का अनुपम उदाहरण है। शिव परिवार और उनके घर–गृहस्थी की झलक इस लोकगीत का वर्ण्य विषय बनाया गया है। भगवान भोलेनाथ नशापायी हैं। वे गांजा, भांग, धतूरा आदि का सेवन करते हैं। उनका गण भैरव भी उनसे कम नहीं, वह अफ़ीमची है। गृहिणी पार्वती इन सभी का प्रबन्ध करती हैं। भांग, गांजा कैसा बना है, बनाने वाले को चखना तो पड़ती ही है। भक्त के भाव निराले होते है अतः इसी बहाने लोकगायक ने मां को भी थोड़ी सी गांजे की कली चखा दी है। इन नशाओं को बोने, घोटने, खाने, पीने और उसके तज्जन्य प्रभाव का चित्रण यहां दर्शनीय है –

माई संकर तारी खोलियो हो मां
कौना ने बै दई भंगिया रे कौना ने अफीम
कौना ने बै दए धतूरे गांजे की कली, माई संकर....
भोला ने बै दई भंगिया रे भैरो ने अफीम
गौरा ने बै दए धतूरे गांजे की कली, माई संकर.....
कौना ने सींची भंगिया रे कौना ने अफीम
कौना ने सीचें धतूरे गांजे क़ी कली, भाई संकर.....
भोला ने सीचीं भंगिया रे भैरो ने अफीम
गौरा ने सींचे धतूरे गांजे की कली, माई संकर.....
कौना ने पी लई भंगिया रे कौना ने अफीम
कौना ने पी लए धतूरे गांजे की कली, माई संकर.....
गौरा ने पी लई भंगिया रे भैरो ने अफीम
गौरा ने पी लए धतूरे गांजे की कली, माई संकर....
कौना की लाल लाल अंखियां रे मन में भरपूर
कौना की सुरग चुनरिया आ रही बहार, माई संकर....
भोला की लाल लाल अंखिया रे मन में भरपूर
गौरा की उड़ रई चुनरिया आ रई है बहार, माई संकर.

– *संकलित*

महादानी, वरदानी भोलेनाथ की दानशीलता की अभिव्यक्ति इस लोकगीत में इस प्रकार की गयी है –

सपर लेव काशी जूकी झिरियां रे, काशी जू की झिरियां कट जेहैं जनम के री पाप रे, सपर लेव हो .
सपरबे खों काशी तो बनाई रे, काशी बनाई पुजबे खों बनाए भोला नाथ रे, सपरवे अरे हो ...
बहादेव बाबा बड़े वरदानी रे, बड़े बरदानी वे तो बूढ़ों खों बालक देंय रे, महादेव बाबा हो ..
महादे बाबा बड़े बरदानी रे, बड़े बरदानी भस्मासुर खों दये हैं बरदान रे, महादेव बाबा.
महादेव बाबा बड़े बरदानी रे, बड़े बरदानी सारी दुनिया बुला लई मड़ के दोर रे, महादेव बाबा

काशी में बाबा महादेव विराजते हैं। "काश्यां मरणं मुक्ति"। काशी में मरने पर मुक्ति होती है, ऐसा लोक विश्वास है। भोले नाथ वरदानीं! महादानी हैं! औघड़दानी हैं! वे भस्मासुर दैत्य जैसे को वरदान दे सकते हैं तो सामान्य साधु जन को क्यों नहीं। मात्र उनको प्रसन्न करने की आवश्यकता है।

13. होली :–

होली व्रत नहीं त्यौहार है। समूचे भारत के लोक ह्रदय को आन्दोलित तथा रंग में सराबोर कर देने वाले इस त्यौहार को राष्ट्रीय त्यौहार की पदवी प्राप्त है। फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को होलिका दहन होता है तथा चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को होली खेली और मनायी जाती है। यह त्यौहार माघ शुक्ल पंचमी, जिसे बसंत–पंचमी कहते हैं से शुरू हो जाती है। इस दिन परम्परा से निश्चित स्थान पर अरंडी की डाल गाड़ दी जाती है तथा होलिका दहन के पूर्व तक इसमें लकड़ी, पत्ती, घास फूस डालकर ढेर बनाया जाता है। पूर्णिमा के दिन शुभ मुहूर्त में गाजे–बाजे तथा होली गीतों को गाते इसे जला दिया जाता है। इसे 'सम्वत् जलाना' भी कहते हैं।

बसंत पंचमी के दिन से ही अबीर गुलाल, रंगादि का प्रयोग शुरू हो जाता है और यह रंग–पंचमी तक निर्वाध रूप से चलता है। इन दिनों होली, फाग ढोलक, झांझ, मंजीरा आदि लोक वाद्यों के साथ समवेत स्वर में गायी जाती है। होली, फाग लोकगीतों का विस्तृत विवेचन ऋतुगीत पर विचार करते समय किया जा चुका है।

अस्तु! उपरिलिखित देवी–देवता, व्रत–त्यौहार, पूजा–उपासना के अलावा बुन्देलखण्ड के जनजीवन में अनेक ऐसे देवी–देवता प्रतिष्ठित हैं, उनकी पूजा–उपासना प्रचलित है, आस्थाविश्वास केन्द्रित हैं, जो कदाचित् शास्त्रोक्त–वैदिक देवी–देवताओं से अत्यधिक महत्व

के हैं। इनमें से कुछ कुल देवी–देवता हैं! तो कुछ ग्राम देवी–देवता! कुछ घाटबाट, खेत–खलिहान के हैं तो कुछ बीमारी–महामारी के! कुछ पशु पक्षियों के हैं तो कुछ आदमियों के! कुछ स्त्रियों के हैं तो कुछ बच्चों के! कुछ हिन्दुओं के हैं तो कुछ मुसलमानों के! अत्एव इन अनगिनत देवी–देवताओं की पूजा–उपासना का विधि–विधान अनगिनत है तथा इनको बुलाने, मनाने, प्रसन्न करने के लोकगीत अनगिनत। इनके उत्स का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है बल्कि इन आधिभौतिक शक्तियों के भय से भयभीत मनुष्य ने अपनी रक्षा के लिए इनकी सर्जना की है तथा अपनी चतुर्दिक रक्षा के लिए इनके चरण–शरण में अपनी श्रद्धा–भक्ति ज्ञापित की है – "इस संबंध में डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय का कथन सर्वथा उपयुक्त है – "भूत–प्रेत एवं अन्य अनिष्टकारी शक्तियों से डर कर मनुष्य ने उन रूप विहीन तत्वों को भी साकारता देकर अपने जीवन को मंगलमय एवं निर्विघ्न बनाने के लिये अनुष्ठान एवं लौकिक विधियों की रचना की।[1] इनमें हरदौल, दुल्हदेव, पौरिया बाबा, बुन्देल बाबा, भैरव बाबा, नट बाबा, ग्वाल बाबा, गुरैया बाबा, भिटोहिया बाबा, घटोरिया देव, मसान, पीर बाबा, भुइयां बाबा, मरही देवी, शीतला देवी, वनदेवी, चिरकुटिहाई, बरोही माता, सती माता आदि का स्थान तथा महत्व लोकजीवन में अत्यधिक है।

(घ) श्रम तथा जातीय गीत

श्रम जीवन का अपरिहार्य अंग है। इसका प्रारंभ और अंत जीवन के साथ है। "बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित" अथवा बिन भोजन न भजन भुवाला, ले ल आपन कंठी माला" आदि उक्तियों के प्रकाश में मनुष्य की अतिआवश्यक आवश्यकता में 'रोटी' का स्थान सर्वोपरि हैं। इस भूख ने सभी प्राणियों को श्रम करने के लिये विवश किया है। श्रम से थकान और थकान से कार्य में अरूचि पैदा होती है। इसको दूर करने के लिए मनुष्य गुनगुनाता है, पक्षी उड़ानजन्य थकान के परिहार के लिये चहचहाते हैं तथा कीट–पतंग भनभनाते हैं। शहरीजीवन में कार्य में गतिशीलता लाने के लिये अन्यान्य मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं। इसके विपरीत गांव–देहात का अभावग्रत जीवन श्रम परिहार के लिये गीतों का आश्रय लेता है और तब कठिन से कठिन श्रम साध्य कार्य उनके लिए काम न होकर खिलवाड़ हो जाता है। श्रमपरक गीतों को अंग्रेजी में 'एक्शन सांग' कहते हैं।

---

1. डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय : 'लोकायन', पृ0 78

चक्की चलाते, पानी लाते, फसलों की बुआई, सिंचाई, निराई, गुड़ाई, कटाई, मड़ाई धान की रोपाई, गाड़ी हांकते, पशु चराते, मेला–बाजार, उत्सवादि में जाते या अन्य श्रमजन्य कार्य करते स्त्री–पुरुष श्रम–श्लथ परिहार के लिये गीतों को गाते हैं। फलतः विषय की अनिश्चितता के कारण इन गीतों में विविधता का होना अवश्यंभावी है।

इस मशीनीकरण के युग में भी सुदूर ग्राम्यांचलों में स्त्रियों द्वारा चक्की चलाने का रिवाज़ बदस्तूर है। तड़के सबेरे घंटे–दो–घंटे लगातार घर के किसी कोने में वे गेहूँ पीसतीं हैं। यह कार्य अकेले अथवा दो स्त्री मिलकर करतीं हैं। कार्य की एकरसता को दूर करने के लिये वे गाती भी जातीं हैं। इस प्रकार चक्की की घरघराहट, चूड़ियों की खनखनाहट तथा सुमधुर स्वर लहरियों के समवेत स्वर में गाये जाने वाले गीत वातावरण को संगीतमय बना देते हैं। चक्की चलाते समय गाये जाने वाले गीतों को "जांत के गीत" या "जतसार" कहते हैं जो यंत्रशाला का कदाचित् अपभ्रंश रूप है।

जाँत पीसने और यह गाने – "ढुढ़वा दियो राजा अमान, हमारी खेलत बेंदी गिर गई" से संबंधित अर्द्ध ऐतिहासिक रोचक घटना का विस्तार से वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। जतसार के अपने कोई गीत नहीं हैं बल्कि संस्कार, ऋतु, व्रत आदि किसी के भी हो सकते हैं। यह भी देखने में आता है कि जिस कार्य के लिये गेहूँ पीसा जा रहा है उसी से संबंधित गीत गाये जाते हैं यथा विवाह, यज्ञोपवीत, छठी आदि से संबंधित गीत। एक चक्की गीत इस प्रकार है –

अंखियां हमारी अल्स्यानी अटरिया चलो
पहली अटरिया मोरे ससुरा परे हैं, सो होईं परी सासू रानी जू।
दूजी अटरिया मोरे जेठा परे हैं, सो होई परी जेठानी महारानी जू।
तीजी अटरिया मोरे देवरा परे हैं, सो होई परी देवरानी महारानी जू।
चौथी अटरिया मोरे सेजा लगी है, सो होई मनें रातरानी, महारानी जू।

– संकलित

गांव–देहात का मुख्य श्रमस्थल खेत–खलिहान है। कार्तिक महीने में खेत की बुआई हो रही है। बैलों के गले में बंधी घुंघरू–घंटी की आवाज, हलवाहे की पुचकार और बोने वाली की मधुर कंठ से निःसृत गीतों की कड़ियां वातावरण को रसमय बना रहीं है। ऐसे समय में खेत के पास से गुजर रहे राहगीरों के कर्ण–कुहरों में मिश्री घोलती आवाज पड़ती है –

अन बोले रहो न जाय ननदबाई बीरन तुम्हारे अनबोला।
गैया दुहाउन तुम जैयो उतै बछरा खों दैयो छोर।
भौजी मोरी बीरन हमारे तब बोलें।

— बु०ख०लो०गी० पृ० 181

इस श्रृंगार—सागर में राहगीर गोता लगा ही रहा होता है कि प्रत्युत्तर में दूसरे खेत से आवाज आती है —

देख होंय तो बताव री सहेलरी रातें के बीरा मोरे पाहुने।
ए बे तो एक दिन देखे मैंने दरजी की दुकनियां।
बैठे—बैठे बटुवा सुआंय री सहेलरी राते के बीरा मोरे पाहुने।
ए बे तो एक दिन देखे मैंने पटवा की दुकनियां।
बैठे—बैठे बटुवा में डोरा डरांय री सहेल री राते के बीरा मोरे पाहुने।
ए बे तो एक दिन देखे मैंने बनियां की दुकनियां।
बैठे—बैठे बटुवा में लौंगें भरांय री सहेलरी राते के बीरा मोरे पाहुने।

— बु०ख०लो०गी० पृ० 181—82

एक स्त्री अपनी सखी से पूछती है कि रात के अतिथि मेरे प्रिय को तुमने कहीं देखा हो तो बताओ। सखी कहती है कि — 'एक दिन मैनें उन्हें दरजी के यहा बटुआ सिलवाते देखा था। एक दिन पटवा के यहां बटुए में डोरा डलवा रहे थे। अन्त में वह बताती है कि एक दिन मैंने उन्हें बनिये की दुकान पर देखा जहां वे उस बटुए में लौंगें भरा रहे थे।

अतः कठिन से कठिन कार्य करैला श्रृंगार रस के गीत की इस मीठी चासनी में पगकर मिष्टान्न बन गया है। इन श्रृंगारिक गीतों के छांव तले भयंकर गर्मी और कठिन कार्य का कुछ भी अहसास नहीं। उदाहरण के लिए एक बिलवारी प्रस्तुत है —

दैहों दैहों कनक उरदार, सिपाईरा डेरा करो रे मोरी पौरी में।
अरी हाँ हाँ री सहेलरी, कंहना गए तोरे घरवारे?
कंहना गये राजा जेठ, लरकनी उंचे महल दियला जरैं।
वे तो काहो ल्यावें तोरे घरवारे, काहो ल्यावें राजा जेठ।

वे तो लौंगे ल्यावे मोरे घरवारे लायची ल्यावें राजा जेठ।

– बु०ख०लो०गी०, पृ० 180

श्रम जीवन है। जीविका है। सबकुछ है। इसको चरितार्थ करती ग्राम–बधुएं ही सच्चे अर्थों में अर्द्धांगिनी कहलाने की अधिकारिणी हैं जो शीत, धूप, बरसात की परवाह न कर अपने पति के कंधे से कंधा मिलाकर खेत खलिहानों में कठिन श्रम ही नहीं करतीं वरन् पति को श्रम करने के लिए उत्प्रेरित भी करती हैं।

चैत्र में खेत की कटाई हो रही है। दिन डूब जाने के बाद भी किसान काटने वालों को छोड़ता नहीं अपितु और लम्बी कतार काटने के लिए दे दी है। चैत के चरेरे घाम से छैला सूख जायेगा यदि मैं ऐसा जानती तो अपने घूंघट की ओट में उसे छिपा लेती। सभी के घरों में दीपक जल उठे हैं। मेरे घर का किवाड़ भी नहीं खुला। इन खेत वालों का गुमान तो देखो जो दिन डूब जाने के बाद भी नहीं छोड़ते –

दिन डूबे सैं धरा दई लम्बी मांग, किसान भइया बेरा तो भई रे घर जावे की
मारो मारो धरम के दो हाथ कठोरया, ने पीरा ना जानी मोरे जियरा की।।
चैत के चरेरे घाम छैल की गइया रे सुखाय गई घामा में।
अरे हां रे छैल रे जो मै ऐसा जानती
घुंघटा की मैं करती छांव, छैल की गइया रे सुखाय गई घामा में।
खेती बालन को बड़ो है गुमान, अबेरे दिन, डूब गये छोड़त नइयां।।

– संकलित

चैत की तपती गर्मी में सारा दिन कठिन श्रम करने के बावजूद काटने वाली के इस परिहास युक्त उलाहना में श्रम को थकान नहीं वरन् गीत की तरोताज़गी झलकती है। कटाई के समय सिला बीनने से संबंधित एक गीत की बानगी देखिए –

सूरज की मुरक गई कोर, राम जू के रथ बिलमाए काउ साधू ने।
अरे हां मोरे रसिया काहे के रथला बने, अरे काहे की लागी डोर, राम जू.......
अरे हां मोरे रसिया चन्दन के रथला बने, अरे रेशम लागी डोर, राम जू.....
अरे हां मोरे रसिया, को जो रथला बैठियो, अरे को जो हांकन हार, राम जू.....
अरे हां मोरे रसिया रामचन्द्र रथ बैठियो, अरे लक्षमन हांकन हार, राम जू.........

– संकलित

गाड़ी हांकते समय गाड़ीवानों को गीत गाते देखा सुना जाता है। ये मनमौजी होते हैं। इनका अपना कोई गीत नहीं होता वरन् समय काल–परिस्थिति को देखकर मन में जो आता है, गा उठते हैं। एक गीत इस प्रकार है–

गाड़ी बारो, गाड़ी नहीं हांके रे
गाड़ी नहीं हांके वो तो निरखे, मोरी मोहनी सुरतिया रे
मोहनी सुरतिया तो मैने घुंघटा में छिपा लई
घुंघटा में छिपा लई, फिर भी निरखो
वो मरई को खोंर, मोरी ओर रे, गाड़ी बारो हो........

– बु0लो0गी0का0 सांस्कृ0 अध्य, पृ0 79

कभी–कभी ये पहेलियां भी बोलते हैं। वस्तुतः गीतों, पहेलियों द्वारा ये लोग अपना मनोरंजन तथा यात्राजन्य एक–रसता को दूर करते हैं।

यात्रा करते समय यात्राजन्य थकान को मिटाने के लिये लोगबाग गीत गाते हैं। ये गीत अत्यन्त प्राचीन हैं। जब गमनागमन का साधन सुलभ नहीं था। लोग पैदल यात्राएं किया करते थे, ये गीत उस समय अस्तित्व में आये। ऐसे गीतों को यात्रा गीत, रमटेरा या बम्बुलिया कहते हैं। ये गीत भक्ति, श्रृंगार, हास–परिहास या. पारिवारिक–सामाजिक जीवन के साम्य–वैषम्य से संबंधित होते हैं। यहां एक रमटेरा उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

"पीर जतारा के अबदा बड़े, रौनी के किरदार ।
अछरू माता बड़ी मड़िया की, पाठे पे लगाएं दरबार।।"

खबर मोरी लैं रइयो ....
लै लइयों रे मोरे झाड़ी के कूं बसइया भोले नाथ रे, खबर मोरी लैं रइयों
निकर चलो दै टटिया, दै टटिया हो कौने, धंधे में उरझे तोरे प्रान रे, निकर......
निकर मन जोगी तो भये, जोगी तो भये, मथरा में नचावे गोपी ग्वाल रे, निकर......
नरबदा मइया उलटी तो बहें, उलटी बहे तिरबेनी की बह रई सूधी धार रे, नरबदा...

– संकलित

एक दूसरा गीत इस प्रकार है –

धीरें चलो मैं हारी लछमन, धीरे चलो मैं हारी।
एक तो हारी दूजे सुकमारी, तीजे मजल की मारी।

सकरी गलियां कांट कटीली फारत है तन सारी।
गैल चलतन मोय प्यास लगत है दूजे पवन प्रचारी।
धीरे चलो मैं हारी लछमन धीरें चलो मैं हारी।

– बु०लो०का० (भाग–2), पृ० 147

इस गीत में वनपथ पर चलती सीता थक कर निढाल हो गई हैं। वे लक्ष्मण से धीरे–धीरे चलने का आग्रह करती हुई कहती हैं कि एक तो मैं थकी हूँ दूसरे अति सुकुमारी हूँ तीसरे मंजिल का पता नहीं। संकरे पथरीले रास्ते की कटीली झाड़ियों में उलझकर मेरी साड़ी तार–तार हुई जा रही है। प्यास से मेरा गला सूख रहा है ऊपर से तेज हवाएं चलने में मुझे बाधा पहुंचा रही हैं। लगता है यह सीता की थकान न होकर उस भावज की थकान है जो सीता के बहाने अपनी थकान की चर्चा साथ चलते अपने देवर से कर रही है तथा इस लोकगीत से अपनी थकान का परिमार्जन करती सी जान पड़ती हैं।

'जातीयगीत' :–

लोकगीत अखिल मानव समुदाय की वह भावात्मक–रागात्मक अभिव्यक्ति है जो काल, स्थान तथा परिस्थितिक उत्प्रेरणाओं की कुक्ष से पैदा हुए हैं। ह्रदयगत भाव की विविधता के कारण ये गीत, विविध रूपों में बनते–बिगड़ते सजते–संवरते अनन्तकाल से निर्बाध यात्रा करते आ रहे हैं ये किसी की निजी सम्पत्ति नहीं हैं वरन ये सम्पूर्ण मानव समुदाय की संपत्ति है। बावजूद इसके कुछ ऐसे लोकगीत प्रचलित हैं जो जाति विशेष की धरोहर बन गये हैं। इसका कारण यह है कि समाज में कुछ ऐसे कार्य (कपड़े धोना, तेल पेरना, पशु चराना, पालकी ढोना आदि) हैं जो जाति विशेष के द्वारा ही किये जाते हैं और उन कार्यों को करते समय वे लोग श्रमजन्य थकान मिटाने के लिये अपने गीतों को गाते हैं। जैसे बिना समय का गाना–बजाना अच्छा नहीं लगता वैसे जातीय गीत भी संबंधित जातियों के गाने पर ही जमते हैं, दूसरों के गाने पर नहीं। इन लोकगीतों का नामकरण उन जातियों के नाम पर ही हुआ है, जो इस गाते हैं जैसे – ढीमर का ढिमरयाई, कुम्हार का कुम्हरयाई, धोबी का धुबयाई आदि।

1. **ढीमर :–**

इस जाति को रैकवार या बरौआ कहते हैं। ये लोग घरों में पानी भरते हैं तथा

बर्तन साफ करते हैं। लोटा, खंजड़ी, केंकड़िया (एक प्रकार की सारंगी) आदि लोकवाद्यों के साथ इनके गीत अत्यन्त सरस एवं मन भावन होते हैं एक ढिमरियाई गीत का रसास्वादन कीजिए –

पानी को रोजगार ढिमर तोरे पानी को।
चार घिंनौची भरत्ते पानी सो चार घिंनौची भरत्ते पानी।
चार घिंनौची भरत्ते पानी सो आना मिलत्ते चार,
आना मिलत्ते चार तुमाई सौं आना मिलत्ते चार, ढिमर तोरे....
चार रोटी को करत कलेऊ सो चार रोटी को करत कलेऊ।
चार रोटी को करत कलेऊ सो तनक चुआ दई दार,
तनक चुआ दई दार तुमाई सौं तनक चुआ दई दार, ढिमर तोरे...
पानूं भरबे गई छबीली सो पानूं भरबे गई छबीली।
पानूं भरबे गई छबीली सो बीच में मिल गए यार,
बीच में मिल गए यार तुमाई सौं बीच में मिल गए यार, ढिमर तोरे...

हास–परिहास युक्त इस गीत को सुनकर हमें भले ही आन्नद आ जाय लेकिन इस गीत में पानी भरने वाली इस जाति की आर्थिक अवस्था का नग्न चित्र उपस्थित हुआ है आर्थिक विपन्नता ने इनकी स्त्रियों की सच्चरित्रता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। एक दूसरे गीत में आंगन में अनमनी खड़ी गोरी से रसिया प्रश्न करता है कि तेरे बाजूबंद, कंगन व मोहन माला काहे की है वह उत्तर देती है कि सोने के बाजूबंद, चांदी के कंगन तथा रूपे की मोहन माला है। भला यह तो बताओ यह तीनों आभूषण तुम्हें किसने दिए हैं। वह कहती है कि देवर ने बाजूबंद, ननद ने कंगन तथा मेरे ससुर ने मोहनमाला दी है फिर तुम्हारे ये तीनो गहने टूटे कैसे ? वह कहती है खेलने में बाजूबंद, निहुरने में कंगन तथा पति से लिपटने में मेरी मोहनमाला टूट गई है –

काहे दिलडारे गोरी ठाड़ी अंगना
काहे के तोरे बाजूबंदा काके के कंगना, काहे की तोरी मोहनमाला जपरई अंगना।
सोने के तोरे बाजूबंदा चांदी के कंगना, रूपे की तोरी मोहनमाला जपरई अंगना।
कौना लै दये बाजूबंदा कौना ने कंगना, कौना लै दई मोहनमाला जपरई अंगना।
देवरा ने लै दए बाजूबंदा ननदी ने कंगना, ससुरा ने लै दई मोहनमाला जपरई अंगना।

कैसे टूटे बाजूबंदा–कैसे के कंगना, कैसे टूटी मोहनमाला जपरई अंगना।
खेलत टूटे बाजूबंदा–निहुरत में कंगना, लिपटत टूटी मोहनमाला जपरई अंगना।

– बुन्देलखण्डी लोकगीत, पृ0 195

प्रश्नोत्तर शैली की इस ढिमरियाई गारी का सौन्दर्य–विम्ब मन को सहज ही रस–सिक्त कर देता है।

2. **अहीर :–**

इन्हें ग्वाल भी कहते है तथा जो पशुओं को चराते है उन्हे बरेदी । दीपावली के अवसर पर बरेदी अपने पशुमालिकों के यहाँ जाकर गाते हैं, नाचते हैं तथा इनाम पाते हैं, इन गीतों को दिवारी कहा जाता है ये हाथों में मोरपंख का मूठा, कमर में घुंघरू, सलूका, जांघिया पहने जब ढोल मंजीरा के साथ नाचते गाते है तो समां बधं जाता है। एक गीत देखने योग्य है –

धनुष उठाए राजा राम ने, धनुष उठाए भगवान ने।
तकित भए ते सब भूप रे, मगन भई तो सीता जानकी।
जब दिखे राम को रूप रे, जनक जू ने ब्याव रचे ते सीता के।
आज दिवारी इतै है, पैले पर है काल रे, बाजत आवे ढोल सो, नाचत आवै ग्वाल रे।

– संकलित

एक ओर दिवारी गीत इस प्रकार है –

तुलसा बोबई दो जनी, बैनई बैने आयं
तुलसा पूजे बामना, बोबई नंद के लाल रे
X X X X X
अरे अहीर को प्यारे अरे भैसिंया, कुरमी को प्यारो बैल रे
अरे ठाकुर खों प्यारे अरे बेड़नी, नचवा रए पौर के दौर रे'

पत्नी प्रियतम से कहती है कि तुम लाठी ले लो। गाय भूसा चर गई हैं वह प्रिय को बारम्बार मना करती है कि घोसी पुरा की छोकरियां बहुत चंचल है वह पुरूषों को बिरमा लेती है अतः तुम वहां न जाया करो – इस भाव से सुसज्जित एक सजनई देखने योग्य है –

लठिया लै ले रे सौंया, लठिया लै ले रे सैंया, भूसा चर गई रै गैंया।
बारे बलम को बेर–बेर हटकी, बारे बलम खो बेर–बेर हटकी, धोसी पुरा जिन जाव।
घोसीपुरा की चंचल छुकरियां, घोसी पुरा की चंचल छुकरियां, छैला लये बिल माय।
लठिया लै ले रे सैंया, लठिया लै ले रे सैंया भूसा चर गई रे गैंया।

इस दिवारी गीत को मृदंग आदि लोकवाद्यों के साथ विचित्र वेशभूषा में ग्वाल, गड़रिये, गूजर, कुरमी तथा मुख्य रूप से अहीर जाति के लोग गाते हैं।' जहां तक अहीर जाति के जातीय गीत की बात है तो उनका अपना गीत बिरहा है। 'बिरहा' के सम्बन्ध में डा0 सरजार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने लिखा है – यद्यपि इन बिरहों का विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं है लेकिन लोगों के अन्तर के विचारों और आकांक्षाओं को जानने का यह अप्रतिम साधन है। बिरहा वास्तव में जंगली फूल है" ।[1]

जब हमारे भगवान शिव व विष्णु ससुराल में रहते है, आनन्द मनाते है तो सामान्य लोग क्यों नहीं। किन्तु इस आनन्द का एक दूसरा पहलू भी है जो अत्यन्त कष्ट प्रद है वह है ससुराल में रहने वाले लोगों को सभी की गालियां सुनना। एतद् विषयक एक 'बिरह' दर्शनीय है–

बड़ों नोंनो लागे भैसिया को दहिया, बने रहे ससुरारि।
अंगुरी के सैनन बुलाएं सरहजियां, लोगवा दैहें सब गारी।

– संकलित

गाना बजाना, राग रंग सब पेट में दाना रहने पर ही अच्छा लगता है बिना दाने के गाना कैसा? देखें इस बिरहा की पंक्तियों को –

भूखिया के मारे बिरहा बिसरिगा, भूलि गई कजरी कबीर।
देखि के गोरी के मोहनी सुरतिया, उठै न करैजवा में पीर।

– संकलित

एक नीति विषयक बिरहा की पंक्तियां इस प्रकार है –

जारी का कांटा कलेजवा सालै, जस बदरी का घाम।
सौति का लरिका कनियां सालै ज्यों–ज्यों होत सयान।

– संकलित

---

1. *'जरनल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी', भाग–13, 1885*

इस प्रकार बिरहा के विषय जीवन के सभी पहलूओं को बड़ी सादगी और बिना लाग लपेट के स्पर्श करने में सर्वथा सक्षम होते हैं अन्ततः बिरहा के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जो स्थान संस्कृत में द्विपदी का, हिन्दी में बरवै या दोहे का तथा उर्दू में गज़ल का है, वही स्थान लोकगीतों में बिरहा का है।

3. *धोबी :–*

इनके गीतों का धुबयाऊ कहते हैं। इस जाति का मुख्य पेशा कपड़ा धोना है।यह अपने मालिकों का कपड़ा धोते है तथा एवजी में अनाज पाते हैं। कपड़ा धोते समय यह अपने जातीय गीतों को गाते हैं –

"छियो राम छियो, छियो राम छियो"

राम नाम के उच्चारण से वह सम्पूर्ण वातावरण को संगीतमय एवं अलौकिक बना देता है। इस प्रकार विभिन्न जातियां अपने कार्य विशेष को करते समय श्रम परिहार के लिए अपनी जातीय गीतों को परम्परा से गाते बजाते नाचते चली आ रही हैं।

(ङ.) विविध गीत

लोक गीतों की असंख्य संख्या को निश्चित चौखटों में बांधना कथमपि संभव नही है यद्यपि विद्वानों ने इन्हे बांधने की भरपूर कोशिश की है फिर भी कतिपय न्यूनताएं प्रत्येक वर्गीकरण में दिखाई देती है अतः विविध गीत के अन्तर्गत शेष गीतों का समाहार हो सकता है। बुन्देलखण्ड विविधता तथा अपने विस्तार के लिये प्रसिद्ध है, ठीक यही स्थिति यहाँ के लोकगीतों की है। असंख्य गीत यहां के लोक–जीवन में बिखरे पड़े हैं। पूर्व पृष्ठों में वर्गीकृत लोकगीतों पर विचार किया जा चुका है, शेष गीतों पर यहां विचार अपेक्षणीय है, जैसे बाल गीत, राष्ट्रीयगीत वीर भावना के गीत, सौन्दर्य गीत, भिक्षावृत्ति से सम्बन्धित गीत, नीति विषयक गीत, कथा गीत इत्यादि।

1. **बाल–गीत :–**

स्त्री–पुरुष की भांति बालकों में भी गीत गाने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। जहां दो–चार बालक इकट्ठे होते हैं, कोई न कोई खेल खेलना शुरू कर देते हैं और साथ ही कुछ न कुछ गाने लगते हैं। अनुकरणात्मक उनके ये गीत सार्थक ही हों ऐसा नहीं

है फिर भी इन तोतली जबान से कभी–कभी ऐसी भी बातें निकल आती हैं जिन्हें सुनकर बड़े दांतों तले उंगली दबा लेते हैं। अवस्था के साथ उनके गीतों में अर्थवत्ता आने लगती हैं, माताएं बालकों को झूला झूलाते समय जो गीत गाती हैं, उन्हें 'झूला' या पालने का गीत कहा जाता है। इसी प्रकार बच्चों के रूठने–मनाने, खिलाने–सजाने, सुलाने–नज़र से बचाने, हंसने, हंसाने फुसलाने आदि से संबंधित गीतों को मां या उसके भाई बहन गाते हैं। अतएव उन गीतों पर यहां विचार अनपेक्षित है। जब बालक थोड़ा बड़ा होता है। समूहबद्ध होकर खेलने–कूदने लगता है। उन खेलों के समय वो गीतों को गाता है जैसे – कबड्डी खेलते समय–'कबड्डी–कबड्डी' या 'चल कबड्डी आल–ताल, लड़ने वाले होशियार' अथवा कोड़ा जमाल शाही खेल के साथ – 'कोड़ा जमाल शाही, पीछे देखे मार खाई' आदि–आदि।

अटकन–चटकन का खेल खेलते समय व कहते हैं –

अटकन–चटकन दहीं चटाकन, बाबा लाए सात कटोरी।
एक कटोरी फूटी, मामा की बहू रूठी।
कौन बात पै रूठी, मुंस के बैठी कैंसी बैठी।
ठाई ठक्का ठाई ठक्का, चिन्टी कै चिन्टा
चिटा कै चिंटी .... चिन्टी ।।
चिटा कै चिंटी .... चिन्टी ।।
चिटा कै चिंटी .... चिन्टा ।।

– बु0लो0का0 भाग – 3, पृ0 267 ।

इसी प्रकार संवाद युक्त शैली में इनका एक गीत इस प्रकार है –

'अल्ल में गई, दल्ल में गइ, दल्ल में से लाकड़ ल्याई।
लाकड़ मैंने डुक्को दीनीं, डुक्को मोय को कुचिया दीनीं।
कुचिया मैंने कुमरा दीनीं, कुमरा मोय मटकी दीनीं।
मटकी मैंने अहीरी दीनीं, अहीर मोय भैंस दीनीं।
भैंस मैंने राजा खों दई, राजा ने मोय रानी दई।
रानी मैंने बसोरे दई, बसोर नें मोय ढुलकिया दई।
बाज मोरी ढुलकिया टम्मक टूं, रानी के बदले में आई तू।

इसी प्रकार अट्टा–चट्टा खेल में बच्चों को खिलाने वाला कहता है –

'अट्टा चट्टा मोर को चट्टा, करई गाजर मीठो मूरा।
एक चना की सोरा रोटीं, गोहूं की बत्तीस।
जौ गइया को खूंटा, जौ बच्छा कौ, जौ भइया को।
जौ कक्का कौ, डूंडा बैल आउत है, ... कुत् कुत् ... कुत्।

इस प्रकार कुआ पाट, अंधा पाड़ा, चुन–चुन मनिया, लुका–छिपी ऐसे अनेक खेल हैं जिन्हें वे गीत गाकर खेलते हैं।

किशोरावस्था में बालक टेसू के गीत, होली में चंदा मांगने के तथा किशोरियां मामुलिया, झिंझिया, नौरता, साहुन, झूला, भुजरियां आदि से संबंधित गीतों को गाती हैं, कोमल हृदय तथा बाल सुलभ चेष्टाओं, भावनाओं से पूरित इन गीतों को सुनने में आनन्द उत्पन्न होता है और बालपन की यादें मन को आह्लादित कर देती हैं।

2. देश भक्ति गीत :–

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन तथा स्वतंत्र भारत की आन–बान–शान पर सब कुछ न्यौछावर कर देने से संबंधित गीत बुन्देलखण्ड में बहुतायत में प्रचलित हैं। देशभक्ति वीर नर नाहरों के लिए मातृभूमि से बढ़कर संसार में कोई दूसरी चीज़ अजीज़ नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त की एतद्विषयक भावना देखनें योग्य है –

'मेरी यह जन्मभूमि जननी जगत में, मेरे प्राण रहते रहेगी महारानी ही।
किंकरी न होगी किसी और नरपाल की, पंचतत्व मेरी पुण्य भूमि के हैं मुझमें।
कहला रहे हैं वही मुझसे पुकार के, हम परतंत्र नहीं, सर्वथा स्वतंत्र हैं।

– सिद्ध राज, द्वि0 सर्ग।

स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रणेता, जन–जन के नेता राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के संबंध में प्रचलित लोकगीत यहां उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

'गांधी एक महात्मा उपजै, कलजुग में अवतारी रे, हो हो रे हूं हूं।
तिनकी तिरिया पतिबरता भई, कस्तूरी जग जाने रे।
चरखा संग रमाई धूनी, दोई मानस उपकारी रे।
सांची बात धरम की जानी, और अहिंसा ठानी रे।

मरद लुगाई लड़ी लड़ाई, सत्याग्रह सो जानी रे।
अंगरेजन सो जबर जोर भई, हार उनई ने मानी रे।।'

– बु0लो0सा0, पृ0 117।

1857 के गदर की वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई कै शौर्य–पराक्रम तथा मातृ भूमि की बलिवेदी पर आत्माहूति देने संबंधित यशगीत देखने योग्य है –

'हर बोलो बुन्देलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।'

– संकलित

बानपुर वाले राजा मर्दन सिंह ने अंग्रेजो के छक्के छुड़ा दिये थे। उनके युद्ध कौशल की झांकी इस गीत में परिलक्षित होती है –

'का कइए बानपुर बारे की, मर्दन सिंह नृपत जुझारे की
सेना सजन बजन रमतूला, चोटें समर नगारे की
अंगरेजन के गरे उतर गई, पैनी धार दुधारे की'।

– बु0लो0का0सां0अ0, पृ0 138।

बुन्देलखण्ड की रग–रग में देश भक्ति कूट–कूट कर भरी हुई है, जिसका वर्णन यहां के लोकगीतों में दिखाई देता है।

3. वीर–भावना :–

बुन्देलखण्ड वीरों की धरती रही है। यहां शस्त्र और शास्त्र समान रूप से समादृत रहे हैं। महारानी लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गावती, रानी झलकारी, आल्हा–ऊदल, महाराज छत्रसाल, पहाड़ सिंह, लाला–हरदौल आदि धर्म, दान, दया, युद्ध, वीर और वीरांगनाएं पैदा हुई हैं। जिनके शौर्य, प्रताप तथा उर्जस्विता की चमक से सम्पूर्ण देश दैदीप्यमान हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–

'आल्हा–ऊदल जगनिक देवा, के शोणित का संचार अभी,
है रग–रग में स्फूर्ति भरे, रानी मल्हना मलखान सभी।

इस संदर्भ में मुंशी अजमेरी का यह छंद विशेष रूप से उल्लेखनीय है –

'पार्थिव प्रबल पहाड़सिंह सज सुन्दर वारण, चढ़ दौड़े ले चमू किया गौ–कष्ट निवारण।
हुए यहीं हिन्दुवान पूज्य हरदौल बुन्देला, पिया हलाहल न की भ्रातृ–इच्छा–अवहेला।
पुजते हैं वे देवरूप प्रत्येक ग्राम में, है लोगों की भक्ति भाव हरदौल नाम में।'

– बु0लो0का0सां0 अ0, पृ0 317।

वीर–काव्य आल्हा की कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

'जइसे भिड़हा भेंड़न पइठै, जइसे सिंह बिड़ारे गाय,
तइसेई रूपना है दंगल में, धमकी धौंस दिखाउन जाय,
बहुत तो छत्री अइसे भाजे, झपटि के खिड़की में कड़ जाय,
खलबल परि गओ हैं दंगल में, ऐसी गवड़ी दई मचाय।'

4. सौन्दर्य–गीत :–

मनुष्य सौन्दर्योपासक है। लोकजीवन प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच आंखे खोलता, पलता बढ़ता है। प्राकृतिक सौन्दर्य–सुषमा और जीवनगत सौन्दर्य के अनूठे चित्रों से लोकगीत भरे पड़े हैं। बुन्देली लोकगीतों में शस्त्र, शास्त्र और सौन्दर्य की त्रिवेणी प्रवहमान है। विरहिणियों ने अपने मन की बातों को प्राकृतिक उपादानों में पिरोकर अभिव्यक्त किया है। उदाहरणार्थ इस गीत की बानगी देखने योग्य है –

'कूक कूक के मोरे जिया खों, काय जराउत मोर।
पिय बिछोय सो मोरे जिया में, बैसई उठत हिलोर, कूक, कूक....
पुरवैया की बैर बै रई, छाई घटा घनघोर
भओ सबई बिद, उलटौ विधना, की खों दइयों खोर। कूक, कूक ..

प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही नायिकाओं के सौन्दर्य के अनेक चित्र लोकगीतों में उरेहे गये हैं। गोरी के गोरे गाल पर तिल की सौन्दर्याभिव्यक्ति अतुलनीय है –

'तिल की तिलन परन से हलकी, बांय गाल पै झलकी
कै मकरन्द फूल पंकज पै, उड़ बैठन भई अलि की
कै चू गई चन्द के ऊपर बिन्दी जमना जल की।'

– बु0लो0सा0, पृ0 130

5. भिक्षावृत्ति के गीत :–

बुन्देलखण्ड में भिक्षावृत्ति से संबंधित गीतों को 'बसदेवा के गीत' कहा जाता है। भिक्षा मांगने वाले प्रातः काल दरवाजे पर खड़े होकर गीत द्वारा पुकारते है – उठो लक्ष्मी! परिवार के किसी सदस्य द्वारा भिक्षा देने पर वे पूछते हैं– 'किनके पुण्य' फिर वे गा उठते हैं –

'उठो लक्ष्मी करो सिंगार के जै गंगा
उठो लक्ष्मी दे दो दान के हर गंगा
X X X X X X
अरे लक्ष्मी ने देय दय दान के हर गंगा
जुग–जुग जियो अरे लक्ष्मी, कर लय पुन्न के हरगंगा।'

– बु0लो0का0सां0अ0., पृ0 83।

6. नीति–विषयक–गीत :–

समाज और जीवन के समुन्नति के लिए लोकचेत्ताओं ने नियम, कायदे, कानूनों की संरचना की है। जिन पर अमलकर मनुष्य अपना चतुर्दिक विकास करता है। जीवन के नियम और वर्जनाओं की झांकी लोकगीतों में दिखाई देती है लोककवि ईसुरी ने इस शरीर को किराये की बखरी कहा है –

'बखरी रइयत है भारे की दई पिया प्यारे की'[1]

इस संसार को छोड़कर एक दिन सबको निश्चित रूप से जाना है। फिर इस संसार एवं शरीर से इतना प्रेम क्यों? इस नीति की चर्चा उन्होंने इस प्रकार की है –

'राखे मन पंछी ना राने, इक दिन सबखां जाने।
खा लो पी लो लै लो दैलो, एही लगै ठिकानो।'

इस प्रकार यहां विविध गीतों के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण गीतों की झांकियां प्रस्तुत की गई। वस्तुतः लोकगीत असंख्य हैं उनमें निहित भाव, विचार तथा इनके रूप अनंत हैं उन सभी का यहां समाहार सम्भव नहीं बल्कि ये असंख्य गीत स्वतंत्र शोध की अपेक्षा रखते हैं।

❑

1. 'ईसुरी प्रकाश', सं0 गौरी शंकर द्विवेदी, भाग–1, पृ0–66

पंचम अध्याय

'बुन्देलखण्डी लोक–गीत सांगीतिक तत्व'

बुन्देली लोकसाहित्य के विद्वान मनीषियों ने लोकगीतों का जो वर्गीकरण किया है उसका विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है। चूंकि मेरा अभीष्ट बुन्देली लोकगीतों के सांगीतिक तत्व का उद्‌घाटन तथा निरूपण करना है अतएव इस दृष्टि से बुन्देली लोकगीतों का वर्गीकरण यहां अपेक्षणीय है। बुन्देली लोकगीत अपनी मार्दव स्वर–लहरियों लयात्मक धुनों के आरोहावरोह तथा रंजक राग रागिनियों के लिए प्रसिद्ध है। इनके धुनगत वैशिष्ट्य का उद्‌घाटन करते हुए डॉ0 भगीरथ मिश्र ने लिखा है – "शताब्दियों से इस प्रकार गायन और वादन की लयों के संस्कारों में ढलता हुआ बुन्देली लोक काव्य अपनी निजी विशिष्टता और मोहकता लिए हुए है और उसी प्रकार के लोकगीत मालवी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं में होने पर भी इन बुन्देली लोकगीतों को विशिष्ट स्थान और विलक्षण लालित्य है। शब्दों के अर्थो को हम न भी समझें, तो भी दूर से सुन कर उसकी धुनों के आधार पर हम पहचान सकते है कि यह बुन्देली लोक काव्य गाया जा रहा है क्योंकि उसमें एक विशिष्ट प्रकार का मार्दव, लोच लालित्य और प्रांजलता है।[1]

जहां तक लोकंगीतों के सांगीतिक तत्व की दृष्टि से विभाजन का प्रश्न है, अद्यावधि नहीं के बराबर हुआ है। यत्र–तत्र कुछ हुए भी हैं तो अस्पष्ट स्थूल तथा एक पक्षीय। अतएव यहां बुन्देली लोकगीतों का संगीत की दृष्टि से विस्तृत विवेचन तथा वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस वर्गीकरण की यह विशेषता है कि इसके अन्तर्गत संगीत के सभी रूपों तथा बुन्देलखण्ड में परम्परा से प्रचलित सभी प्रकार के लोकगीतों का सांगीतिक दृष्टि से समाहार हो गया है। बुन्देली लोकगीतों को सांगीतिक आधार पर मुख्य रूप से चार वर्गो में विभक्त किया गया है –

1. स्वर व राग पर आधारित लोकगीत
2. लय व ताल पर आधारित लोकगीत
3. धुन पर आधारित लोकगीत
4. लोकनाट्य व लोकनृत्य पर आधारित लोकगीत

---

1. पं0 बलभद्र तिवारी, 'बुन्देली लोक काव्य'–भाग–1, प्राक्कथन, पृ0 घ से उद्‌धृत।

(क) बुन्देली लोकगीतों का सांगीतिक वर्गीकरण

- स्वर व राग पर आधारित
  - स्वर पर आधारित
    - शुद्ध स्वरों पर आधारित
    - विकृत स्वरों पर आधारित
      - दो स्वरों के
      - तीन स्वरों के
      - चार स्वरों के
      - पांच स्वरों के
      - छः स्वरों के
      - सात स्वरों के
  - राग पर आधारित
    - शुद्ध स्वर प्रधान
    - विकृत स्वर प्रधान (कोमल एवं तीव्र स्वरों के)
- लय व ताल पर आधारित
  - लय प्रधान
    - द्रुत लय
    - मध्य लय
    - विलम्बित लय
  - ताल प्रधान (विभिन्न तालों पर आधारित)
    - दादरा
    - कहरवा
    - दीपचन्दी
- धुन पर आधारित
  - विशेष स्वर रचना पर आधारित
  - पद रचना की बनावट के आधार पर एक ही विधा की विभिन्न धुनें
  - मात्रा प्रधान धुनों पर आधारित
    - द्रुत तथा मध्य लय प्रधान धुनों पर आधारित
    - विलम्बित लय प्रधान धुनों पर आधारित
- लोकनाट्य व लोकनृत्य पर आधारित
  - लोकनाट्य पर आधारित
    - नौटंकी
    - स्वांग
  - लोकनृत्य पर आधारित

स्वर व राग पर आधारित लोकगीतों को शुद्ध व विकृत स्वरों के आधार पर दो, तीन, चार, पांच, छः व सात स्वरों के अन्तर्गत अलग–2 विभाजित किया गया है ।

लय प्रधान लोकगीतों को द्रुत मध्य व विलम्बित लय के अन्तर्गत तथा ताल–प्रधान लोकगीतों को लोकगीतों में प्राप्त मुख्य रूप से दादरा खेमटा, कहरवा व चांचर--दीपचन्दी तालों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है ।

धुन पर आधारित लोकगीतों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है । प्रथम वर्ग में विशेष स्वर रचना पर आधारित लोकगीतों को उनकी धुन के आधार पर पहचान कर, दूसरे वर्ग में–पद रचना की बनावट के आधार पर एक ही विधा के लोकगीतों की

विभिन्न धुनों के अन्तर्गत तथा तीसरे वर्ग में मात्रा प्रधान धुनों पर आधारित लोकगीत है।

छः मात्रा दादरा, 8 मात्रा कहरवा तथा 14 मात्रा दीपचन्दी । दादरा व कहरवा के अन्तर्गत द्रुत व मध्य लय प्रधान धुनों पर आधारित लोकगीत तथा दीपचन्दी के अन्तर्गत विलम्बित लय पर आधारित लोकगीत हैं । 'दादरा व कहरवा ताल तो हैं ही, बुन्देलखण्ड में लोक गीतों की विधा भी ।

(ख) सांगीतिक तत्व

"अनादि निधनं ब्रह्म शब्द त्वायदक्षरम्।
विवर्तते अर्थ भावेन प्रक्रिया जगतोयतः।।"

– वाक्पदीः भर्तृहरि

ब्रह्म से परे सृष्टि तथा नाद रहित सृष्टि की कल्पना, कल्पना मात्र है । शब्द ब्रह्म है, अक्षर है, निर्विकार है, नित्य शुद्ध, सत्य, स्वतः प्रकाश्य तथा नाद, स्वरूप है । यह नाद, वर्ण, शब्द, वाक्य तथा अर्थ के रूप में जगत् में अभिव्यंजित होता है । नाद की दो स्थितियां अनाहत तथा आहत है। यह आहत नाद ही संगीत का कारक है । फलतः नाद ही स्वर है वाध तथा नृत्य है। सम्पूर्ण चराचर जगत् एवं सृष्टि का कारक, उद्धारक, लय–प्रलय सब कुछ नाद में है । जीवन की सम्पूर्ण चेतना इसी से स्पंदित होती है । अतः सम्पूर्ण चर–अचर सृष्टि नादात्मक है। कर्ण प्रिय नाद ही संगीत है ।

हमारे समस्त ज्ञान–विज्ञान, ज्ञात–अज्ञात वस्तुओं का आकर ग्रन्थ वेद है। वेद का बीज मंत्र ओम है । इसमें तीन वर्ण अ, उ, म ब्रह्म की त्रय शक्तियां है इसी ओम के क्रोड़ से शब्द और स्वर उत्पन्न हुए है । मनुष्य की स्वर तंत्रियों से उच्चरित शब्द तथा स्वर नाद उत्पन्न करते हैं तथा इसी नाद से संगीत का प्राकट्य हुआ है । समस्त कलाएं इसी ओम से निःसृत हैं हमारे चिन्तकों की यही मान्यता है ।

संगीत में लय, ताल, तथा स्वर का समावेश है अतः लय, ताल व स्वर का सम्यक् संयोजन ही संगीत है यथा –

"सम्यक् प्रकारेण यद गीयते तत्संगीतम्।"

संगीत शब्द गीत शब्द में सम् उपसर्ग लगाकर बना है । 'सम' यानि सहित और गीत यानि गायन । अर्थात् गायन के साथ, अतः अंगभूत क्रियाओं वादन तथा नृत्य के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है । गीत, वाद्य, तथा नृत्य ये तीनों मिलकर संगीत की संज्ञा से विभूषित होते हैं । यथा –

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'[1]

हमारे देश में संगीत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । सामवेद भारतीय संगीत का आकर ग्रन्थ है । यज्ञादि कर्मों के समय इसकी ऋचाओं को गाया जाता था फलतः वहां संगीत धार्मिकता की परिधि में बंधा था तथा कालान्तर में यह धार्मिकता से स्वतंत्र होकर मानव जीवन से संबधित हुआ । इस प्रकार "भारतीय संगीत का मूल स्त्रोत एवं उद्गम स्थान सामवेद है, इसी स्थान से संगीत की तीन धाराएं प्रवाहित हुई पहली वैदिक परम्परा जिसके आदि पुरूष ब्रह्मा हैं, दूसरी आगम पुराण परम्परा जिसके आदि पुरूष भगवान शंकर कहे जाते है और तीसरी भरत–परम्परा जिसके आदि पुरूष भरत मुनि कहे जाते है" ।[2]

(अ) स्वर व राग :–

स्वर, राग, लय ताल एवं नृत्य आदि संगीत के मूलभूत स्तम्भ है, इनमें से स्वर, संगीत की पहली सीढ़ी है ।

स्वरों के जन्म के पूर्व 'श्रुति' के विषय में भी जानना आवश्यक है । 'श्रुति' का शाब्दिक अर्थ है 'श्रूयते इति श्रुतयः' अर्थात् जो कुछ कानों द्वारा सुना जाये वह श्रुति है। 'श्रुति' की उत्पत्ति 'श्रु' धातु से हुई, जिसका अर्थ है सुनना । शास्त्रों में कहा गया है 'श्रवणेन्द्रिय ग्राहत्वात ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत' ।[3]

अर्थात् कानों द्वारा ध्वनि ग्राह्य होने के कारण इसे 'श्रुति' की संज्ञा दी गई है।

---

1. *लक्ष्मी नारायण गर्ग, 'संगीत–रत्नाकर' हि0अनु0 श्लोक 21 पृ0 210 से उद्धृत।*
2. *आचार्य ब्रहस्पति, 'संगीत चिन्तामणि', पृ0 317।*
3. *मतंग मुनि, 'वृहद्देशी', 'संगीत' का विशेष प्रकाशन, सं0 बालकृष्ण गर्ग, पृ0 2*

परन्तु सभी ध्वनियां नाद नहीं है। असंख्य नादों में से जिन्हें सुना जा सके व आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सके उन्हें ही संगीत में श्रुति कहा जाएगा अतः श्रुति के शाब्दिक अर्थ का संगीत में प्रयोग नही किया जा सकता ।

"नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेय त्वमप्युत ।
लक्ष्य विद्भिः समादिष्टं पर्याप्तं श्रुति लक्षणम्।।"[1]

– *'अभिनव राग मंजरी'*

जो सदा संगीतोपयोगी तथा स्पष्ट पहचानने योग्य हो, गुणियों की दृष्टि में 'श्रुति' है। प्राचीन शास्त्रकारों ने केवल 22 नादों को ही 'श्रुति' की संज्ञा दी और संगीत में नाद के स्थान पर 'श्रुति' शब्द प्रयोग किया गया। अतः प्रत्येक 'श्रुति' 'नाद' है परन्तु प्रत्येक 'नाद' 'श्रुति' नहीं । इन्हीं श्रुतियों में 'स्वर' समाहित है ।

"श्रुत्यन्तर भावी यः स्निग्धो ऽनुरणनात्मकः ।
स्वतो रंजयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते ।"[2]

अर्थात् श्रुति के पश्चात् उत्पन्न होने वाला स्निग्ध, अनुरणनात्मक, स्वयं रंजक नाद 'स्वर' कहलाता है ।

संगीत की 22 श्रुतियों में से मुख्य सात श्रुतियां चुन ली गईं, जिन्हें शुद्ध अथवा 'प्राकृत–स्वर' कहा गया है जिन्हें क्रमशः षड़ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद की संज्ञा दी गई और उच्चारण की सुविधा के लिए इन्हें क्रमशः सा, रे, ग, म, प, ध और नी कहा गया।

'स्वर को परिभाषित करते हुए सर्वप्रथम" मतंग कृत 'वृहद्देशी' में वर्णित है –

'राजृदीप्तावस्य धातोः स्वशब्द–पूर्वकस्य च ।
स्वयं हि राजते यस्मात्तस्मात्तस्वर इति स्मृतः ।।'[3]

---

1. *श्री पद बन्द्योपाध्याय, 'सितार–मार्ग' प्रथम भाग, (अभिनव राग–मंजरी से उद्धृत), पृ06*
2. *शारंगदेव, 'संगीत–रत्नाकर' भाग–1 स्वर अध्याय के श्लोक 24–25 से उद्धृत, अनुवादक–लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ0 224*
3. *मतंग मुनि, 'वृहद्देशी' संगीत का विशेष प्रकाशन, सं0 बालकृष्ण गर्ग, श्लोक 63, पृ0 6*

अर्थात् जो स्वयं प्रकाशित हो, वह स्वर है। 'अभिनव गुप्त के अनुसार – "जो स्वयं चमकता है, रंजन करता है, जिसमें ध्वनि करने की क्षमता है, वह स्वर है।"[1]

इसी प्रकार नाट्य शास्त्र के 22 वें श्लोक "तत्र स्वराः" को परिभाषित करते हुए आचार्य ब्रहस्पति लिखते हैं – "गाते समय ध्वनि का उतार–चढ़ाव मन्द्र, मध्य एवं तार स्थानों में होता है और इस समय अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र परिचय, षड्ज इत्यादि स्वर स्वतः कराते हैं। ये स्वर अनुरणनात्मक अर्थात् गूंज से युक्त, स्निग्ध और मधुर होते हैं। जाति, राग, राग–भाषा इत्यादि भेदों में 'स्वयं राजित' या शोभित होने के कारण ही ये स्वर' कहलाते हैं।"[2]

'स्वयमात्मानं, रंजयति निपातनात्स्वर–निरूक्तिः' ।[3]

"स्वयं रंजक होने से 'स्वर' नाम दिया जाता है।" यह स्वर–शब्द की निरूक्ति सर्वप्रथम व्याकरणकारों ने भाषिक 'स्वर' के विषय में कही थी, जो अपने संगीत–शास्त्रकारों ने संगीत में प्रविष्ट की।

"राग रंजको ध्वनिः स्वर" अर्थात जो राग–जनक ध्वनि है, वह स्वर है।[4]

विभिन्न विद्वानों द्वारा स्वर के विषय में जानने के बाद इन स्वरों की 22 श्रुतियों पर किस आधार पर स्थापना की गई इसके लिए संगीत–रत्नाकार के लेखक पं0 शारंगदेव का दोहा बहुत ही सार्थक है–

"चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमा ।
द्वै द्वै निषाद गांधारो तिस्त्री रिषभ धैवतो ।।"

– संगीत–रत्नाकर

---

1. *डॉ0 स्वतंत्र शर्मा, 'भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण', पृ0 30*
2. *आचार्य ब्रहस्पति, 'नाट्यशास्त्र का 28वां अध्याय', पृ0 21–22*
3. *श्री नान्य भूपाल–प्रणीतम् 'भरत भाष्यम्' : प्रथम खण्ड श्लोक 69, पृ0 23।*
4. *पार्श्वदेव, 'संगीत–समय–सार', श्लोक–37, पृ0 10*

अर्थात् स, म, प, की 4–4, ग और नी की 2–2 तथा रे और ध की 3–3 श्रुतियां मानी गई।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
			स			रे		ग				म				प			ध		नी

उपर्युक्त सात स्वरों में से दो स्वर षड्ज और पंचम अच्युत व अचल कहलाते हैं अर्थात् ये अपने स्थांन से हटते नहीं है। शेष पांच स्वर ऋषभ, गंधार, मध्यम, धैवत और निषाद शुद्ध और विकृत दोनों प्रकार से प्रयुक्त होते हैं। अर्थात् ये स्वर अपने स्थान से ऊपर अथवा नीचे हटते या विकृत होते हैं। जिनमें से रे, ग, ध और नी अपने शुद्ध स्थान से नीचे की ओर हटते हैं, जिन्हें हम कोमल विकृत कहते हैं और 'मध्यम' अपने शुद्ध स्थान से ऊपर की ओर हटता या विकृत होता है जिसे हम 'तीव्र विकृत' कहते हैं। अर्थात् स्वरों की 'शुद्ध' के अतिरिक्त एक अवस्था 'विकृत' भी है। और ये विकृत स्वर भी दो प्रकार के हैं, जिन्हें हम कोमल (रे, ग, ध, नी) और तीव्र (मं) कहते हैं। स्वरों के नीचे पड़ी रेखा कोमल का चिन्ह है और स्वर के ऊपर खड़ी रेखा 'तीव्र' का चिन्ह है।

सात शुद्ध व पांच विकृत अर्थात् बारह स्वरों की समष्टि को 'सप्तक' कहते हैं। ये मुख्यतः तीन हैं – मन्द्र, मध्य व तार–सप्तक । मध्य सप्तक के स्वरों के लिए कोई चिन्ह नहीं है। मन्द्र के लिए स्वर के नीचे बिन्दु व तार के लिए स्वर के ऊपर बिन्दु।[1]

सप्तक के इन्हीं बारह स्वरों से 'थाट' की उत्पत्ति होती है –

"मेलः स्वर समूहः स्याद्रागव्यंजन शक्तिमान्"[2]

अर्थात् मेल में स्वरों की ऐसी रचना है, जिससे राग बन सके । पं0 सोमनाथ ने अपने ग्रंथ 'राग–विबोध' के तीसरे अध्याय में थाट को परिभाषित करते हुए कहा है – 'थाट इति भाषायाम्' अर्थात् – मेल को भाषा में 'थाट' कहते हैं ।

---

1. *नोट : प्रयुक्त किये गए चिन्ह 'भातखण्डे स्वरांकन प्रणाली' के हैं ।*
2. *श्री पद बन्द्योपाध्याय, 'सितार मार्ग', पृ0 9 से उद्धृत ।*

थाट रागों के जनक हैं। पं0 श्री निवास ने 'मेल' की परिभाषा देते हुए स्पष्ट किया है कि 'राग' की उत्पत्ति थाट से होती है और 'थाट' के तीन रूप हो सकते हैं – औढ़व, षाड़व और सम्पूर्ण ।

'राग' शब्द की सर्वप्रथम व्याख्या 'मतंग मुनि' ने अपने ग्रन्थ 'वृहद्‌देशी' में की है –

'योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः ।
रंजको जन चित्तानां स रागः कथ्यते बुधैः ।।'(1)

अर्थात स्वरों की एक विशिष्ट रचना जिसमें स्वर और वर्ण के युक्त होने के कारण मनुष्य के चित्त का रंजन या उसमें आनन्द विकसित हो, उसे 'राग' कहते हैं।

'स्वर–वर्ण–विशिष्टेन ध्वनि भेदेन वा जनः ।
रज्यते येन कथितः स राग सम्मत सताम् ।'(2)

"विशिष्ट स्वर–वर्णो से विभूषित उस ध्वनि विशेष को राग कहते हैं, जो सर्वसाधारण के मन को रंजित करता है।'

'मतंग ने राग को परिभाषित करते हुए लिखा है –

"चतुर्णामपि वर्णानां यो रागः शोभनोभवेत् ।
स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृताः ।।"(3)

अर्थात् जो राग स्थाई, आरोही, अवरोही, संचारी वर्णों से शोभन हो, वह सब कुछ (वर्ण चतुष्टय) जहां दिखाई देता हो, वे राग कहे गए हैं।"

---

1. *मतंग मुनि, 'वृहद्‌देशी', 'संगीत' का विशेष प्रकाशन, सं0 बालकृष्ण गर्ग, श्लोक–281, पृ0 29*
2. *वही, श्लोक–280, पृ0 29*
3. *'मतंग, 'वृहद्‌देशी', 'संगीत' का विशेष प्रकाशन, अगस्त 1975 सं0 बालकृष्ण गर्ग, श्लोक–301, पृ0 30*

भरत इत्यादि मुनियों ने राग के विषय में कहा – जिनके द्वारा तीनों लोकों में विद्यमान प्राणियों के हृदय का रंजन होता है।

'यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत् त्रितय बर्तिनाम् ।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भर तादिभिः ।।'(1)

राग का महत्वपूर्ण लक्षण रंजकता है इसके द्वारा परम आनन्द की अनुभूति होती है।

डॉ० परांजपे ने 'राग' को अधिक स्पष्ट करते हुए बताया – ''राग वह है, जो स्वर एवं वर्ण की ध्वनिगत श्रेष्ठता के कारण सुन्दर है और श्रोता को आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है। क्रमिक संगीत की ध्वनियां, जो कर्णप्रिय हैं और संगीत की अनिवार्यता की पूर्ति करती हैं, राग के रूप में मान्य हैं''(2)

चैतन्य देव ने राग की विशिष्टता को स्पष्ट किया है – "A raga is an artistic idea or an aesthetic scheme of which a scale, a mode, a melody or melodies from the rare material."(3)

अतः 'राग' भारतीय संगीत की प्रमुख राजीव रचना है इसी को 'मेलाडी' कहते हैं सात स्वरों में स्वयं यह गुण है कि वे अलग–अलग रसों को उत्पन्न करते हैं, उद्घाटित करते हैं और इन्हीं स्वरों का सन्निवेश 'राग' उत्पन्न करता है।

'पं० भातखण्डे' जी ने राग–रचना के संबंध में कुछ आवश्यक बातों को इंगित किया है जैसे –

1. किसी राग का किसी न किसी मेल अथवा थाट से जन्म होना आवश्यक है।
2. राग के लिए निश्चित आरोह–अवरोह होना अनिवार्य है ।

---

1. *शुभकंर, भ०को०,पृ० 922, उदधृत–आचार्य ब्रहस्पति 'नाट्यशास्त्र का 28वां अध्याय' हिन्दी टीका, पृ० 250।*
2. *डॉ० स्वतंत्र शर्मा, 'भारतीय संगीत एवं वैज्ञानिक विश्लेषण', पृ० 62*
3. *वही ।*

3. प्रत्येक राग के लिए वादी संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर अपेक्षित हैं ।
4. राग के लिए कम से कम पांच स्वर होने अनिवार्य है ।
5. किसी राग में मध्यम और पंचम एक साथ वर्ज्य नहीं हो सकते ।
6. रंजक होना राग का सबसे प्रमुख धर्म है ।[1]

स्वर संवाद भारतीय संगीत का प्राण है अतः राग में प्रयुक्त सभी स्वरों का षड़ज मध्यम भाव से या षड़्ज–पंचम भाव से संवाद–संबंध अवश्य होना ही चाहिए।

स्वरों की संख्या अर्थात् राग के आरोह अवरोहानुसार रागों की तीन जातियां अर्थात् तीन भेद हैं, जिन्हें औड़व, षाड़व और सम्पूर्ण कहते हैं। जिन रागों में 5 स्वर लगते हैं वे औड़व जाति के राग हैं, जिनमें 6 स्वर वे षाड़व जाति के और जिन रागों में सातों स्वर लगते हैं, वे सम्पूर्ण जाति के राग कहलाते हैं ।

लोकगीतों में केवल रागों का आभास या छाया मात्र है। इसी छाया मात्र के आधार पर हम इसका शास्त्रीय विस्तार कर लेते हैं। मूल स्वरों को रॉग के नियमों में बांधकर उसकी प्रकृति के अनुसार भिन्न–भिन्न रागों में बांध लेते हैं। लोकगीतों की स्वर–रचनाओं में स्वरों का उपयोग व्यक्ति या समूह की रागात्मक या भावात्मक वृत्ति के आधार पर होता है। जिसमें शास्त्रीय रागों का बीज रूप परिलक्षित होता है ।

कुछ गायक लोकगीतों को शास्त्रीय शैली में गाकर उसका स्वरूप या गायकी बदल देते हैं इससे जहां एक ओर लोक–संगीत की मूल–प्रकृति को क्षति पहुंचती है वहीं दूसरी ओर उससे कुछ अत्यन्त आकर्षक एवं मधुरतम लोक–शैलियों की प्राप्ति या उपलब्धि भी हुई है। जिनमें राजस्थान की मांडे तथा लावणी, महाराष्ट्र के पवाड़े, बंगाल के जात्रा गीत तथा बुन्देलखण्ड की 'लेद' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः संगीत के ये दोनों पक्ष शास्त्रीय एवं लोक एक दूसरे से प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं। ये पारस्परिक आदान–प्रदान दोनों को ही अधिकाधिक धनी बनाता जाएगा। इसके साथ ही दोनों के मुख्य लक्ष्य एवं गुणों को विकृत न होने दिया जाए तभी शास्त्रीय संगीत की कलात्मकता व लोकसंगीत की सर्वग्राहिता व लोकप्रियता बढ़ेगी ।

---

1. *डॉ0 स्वतंत्र शर्मा, 'भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण', पृ0 63,64*

इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक राग हैं, जिनका विकास लोक धुनों से हुआ है। ऐसा भी कहा जाता है कि लोक रूचि पर आधारित लोकरंजक धुनों को राग के नियमों में बांधकर राग की संज्ञा दे दी जाती है ।

आधुनिक शास्त्रीय संगीत में भी लोक से इस प्रकार की धुनों को ग्रहण किया गया है तथा उसे धुन या राग की संज्ञा दी है – जैसे पीलू, पहाड़ी, पूर्बी धुन आदि।

(ब) 'लय एवं ताल' –

भारतीय संगीत के संबंध में कहा गया है कि 'श्रुति' इसकी जननी है और 'लय' जनक काल के गिनने के क्रम को क्रिया कहते हैं । क्रिया के बाद की विश्रान्ति ही लय है अर्थात् दो क्रियाओं के बीच का अवकाश ही 'लय' है । साधारणतया गीत की गति या ताल की धीमी या तेज चाल को बताने वाली वस्तु को 'लय' कहेंगे । यह लय विलम्बित, मध्य और द्रुत तीन प्रकार की होती है ।

''क्रियानन्तर विश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः ।
द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः ।।
द्विगुणद्विगुणौर्ज्ञेयौ तस्मान्मध्यविलम्बितौ ।[1]

अर्थात् – ताल क्रिया के अनन्तर (अगली ताल क्रिया से पूर्व तक) किया जाने वाला विश्राम 'लय' कहलाता है । शीघ्रतम लय 'द्रुत' उससे दुगनी 'मध्य' तथा उससे दुगनी 'विलम्बित' कहलाती है ।

भारतीय लोकसंगीत में लयात्मकता का महत्व अन्य देशों के लोक–संगीत से अधिक है। लोकसांगीतिक लयात्मकता शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त तालों से जन्मी है क्योंकि अधिकांश लोक संगीत में 2/2, 3/3, 4/4 बराबर वज़न का अर्थात् लय–साम्य रहता है। इसके अतिरिक्त 3/2/2, 2/3/2/3, 3/2/3/2 या 3/4/3/4 का लय'वैषम्य भी देखने को मिलता है ।

---

1. आचार्य ब्रहस्पति, 'नाट्यशास्त्र का 28वां अध्याय', हि0टी0, पृ0 292 ।

बहुत से ऐसे राग हैं जिनकी उत्पत्ति प्रादेशिक धुनों से, वन्य लोकधुंनों से हुई है। पं० रातांजनकर के अनुसार – "हमारे प्राचीन संगीत में भैरव राग एक छोटी सी देहाती या घरेलू धुन से निकला है। यह धुन कुछ गौरी, कालिंगड़ा एवं जोगिया – इन रागों के अंग लिए हुए है।"[1]

गड़रियों व किसानों द्वारा गाई जाने वाली धुन में तोड़ी राग के स्वर मिलते हैं। इससे लगता है कि भैरव तथा तोड़ी के गीत लोक–संगीत में परम्परा से गाए जाते रहे हैं तथा ऐसी धुन या राग लोक से शास्त्रीय संगीत में कदाचित् लिए गए होंगे ।

इसी प्रकार गुर्जरी राग की उत्पत्ति संभवतः गुर्जर देश की ग्रामीण जनजाति में गाए जाने वाली धुन से हुई है। मिथिला के राजा नान्यदेव ने भी गुर्जरी को एक प्रादेशिक धुन कहा है।[2]

'कान्हड़ा' का संबंध कर्नाट देश में प्रचलित हाथियों के शिकार करते समय गाई जाने वाली धुन से है। इस धुन में दो भावों का समावेश है, एक तो मरते हुए हाथी का करुण स्वर तथा दूसरा शिकार में सफल होने पर विजय का हर्ष–घोष ।

पं० दामोदर ने भी इस राग में कुछ इसी प्रकार के भावों का वर्णन किया है–

"कृपाण पाणिर्गजदंत खण्ड मेकं वहंति निज हस्तकेन
संस्तूयः माना सुरचारणौधैः सा कानडेयं किला दिव्यमूर्तिं।"[3]

अर्थात्–जिसके हाथ में खडग है, जिसने हाथी के दांत का एक टुकड़ा हाथ में ले रखा है। देवलोक के चारण जिसकी स्तुति गाते हैं– कानड़ा की ऐसी दिव्य मूर्ति है।

---

1. *सुनन्दा पाठक, 'हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास', पृ० 25 उद्धृत – (थाट पद्धति लक्ष्य संगीत, भाग–2) जून 1955, पृ० 23*
2. *भरत भाष्यम खंड–2 जात्यध्याय, श्लोक 53, पृ० 233*
3. *पं० दामोदर, 'संगीत दर्पण', पृ० 101 ध्यान।*

"लय लोक संगीत का एक अविभाज्य अंग होने के कारण उसका संरक्षण एवं संवर्द्धन लोक-संगीत की सभी धाराओं में आदि काल से विद्यमान है। अधिकांश लोक-सगीत में मध्य एवं द्रुत लयों का प्रयोग होता है। विलम्बित लय का प्रायः अभाव है"[1]

समस्त प्रकृति में समय क्रम की जो निश्चित गति है, वही संगीत में 'ताल' बनकर उसे उपयोगी, रसपूर्ण और स्थायी स्वरूप प्रदान करती है और यही विभिन्न चलन-शैलियां अर्थात् ताल, गीत के शब्दों मे प्राणों का संचार कर देती है।

"तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्धञिस्मृतः ।
गीत वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ।।
कालो लघ्वादिमितया क्रियया सम्मितोमितिम् ।"

प्रतिष्ठार्थक 'तल' धातु के पश्चात् अधिकरर्णाथक 'घञ्' प्रत्यय लगने से 'ताल' शब्द बनता है, क्योंकि गीत-वाद्य-नृत्य ताल में ही प्रतिष्ठित होते हैं। लघु, गुरू, प्लुत से युक्त सशब्द एवं निशब्द क्रिया द्वारा गीत, वाद्य, नृत्य को परिमित करने वाला काल 'ताल' कहलाता है ।[2]

तालों की रचना गायन शैलियों या वादन शैलियों के लिए विशेष रूप से नहीं की गई वरन् इसके लिए गायक या वादक अपनी इच्छानुसार तालों व उनके बोलों का चयन कर लेते हैं तथा अपने संगीत को अनुशासित एवं आकर्षक बना लेता है।

डॉ0 अरुण कुमार सेन के अनुसार-"ताल संगीत को एक निश्चित समय या नियम के बन्धन में बांधता है। 'ताल' संगीत में विभिन्न सौन्दर्य पूर्ण चलन शैलियों का विकास करता है, उससे संगीत को अनुशासित कर उसके सुगठित रूप, स्थायित्व एवं चमत्कारिता से श्रोताओं को भाव-विभोर कर देता है। 'ताल' के कारण प्राचीन एवं वर्तमान संगीत

---

1. *अरुण कुमार सेन, 'शास्त्रीय तालों और लोकसांगीतिक लयों का तुलनात्मक अध्ययन' उद्धृत-लक्ष्मी नारायण गर्ग, निबन्ध संगीत पृ0, 109 ।*
2. *आचार्य ब्रहस्पति, 'नाट्यशास्त्र का 28वां अध्याय', हि0टी0, पृ0 292 ।*

को स्वरलिपि एवं बोल–लिपि द्वारा भविष्य के लिए सुरक्षित रख़ना संभव हुआ है।"[1]

लोकगीतों में दादरा–खेमटा, दीपचन्दी–चांचर एवं कहरवा तालों का प्रयोग मिलता है। ये तालें सहज, सरल व प्रकृति के क़रीब हैं। तालों के लय का वज़न अथवा लय की चाल रस–निष्पत्ति में भी सहायक है। हर्ष, उल्लास, स्फूर्ति, उत्साह और वीरता आदि भावों के लिए 'कहरवा' ताल उपयुक्त है साथ ही 'दादरा' ताल भी प्रयोग में आता है। 'दीपचन्दी' ताल श्रंगार व करुण आदि भावों की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुए है। इन तालों का प्रतिकूल रसों में भी प्रयोग दिखाई देता है। 'दादरा' अथवा 'खेमटा' का उपयोग श्रंगार में भी होता है। अधिक विलम्बित लय का प्रयोग लोकगीतों में नहीं 'होता है इसी से दीपचन्दी ताल भी मध्य व द्रुत लय में ही प्रयोग की जाती है ।

प्रायः दो स्वरों के लोकगीत लय–प्रधान हैं जो किसी ताल में निबद्ध नहीं हैं। बुन्देलखण्डी खेलगीत, बालगीत, लोरियां आदि इसी के अर्न्तगत आते हैं जैसे –

(1) 'टेसू आए बान बीर, हाथ लिए सोने का तीर'.........

(2) 'सूक–सूक पट्टी, चन्दन घुट्टी, आदि।

लोक गीतों में स्वर व राग :–

स्वर :– 'शांरगदेव' कृत 'संगीत–रत्नाकर' के अनुवादक लक्ष्मी नारायण गर्ग ने अपनी हिन्दी टीका में एक स्वर वाले से सात स्वर वाले प्रस्तार के बारे में लिखा है – एक स्वर वाले अर्थात् आर्चिक स्वर–प्रस्तार, दो स्वर वाले अर्थात गाथिक, तीन स्वर वाले–सामिक, चार स्वर वाले स्वरान्तर पांच स्वर वाले औड़वा, छः स्वर वाले–षाड़व और

---

1. *"Tala in Hindustani Music is the most essential part of music without which music would be state and prosaic. 'Music without Tala' may be compared to 'Cooked food without salt'. Tala may be said to contribute beauty' grace and cadence to Hindustani Music".*

– प्रदीप सेन गुप्ता,

– स्वतंत्र शर्मा, 'भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण', पृ0 93

सात स्वर वाले सम्पूर्ण स्वर–प्रस्तार कहे जाते हैं।[1]

लोकगीतों में प्रायः चार, पांच व छः स्वरों का अधिक प्रयोग होता है, वैसे दो तीन व सात स्वरों के भी लोकगीत हैं पर अपेक्षाकृत कम हैं।

शुद्ध स्वरों पर आधारित लोकगीतों के अतिरिक्त विकृत स्वरों पर भी आधारित लोकगीत हैं और इन दोनों के अन्तर्गत दो, तीन, चार, पांच, छः व सात स्वरों के लोकगीत हैं।

बुन्देली लोकगीत में कुछ लोकगीत ऐसे भी हैं जिनमें स्वरों के साथ–साथ श्रुतियों का भी प्रयोग दिखाई देता है जैसे– गोटें, पंवारा, राछरे आदि।

लोकगीत प्रायः 'पूर्वांग' में अर्थात् 'स' से 'म', या 'प' तक के स्वरों में गाए जाते हैं। इनको प्रभावशाली व स्पष्ट सुनने योग्य बनाने के लिए ऊंचे स्वर (स्केल) के 'षड़ज' को आधार स्वर मानकर गाते हैं जैसे चौथे काले (स्केल) के 'मध्यम' को 'षड़ज' (आधार–स्वर) मानकर गाया जाये। इसके अतिरिक्त गायक अधिकतर लोकगीतों को मध्य व तार सप्तक में ही गाते हैं ।

पं० भातखण्डे' जी का कहना है – कि 'राग' के लिए कम से कम पांच स्वर होने अनिवार्य हैं, इससे कम स्वरों का समूह 'तान' कहला सकता है, राग नहीं ।

अतः पांच से सात् स्वरों वाले 'लोकगीत ही 'रागों' की श्रेणी में आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त पांच से सात स्वरों वाले अन्य कई ऐसे भी लोकगीत हैं, जिनमें किसी न किसी राग की छाया, मिश्रित रागों का आभास या वे केवल स्वतंत्र 'धुन' मात्र हैं।

बुन्देलखण्डी लोकगीतों में कई ऐसे प्रकार हैं जिनको गाने के पूर्व 'साखी' गाई जाती है जो ताल रहित होती है उसके बाद ताल में गीत गाया जाता है ।

बुन्देलखण्डी सख्याऊ फाग का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

साखी – 'चार खूंटे के चौतरा रे सो लाम्बो लगो बाजार
सौदागिर सौदा करें सो मूरख फिर–फिर जाएं'

फाग – ए ऽ ऽ हो ऽ ऽ अतर के फोहा धरे दोई, बालमा ....

– *संकलित*

---

1. *शारंगदेव, 'संगीत रत्नाकर' अनुवादक ल०ना०गर्ग के पृ० 12 से उद्धृत ।*

इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्डी लोकगीत के दादरा, कहरवा व दीपचन्दी तालों में तथा द्रुत, मध्य व विलम्बित लयों में किये गये संकलन अगले अध्याय में दिए गए हैं।

कई बुन्देली लोकगीत ऐसे भी हैं जो चक्की पीसते समय, बैलों की चाल पर उनके गले में बंधी घंटी की लय पर, धोबी के कपड़े धोने की आवाज की लय आदि पर गाए जाते है। उनमें परोक्ष रूप से ताल तो होती है पर वे नियमित लय में बंधे होते हैं।

'चक्की' का 'लोकवाद्य' के रूप में प्रयोग कितना सार्थक है इसका उदाहरण एक जनश्रुति के रूप में मिलता है –

"बुन्देलखण्ड के 'पन्ना राज्य के राजा अमान सिंह एक बार भेष बदल कर अपने राज्य में रात में घूमने निकले। एक महिला अपने घर में चक्की चला रही थी साथ ही गा भी रही थी – *"ढुंढ़वा दियो राजा अमान हमाई खेलत बेंदी गिर गई"* ।

राजा ने सुना उन्हें वो गीत बहुत पसंद आया । राजा ने उस मकान के बाहर एक चिन्ह बनाया और वापस चले आए । सवेरे उन्होंने अपने सिपाही भेजे और कहा कि जिस मकान पर ऐसा चिन्ह बना हो उस घर की महिला को ले आओ । सिपाही गए और ये मानकर कि इस महिला ने कोई अपराध किया है उसे जबरन पकड़ कर ले आए । महिला आते ही गिड़–गिड़ाने लगी – 'मराज ! हमसैं का गलती भई जो हमैं पकरवा लओ' महाराज बोले – 'बाई हमनै तुमैं पकरवाओं नईं बुलवाओं तो खैर ! इन सिपाइयन सैं तो हम बाद में निपटैं । और गलती तो तुमसे भई है पैलें जा बताइये तैं रातै का गा रई ती । 'मराज ! हम तो फाग गा रए ते'। अरे ! फागैं तो हमनैं बौत सुनी! फागैं तो ऐसीं नई गाई जात । जे कितै की है' ? 'मराज ! जा डिढ़खुरयाऊ फाग आय। एक बार आपके इतैं सै चैतुआ चैत काटबे हमाए उतै 'उबौरा' गांव गए ते हमाओ आदमी हतो नईं सो हमनैं जाय राख लओ और बई के संगैं हम इतै आ गये। जा फाग हमाए उतईं 'बीजौरबाघाट' के ओरईं की है उतई जाको जनम भओ।' 'तो जा बता तैं हमाओं नांव लै' के काय गा रई ती।' 'आं हां मराज ! हम आप खों नांव लै के काय खां गा रै ते।' 'काय हमाओ नांव राजा अमान सिंह है' 'मराज ! हमै का मालुम. हम तो अपएं आदमी खों नांव लै रए ते । हमाए आदमी को नांव 'अमना' है, हमने बाय

थोड़ो सुदार लओ और अपएं आदमी सैं सैंया, बलमा, राजा कत हईं हैं. सो बोई हम गा रए ते ।

राजा मन ही मन उसके गाने से प्रसन्न तो थे ही और ये बात वो महिला भी समझ रही थी। राजा बोले – 'तोय सजा तो मिलहै'। वो बोली– 'ठीकई है मराज तो जौन सजा दैनी होय हमै मंजूर है।' राजा बोले – 'जौन फाग तैं रातैं गा रई ती फिर सैं सुनाउनै परहै' महिला बोली–ठीक है मराज ! तो हमाईयु एक सर्त है – चकिया मंगाउनी परहै तबही हम गा सकत । राजा ने कहा काय. का बिना चकिया के तैं नई गा सकत 'आंहां मराज बिना चकिया के तो मैं नई गा सकत ।' राजा ने तुरन्त चक्की व अनाज मंगवाया । एक पिछोरा की आड़ की गई। फिर उसने चक्की की लय पर वही फाग राजा को सुनाई' राजा बहुत प्रसन्न हुए। राजा ने कहा – 'बाई हम तुमाए गाबैं सैं बहुतई खुस हैं तुम हमाई प्रजा हो बताओ तुमाई बैंदी काए की हती हम बांय ढुढ़बाबे की कोसिस करहैं ।' महिला सहज हो बोली – 'मराज हमाई बैंदी तो लाख की हती'। राजा बोले – 'ठीक है बाई तुम पन्द्रह दिनां बाद आइयो हम बैंदी ढुढ़वाहैं । पन्द्रह दिनों बाद राजा ने महिला को स्वयं बुलवाया और कहा – 'बाई ! हमनै तुमाई बैंदी ढुढ़बावे की बहुतई कोसिस करी ! तुमाई बा 'लाख' की बैंदी तो मिली नहीं हमने 'सवा लाख' की बनवा दई।' और राजा ने सवा तोले सोने की बैंदी जिसमें बीच में 'हीरा' जड़ा था व हीरे के चारों ओर 'पन्ना' की रवार लगी थी, उस महिला को भेंट की ।[1]

गायन विधा के आवश्यक तत्व – 'लय व सुर' दोनों के सामन्जस्य का कितना सुन्दर व सार्थक उदाहरण है । चक्की की घरर–घरर की ध्वनि से महिला को गाने का आधार मिलता है बिना चक्की के उसका गायन सम्भव नहीं ! इसी प्रकार धोबी कपड़े धोते समय छपाक्–छपाक् की ध्वनि के साथ गीत गाते सुने जाते हैं –

'छियो राम छियो', छियो राम छियो' ।

– की ध्वनि से, राम नाम के उच्चारण से वह सम्पूर्ण वातावरण को संगीतमय एवं अलौकिक बना देता है ।

---

1. *सन्दर्भ–द्वारा श्री बाला प्रसाद शर्मा, लोक गायक, टीकमगढ़ म0प्र0 ।*

(स) 'धुन'

'धुन' शब्द संस्कृत के 'ध्वनि' शब्द का अपभ्रंश है। धुन व राग दोनों में ही संगीतोपयोगी रचनाएं हैं। धुन व राग में वही अन्तर है जो बोली व भाषा में हैं।

बोलचाल की भाषा में धुन को राग भी कहने की लोक में परम्परा है। विद्वानों के मतों में धुन व राग की परिभाषा में भी एकरूपता दिखाई देती है।

लोक के द्वारा रची हुई व लोक की गोद में पली बढ़ी प्रचलित धुनों को लोक धुन कहा जाता है। इन धुनों को बनाने वालों को स्वरों का विधिवत ज्ञान नहीं होता है। सहज व स्वाभाविक रूप से, बिना किसी प्रयास के जो स्वरावलियां उनके कंठ से फूट पड़ती है 'वे ही 'लोकधुन' का रूप ले लेती हैं।

मनुष्य की हृदयगत अनुभूतियां जब स्वर–लहरियों के माध्यम से रागात्मक रूप में अनायास अभिव्यक्त होती हैं, तब ये अभिव्यक्तियां ही किसी न किसी 'धुन' का रूप ले लेती हैं!

अर्थात् – 'स्वरों की विशिष्ट गेय संरचना ही 'धुन' है।'

जिस प्रकार से भाषा विकास की स्वाभाविक व वैज्ञानिक प्रक्रिया यही रही है कि बोलचाल की भाषा ही आगे चलकर साहित्य की भाषा बन जाती है, ठीक इसी प्रकार लोक धुनों से ही शास्त्रीय धुनों अथवा रागों की निष्पत्ति मानी जा सकती है। कदाचित् शास्त्रीय संगीत में अपनी कोई मौलिक धुनें नहीं हैं, बल्कि लोकधुनों को लेकर ही संगीताचार्यों ने शास्त्रीय धुनों अथवा रागों की संरचना की है, ऐंसी मान्यता है। इसका प्रमाण यह है कि अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक जब शास्त्रीय संगीत इतना विकसित हो गया है फिर भी यह निश्चय पूर्वक नहीं बताया जा सकता कि इन शास्त्रीय रागों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? यह एक गवेषणा का विषय है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि परम्परा से चले आ रहे राग ही प्रचलित हैं। कतिपय विद्वान संगीताचार्यों ने यदि इन रागों में इज़ाफ़ा करना चाहा है अथवा नये रागों का निर्माण किया है तो परम्परागत रागों में कुछ नये स्वरों को जोड़ दिया गया या कुछ स्वरों को

हटा दिया गया ! इस प्रकार से बने राग मिश्रित ही कहे जाएगें, विकृत ही कहे जाएगें! शुद्ध राग की श्रेणी में नही आएगें। जैसे – राग सारंग शुद्ध राग की श्रेणी में आता है इसके स्वर इस प्रकार है –

स रे म प नी सं, सं <u>नी</u> प म रे स ।

मियां तानसेन ने सारंग राग में 'धैवत' स्वर का प्रयोग करके इसे 'मियां की सारंग' नाम दिया ऐसा कहा गया है। मियां की सारंग –

सा, ऩी स रे म प <u>नी</u> ध नी सं
सां नी प म रे स <u>नी</u> ध़ ऩी स ।

इसी प्रकार अनेक 'धुनों' के नाम प्रदेश–विशेष से भी सम्बद्ध माने गए हैं। मधुर धुनें गायकों के अत्यधिक प्रयोग से प्रसिद्धि पा गईं।

'खमाज' या 'खमाच' का मूल 'खम्भात' नामक प्रदेश में है। 'अहीर–भैरव' का संबंध आभीर प्रदेश से है। 'टोडी' कांजीवरम् के निकास का क्षेत्र है। 'कालिगंड़ा का संबंध 'कलिंग' से रहना संभव है। 'सोरठ' सौराष्ट्र' का प्रसाद है 'गौड़ सारंग' पर 'गौड़' प्रदेश का प्रभाव है।'[1]

''ऋग्वेद' में गीत तथा उसकी धुन के लिए 'साम' संज्ञा भी रही है। 'साम', धुन या स्वरावलियों के लिए पर्यायवाची शब्द रहा है। यह तत्कालीन जन संगीत के अन्तर्गत गाई जाने वाली धुनें थीं। इन्हीं की तर्ज पर वैदिक मंत्र गाए जाते थे।''[2]

लोक धुनें निसर्ग–निर्मित हैं। इन्हीं धुनों से शास्त्रीय रागों का जन्म व विकास हुआ। लोक–धुनों में भिन्न–भिन्न स्वर–सन्निवेश होने के कारण हम इनमें विभिन्न रागों को छिपा हुआ पाते हैं। और उन मूल स्वरों को जब हम प्रकट कर सामने लाते हैं,

---

1. *सुमित्रा आनन्द पाल सिंह, 'लेख' – 'लोक और भारतीय संगीत', उद्धृत – 'संगीत' (लोक–संगीत अंक), सम्पादक – लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ0 12 ।*

2. *श्री शरत्चन्द्र श्रीधर परांजपे 'संगीत–बोध', पृ0 4 ।*

तो शास्त्रीय दृष्टि से राग का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। अतः लोक धुनों की स्पष्टता ही राग की पूर्णता व शास्त्रीयता है।

"लोकधुनें ही शास्त्रीय रागों की जननी है। शास्त्रीय संगीत के पंडितों व शास्त्रकारों ने लोकधुनों को आधार मानकर शास्त्रों का निर्माण किया है। धरती की विराट सर्जना में से जैसे विभिन्न अनाज, फलों व साग–सब्जियों आदि के अनेक परीक्षण व प्रयोगों के बाद उसे खाद्य–सामग्रियों के रूप में स्वीकारा गया, ठीक उसी प्रकार संगीत–शास्त्रियों व संगीतज्ञों ने विविध रसों व स्वादों से युक्त लोकधुनों में से उत्कृष्ट तथा सुमधुर स्वरावलियों को पारिमार्जन व परिशोधन के उपरान्त राग–संगीत का सृजन किया। वास्तव में संगीत अपने मौलिक रूप में लोकसंगीत ही है।"[1]

साधारणतया 'लोकधुनें' चार, पांच व छह स्वरों में मिलती हैं। दो, तीन व सात स्वरों में भी कुछ लोकधुनें हैं, पर इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है।

कुछ 'धुनों' में कई रागों का मिश्रण है व कुछ में रागों की छाया या प्रभाव मात्र ही है प्रायः लोकधुनें अधिकतर सहज व सरल होती हैं।

रागों का जन्म भी 'लोकधुनों' से हुआ, मानते हैं जैसे – आसा, मांड, झिंझोटी, पहाड़ी, पीलू, पूर्वी आदि।

लय के कई प्रकार लोकधुनों में मिलते है। समान भाग की लय व क्लिष्ट विभाजन की लय, जो क्रमशः दादरा, कहरवा तथा दीपचंदी–चांचर ताल आदि में है।

लोक धुनों के स्वर, समय–सिद्धान्त व ऋतु–सिद्धांत के अनुरूप होते है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों का गायन समय दिन और रात्रि के 24 घंटों के दो भाग करके बांटा गया है। पहला भाग बारह बजे दिन से बारह बजे रात तक तथा दूसरा भाग 12 बजे रात्रि से 12 बजे दिन तक।

स्वर और समय की दृष्टि से हिन्दुस्तानी रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल, तीव्र

---

1. *डॉ0 शिवानन्द नौटियाल', 'गढ़वाल के लोकनृत्य गीत', पृ0 44 ।*

स्वरों के अनुसार उनका विभाजन किया है –

"हिन्दु स्थानीय रागाणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिता
स्वर विकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविदैः"

– श्री मल्लक्ष्यसंगीतम्

1. कोमल रे तथा कोमल ध वाले राग ।
2. शुद्ध रे तथा शुद्ध ध वाले राग ।
3. कोमल ग तथा कोमल नी वाले राग ।

प्रथम वर्ग वाले राग संधि प्रकाश राग कहलाते हैं। ये राग दिन तथा रात्रि के संधि यानि मेल होने के समय गाए–बजाए जाते हैं। प्रातः कालीन संधि प्रकाश रागों में अधिकतर कोमल रे, ध के साथ शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है, तथा सायंकालीन संधि प्रकाश रागों में तीव्र मध्यम का। जैसे – भैरव व कालिंगड़ा प्रातः कालीन व पूर्वी, मारवा सायंकालीन संधिप्रकाश राग कहलाते हैं।

शुद्ध रे व ध वाले राग प्रातः सात बजे से दस बजे तक तथा सांय सात से दस बजे तक गाए बजाए जा सकते हैं। इसमें क्रमशः बिलावल, देशकार, खमाज एवं यमन, शुद्ध कल्याण इत्यादि राग गाए जाते है।

तीसरा वर्ग अर्थात् कोमल ग, नी वाले राग दिन को दस से चार बजे तक तथा रात को भी दस बजे से प्रातः चार बजे तक गाए बजाए जाते हैं इस वर्ग में विशेष बात यह है कि गंधार कोमल अवश्य होगा चाहे रे, ध शुद्ध हो अथवा कोमल। इस वर्ग के प्रातः के राग आसावरी, जौनपुरी, तोड़ी इत्यादि तथा रात्रि में बागे–श्री, जयजयवन्ती तथा मालकौंस इत्यादि राग गाए व बजाए जाते हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्त में कुछ अपवाद भी हैं परन्तु ये निश्चित है कि राग अपने नियत समय पर गाया जाए तो अधिक रंजक होता है। इस धारणा की पुष्टि 'लोककवि ईसुरी' ने – 'बहुतई बुरौ लगत है ईसुर–बे औसर को बाजौं' भी की है यदि होली के अवसर पर या फागुन के महीने में फाग गाई जाए, तो वह रूचिकर और प्रभावशाली होगी अपेक्षया

अन्य समय पर। 'गोटें' (गायक का एक प्रकार), प्रत्येक समय, काल तथा स्थान पर नहीं' गाई जातीं। यह भादौं महीने की चौथ को देव–चबूतरे पर 'ढाक–वाद्य' के साथ पूजा के समय गाई जाती हैं।

ऋतुओं के साथ भी इस सिद्धांत को नकारां नहीं जा सकता। वर्षा ऋतु के समय घुमड़ते हुए बादलों व रिमझिम बरसात में अनायास ही मल्हार के सुर छेड़ने का मन करता है।

इसी प्रकार बसन्त ऋतु में प्रकृति की अनुपम छटा, पीली–2 सरसों व हर तरफ फूलों से भरी क्यारी देख कर 'बसन्त' राग बहार या 'बसन्त–बहार' आदि राग गाने की तीव्र इच्छा होने लगती है। अतः रागों का समय सिद्धान्त आवश्यक है इससे समय निश्चित होने के कारण गायक वादक समय की परिधि में रहता है इसके अतिरिक्त ये भी मानना है कि अपनी इच्छानुसार पूरे मन–मस्तिष्क से कोई भी राग किसी भी समय गाएं तो कोई हानि नहीं है।

'लोक धुनों' में स्वरों का प्रयोग अवसर या प्रसंग के अनुरुप होता है। बुन्देलखण्डी लोकगीत में एक ही धुन में कई गीत गाए जाते हैं, किन्तु गीत की रचना भिन्न होने के कारण व लय परिवर्तित होने के कारण वे भिन्न हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक ही गीत को कई धुनों में गा सकते हैं जैसे – फाग की धुन में, भजन व गारी की धुन में !

'श्याम छलबलिया बची रहियो ग्वालन'

'ताल–दादरा' 'भजन की धुन'

स – स	रे ग –	रे स स	– प –
श्या ऽ म	छ ल ऽ	ब लि या	ऽ ब ऽ
प धा –	प – म	मग – रेस	रे ग –
ची ऽ ऽ	र हि यो	ग्वा ऽ ऽ	ल न ऽ
X	O	X	O

'ताल–कहरवा' *(दुगुन में)* 'गारी की धुन'

– – म म	गम गरे रेस –स	स रे म म	ग रे ग रे
ऽ ऽ छ ल	बऽ लिऽ याऽ है	श्या ऽ म ब	ची ऽ र हि
स –			
यो ऽ			

'ताल दादरा' 'फाग की धुन'

नी़ स –	रे रे स	नि़ स –	रे – –
छ ल ऽ	ब लि या	ऽ है ऽ	श्या ऽ ऽ
स – स	नी़ – –	स स –	स – –
म ऽ ब	ची ऽ ऽ	र हि ऽ	यो ऽ ऽ
O	X	O	X

बुन्देलखण्डी लोकगीतो में 'पद–रचना' की बनावट के आधार पर एक ही विधा के लोकगीतों की कई धुनें सुनने में आती हैं जैसे – चौकड़याऊ, सख्याऊ, डिढ़खुरयाऊ तथा छंदयाऊ फाग–इन सभी प्रकारों की धुनें अलग–अलग हैं।

'दादरा' एवं 'कहरवा' क्रमशः छः व आठ मात्राओं की 'तालें' हैं। किन्तु बुन्देलखण्ड में 'दादरा' एवं कहरवा' लोकगीत की विधाएं हैं। ये विधाएं प्रायः इन्हीं तालों में गाई जाती हैं। ये बुन्देलखण्ड की अपनी निजी 'निधि' या विशेषता है।

बुन्देलखण्ड में घर में पहली बार 'बहू' के आगमन पर 'दादरे' का बुलौवा लगवाया जाता है।

'नजरिया मोयसैं मिलइयो मोरे राजा
के मोरे राजा अंगना में मण्डप छबइयों,
दुलनिया मोयखां बनइयो मोरे राजा।

बुन्देलखण्ड में गायकी की एक प्रसिद्ध विधा है 'लेद'। 'लेद' नामक इस गायन शैली का आविष्कार 'दतिया' के राज्य गायक पं कमला प्रसाद ने 19वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में किया था। पं0 जी मूल रूप से ध्रुपद–धमार गायक थे। एक बार पं0 जी 'धमार' गा रहे थे अचानक एक विचार कौंधा और उसे इन्होंने तुरन्त कार्यरूप में परिणित किया इन्होंने 'धमार' को 'ध्रुपद', ख्याल और ठुमरी इन तीनों अंगों से गाया और अन्तरे के उत्तरार्द्ध को होली के अवसर पर गाई जाने वाली एक विशेष धुन में बांध दिया। जब इसका प्रदर्शन हुआ तो यह प्रयोग अत्यन्त आकर्षक लगा और यह दतिया व उसके आस–पास अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। अतः 'लेद' का जन्म 'धमार' से हुआ मानते हैं।

होली की धुन के प्रयोग के कारण इसकी गायन–शैली के दो प्रकार हो गए। शास्त्रीय एवं लोक–शैली बद्ध।

शास्त्रीय–संगीत के आधार पर 'लेद' धमार ख्याल और ठुमरी की शैली पर गाई जाती है। ये 'लेदें' प्रायः सूहा–सुघरई', यमन–कल्याण, काफी, खमाज, झिंझोटी, गारा, पीलू भैरवी आदि रागों के स्वरों में निबद्ध रहती हैं साथ ही विलम्बित धमार, विलम्बित एकताल झूमरा, आड़ा–चारताल और दीपचन्दी आदि तालों का प्रयोग किया जाता है।

लेद की स्थाई व अन्तरे के पूर्वार्द्ध में संगीत के सभी अवयवों आलाप, बहलावा, तान, बोलतान, बोल–बनाव, उपज एवं लयकारी आदि का प्रयोग करते हैं तत्पश्चात् अन्तरे के उत्तरार्द्ध को प्रयुक्त की गई विशिष्ट धुन में गाते हैं।

अतः 'लेद' के सभी प्रकार 'धमार की लेद, 'ख्याल–शैली की लेद' ठुमरी–शैली की लेद तथा 'लोक–शैली की लेद' के अन्तरे के उत्तरार्द्ध में स्वर–वैभिन्य को छोड़कर सभी बातों में समानता है।

'लेद गायकों' में दतिया के कमला प्रसाद जी, भैया गनपतराव (ग्वालियर), लाला राम पंडा, रामप्रसाद पंडा, उस्ताद भीखम खां, प्यार खां, रामसेवक पंडा, रज्जू खां, पन्ने उस्ताद, धन्नू उत्साद, गोविन्द दास नाजिर, मन्नू लाल, पं० हर प्रसाद अवस्थी, महबूब जान, सक्कां बाई, झांसी के उस्ताद आदिल खां, जानकी प्रसाद रावत, कुं० दौलत सिंह, नारायण लाल भट्ट, उस्ताद बाबू खां, राम सेवक बिलगइयां, सत्तू तिवारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कहते हैं कि दतिया की लेद जो लोकगीत शैली में गाई जाती है वो मूल रूप में राग यमन–कल्याण की लेद है, जो विलम्बित एकताल में गाई जाती थी। परन्तु आज लोकगीत गायक उसे लोकशैली की निर्धारित धुन में गाते हैं।

'लोक धुनें' वर्षों से एक ही सांचे में ढली हुई चली आ रही है जैसे – फाग की धुनें, कजरी, सावन, चैती, सैरा, रैया आदि।

पं० रविशंकर के अनुसार – "लोकधुनों को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

एक भाग वह है, जिसका मूल शास्त्रीय राग पर आधारित होता है। ये धुनें किसी न किसी एक राग पर अवलंबित होती हैं। लोकगीतों में अधिकतर दुर्गा, पीलू, काफी, भैरवी, गौरी, कालिगंड़ा का उपयोग होता है। दूसरे भाग में आते हैं, वे लोक गीत जो रागों पर आधारित तो होते हैं, किन्तु उनके अनुयायी नहीं होते। इन गीतों में प्रायः दुर्गा, भूपाली, पहाड़ी, सारंग, पीलू गौरी और झिंझोटी का उपयोग होता है।

तीसरे भाग में गौड़, भील, संथाल, नागा तथा भरिया आदि आदिवासियों के लोकगीत आते हैं। इसमें अलग–अलग रागों के अशुद्ध मिश्रण पाए जाते हैं। इस रीति से गाए जाने वाली धुनों में हम उन श्रुतियों को सुनते हैं जिनके लोग आदी नहीं होते हैं, क्योंकि हम केवल व्यवहार में आने वाली 22 श्रुतियों के ही आदी बन चुके हैं। इन सीधे सादे आदिवासियों को इन श्रुतियों का आसानी से उपयोग करते हुए देख आश्चर्य होता है।[1]

बुन्देली लोकगीतों में भी 'गोटें' पंवारा 'राछरे' आदि लोकगीतों में भी इसी तरह की श्रुतियों का प्रयोग सुनाई पड़ता है।

बुन्देलखण्डी लोकगीतों की स्वरलिपि करने के दौरान कई धुनों की प्राप्ति हुई परन्तु प्रायः सर्वाधिक 'पीलू' का प्रयोग दिखाई दिया। इसके अतिरिक्त तिलककामोद, काफी, खमाज, भैरवी, गारा, झिंझोटी, पहाड़ी, यमन, जयजयवन्ती, देस, दुर्गा, आसावरी, शिवरंजनी बिलावल, सारंग, मांड, मांझ आदि रागों में लोकगीतों का प्रयोग दिखाई दिया है।

लोकगीतों की धुनों में अधिकतर चार, पांच या छः स्वरों का प्रयोग होता है और अधिकांश लोकगीत पूर्वांग में ही गाए जाते हैं अतः उनको स्पष्ट व प्रभावशाली बनाने के लिए ऊंचे स्वर के षड्ज को आधार मानकर गाते हैं। इसके अतिरिक्त लोकगीतों को अधिकतर मध्य व तार सप्तक के स्वरों में ही गाते हैं।

बुन्देलखण्ड में भिन्न–भिन्न अवसरों पर विशिष्ट प्रकार की लोकधुनों का प्रयोग होता है। जिससे दूर से ही सुनकर ज्ञात हो जाता है कि कौन सा अवसर है व क्या गाया जा रहा है।

---

1. पं0 रविशंकर, (लोकधुनों की धड़कने), 'संगीत', (लो0सं0अंक), पृ0 51,52 ।

(द) 'लोक–नाट्य' एवं 'लोक–नृत्य'

नाटक और नृत्य अभिनय प्रधान कलाएं हैं । इन ललित कलाओं की आत्मा 'अभिनय' है किन्तु इन दोनों के अभिनय में तात्विक भेद है। इनमें अन्तर्निहित पार्थक्य को स्पष्ट किए बिना इन विधाओं पर विचार करना एकांगी होगा।

नाटक में नाट्य–कला में अवस्था की अनुकृति, वाक्यार्थ का अभिनय सात्विक अभिनय की बहुलता, दृश्य–श्रव्य का संयोजन रसाश्रित होता है। अभिनय करने वाले कलाकारों को 'नट' कहा जाता है जबकि नृत्य में भावों की अनुकृति, पदार्थों का अभिनय, आंगिक अभिनय की प्रचुरता दृश्य की प्रधानता होती है जिससे नृत्य दर्शनीय होता है। इसके कलाकार को 'नृत्यकार' अथवा 'नर्तक' कहते हैं।

(क) लोक नाट्य

(ख) लोक नृत्य

(क) लोक नाट्य :–

मनुष्य का जीवन नाट्यमय है। दार्शनिक दृष्टि से यह संसार महानाट्यशाला है और मनुष्य जीवन के सभी कार्य–व्यापार पात्रवत् हैं। इसका आरम्भ मनुष्य जीवन के साथ हुआ हैं, अतएव इसकी प्राचीनता निर्विवाद है संगीत की भांति ही लोकनाट्य का उद्भव और विकास भी लोकजीवन में हुआ है। आदिमानव ने अपनी भावाभिव्यक्ति पहले–पहल संकेतों में की होगी, क्योंकि भाषा की उत्पत्ति संकेतों के बाद की हैं। जिस प्रकार शिशु अपने माता–पिता के कार्य–व्यापारों, हंसना–रोना, रूठना–मनाना आदि भावों के संकेतों का अनुकरण करता है और तदनुरूप आचरण करने का प्रयास करता है। ठीक उसी प्रकार आदिमानव ने भी अपने आस पास की प्राकृतिक वस्तुओं, जीव–जन्तुओं के क्रियाकलापों की नकल की होगी और यही नकल की प्रवृत्ति अभिनय की आरम्भिक अवस्था समझनी चाहिए। नकल करना या नकल उतारना मनुष्य जीवन के साथ शुरू हुआ है और जीवन के साथ ही समाप्त होगा। अतएव मानव जीवन के विकास के साथ–2 अभिनय का क्षेत्र भी विकसित होता रहा है।

लोक–नाट्य को विभिन्न–विद्वानों ने अपनी–2 दृष्टि से देखा है। विभिन्न क्षेत्रों में फैले भिन्न–भिन्न प्रकार के लोकधर्मी नाटकों को किसी एक निश्चित परिभाषा में बांधना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, फिर भी कतिपय विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का स्तुत्य कार्य किया है। कुछ मत यहां अपेक्षणीय हैं – "लोकनाट्य की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। लोकजीवन से उसका अंग–अंगी का नाता है वाह्याडम्बरों और नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास केवल लोकधर्मी नाट्य शैली में ही संभव है। लोकवार्ता का एक स्वतंत्र अंग होने के कारण लोकजीवन में इन नाटकों का अपना अनोखा आकर्षण है।"[1]

"लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्यरूप जो अपने–2 क्षेत्र के लोकमानस को आहलादित, उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोक नाट्य कहलाता है।"[2]

"संसार के प्रायः सभी देशों में नाटक के आदि रूप का उदय किसी न किसी धार्मिक भावना अथवा चेतना के फलस्वरूप हुआ है। वीर पूजा की भावना अथवा धार्मिक आदेश, जो कि प्रायः प्राणिमात्र के हृदय में किसी न किसी अंश में निहित रहता है, धीरे–2 नाटक का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि अपने आदि रूप में यह नाटक बड़ा ही साधारण और अपरिमार्जित होता है।"[3]

भारत में लोकधर्मी नाट्य–परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध है। नाटक का प्रथम सूत्र 'ऋग्वेद की संवादात्मक ऋचाओं में मिलता है। इन्हें नाटकीय संवादों का बीजरूप कहा जाता सकता है। भरत मुनि विरचित 'नाट्यशास्त्र' (ई0पू0 तीसरी श0) में सर्वप्रथम नाट्क पर सर्वांगीण शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त आचार्य धनंजय रचित 'दशरूपक' तथा कविराज विश्वनाथ कृत 'साहित्य–दर्पण' में नाट्यशास्त्र पर विस्तार से विचार किया गया है।

---

1. *डॉ0 श्याम परमार, "लोकधर्मी नाट्य–परम्परा", पीठिका – पृ0 7 ।*
2. *डॉ0 महेन्द्र भानावत, "लोक नाट्य परम्परा और प्रवत्तियां" – पृ0 3 ।*
3. *डॉ0 देवपाल खन्ना, 'हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन', पृ0 15।*

भरत मुनि ने नाटक के प्रादुर्भाव संबंधी रूपक परक कथा 'नाट्यशास्त्र' में इस प्रकार दी है, इन्द्रादि देवों की प्रार्थना पर प्रजापति ब्राह्मण ने चारों वेदों को ध्यान कर ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से 'रस' नाट्यवेद नामक 'पंचमवेद' की रचना की। यथा –

"जग्राह पाठ्य ऋग्वेदात् सामभ्योगीत मेव च।
यजुर्वेदा दभिनयाम् रस माथर्वणादपि।।"[1]

लोक नाट्य के ऋग्वेद के ये बीज उत्तरोत्तर विकसित होते दिखाई देते है। 'रामायण' में नट तथा नर्तकों के समाज अर्थात् गोष्ठी तथा मनोरंजन का वर्णन मिलता है।[2] 'बाल्मीकि' ने कहा है – 'जिस जनपद में राजा नहीं रहता, उसमें नट तथा नर्तक प्रसन्न नहीं दिखाई देते।[3]

महाभारतकार ने भी नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि नाट्य पात्रों का निर्देश किया है।[4] महर्षि पाणिनि ने 'अष्टध्यायी' में "पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः"[5] तथा 'कर्मन्द कृशाश्वादिनिः'[6] से शिलालि और कृशाश्व के द्वारा नट–सूत्रों की रचना का उल्लेख किया है। महाभाष्य में 'कंसबध' एवं 'बलिबंध' नाटकों के अभिनय कला की ओर स्पष्ट संकेत किया है। 'वात्सायन' (दूसरी शती) ने बाहर से आए कुशीलवों (नटों) द्वारा अभिनीत नाटकों के प्रदर्शन द्वारा सामाजिकों के मनोरंजन करने का वर्णन किया है।[7] संस्कृत नाटकों की यह सुदीर्घ परम्परा कालान्तर में विलुप्त होती सी दिखाई देती है जिसका कारण कदाचित् भारत की राजनीतिक स्थितियां रही हैं।

---

1. *भरत मुनि, 'नाट्यशास्त्र' 1/17–18 ।*
2. *अयोध्याकाण्ड, 67/15 एवं 69/3 ।*
3. *2/67/15 ।*
4. *'महाभारत', बनपर्व, 15/13 ।*
5. *4/3/110 ।*
6. *4/3/111 ।*
7. *'कामसूत्र', 31 ।*

भारतीय भक्ति आन्दोलन तथा वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना ने इस मृतप्राय नाट्य–परम्परा को पुर्नजीवित किया। सोलहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध स्वामी बल्लभाचार्य के प्रयत्नों से कृष्ण–कथा के आधार पर रासलीला खेलने का प्रचलन हुआ। तुलसीदास ने काशी में रामलीला मण्डली की स्थापना की। इस प्रकार भक्ति–आन्दोलन के कारण रासलीला तथा रामलीला दो लोकधर्मी नाट्य परम्पराएं विकसित हुईं। इसी समय बंगाल में चैतन्य महाप्रभु की धार्मिक मंडलियों ने कृष्ण की लीलाओं को अभिनय के माध्यम से जन सुलभ बनाने का प्रयत्न किया। इन पौराणिक कथानकों पर आधारित नाट्य–परम्परा के पूर्व से ही नकल, सांग, भगत या नौटंकी लोक–नाट्यों का विकास भी होता रहा। इस परिप्रेक्ष्य में डा0 शंकर लाल यादव का मत है – "पौराणिक एवं धार्मिक और आख्यान नाटकों के चरित्र के अतिरिक्त लोकरंग मंच पर एक तृतीय प्रकार का नाटकीय प्रदर्शन भी होता रहा होगा। इस प्रदर्शन का नाम 'नकल' दें तो अनुचित न होगा ! यह वर्तमान सांग (भगत) या नौटंकी का पूर्वरूप या पर्याय है।"[1] डॉ0 जगदीश चन्द्र माथुर ने लिखा है कि – "औरंगजेब के समय में मौलाना गनीमत ने सांग (स्वांग अथवा संगीत) या 'नकल' के अभिनय का ब्योरेवार वर्णन छोड़ा है। दिल्ली के आसपास उन सांगों का बहुत प्रचार था और इनमें प्रेम–कथाओं के अभिनय के साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक चरित्रों और व्यवहारों पर छींटे भी कसे जाते थे।"[2]

इस प्रकार लोक–नाट्य रूपों की परम्परा बहुत प्राचीन है। हां इसके वर्तमान रूपों में ब्रज और हरियाणा के स्वांग या संगीत, ब्रज की रासलीला, भोजपुरी की रामलीला, आसाम का अंकिया, हिमांचल का 'करिमाला', मिथिला का कीर्तनियां, महाराष्ट्र का 'गोंधल' और 'तमाशा', उत्तरी बिहार का जट–जटिन, बंगाल की जात्रा, उत्तर प्रदेश की 'नकल' और 'नौटंकी', गुजरात का 'भवई', मालवा का मांच, बिहार का बिदेसिया तथा बुन्देलखण्ड का स्वांग (भगत) रामलीला, रासलीला, नौटंकी आदि लोक नाट्य रूपों का विकास मध्यकाल की देन है।

---

1. *डॉ0 शंकर लाल यादव : 'निबन्ध संगीत', सम्पादक लक्ष्मी नारायण गर्ग पृ0 69।*
2. *सम्पादक – श्री रामनाथ 'सुमन', 'सम्मेलन–पत्रिका' (लो0सं0वि0) पृ0 343 ।*

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर लोक–धर्मी नाट्य को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – प्रहसन, लीला और नृत्य–नाट्य।

बुन्देलखण्ड में 'प्रहसन' के अर्न्तगत दो प्रकार के लोकनाट्य मिलते हैं प्रथमतः स्वान्तः सुखाय, द्वितीयतः जनसाधारण के मनोरंजन के लिए अभिनीत किये गए नाट्य ।

बाल–प्रहसनों में – अटकन चटकन दही चटाकन, अब्बक–दब्बक दायं दीन, इत्तन–इत्तन पानी, डुक्को–डुक्को का ढूंढ़ रईं आदि आते हैं। 'घरघूला' नामक बाल–नाट्य में बालिकाएं पारिवारिक जीवन के दृश्य अभिनीत करती हैं। बच्ची की मां का अभिनय, सास–बहू की नकल, बच्चों को डांटने व रोते हुए बच्चे को चुप कराने का अभिनय – क्या खूब करती हैं ये प्रहसन जो लोग उस नाटक में भाग ले रहे होते हैं, केवल उन्हीं के लिए होते हैं। दर्शकों से इनका कोई संबंध नहीं होता है। बुन्देली लोकनाट्य कला की इसे हम पहली पायदान या पहली कक्षा कह सकते हैं।

दूसरे वर्ग के प्रहसनों को हम प्रौढ़ प्रहसन भी कह सकते हैं, इसके अन्तर्गत किसी आदर्श पुरूष, महात्मा, ऐतिहासिक पात्र आदि की जीवनी को आदर्श बना कर नाटक खेलते हैं जैसे – लाला हरदौल, सत्यवादी राजा हरिशचन्द्र आदि हास्य व मनोरंजन के लिए गांव समाज के किसी कंजूस महाजन की, पेटू पंडित की, मूर्ख पति की, झगड़ालू औरत की, चालाक नाऊं आदि की नकल को केन्द्रित करते हुए नाटक खेलते हैं।

बुन्देलखण्ड में स्त्रियों व पुरूषों के प्रहसन अलग–अलग होते हैं। स्त्रियां बारात रवाना होने के बाद नाटक खेलती हैं। दाढ़ी–मूंछ लगाकर पुरुष वेष धारण कर श्रृंगारिक व हास्य नाटक खेलती हैं बुन्देलखण्ड में इसे 'बाबा' कहते हैं। पुरूष वर्ग विभिन्न त्योहारों पर 'स्वांग' रचते हैं।

बुन्देलखण्ड में लोक–नाट्य का सबसे विकसित रूप रासलीला, रामलीला, स्वांग तथा नौटंकी में दिखाई देता है राम और कृष्ण की लीलाएं इसमें प्रस्तुत की जाती हैं नौटंकी के माध्यम से सामाजिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक आख्यानों से संबंधित विषय लिए जाते है। इसमें संवाद मिश्रित कर कहीं चौपाई, कहीं केशवदास का कोई छंद और कहीं

शुद्ध बुन्देली का कोई पद गीत रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन सभी में स्त्रियों का अभिनय भी स्त्री वेष में सजे पुरुष पात्रों द्वारा किया जाता है।

स्वांग लोक नाट्य की सम्पूर्ण विधा का प्रतिनिधि शब्द है ! बुन्देली स्वांग' के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए डॉ0 शिवकुमार मधुर कहते है – "स्वांग की सार्वदेशिक परम्परा में बुन्देलखण्ड के स्वांग की अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान है। स्वांग गीत, नृत्य और अभिनय तीनों रूपों में अलग–2 भी मिलता है और इनके समावेश से सम्पूर्ण रंगकर्म (टोटल थियेटर) के रूप में भी एक स्वतंत्र रंग शैली के रूप में विकसित स्वांग का स्वरूप धार्मिक, पौराणिक कम किन्तु लौकिक श्रृंगार परक हास परिहास जन्य और व्यंग विनोदमय अधिक है। इस दृष्टि से स्वांग का स्वरूप एकांकी का है। अपनी विषय वस्तु और प्रस्तुति की दृष्टि से ये छत्तीसगढ़ के 'नांचा' के अधिक निकट है।" बुन्देलखण्ड में श्री राम सहाय पांडे (कनेरा, सागर) श्री रघुवरी सिंह (सोठिया) एवं श्री तुलसी राम (वीरपुरा) की स्वांग मंडलिया प्रसिद्ध रही हैं।

सम्पर्क के दौरान पुराने लोगों ने बताया कि 60–70 वर्ष पहले टीकमगढ़ के पास किसी गांव का एक व्यक्ति 'गोवर्धन' व उसके साथियों का एक स्वांग दल था। कहते हैं वह व्यक्ति एक चलता फिरता स्वांग था। समाज की फैली बुराइयों को वह स्वांग के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करता था।

(ख) लोक नृत्य :–

'नृत्य' शब्द 'नृत्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है – 'गात्र–विक्षेप' (अंगों का चलाना) हाथ–पैर एवं शरीर के अन्य अंगों को एक निश्चित लय–ताल में संचालित कर गति प्रदान करना ही नृत्य है। आदि मानव ने प्राकृतिक सौन्दर्य से अविभूत होकर सुख के क्षणों में अपने हृदयगत उल्लास को शारीरिक चेष्टाओं के माध्यम से व्यक्त किया होगा। यही अंग–संचालन तथा आनन्दातिरेक में झूमकर घूमना आगे चलकर नृत्य संज्ञा से अविहित हुआ होगा।

सृष्टि के आरम्भ में भावहीन मानव ने भाव प्रकाश के लिए शरीर के हाव भाव का ही आश्रय लिया होगा। भाव–प्रकाशन की सार्थक मुद्राओं को ही भाषा ने 'नृत्य' कहा

है, निरर्थक मुद्राओं का नाम 'नृत' है अतएव 'नृत्य' की प्राचीनता निर्विवाद है।

"मनुष्य जब अपने गहनतम मनोभावों को 'शब्दों में व्यक्त करता है तो उसे काव्य कहते हैं और जब शारीरिक चेष्टाओं द्वारा व्यक्त करता है तो वह नृत्य कहलाता है। ऐसा कहा जा सकता है कि नृत्य काव्य का शारीरिक रूप है। कभी शब्दों से और कभी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा मानव युग-2 से अपनी करुण, रौद्र तथा वीर भावनाओं को व्यक्त करता आया है। इन शारीरिक चेष्टाओं का परिष्कृत रूप ही नृत्य है।"[1]

'नृत्य' के आदि आविष्कारक 'नटराज' कहे जाते हैं। उन्होंने त्रिपुरासुर के वधोपरान्त प्रसन्न होकर जो नृत्य किया उसे 'ताण्डव' कहा जाता है। एक दूसरी मान्यता के अनुसार नृत्य कला' की उत्पत्ति स्वयं ब्रह्मा ने की है। उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नृत्य कला का निरूपण किया।[2] यह कला ब्रह्मा ने भरत मुनि को दी और भरत मुनि ने गंधर्वों तथा अप्सराओं की सहायता से शिव जी के समक्ष इस कला का प्रदर्शन किया। शिवजी की आज्ञानुसार उनके शिष्य 'ताण्डु' ने भरत मुनि को ताण्डव नृत्य सिखाया। दूसरी ओर नृत्य के कोमल पक्ष की आविष्कारिका 'पार्वती' हैं जिन्होंने 'लास्य' नृत्य की सर्जना की और प्रसन्न होकर बाणासुर नृत्य की पुत्री ऊषा को यह नृत्य कला सिखाई इस प्रकार कला उत्तरोत्तर विकसित होती रही है।

वेद-पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में नृत्य का उल्लेख किया गया है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो (सिन्धी शब्द हैं जिसका अर्थ है मरे हुए लोगों का स्थान) सभ्यता के उत्खनन से प्राचीनतम भारतीय नृत्य मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार हमारी आदिम सभ्यता के साथ ही लुप्त नृत्यों का इतिहास प्रारम्भ होता है। अतः लोकनृत्य की परम्परा मानव सभ्यता के साथ विकसित होती रही और कालान्तर में इसमें शास्त्रीयता का समावेश हुआ। शास्त्रीय मानदण्डों में बंधने से शास्त्रीय नृत्यों में दुरुहता आई और इसकी विभिन्न शैलियां देश में प्रचलित हुईं।

---

1. *सम्पादक – श्री रामनाथ 'सुमन', 'सम्मेलन पत्रिका' (लो०सं०वि०), पृ० 404 ।*
2. *संगीतरत्नाकर 7/9-10 तथा 'नाटयशास्त्र' 1/17 ।*

लोक नृत्य अपनी स्वाभाविकता, सहजता, अकृत्रिमता और मौलिकता के साथ प्रवाहमान लोकजीवन का अनादिकाल से रंजन करता रहा है। बुन्देलखण्ड में लोकनृत्य आनन्द–प्रदर्शन, देवी आराधना, त्योहारों आदि पर किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जातीय लोकनृत्य भी होते है बुन्देलखण्ड वीरों की भूमि रही है अतः यहां के लोकनृत्यों की एक विशेषता है कि उसमें ओज–गुण अधिक देखने को मिलता है।

बुन्देलखण्ड में किये जाने वाले लोक नृत्यों को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित कर सकते है। सार्वजनिक लोक नृत्य, आदिवासी लोक नृत्य तथा विवेचनात्मक दृष्टि एवं वैज्ञानिक पद्धति से इन्हें निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है।

1. सांस्कारिक लोक नृत्य
2. ऋतु एवं त्योहारीय लोक नृत्य
3. जातीय लोक नृत्य
4. विविध लोक नृत्य

(1) सांस्कारिक लोकनृत्य

बुन्देलखण्ड में संस्कार नृत्य रीति–रिवाजों से परिपूर्ण होते हैं। इन लोक नृत्यों में जन्म एवं विवाहादि संस्कारों के नृत्य प्रमुख हैं जन्म के अवसर पर मुख्य रूप से बधाव, कलसा, दिया तथा चंगेरिया आदि नृत्य किये जाते हैं तथा विवाह के अवसर पर देवी–देवताओं संबंधी, रहस–बधाव नृत्य, लाकौर नृत्य, चीकट नृत्य, बहू उतारने का नृत्य, बारात की ऊबनी के अवसर पर दिलदिल घोड़ी का नृत्य, हिजड़ों के नृत्य तथा बेड़नियों के नृत्य भी होते हैं ये नृत्य मनोरंजक तथा हास्य प्रधान होते हैं।

(क) चंगेर–नृत्य :–

बुन्देलखण्ड में चंगेर नृत्य पुत्र जन्मोत्सव पर किया जाता है। एक विशेष प्रकार की बांस की बनी हुई टिपारी जो ऊपर से चौड़ी और नीचे भीतर की ओर संकरी व गहरी होती है। उसमें शिशु को लिटाकर झूला झुलाया जाता है।

यह चंगेर शिशु की बुआ लाती है। साथ ही कपड़े, गहने व बैंड बाजे के साथ चंगेर को सिर पर रखकर बधाव गीत गाते हुए व नृत्य करते हुए आती है। इस नृत्य के साथ ढपला, तुरही तथा झांझ बजते है। चंगेर लाने पर खुशी से नेग दिया जाता है। आजकल 'चंगेर' का रूप लकड़ी के पालने ने ले लिया है।

(ख) बाबा–बाई नृत्य :–

बुन्देलखण्ड में इसे 'जुगिया' भी कहते है। बारात चली जाने के बाद रात्रि–जागरण करते हुए महिलाएं गीतों के साथ बाबा–बाई का नृत्य करती हैं। इस नृत्य में एक महिला पुरूष व दूसरी उसकी साथी स्त्री रूप में मिलकर विभिन्न स्वांग करते हुए नृत्य करती है। इस नृत्य में कनस्तर, ढोलक, चिमटा, थाली, लोटा आदि विशेष रूप से बजाए जाते है।

(ग) बहू–उतारने का नृत्य :–

नई बहू के प्रथम बार ससुराल आने पर उसे गोद में उठाकर सास द्वारा ये नृत्य किया जाता है साथ ही नई बहू से देवी देवताओं व पूजन स्थान पर हांते लगवा कर उस अवसर पर नृत्य किया जाता है।

(2) ऋतु एवं त्योहारीय लोकनृत्य

बुन्देलखण्ड में त्यौहारीय नृत्यों की अपनी अनूठी परम्परा है। ऋतु के प्रभाव एवं त्योहार के उल्लास को नृत्यों के माध्यम से खुशी को उदघाटित करते हैं। नृत्यों में वर्षा ऋतु का 'सैरा नृत्य' सामाजिक पृष्ठ भूमि में हमारी एकता को रेखांकित करता हुआ हिलोरें लेता है।

(क) 'सैरा–नृत्य' :–

बुन्देलखण्ड में सैरा–नृत्य' रक्षाव–धन के दूसरे दिन कजलियों या भुजरियों के अवसर पर किया जाता है। ये परिश्रम साध्य नृत्य है। गोल घेरे में छोटे–2 डंडों को हाथ में लेकर गीत के साथ ही घूमते जाते हैं और गीत की पंक्तियां दोहराते हुए हाथ में लिए डंडों पर आघात करते जाते हैं समूह में घूमकर डंडों पर चोट करते व्यक्ति कभी जमीन पर झुककर, झूमकर, घूमकर, बैठकर, लेटकर कभी आड़े तिरछे होकर अर्थात्

कलाबाजियां करते हुए डंडों पर एक साथ समान रूप से आघात करते हैं। गीत व आघात की ध्वनि तेज गति पकड़ जाती है। गोल घेरे के बीच में ढोलक व मंजीरा वादक बैठा व खड़ा रहता है।

सैरा नृत्य के साथ सैरा–गीत गाते हैं –

सैरो तो सैरो रे ऽ ऽ ऽ ऽ
अरे सैरों तो सैरो अरे सब कोई कहे सैरो भले नै होय
डड़ला जो चूके रे बैया लगे जे पीड़ा सही नै जाय।

– संकलित

इसमें प्रश्न – उत्तर होते हैं । सैरा गाते–2 अन्त में नृत्य की लय बढ़ा कर 'पाई' गाते हैं –

'बही जांऊ मोरे राजा हिलोरों में मरी जाऊं मोरे राजा मरोरों में'

-- संकलित

'पाई' के अर्न्तगत भजन भी गाते है, जिनकी धुनें 'पाई' की ही तरह होती है।

(ख) दिवारी या मोनियां नृत्य :–

दिवारी के त्योहार पर विशेषरूप से किया जाने वाला बुन्देलखण्ड का यह प्रसिद्ध लोकनृत्य है। इसके अतिरिक्त जाति–विशेष का भी नृत्य है। दीवारी के अवसर पर 'अहीर' जाति के लोगों द्वारा किया जाता है। जिन्हें 'बरेदी' कहते हैं। इसे 'बरेदी–नृत्य' के नाम से भी जाना जाता है। आजकल ये नृत्य एक व्यवसाय बन गया है। नृत्य के दौरान दो दो पंक्ति के दोहे गाते हैं फिर उसके बाद ढोलक की तेज लय पर हाथ में मोर पंखों का मूठा लिए हुए थिरकते हैं –

अरे ऽ ऽ अहीर को प्यारे अरे भैसिंया कुरमी को प्यारो बैल रे
अरे ठाकुर खों प्यारे अरे बेड़नी नचवा रए पौर के दौर रे ।

– संकलित

वाद्य यंत्रों के रूप में कसावरी ढोलक तथा नगड़िया आदि प्रमुख होते है।

(3) जातीय–नृत्य

बुन्देलखण्ड में जातीय नृत्य प्रायः निम्न वर्ग की जातियों में ही होते हैं ये नृत्य विशेष अवसरों पर, तीज–त्यौहारों पर शादी–विवाह के अवसर आदि पर किये जाते हैं। इनमें से अधिकतर नृत्यों का नाम जातीय नाम से जुड़ा हुआ है। इसके साथ ही इन नृत्यों के साथ गाए जाने वाले गीतों में उन जातियों के कार्य–व्यापार का प्रसंग भी होता है। बुन्देलखण्ड के कुछ जातीय लोक नृत्य प्रस्तुत हैं –

(क) राई–नृत्य :–

बुन्देलखण्ड का 'राई–नृत्य' अत्यधिक प्रसिद्ध है। ये श्रंगारिक नृत्य है इसमें बेड़िनी' (एक जाति विशेष) की भूमिका महत्व पूर्ण होती है। यह नृत्य' बुन्देली लोक जीवन के विशेष आकर्षण का केन्द्र है तथा बारहों महीने किया जाता है 'राई' मूलतः एक व्यवसायिक नृत्य है। बेड़िनियों की जीविका प्रायः इसी पर निर्भर रहती है 'मृदंग' की था पर राई–नृत्य के साथ फागें, ख्याल व स्वांग गाए जाते हैं।

राई–नृत्य में सौबत और बेड़िनी के बीच जवाब–तलब भी होते है – पहले बेड़िनी अपना तर्क रखती है और फिर सौबत उसका जवाब –

बेड़िनी का तर्क – पीपर को पत्ता डुलत नैया इन यारों की यारी मिटत नैया
नैना बंद लागे कइयो हो ....

सौबत का जवाब – पीपर को पत्ता डुलाय देहो इन यारों की यारी मिटाय देहों
नैना बंद ....

– *संकलित*

इस तरह पूरी रात मशाल या पलीता के उजाले में राई–नृत्य चलता रहता है। इस दौरान बीच–2 में विराम के लिए 'स्वांग' भी प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें तात्कालिक समय की समस्याएं, जटिलताएं व विद्रूपताओं की तीखी प्रतिक्रिया शामिल रहती है।

'गोरी हारै ने जाव–2 पीपर के पत्ता में देवता
'मोरे चुनरी के छोर–2 राजा करोंदन में बींद गए।

– *संकलित*

राई, लोकनृत्य पहले सामन्तों, मालगुजारों और रियासतों की शोभा बढ़ाता था परन्तु आज ग्रामीण व नगर के लोग भी इस नृत्य से अपना मनोरंजन करते है। वाद्य यंत्रों के रूप में मृदंग व तारें बजते है।

(ख) ढिमरियाई–नृत्य :–

बुन्देलखण्ड में यह ढीमर जाति का पुरुष प्रधान लोकनृत्य है। सारे दिन की थकान से चूर होकर रात में सभी एकत्र होकर नृत्य द्वारा थकान दूर करते हैं। शादी विवाह के अवसरों पर भी यह नृत्य ढीमर जाति विशेष द्वारा किया जाता है। बिरहा, सजनई व गारी इनके प्रमुख गीत हैं। ये गीत सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक तथा हास्य व्यंग–विषयक होते है। इनको गम्मत भी कहते हैं। इस नृत्य के पूर्व सुमरनी गाई जाती है फिर गीत गाते हैं –

सुमरनी -- 'सदा भवानी दाहिने सो सन्मुख रहत गनेस
पांच देव रक्षा करे सो बिरमा बिस्नू महेस'

गीत – 'डिबिया में के सालिगराम बोलत काय नइयां काय नइयां कैसे नइयां
लचके नचवारी को करया ऐसो राग ढिमरया, लचके ....

-- *संकलित*

ढिमरियाई नृत्य के साथ, कसावरी, लोटा, केंकड़ी (रेंकड़िया) तथा खंजड़ी आदि वाद्य प्रमुख रूप से बजते है।

(ग) कांडरा–नृत्य :–

बुन्देलखण्ड में कांडरा–नृत्य प्रमुख रूप से धोबी जाति का पुरुष प्रधान नृत्य है। इसमें पुरुष 'फिरकी' के समान घूम–घूम कर घेरे में नाचते हैं और बुन्देली में घेरे को 'कौडा' कहा जाता है। संभवतः इसीलिए इस नृत्य का नाम 'कांड़रा' पड़ा। इस नृत्य में 'बिरहा' गीत गाते हैं। कांडरा–नर्तक' के हाथों में वाद्ययंत्र के रूप में केकड़ी होती है साथ ही मृदंग, कसावरी, लोटा व टिमकी प्रमुख वाद्य बजाए जाते हैं पहले साखी फिर बिरह गीत गाते है बाद में लय तेज कर देते हैं –

साखी – 'ए जी बड़े हुए तो बीरन क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर
अरे पंछी खो छाया नहीं बीरन फल लागे अत दूर''

गीत – अरे मोरी कही नईं मानी मुगल ने जब झींकत घुड़ला पलाने लए
पलाने लए जू बइयत मै हो गए असवार
अरे यही बाय पै कउआ पर गओ दाहिने पै फिसर गई जान मुगल ने .
जब माता कै रई 'बायरों भइया बहन घुड़ला की बात
अरे तिरिया बाला लै गई स्वामी तिरिया पाएं ऐबात, मुगल ने मोरी कही मानी नै।

– *संकलित*

(घ) रावला–नृत्य :–

बुन्देलखण्ड में रावला–नृत्य, धोबी, चमार, बसोर, मेहतर, काछी, गड़रिया तथा कोरी आदि निम्न वर्ग के यहां किया जाता है। यह व्यावसायिक नृत्य है, जो विवाहादि अवसर पर किया जाता है इस नृत्य में एक पुरुष स्त्री वेष में व दूसरा विदूषक बनता है। इस नृत्य के साथ सारंगी (केंकड़ी) मृदंग, झींका, कसावरी व रमतूला प्रमुख रुप से बजाया जाता है। नारी भावना परक राई–नृत्य का रावला–नृत्य' पौरुष रुप है इस नृत्य के साथ भी स्वांग भरे जाते हैं इनके साथ गाए गीतों में श्लील व अश्लील दोनों प्रकार के गीत मिलते हैं। नृत्य करते–करते बिना रूके गीतों के विषय बदलते रहते हैं नृत्य की उसी लय ताल पर चलता रहता है।

गीत – ओई री ककरी खाले करकरी डंगरा नार
हलका नदी का पानी पीलो हलका नार
हलका रे रांड़ के हलका ओरी हलका
लै गए ते, अरे हलका लै गए ते
अरे बुड़िया जा लईं दो–दो लड़कवा ज्वानें थथोलें पेट
ज्वान रे कामना ज्वान ओरी ज्वानें थथोलें पेट
अरे लै गई रे तनक से बारे खों बारे खों री 'गबवारे' खों
अरे बारे की नन्ही--नन्हीं हथुलियां मोह गई तनक से बारे खों।

– *संकलित*

(4) विविध–लोकनृत्य

इस वर्ग के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड के विभिन्न लोकनृत्य आते है जिनमें अनुष्ठानिक नृत्य,. मेला नृत्य, हिजड़ों के नृत्य, भालू बन्दर के नृत्य, देवी नृत्य, बधाई नृत्य, बसदेवा–नृत्य आदि–आदि हैं। परन्तु इनमें से कुछ प्रमुख लोक नृत्यों का वर्णन करेंगे –

(क) जवारा नृत्य :–

'जवारा' नृत्य बुन्देलखण्ड का धार्मिक नृत्य है। यह चैत व आश्विन मास में देवी जी के आवाहन के अवसर पर किया जाता है। यह शक्ति पूजा से संबंधित है इस नृत्य के साथ भगतें, जस, जगदेव का पंवारा, बीरोठ तथा देवी के गीत गाए जाते हैं। छोटे–2 कथात्मक गीत भी गाए जाते है।

बीरोठ – 'देव–देव अटक नदी बैरन भई
देव देव घरर–घरर नदिया बहे
हे ऽ ऽ कैसें के उतरों पार बेहानार सिंह,
अटक नदी बैरन भई................

– संकलित

भगत – अरे जगतारन आई बेला बाग में हो
अरे मुख भर पान नयन भरे सुरमा
सिंदुरा भर के मांग रे पट बेंदा की
अरे डुरिया ढुरके मांग पे हो ...

– संकलित

(ख) नौरता–नृत्य :–

'नौरता' बुन्देलखण्ड का लुप्त प्रायः धार्मिक नृत्य है। यह कुंवारी कन्याओं द्वारा किया जाता है। नवरात्रि के पहले दिन से नवें दिन तक खेला जाने वाला नृत्य है। टीकमगढ़ जिले के गांवों में अभी भी विधि–विधान से खेला जाता है। 'नौरता' नृत्य–गीत में गौरा–पार्वती की भगतें तथा धार्मिक सामाजिक गीत गाए जाते हैं –

"पूंछत–पूंछत आए हैं नारे सुअटा कौन बड़े की पौर
पौरन बैठे भैया पौरिया नारे सुअटा खिरकिन बैठ छड़ीदार"।

– संकलित

(ग) बधाई–नृत्य :-

बुन्देलखण्ड का प्राचीन नृत्य है। पहले इस नृत्य में गीत नहीं गाए जाते थे, परन्तु समय परिवर्तन के साथ इसमें गारी व 'बधावा–गीत' का प्रयोग होने लगा। देवी पूजन, मनौती पूरी होने पर, पुत्र–जन्म, विवाह आदि के अवसर पर स्त्री–पुरुष दोनों ही इस नृत्य में शामिल रहते हैं। इस नृत्य में मुद्राएं अत्यन्त आकर्षक होती हैं देखने वाला रोमांचित हो उठता है –

गारी गीत – नैना बंद लागे कइयो हो
चोली बंद लागे कइयो हो

बधावा गीत – 'बधाव ल्याई ननदी अरे सांवलिया
कंगनवा मांगे ननदी अरे सांवलिया'।

इस नृत्य के साथ, मृदंग, नगड़िया, लोटा आदि तथा मुख्य रूप से 'रमतूला' प्रयोग किया जाता है जो बुन्देलखण्ड में 'बधाई' का सूचक है।

बुन्देलखण्ड के आदिवासी लोकनृत्यों के अन्तर्गत, शैताम, शैला, करमा आदि नृत्य आते है। इन नृत्यों में वाद्यों के साथ हो ऽ ऽ ऽ, हां ऽ ऽ ऽ, हूं ऽ ऽ ऽ कई तरह की आवाजें निकालते हैं। वाद्यों में मुख्य रूप से 'ढांक' व ढोल, ढुमकी, पायरी, छल्ला और झुमकी का प्रयोग करते हैं। बुन्देलखण्ड के आदिवासियों का 'करमा नृत्य' विश्व के महान लोकनृत्यों में अग्रिम पंक्ति में स्थान रखता है।

❑

षष्ठम अध्याय

झिंझिया गीत

हरी री चिरैया तोरे पियरे पंख
उड़–उड़ बैठी बमूर की डार माई
अक्सा खोल घंघरिया ल्याओ माई
बक्सा खोल उढ़निया ल्याओ माई
बेला भर तिल चांऊरी ल्याओ माई
पांच टका दछना कें ल्याओ माई
आज झिंझो बिदा होती हैं ।

– संकलन

स्वर–लिपि

दो स्वर – स, रे, (शुद्ध)

स स स रे	स स स स	स स स रे	स स स –
ह री री चि	रै या तो रे	पि य रे ऽ	पं ऽ ऽ ख

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'चकिया गीत' *(चकिया पीसते समय)*

अंखियां हमारी अलस्यानी अटरिये चलो

1. पहली अटरिया मोरे ससुरा परे हैं,
   सो होंई सास महारानी ।

2. दूजी अटरिया मोरे जेठा परे हैं,
   सो होंई जेठानी महारानी ।

3. तीजी अटरिया मोरे देवरा परे हैं,
   सो होंई देवरानी महारानी :।

4. चौथी अटरिया मोरी सेजा लगी हैं,
   सो होई मनें रात रानी ।

-- संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा'

स रे ग – 3 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

स – स –	स रे ग ग	ग रे रे ग	ग – ग –
अं ऽ खि ऽ	यां ऽ ऽ ह	मा ऽ री ऽ	अ ऽ ल ऽ
रे – – –	रे स – –	– – – –	– – ग –
स्या ऽ ऽ ऽ	नी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ अ ऽ
ग रे रे ग	रे स स –	स – स –	स रे ग –
ट रि ये ऽ	च ऽ लो ऽ	अं ऽ खि ऽ	यां ऽ ऽ ह
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – स –	रे ग ग ग	ग रे ग –	ग – ग –
प ऽ ह ऽ	ली ऽ अ ऽ	ट रि या ऽ	मो ऽ रे ऽ
रे – रे ग	ग – ग रे	रे – – –	रे स – –
स ऽ सु ऽ	रा ऽ प ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	हैं ऽ ऽ सो
स – स –	स रे ग ग	ग रे रे ग	ग – ग रे
हों ऽ ऽ ऽ	ई ऽ सा ऽ	ऽ ऽ स ऽ	म ऽ हा ऽ
रे – – –	रे स – –	– – – –	– – ग –
रा ऽ ऽ ऽ	नीं ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ अ ऽ
ग रे रे ग	रे स स –		
ट रि ये ऽ	च ऽ लो ऽ		
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएगें ।

'झिंझिया–गीत'

चन्दा रपट मेरो जेवर टूटो अब घर कैसे जाऊं रे सुअना
घरै जों जैहें सास रिसैहें बन में रहो ना जाए सुअना
बन में रैहें बन फल खैहें, खैहें महोबिया पान रे सुअना
होंठ रचै जिबिया रचै औ रचै बतीसौं दाँत रे सुअना ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' — स रे ग – 3 स्वर (सब शुद्ध)

स स – रे	स – स –	स रे रे स	(स)रे ग ग रेस
चं दा ऽ र	प ट मे रो	जे ऽ व र	टू ऽ टो ऽऽ
स रे रे ग	रे स स –	रे – – ग	रे स स –
अ ब घ र	कै ऽ से ऽ	जा ऽ ऽ ऊं	सु अ ना ऽ

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'लोक–भजन'

संकर भोले नाथ परबत पै बगिया लगाइयौ

कौना लगाई तोरी बेला चमेली, कौना नै अनार, परबत .....

माली लगाई तोरी बेला चेमली, मालन ने अनार, परबत ....

काय कै सींसौ तोरी बेला चमेली, काय को अनार, परबत ....

दुदुवन सींसौ तोरी बेला चमेली, इमरत सें अनार, परबत ....

स्वर–लिपि

'ताल–कहंरवा' *(ठेका दुगुन में)* नि़ स रे – 3 स्वर (सब शुद्ध)

नि़ – नि़ नि़	नि़ सा रे –	रे – – सा	नि़– सा– –स सा
सं ऽ क र	भो ऽ ले ऽ	ना ऽ ऽ थ	पर ब ऽतु पै
रे रे रे सा	नि़ सा सा –	सा – – –	सा – – –
ब गि या ल	गा ऽ ई ऽ	यो ऽ ऽ ऽ	हा ऽ ऽ ऽ
नि़ नि़ नि़ नि़	सा सा सा सा	रे रे – रे	सा – सा –
कौं ना ऽ ल	गा ई तो री	बे ला ऽ च	मे ऽ ली ऽ
नि़ – नि़ –	नि़ सा रे रे	रे – – सा	नि़– स –स सा
कौं ऽ ना ऽ	ने ऽ ऽ अ	ना ऽ ऽ र	पर ब ऽतु पै

– उदधृत मामुलिया पत्रिका, अंक 2, पृ0 64 लेखक – प्यारे लाल श्रीमाल
(बुन्देली लोक संगीत) सम्पादक – नर्मदा प्रसाद गुप्त

'बिलवारी'

मनमोहन उदक नै जाए हो ननदिया

धीरे सें झुला दे नौने पालना

1. अरे काहे के पलना बने अरे काहे के लगे हैं बुनाव, ननदिया, धीरे.....
2. अरे सौने के पलना बने अरे रेसम लगे हैं बुनाव ननदिया, धीरे....
3. अरे को जो पलना में झूल रए, अरे को है झुलावन हार ओ ननदिया धीरे....
4. अरे मोहन पलना में झूल रए अरे सखियें झुलावन हार ओ ननदिया, धीरे....

— *संकलन*

स्वर—लिपि

'ताल—कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* नि़ स रे — 3 स्वर (सब शुद्ध)

रे रे	रे सनि़ सरे रे	रे रे स —	स रे स नि़नि़
म न	मो ऽ हन उ	द क नै ऽ	जा एं हो ऽन
स रे रे —	रे रे स नि़स	स रे स स	नि़ — स स
न दि या ऽ	धी रें सें ऽझु	ला दे नो नै	पा ऽ ऽ ल
स — — —			
ना ऽ ऽ ऽ			

— शेष अन्तरे इसी प्रकार होंगे।

'कुआं पूजन का गीत' *(कुएं पर)*

गिर्रा पे डोरी डार गुइयां
डार गुइयां हो डराव गुइयां

1. गिर्रा पे डोरी जबई नींकी लागे, रेसम रसौरियां होय गुइयां
2. रेसम रसौरिया तबई नींकी लागे, सोने के घेलना होयं गुइयां
3. सोने के घेलना तबई नींके लागे, मोतिन लगे चका होयं गुइयां
4. मोतिन लगे चका तबई नीकें लागे, गोरी सी धनियां होयं गुइयां
5. पतरी सीं धनियां तबई नीकी लागे, मुठ भर जुबना होयं गुइयां
6. मुठ भर जुबना तबई नीके लागे, राजा रसीले होयं गुइयां
7. राजा रसीले तबई नीके लागे, कनियां होरिलवा होयं गुइयां

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

ऩी स रे ग (4 स्वर)
'राग–पीलू' (गंधार कोमल)

स्थाई :–

नि़ – नि़	नि़ स –	ग – रे	– – स
डा ऽ र	गु इ ऽ	यां ऽ हो	ऽ ऽ ड
नि़ – नि़	नि़ स –	ग – –	रे स –
रा ऽ व	गु इ ऽ	यां ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
स रे रे	स नि़ –	स – –	रे स –
गि ऽ र्रा	ऽ पे ऽ	डो ऽ ऽ	री ऽ ऽ
नि़ – स	स – –	स – –	– – –
डा ऽ र	गु इ ऽ	यां ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

नि़ – नि़	– नि़ –	स – –	नि़ – स
गि ऽ र्रा	ऽ पे ऽ	डो ऽ ऽ	री ऽ ज
रे ग रे	– स –	रे – –	स – –
ब ई नी	ऽ की ऽ	ला ऽ ऽ	गे ऽ ऽ
ग – –	ग – –	ग – ग	ग रे स
रे ऽ स	ऽ म र	सौ ऽ रि	यां ऽ ऽ
नि़ – –	नि़ स –	ग – –	रे स –
हो ऽ यं	गु इ ऽ	यां ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
स रे –	– नि़ –	(निस) – –	रे – –
गि ऽ र्रा	ऽ पे ऽ	(डोऽ) ऽ ऽ	री ऽ ऽ
नि़ – स	स – –	स – –	– – –
डा ऽ र	गु इ ऽ	यां ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

'मण्डप'

हरे बांस मण्डप छाए
सिया जू को राम ब्याहन आये

1. जब सिया जू की लिखत लगुनिया
रकम रकम कागद आए, सिया जू ....

2. जब सिया जू को होत है टीका
ऐरावत हाथी आये, सिया ....

3. जब सिया जू को चढ़त चढ़ाव
भांत – भांत जेवर आये, सिया ....

4. जब सिया जू की परत भांवरे
ब्रहमा पंडित बन आये, सिया ....

5. जब सिया जू की होत बिदाई
सब सखियन अंसुआ आए, सिया ....

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* ध़ स रे ग – 4 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

स सरे ग ग	रे ग रे स	ध़ स रे ग	ग – रे –
ह रेऽ ऽ बां	ऽ स मं ऽ	ड प छा ऽ	ये ऽ ऽ ऽ
ग गरे रे रेस	स सरे ग ग	रे ग रे –	स – – –
सि याऽ जू को	रा ऽऽ म ब्या	ह न आ ऽ	ये ऽ ऽ ऽ

अन्तरा :–

ग ग ग गरे	रेग ग ग रेस	स रे रे ग	रे ग रे स
ज ब सि याऽ	जूऽ ऽ की ऽऽ	लि ख त ल	गु नि या ऽ
स सरे ग ग	रे ग रे स	ध़ स रे ग	ग – रे –
र कऽ म र	क म का ऽ	ग द आ ऽ	ये ऽ ऽ ऽ

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएगें ।

'बनरा'

मेरो बारो बना नादान, कमनिया खेलन जैहैं रे

1. आजी चलो हमारे संग अकेलें हम नईं जैहैं रे
बनरा, आजुल लै लेओ संग, महलिया हमईं रखैहैं रे

2. मइया चलो हमारे संग अकेलें हम नईं जैहैं रें
बनरा, बाबुल लै ले ओ संग महलिया हमईं रखैहैं रें

3. भौजी चलो हमारे संग अकेलें हम नईं जैहैं रें
बनरा, भइया लै लेओ संग महलिया हमईं रखैहैं रें

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* नि़ स रे ग – 4 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

स – स रे	रे – रे ग	रे – रे स	[स]ग – ग रे
मे ऽ रो ऽ	बा ऽ रो ब	ना ऽ ना ऽ	दा ऽ न क
रे रे सा –	[स]रे – सनि़ नि़	नि़ स रे –	स – – –
म नि या ऽ	खे ऽ लऽ न	जै ऽ है ऽ	रे ऽ ऽ ऽ

– अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'स्मरण'

(विवाह के अवसर पर जब करइया चढ़ती है)

देवा तुमरे भरोसे चढ़ी करइया सुरत लगी
अइयो – अइयो रे गनेस बाबा सुरत लगी
अइयो – अइयो रे कालका मइया सुरत लगी
अइयो – अइयो रे संकर बाबा सुरत लगी
अइयो – अइयो रे सुहागिल मइया सुरत लगी
अइयो – अइयो रे हरदौल लाला सुरत लगी
अइयो – अइयो रे सब घर कें पुरखा सुरत लगी।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा'

स रे ग म (4 स्वर)
'गंधार कोमल'

स्थाई :–

ग ग ग गरे	रे – स –	स स – स	रे ग ग –
तु म रे भऽ	रो ऽ से ऽ	च ढ़ी ऽ क	रै ऽ या ऽ
रे – रे –	रे – स –	स – – –	
सु ऽ र ऽ	त ऽ ल ऽ	गी ऽ ऽ ऽ	

– शेष सभी पंक्तियां इसी धुन में गाई जाएगीं ।

'दादरा'

लरका पांच भए पिया सेज नै आए

1. पैलो वचन मंगो गंगा सें, गंगाराम भए, पिया ....
2. दूजो वचन मंगो तुलसी सें, तुलसीराम भए, पियां ....
3. तीजो वचन मंगो सूरज सें, सूरजभान भए, पिया ....
4. चौथो वचन मंगो चन्दा सें, चन्दरभान भए, पिया ....
5. पांचौ वचन मंगो एन्दुर सें, एन्दुरभान भए, पिया ......

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' — स रे ग म – 4 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

स स –	स – –	रे ग –	रे स –
ल र ऽ	का ऽ ऽ	पाँ ऽ ऽ	च भ ऽ
रे – –	– – –	स – –	– स –
ये ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	पि ऽ या	ऽ से ऽ
रे स –	रे – –	स – –	स – –
ऽ ज ऽ	नै ऽ ऽ	आ ऽ ऽ	ए ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – –	स – –	रे म –	म म –
पै ऽ ऽ	लो ऽ ऽ	व च ऽ	न मं ऽ
म – –	म ग –	रे ग –	ग रे स
गो ऽ ऽ	गं ऽ ऽ	गा ऽ ऽ	सें ऽ ऽ
स – –	स – –	रे ग –	रे स –
गं ऽ ऽ	गा ऽ ऽ	रां ऽ ऽ	म भ ऽ
रे – –	– – –	स – स	– स –
ये ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	पि ऽ या	ऽ से ऽ
रे स –	रे – –	स – –	स – –
ऽ ज ऽ	नै ऽ ऽ	आ ऽ ऽ	ये ऽ ऽ
X	O	X	O

– शेष सभी पंक्तियां इसी धुन में गाई जाएगीं ।

'गारी'

मोपे आज रहो रे नईं जाये मुरलिया तोरी धुन सुन कें

1. उनने गउएं मौ लई बछला मौ लए, धुन सुन के
उनके दूध अरे हॉ हॉ, उनके दूध रहे री सिरदार, मुरलिया.....
2. उनने राजा मो लए, रानी मो लई धुन सुन के
उनकीं सेंज, अरे हॉ हॉ, उनकी सेज रही रे सिरदार, मुरलिया...
3. उनने दियला मो लए बाती मो लई धुन सुन कें
उनकी ज्योत अरे हॉ हॉ, उनकी जोत रहे री सिरदार, मुरलिया.
4. उनने गंगा मो लई जमना मो लई धुन सुन के
उनकी लहरें अरे हॉ, हॉ उनकी लहरें री सिरदार, मुरलिया....
5. उनने माता मो लई पिता मो लए धुन सुन कें
उनकी सखियां अरे हॉ हॉ, उनकी सखियां रहे री सिरदार, मुरलिया.
6. उनने राजा मो लए रानी मो लई धुन सुन के
उनकी चोली अरे हॉ हॉ उनकी चोली धरी रे सुख सेज, मुरलिया.....

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

नी स रे ग – 4 स्वर
(नी रे ग कोमल)

स्थाई :–

			स रे
			मो पे
ग ग रेस सनी	स स स रे	ग ग रेस नी	नीस रे ग रेस
आ ऽ जऽ अरे	हाँ हाँ मो पे	आ ऽ जऽ र	होऽ रे न ईऽ
सरे ग– रेस नी–	नीस स ग रेस	सरे ग रे रेस	स –
जाऽ ऽऽ यऽ मुऽ	रलि या तो रीऽ	धुऽ न सु नऽ	के ऽ

अन्तरा :–

			स– रे
			उन ने
ग– ग रेस सनी	नीस स ग रेस	सरे ग रे रेस	स – स– रे
गउ एं मोऽ लईं	बछ ला मो लए	धुऽ न सु नऽ	के ऽ उन के
ग ग रेस सनी	स स स रे	ग ग रेस नी	नीस रे ग रेस
दू ऽ धऽ अरे	हाँ हाँ उन के	दू ऽ धऽ रऽ	हेऽ री सि रऽ
सरे ग– रेस नी–	नीस स ग रेस	सरे ग रे रेस	स –
दाऽ ऽऽ रऽ मुऽ	रलि या तो रीऽ	धुऽ न सु नऽ	के ऽ

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएगें ।

'ढीमर गीत'

पानूं को रोजगार ढिमर तोरे पानूं को

1. चार घिनौंची भरत्ते पानी सों चार घिनौंची भरत्ते पानी
चार घिनौंची भरत्ते पानी सों आना मिलत्ते चार
आना मिलत्ते चार तुमाईं सौं आना मिलत्ते चार, ढिमर

2. चार रोटी को करत कलेऊ सो चार रोटी थो वरत कलेऊ
चार रोटी को करत कलेऊ सा तनक चुआए दई दार
तनक चुआय दई दार तुमाई सौं तनक चुआय दई दार, ढिमर

3. ओई तला की मारी मछरिया सो ओई तला की मारी मछरिया
ओई तला की मारी मछरिया सो ओई के खोदे मुरार
ओई के खोदे मुरार तुमाई सों ओई के खोदे मुरार, ढिमर

4. पानूं भरबे गई छबीली सों पानूं भरबे गई छबीली
पानूं भरबे गई छबीली सों बीच में मिल गए यार
बीच में मिल गए यार तुमाई सौं बीच में मिल गए यार, ढिमर

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' *(द्रुत–लय)* 4 स्वर (दोनों गंधार)

स्थाई :–

— ग —	— ग —	ग — —	ग रे —
ऽ पा ऽ	ऽ नी ऽ	को ऽ ऽ	रो ज ऽ
रे — —	रे — स	रे ग —	ग ग —
गा ऽ ऽ	र ऽ ढि	म र ऽ	तो रे ऽ
रे — रे	— रे —	रे — —	— — —
ऽ ऽ पा	ऽ नी ऽ	को ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

— म —	— म म	म — —	म — —
ऽ चा ऽ	ऽ र घि	नौं ऽ ऽ	ची ऽ ऽ
ग — म	— म —	ग — म	— म —
भ ऽ र	ऽ त्ते ऽ	पा ऽ नी	ऽ सों ऽ
ग — ग	ग — ग	ग — —	ग रे —
ऽ ऽ आ	ना ऽ मि	ल ऽ ऽ	त्ते ऽ ऽ
रे — —	— — —	— — —	— — —
चा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र
— — म	म — म	म — —	— — —
ऽ ऽ आ	ना ऽ मि	ल ऽ ऽ	त्ते ऽ ऽ
ग ग —	म म —	ग ग —	म — —
चा ऽ ऽ	र तु ऽ	मा ई ऽ	सों ऽ ऽ
— — ग	ग — ग	— — —	ग — —
ऽ ऽ आ	ना ऽ मि	ल ऽ ऽ	त्ते ऽ ऽ
रे — रे			
चा ऽ र			
X	O	X	O

— शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जायेंगे ।

'सरिया'

बिजना तो डंडीदार रे राव रजन के बीजना
अब पहल महीना लागो, अब पहल महीना लागो,
अब दूजो लागन हार रे, राव रजन के बीजना
(इसी प्रकार नौ महीनें बोलना है)
अब पेट में लल्ला बोले–2, ननदी को दूल्हा ढूंढो रें, राव रजन के बीजना
जब बरात ग्योंड़ें पे आई–2, ननदी के पीरें हो वे रे, '' '' '' ''
जब बरात द्वारे पे आई–2, ननदी के लल्ला हो गए रे'' '' '' ''
ननदी को ससुरा यों कहे–2, जे कौन को लल्लो रोबे रे'' '' '' ''
लहुर भतीजों यों कहे–2 जे बुआको लल्ला रोबे रे'' '' '' ''
पंडित दूल्हा से यों कहे–2, हम ब्याव पढ़े दस्टौन रे'' '' '' ''
दूल्हा पंडित से यों कहे–2 तुम ब्याव पढ़ो दस्टौन रे'' '' '' ''
काय पे लादें दाय जो–2 काहे पे जच्चा खाट रे'' '' '' ''
गाडी पे लादो दाय जो–2 दूल्हा के सिर पर खाट रे'' '' '' ''
बा सास बहू से यों कहे–2 क्वांरे पे लल्ला जायो रे'' '' '' ''
बा बहू सास से यों कहे–2 तेरी तो बिटिया बांझ रे'' '' '' ''

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* नि़ स रे ग म – 5 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–				सनि़ बिज
	स रे स नी़ ना तो डं डी	स –स रे – दा ऽर रे ऽ	स नि़नि़ स– रे– रा वर जन केऽ	स –स स, बी ऽज ना,
अन्तरा :–				सस अब
	म– म– म– म– पह लम हीऽ नाऽ	ग – रेस सस ला ऽ गोऽ अब	म– मम म– म– पह लम हीऽ नाऽ	ग – रेस सनि़ ला ऽ गोऽ दूऽ
	स– रे– स– नी़– जोऽ तोऽ लाऽ गन	स –स रे – हा ऽर रे ऽ	स नि़नि़ स– रे– रा वर जन केऽ	स –स स, बी ऽज ना,

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जायेंगी ।

'बनरा'

मोरे जसरथ नवल कुंआर, आज दूल्हा बन आए री
आज दूल्हा बन आए री, आज बनरा बन आए री

1. बना के आजुल चतुर सुजान बना तो ऐसे सज लए री
जैसें सज लए लछमन राम भरत कों आंगे कर लए री
भरत कों आगे कर लए री, शरत कों आंगे कर लए री

2. बना के बाबुल ....

3. बना के काबूल ....

4. बना के मामुल ....

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* ध़ स रे ग म – 5 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

स ध़ स रे	ग ग ग ग	ग ग ग रे	ग म – म ग
मो ऽ रे ऽ	ज स र थ	न व ल कु	आं ऽ र आ
ग रे रे –	रे ग ग रे	स ध़ स रे	ग – – –
ऽ ज दू ऽ	ला ऽ ब न	आ ऽ ए ऽ	री ऽ ऽ ऽ

– अन्तारे इसी धुन में गाए जाएंगें ।

'कुंआ पूजने के बाद' *(जब देवर गगरी उतारता है)*

हम पैंरे मोतिन की माला हमार कोउ गगरी उतारै

1. एक हाथ लाला गगरी उतारौं, एक सें पाग समारौ हमार कोउ गगरी उतारौ
2. गगरी उतारो पगड़ी समारौ, फैरो जोबन पै हत्ता हमार कोउ गगरी उतारौ
3. एक हात मोरी गगरी उतारौं, दूजें सें ललना समारो हमार कोउ गगरी उतारौ

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' धृ स रे ग म – 5 स्वर (सब शुद्ध)
(पहाड़ी धुन पर आधारित)

स्थाई :–

ध़ ध़ –	ध़ स स	स रे –	ग म –
ह म ऽ	पै रे मो	ति न ऽ	की ऽ ऽ
ग रे रे	स स –	स – रे	ग म –
मा ऽ ला	ऽ ह ऽ	मा ऽ र	को उ ऽ
ग रे रे	स – स	रे – –	स – –
ग ग ऽ	री ऽ उ	ता ऽ ऽ	रो ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

ग – ग	– रे –	रे ग –	ग रे –
ए ऽ क	ऽ हा ऽ	ऽ थ ऽ	ला ला ऽ
रे रे –	रे – स	रे – –	स – –
ग ग ऽ	री ऽ उ	ता ऽ ऽ	रो ऽ ऽ
ध़ ध़ –	ध़ स स	स रे –	ग म –
ए ऽ क	ऽ से ऽ	पा ऽ ऽ	ग ऽ स
ग रे रे	स – –	स – रे	ग म –
मा ऽ रों	ऽ ह ऽ	मा ऽ र	को उ ऽ
ग रे रे	स – स	रे – –	स – –
ग ग ऽ	री ऽ उ	ता ऽ ऽ	रे ऽ ऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'तेल चढ़ाने का गीत'

कौना बेटी तेल चढ़ावे कौन लाला बैंदुलिया
श्रुति बेटी तेल चढ़ावे *सत्यांशु* लाला बैंदुलिया

काहे को तेल फुलेल काहे की दो कलियां
चम्पे को तेल फुलेल चमेली की दो कलियां

को ल्याओ तेल फुलेल सों को ल्याओ दो कलियां
तेलिन ल्याई तेल फुलेल मालिन ल्याई दो कलियां

चढ़ गओ तेल फुलेल छुटक रही पांखुरियां
भाभी उतारे तेल वीरन उसारें दो कलियां

– *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दीपचन्दी'

प़ नि़ स रे ग (5 स्वर)
'गंधार कोमल'

स्थाई :–

नि़ प़ –	नि़ – नि़ –	स – नि़	सग – ग –
कौ ना ऽ	बे ऽ टी ऽ	ते ऽ ऽ	ल ऽ च ऽ
ग ग –	रे – – स	– नि़ –	ग – ग रे
ढ़ा ऽ ऽ	वे ऽ ऽ कौ	ऽ न ऽ	ला ऽ ला ऽ
स – रे	रे – स –	स – –	– – – –
बैं ऽ ऽ	दु ऽ लि ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
X	2	O	3

– *शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।*

'न्योतो गीत'

तुम घर न्योतो गनेस बाबा तुम मेरे आइयो
तुमरी लड़ैती को ब्याव सो आन समारियौ
तुम बिन काज न होवै सो आन समारियौ
तुम बिन काज न होवै धना संगै आइयो
तीन दिना को है काज सों आन समारियौ

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दीपचन्दी'

प़ नि़ स रे ग॒ (5 स्वर)
(गंधार कोमल)

स्थाई :–

नि़ प़ –	नि़ – नि़ –	स – –	स – ग॒ –
तु म ऽ	घ ऽ र ऽ	न्यो ऽ ऽ	तो ऽ ग ऽ
ग॒ ग॒ –	रे – स –	नि़ स –	रे – स –
ने स ऽ	बा ऽ बा ऽ	तु म ऽ	मे ऽ रे ऽ
नि़ स –	रे – स –	स – –	– – – –
आ ऽ ऽ	ऽ ऽ ई ऽ	यो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'विवाह – गीत'

कोट नवै परवत नवै सिर नवै न नवाए
आजुल जी को माथौ जब नवै जब साजन आए

बाबुल जी को माथौ जब नवै जब साजन आए
वीरन जू को माथौ जब नवै जब साजन आए

फुफल जू को माथौ जब नवै जब साजन आए
मामुल जू को माथौ जब नवै जब साजन आए

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–दीपचन्दी

स रे ग म प – 5 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

ग – –	रे ग स –	रे ग –	म प म ग
को ऽ ऽ	ट ऽ न ऽ	वै ऽ ऽ	प ऽ र ऽ
रे – ग	म – ग रे	स – –	ग – रे स
ऽ ऽ व	त ऽ न ऽ	वै ऽ ऽ	सि ऽ र ऽ
स रे –	ग – रे स	स – –	– – – –
न वै ऽ	न ऽ न ऽ	वा ऽ ऽ	ये ऽ ऽ ऽ

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'झिंझिया–गीत'

आंटुल सांटुल सांटुली और सटुला के लम्बे–लम्बे पाट
रे सुअना, सटुला के लम्बे–लम्बे पाट
ऐसे राजन भइया भोगिया बे तो डेड़ई फुलकियां खाय
उनकी दुलइया रानी लाड़ लड़ैती सो पलका सैं दैबे ना पायं
अलियन गलियन बैठी हैं सखियां कैसो है दूल्हा दामाद
नाक सुआ सी मौ बटुआ सो आंखें आमन कैसीं फांकै
रे सुअना दांत अनार ऐसे दाने ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' — स रे ग म प – 5 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

ग – रे	– ग –	म प म	– ग –
आ ऽ टु	ऽ ल ऽ	सा ऽ टु	ऽ ल ऽ
रे – म	– ग –	रे स –	ग – स रे
ऽ ऽ सा	ऽ ट ऽ	ली ऽ ऽ	औ ऽ र
स – रे	– म –	ग ग –	रे रे –
स टु ला	ऽ के ऽ	ल म्बे ऽ	ल म्बे ऽ
स – स	– ग –	रे स –	म ग – स रे
पा ऽ ट	ऽ रे ऽ	सु अ ऽ	ना ऽ ऽ
स – रे	– ग –	ग ग –	रे रे –
स टु ला	ऽ के ऽ	ल म्बे ऽ	ल म्बे ऽ
स – स			
पा ऽ ट			

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'बंबुलिया' (रमटेरा, लमटेरा, टिप्पे)

सपर ले अरे कासी जू की झिरियां
कासी जू की झिरियां कट जै हैं जनम के री पाप रे ऽ ऽ
सपर ले अरे हो ऽ ऽ ऽ
सपरबें खों कासी जू बनाई रे
कासी जू बनाई दरसन खां बना दए भोलेनाथ रे
सपरबें खों हो ऽ ऽ ऽ
अपन सिव मन्दिर में बिराजे रे
मन्दिर में बिराजे दरवाजे टिका लए हरे बांस रे
अपन सिव हो ऽ ऽ ऽ
दरस की तो बेरा भई रे
बेरा भई रे पट खोलो छबीले भैरो लाल रे
दरस की तो हो ऽ ऽ ऽ
दरस पट को खोलै रे ऽ ऽ
को खोलै रे भैरों लल्ला गए हैं ससुरार रे
दरस पट हो ऽ ऽ ऽ
कुसुम रंग फीके तो लगैं रे ऽ
फीकें लगै रे सुआपंखी रंगा दो मजेदार हो
दरस की तो हो ऽ ऽ ऽ
मिलन को तो बइयां फरकैं रे
बइयां फरकैं रे दरसन खां फरक रए नैन रे
दरस की तो हो ऽ ऽ ऽ

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

प़ नि़ स रे ग॒ (5 स्वर)
(पीलू छाया) 'गंधार कोमल'

स्थाई :–

			नि़ प़
			द ऽ
प नि़ नि़ स	रे – स नि़	नि़ – स रे	रे – स –
र ऽ स ऽ	की ऽ तो ऽ	बे ऽ रा ऽ	ऽ ऽ भ ऽ
नि़ – – स	स – – –	रे – रे –	– – स
ई ऽ ऽ ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	बे ऽ रा ऽ	ऽ ऽ भ ऽ
स रे रे ग॒	ग॒ – रे स	स – स रे	– – स नि़
ई ऽ रे ऽ	प ऽ ट ऽ	खो ऽ लो ऽ	ऽ ऽ छ ऽ
नि़ – रा –	रे – स नि़	नि़ – स –	– – स –
बी ऽ ले ऽ	भै ऽ रो ऽ	ला ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ल ऽ
स – – –	नि़ – नि़ प़	प़ नि़ नि़ स	रे – स नि़
रे ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ द ऽ	र ऽ स ऽ	की ऽ तो ऽ
नि़ स – –	– – – –		
हो ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ		

शेष पद इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'विदाई–गीत'

छूटे बाबुल मइया ना हम मिल पाये

1. सखियन संग आंगन में खेली, संगै मोरे केऊ सहेली
कबहुं रही ना मै तो अकेली, छूटे बहन औ भइया, ना......

2. गलियां गांव हवेली छूटी, मात पिता की आसा टूटी
जैसे कौड़ी होबै फूटी, छूटे मढ़ा मढ़इया, ना.....

3. जबसैं कर दए पीरे हाथ, मोरे सटका कोउ नई आत
सांची–सांची तुमैं सुनात, कोऊ ना मिलै मिलैया, ना......

4. लिख दओ बिधना ने परदेस, सारी उमरिया रहो कलेस
एक दिना नाही अवसेसा, याद आवै भइया, ना......

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में, मध्य–लय)* ध़ स रे ग म – 5 स्वर (सब शुद्ध)
'पहाड़ी की झलक'

स्थाई :–

स – ऱे ग	स – रे ग	रे ग ग –	रे स रे ग
छू ऽ टे ऽ	बा ऽ बु ल	म इ या ऽ	ऽ ऽ ना ऽ
ग रे रे स	स – ध़ –		
ह म मि ल	पा ऽ ये ऽ		

अन्तरा :–

ग – ग रे	ग म ग रे	स – रे ग	रे ग स –
स खिं य न	सं ग आं ऽ	ग न में ऽ	खे ऽ ली ऽ
ग – ग रे	ग म ग रे	स – रे ग	रे ग स –
सं ऽ गै ऽ	मो ऽ रे ऽ	के ऽ ऊ स	हे ऽ ली ऽ
ग – ग रे	ग म ग रे	स – रे ग	स – ध़ –
क ब हुं र	ही ऽ ना ऽ	मैं ऽ तो अ	के ऽ ली ऽ
स – रे ग	स – रे ग	रे ग ग रे	रे स ग –
छू ऽ टे ऽ	ब ह न औ	भ इ या ऽ	ऽ ऽ ना ऽ
ग रे रे स	स – ध़ –		
ह म मि ल	पा ऽ ये ऽ		

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'दादरा'

बुढ़ापो आ गओ हत्यारो–2

1. लरिका बहू दोनों भीतर परहैं
   हमखां द्वारे में पारो
2. अपना खाबै खीर सुहारी (पूड़ी)
   हमखां दैबे मैहारो
3. अपना ओढ़े नोंनी रजइया
   हमखां ओंढ़ाबे पयारो

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'दादरा'

प़ नि॒ स रे ग॒ म (6 स्वर)
('निषाद, 'गंधार कोमल')

स्थाई :–

			– स –
			ऽ बु ऽ
नि॒ स –	नि॒ प़ –	– – प़	नि॒ स –
ढा ऽ ऽ	पो ऽ ऽ	ऽ ऽ आ	ऽ ग ऽ
ग॒ रे –	स नि॒ –	स – स	– – –
ओ ऽ ऽ	ह ऽ ऽ	त्या ऽ रो	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

– – ग॒	ग॒ ग॒ रे	ग॒ म –	म म –
ऽ ऽ ल	रि का ऽ	ब हु ऽ	दो नों ऽ
– – ग॒	रे स नी॒	स स ऽ	स – –
ऽ ऽ भी	ऽ त र	प र ऽ	हैं ऽ ऽ
– – प़	प़ नि॒ स	ग॒ – रे	स नि॒ नि॒
ऽ ऽ ह	म का ऽ	द्वा ऽ ऽ	रे ऽ में
स – स			
पा ऽ रो			
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'दादरा'

बैरन हो गई जुंदइया मैं कैसी करौं

1. दिन की बैरन सास ननदिया
   रात की बैरन जुंदइया, मैं कैसी करौं
2. काहे के मारौं सास ननदिया
   काहे के छेदौं जुंदइया, मैं.......
3. तानन मारौं सास ननदिया
   तीरन मारौं जुंदइया मैं.......
4. जैसें तैसें डूबी जुंदइया
   सजना बड़े है सुबइया, मैं.......
5. जैसें तैसें मैंने सजना जगायो
   ललना बड़े हैं रोबइया, मैं.......
6. जैसें तैसें मैंने ललना सोवायो
   बोलन लागी चिरइया, मैं कैसी करौं ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'दादरा'

धृ स रे ग म प – 6 स्वर (सब शुद्ध)

'पहाड़ी धुन पर आधारित'

स्थाई :–

			ग
			बै
– ग ग	ग – म	गरे – ग	रे स स
ऽ र न	हो ऽ ऽ	गई ऽ जुं	द इ या
– स –	रे – ग	रे स –	– – –
ऽ मैं ऽ	कै ऽ सी	क रौं ऽ	ऽ ऽ ऽ
O	X	O	X

अन्तरा :–

– – स धृ	– स –	रे – –	ग म
ऽ ऽ दि	न की ऽ	बै ऽ ऽ	र न ऽ
– – म	– प म	ग रे –	रे ग –
ऽ ऽ सा	ऽ स न	न दि ऽ	या ऽ ऽ
रे स ग	– ग ग	ग म ग	रे – ग
ऽ ऽ रा	ऽ त की	बै ऽ ऽ	र न जुं
रे स स	– स –	रे – ग	रे स –
द इ या	ऽ मैं ऽ	कै ऽ सी	क रौं ऽ
O	X	O	X

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'लोकगीत'

पानूं की झरी लगी रे, धानन के खेत भरे–2
चौगिरदां हरे – हरे रे ....

1. माटी को आ गओ त्यौहार, खेतन को सजो है सिंगार
   कोयलिया कूक रही डार, डारन में फूल फरे रे, चौगिरदां.........

2. बीन सी बजन लगी बयार, बदरा ने सुनी है गुहार
   नाचत है ठुमक के फुहार, बूंदन ने नेग करे रे, चौगिरदां......

3. तला और तलैयन के पार, जुनरी ने पांव लये पखार
   नदियां के डूब गए पार, बिजुरी ने पांव परे रे चौगिरदां.......

– संकलन

'स्वर–लिपि'

'ताल–'दादरा' — स रे ग म प ध नी (7 स्वर) (निषाद कोमल)

स्थाई :–

ध़ – ध़	स स –	स स –	रे रे –
पा ऽ नूं	ऽ की ऽ	झ री ऽ	ल गी ऽ
म – –	– – –	– – –	प ग –
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ग – रे	– स –	रे – ग	रे स –
धा ऽ न	न के ऽ	खे ऽ त	भ रे ऽ
स – –	– – –	ध़ – –	– – –
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ध़ – ध़	– स –	रे स –	रे स –
चौ ऽ गि	र दां ऽ	ह रे ऽ	ह रे ऽ
स – –	– – –	– – –	– – –
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
x	o	x	o

अन्तरा :–

ध ध –	– ध –	प ध –	प – म
मा ऽ टी	ऽ को ऽ	आ ऽ ग	ओ ऽ त्यो
म – –	– – –	प – –	ध – ध
हा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र
ध – ध	– ध –	प ध –	प – म
खे ऽ त	न को ऽ	स जो ऽ	है ऽ सिं
म – –	– – –	प – –	ध – ध
गा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र
स रे रे	प म प	ग म ग	रे स –
को ऽ य	लि या ऽ	कू ऽ क	र ह ऽ
स – –	– – –	नि̱ – –	ध़ – –
डा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रे
ध़ – ध़	स स –	स – रे	म मग –
डा ऽ र	न में ऽ	फू ऽ ल	फ रेऽ ऽ
रे – –	– – –	– – –	रें सं –
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
सं – रे	प म –	ग म ग	रे स –
चौ ऽ गि	र दां ऽ	ह रे ऽ	ह रे ऽ
स – –	– – –	नि̱ – –	ध़ – –
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ध़ – ध़	स स –	रे स –	रे स –
चौ ऽ गि	र दां ऽ	ह रे ऽ	ह रे ऽ
रे – –	– – –		
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ		
o	x	o	x

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'गणेश वन्दना' *(लोकगीत)*

सब देवन न फूल बरसाए
महाराज गजानन आए
देवा कौन तुमारी माता है
और कौना के लाल कहाए
देवा पारबती मोरी माता है
सिब संकर के लाल कहाए
देवा कौन तुम्हारी पूजा है
और काए के भोग लगाए
देवा धूप दूब मोरी पूजा है
और लड्डुअन के भोग लगाए।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' ध़ स रे ग म प – 6 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

			स स –
			रा ब ऽ
ध़ – ध़	स स –	स – स	स रे –
दे ऽ व	न ने ऽ	फू ऽ ल	ब र ऽ
ग – –	म ग रे	– – –	रे ग –
सा ऽ ऽ	ये ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	म हा ऽ
म प –	प म –	ग रे –	रे ग –
रा ऽ ऽ	ज ग ऽ	जा ऽ ऽ	न न ऽ
रे – –	स – –		
आ ऽ ऽ	ये ऽ ऽ		
X	O	X	O

अन्तरा :–

			प प –
			दे वा ऽ
प – –	म म –	ग रे –	ग – –
कौ ऽ ऽ	न तु ऽ	मा ऽ ऽ	री ऽ ऽ
म ग –	रे – –	स – –	स स –
मा ऽ ऽ	ता ऽ ऽ	है ऽ ऽ	औ र ऽ
ध़ – –	ध स –	स – –	स – रे
कौ ऽ ऽ	ना ऽ के	ला ऽ ऽ	ल ऽ क
ग – –	म ग रे	– – –	रे ग –
हा ऽ ऽ	ये ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	म हा ऽ
म प –	प म –	ग रे –	रे ग –
रा ऽ ऽ	ज ग ऽ	जा ऽ ऽ	न न ऽ
रे – –	स – –		
आ ऽ ऽ	ये ऽ ऽ		
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'ज्योनार' *(भोजन के समय की गारी)*

बे तो हरस करे ररियां जनकपुर की सखियां
आतर परसी पातर परसी सो परस दईं दुनिया

आलू परसे रतालू परसे सो परस दईं घुइयां
लडुआ परसे पेरा परसे सो परस दईं जलेबियां

निंबुआ परसे अथानों परसो सो परस दईं अमियां
पूरी परसी कचौरी परसी सो परस दईं कचरियां

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* नि़ स रे ग म प – 6 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

			ग ग
			बे तो
ग म प म	ग रे ग रे	स – – रे	नि़ नि़ स रे
ह र स क	रे ऽ र रि	यां ऽ ऽ ज	न क पु र
गम गरे रे स	स – – –		
कीऽ ऽऽ स खि	यां ऽ ऽ ऽ		

अन्तरा :–

ग म प म	ग रे स –	ग म प म	ग रे स –
आ ऽ त र	प र सी सों	पा ऽ त र	प र सी सों
ग म प म	ग रे ग रे	स – – रे	नि़ नि़ स रे
प र स द	ईं ऽ दु नि	या ऽ ऽ ज	न क पु र
गम गरे रे स	स – – –		
कीऽ ऽऽ स खि	यां ऽ ऽ ऽ		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'सोहर'

रामा राजा लगाए फुलबाग मैं नहीं जानों केहि गुन सों

1. बाहर से आए ससुर राजा रजवा –ससुर राजा रजवा हो
बहुआ कौन–कौन फल खाए नाती जू बड़े सुन्दर रे
दाख मैने खाए छुआरे मैने खाए–2 हो
रामा फोर–2 नरियल खाए मैं नहीं जानो केहि गुन सों

2. बाहर से आए जेठ हंस बोले–2 हो
लहुरी कौन–2 ब्रत कीन्हें भतीजे बड़े सुन्दर रे
एकादसी रही दुआदसी रही–2 हो
रामा रही हों उपासी इतवार मै नहीं जानों केहि गुन सों

3. बाहर से आए देवर राजा रजवा–2 हो
भौजी कौन की जे परी उनहार भतीजे बड़े सुन्दर रे
सिजिया तो सोई मैं अपने बलम की–2 हो
रामा सपने में सिजिया तुम्हार मैं नहीं जानों केहि गुन सों

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–कहखा *(ठेका दुगुन में)*

स रे ग म प ध – 6 स्वर (सब शुद्ध)
'पहाड़ी धुन पर आधारित

स्थाई :–				प प
				रा मा
	प [ध]प [प]म [ग]म	गऽ स सरे ग	[म]गम गरे रेग रेस	स स रेग ग
	रा ऽ जा लऽ	गाऽ ये फुऽ ल	बाऽ ऽऽ गऽ मैंऽ	ना हिं जा नो
	[म]गम गरे रेग रेस	स –, प प		
	के हि गु न	सों ऽ, रा मा		
अन्तरा :–				
	म – पधा मप	धा – प प	[प]म [प]म पधा मप	धा धा प, प
	बा ऽ हर सेऽ	आ ऽ ये स	सु र राऽ जाऽ	र ज वा स
	म म पा मप	ध– धप म– मग	रे – प प	प [ध]प [पग]म मग
	सु र राऽ जाऽ	रऽ जऽ वाऽ ऽऽ	हो ऽ बहु आ	कौ ऽ न कौ
	रे स रेग ग–	गम गरे रेग रेस	स– स– रेग ग	[म]गम गरे रेग रेस
	ऽ न फऽ लऽ	खाऽ ऽऽ येऽ नाऽ	तीऽ जूऽ बऽ ड़े	सुं– ऽऽ दऽ रऽ
	स –, प प			
	रे ऽ, रा मा			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'दादरा'

छाई है कारी बदरिया बरसे आधी रतिया

1. अपना खां ल्याये पिया झनझन मंजीरा
   हमखां ले आये ढोलकिया, ठुमके आधी रतिया
2. अपना खां ल्याये पिया लड्‍आ पेरा
   हमखां ले आये जलेबिया, जिया जरे आधी रतिया
3. अपना खां ल्याये पिया गद्दा रजइया
   हमखां ले आये कथुलिया गुच्चे आधी रतिया
4. अपना खां ल्याये पिया नई–नई दुलनिया
   हमखां ले आये सौतनिया झगड़े आधी रतिया

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'दादरा' — प़ नि॒ स रे ग म (6 स्वर)
(दोनो गंधार, कोमल निषाद) 'पीलू की झलक'

स्थाई :–

प़ – स	– स –	स – नि॒	– स –
छा ऽ ई	ऽ है ऽ	का ऽ री	ऽ ब ऽ
रे रे ऽ	सा – –	नि॒ – –	रे रे –
द रि ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ब र ऽ
ग॒ – ग॒	– रे स	रे रे –	स – –
से ऽ आ	ऽ धी ऽ	र ति ऽ	या ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – ग	– म –	प – प	प प –
अ प ना	ऽ खों ऽ	ल्या ऽ ये	पि या ऽ
ग॒– — म–	ग॒– म –	ग॒ – –	स – –
झऽ नऽ झऽ	नऽ मं ऽ	जी ऽ ऽ	रा ऽ ऽ
प़ – स	– स –	स – नि॒	– स –
ह म खां	ऽ ले ऽ	आ ऽ यें	ऽ ढो ऽ
रे रे ऽ	स – –	नि॒ – –	रे रे –
ल कि ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ठु ग ऽ
ग॒ – ग॒	– रे स	रे रे –	स – –
के ऽ आ	ऽ धी ऽ	र ति ऽ	या ऽ ऽ
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'अखती' का गीत'

अखती खेलन कैसे जाएं री बरै तरै मेले लिबउआ
मेले लिबउआ मेरे मेले चलउआ, अखती....

1. पैले लिबउआ मेरे नउआ आए
नउआ के संग ना जाऊं री, बरै तरै.....
2. दूजे लिबउआ मेरे ससुरा जी आए
ससुरा के संग ना जाऊं री, बरै तरै....
3. तीजे लिबउआ मेरे जेठा जी आए
जेठा के संग ना जाऊं री, बरै तरै....
4. चौथे लिबउआ मेरे देवरा जी आए
देवरा के संग ना जाऊं री, बरै तरै....
5. पांचए लिबउआ मेरे राजा जी आए
डोला में बैठ चली जाऊं री, बरै तरै.....
राजा के संग चली जाऊं री, बरै तरै....

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'दादरा'

प़ नि स रे ग म – 6 स्वर
(निषाद कोमल, दोनों गंधार) (पहाड़ी की झलक)

स्थाई :–

प़ – प़	स स –	स स –	नि – स
अ ख ती	ऽ खे ऽ	ल न ऽ	कै ऽ सें
रे रे –	स नि –	नि नि रे	रे रे –
जा ऊ ऽ	री ऽ ऽ	ब रै ऽ	त रैं ऽ
ग – ग	– ग –	(ग)रे – –	स – –
मे ऽ ले	ऽ लि ऽ	ब ऊ ऽ	आ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – ग	– म –	प प –	प प –
पै ऽ ले	ऽ लि ऽ	ब उ आ	मे रे ऽ
(म)ग – –	म – –	ग – –	स – –
न उ ऽ	आ ऽ ऽ	आ ऽ ऽ	ये ऽ ऽ
प़ – प़	स – स	स (म)स –	नि – स
न उ ऽ	आ ऽ के	सं ग ऽ	ना ऽ ऽ
रे रे –	स नि –	नि नि रे	रे रे –
जा ऊं ऽ	री ऽ ऽ	ब र ऽ	त रै ऽ
ग – ग	– ग –	रे – –	स – –
मे ऽ ले	ऽ लि ऽ	ब उ ऽ	आ ऽ ऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'लगुन'

लगुन आई हरे–हरे, लगुन आई मेरे अंगना
राजा दसरथ फूले न समाय

1. आजुल सज गए आजी सज गई
सज गई सकल बारात
मेरो बन्ना ऐसो सज गओ जैसे सिरी भगवान

2. बाबुल सज गए मइया सज गई
सज गई सकल बारात
मेरो बन्ना ऐसो सज गओ जैसे सिरी भगवान

नोट :– इसी प्रकार–नाना–नानी, मामा–मामी, भइया– भाभी आदि।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* 'मिश्र शिवरंजनी की छाया'

स्थाई :–				नि़
				ल
	स रे ग ग रे	गम –ग रे– सनि़	स ग ग रे	ग म म ग रे
	गु न आ ई	ऽरे ऽह रे लऽ	गु न आ ई	मे रे अं ग
	स – स स	नि़ ध़ प़ प़	स स नि़ नि़	स – स –
	ना ऽ रा जा	द स र था	फू ले न स	मा ऽ य ऽ
अन्तरा :–				
	स स नि नि ध़ प़	ध़ स स-- रे–	ग– ग– रे– रे–	स – – –
	आ जुल सज गए	आ जी सज गई	सज गई सक लबा	रा ऽ ऽ त
	रे रेम म म	म म रे रेम म– म–	– म म म	म – प म
	मे रोऽ ब न्ना	ऐ सोऽ सज गओ	ऽ, जै से सि	री ऽ भ ग
	ग – रे, स			
	वा ऽ न, ल			

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'सतिया धराई गीत'

आई–आई सहोद्रा बेटी पाहुनीं मन रंज ना लाग
बाई गिन–गिन रोपो सींक अरे मन रंज ना लाग

1. भौजी सतिया तुम्हारे हम तबही धरें मन रंज ना लाग
भौजी लैहें गरे को हार अरे मन रंज ना लाग
2. बाई हार तो हमाए माई बाप के दए मन रंज ना लाग
बाई हमपे दए ना जाए अरे मन रंज ना लाग
3. हथियन पै हथिया बढ़े मन रंज ना लाग
झगड़ैलू ननदिया खों देओ अरे मन रंज ना लाग
4. भौजी हथिया तो जोसिए देओ मन रंज ना लाग
तेरे घर को रानीचर जाऐ अरे मन रंज ना लाग
5. गइंअन में कपिला बढ़ी मन रंज ना लाग
झगड़ैलू ननदिया को देओ अरे मन रंज ना लाग
6. भौजी कपिला तो बम्हनै देओ मन रंज ना लाग
भौजी लेओ डलन आसिरबाद अरे मन रंज ना लाग
7. ननद भतीजें खों लै चली मन रंज ना लाग
जच्चा रानी को जिया घबराए अरे मन रंज ना लाग
8. लै गई तो लय जान देओ मन रंज ना लाग
चढ़ आबो हमारी सेज अरे मन रंज ना लाग
9. पिया बाढ़े तुमारी सेज अरे मन रंज ना लाग
मेरो जिया डुबकइयां लेय अरे मन रंज ना लाग
10. अरे लौटो हो लौटो बाई पाहुनीं मन रंज ना लाग
बाई लै लेओ गरे को हार अरे मन रंज ना लाग
11. हार गरे ननद पहर लए मन रंज ना लाग
भौजी अटल तुमाओ एहिबात अरे मन रंज ना लाग।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

7 स्वर (गंधार कोमल) 'पीलू की छाया'
(लीक से हटकर शुद्ध धैवत का प्रयोग)

स्थाई :–

स स –	स – –	प – प	प प –
आ ई ऽ	आ ऽ ऽ	ई ऽ स	हो द्रा ऽ
म प –	ध – –	प – –	म ग रे
बे टी ऽ	पा ऽ ऽ	हु ऽ ऽ	नी ऽ ऽ
रे म –	ग – रे	– – –	स – –
म न ऽ	रं ऽ ज	ना ऽ ऽ	ला ऽ ग
ग रे –	स रे –	स नि –	निस – –
बा ई ऽ	गि न ऽ	गि न ऽ	रोऽ ऽ ऽ
रे – –	ग – –	गरे – रे	स – –
पो ऽ ऽ	सीं ऽ ऽ	कऽ ऽ अ	रे ऽ ऽ
रे म –	ग – ग	रे – –	स – –
म न ऽ	रं ऽ ज	ना ऽ ऽ	ला ऽ ग
O	X	O	X

– शेष अन्तरे स्थाई की ही धुन में गाए जाएंगें ।

'कजरी'

	कि अरे रामा श्याम बने मनहारी बिरज मे आए रे हारी
1.	कि मोरे रामा मथरा नगर के कुंवर कनैया रामा
	कि मोरे रामा बरसाने को जाएं बिरज ——————
2.	कि मोरे रामा हाथ लए चुरियां बगल लएं टुकनियां रामा
	कि मोरे रामा टेर लगावें कोई पहरो चुरियां आए रे हारी–
3.	कि मोरे रामा उलियन कुलियन फिरत कनैया रामा
	कि मोरे रामा टेर लगावें कोई पहरो चुरियां आए रे हारी
4.	कि मोरे रामा ललिता सखी मनहार बुलावें रामा
	कि मोरे रामा राधा सखी को चुरियां पहरावें आए रे हारी
5.	कि मोरे रामा लाल न पहरूं हरी री ना पहरूं रामा
	कि मोरे रामा पहरूं तो पचरंग चुरियां बिरज में आए रे हारी
6.	कि मोरे रामा चुरियां पहर राधा अंगना में ढाड़ी रामा
	कि मोरे रामा लाग रई सासू की पइयां बिरज में आए रे हारी
7.	कि मोरे रामा खुसी रहे तोरे भइया भतीजे रामा
	कि मोरे रामा अमर रहे बनवारी बिरज में आए रे हारी

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* — 7 स्वर (निषाद कोमल) (दोनों गंधार)

स्थाई :–

रे नि स रे	ग म म ग	म प म ग	रे – ग ग
अ रे रा मा	श्या ऽ म ब	ने ऽ म न	हा ऽ री गि
रे स स नि	रे – रे ग	रे स ध नि	स – – स
र ज में ऽ	आ ऽ ये ऽ	रे ऽ हा ऽ	री ऽ ऽ कि

अन्तरा :–

रे नि स रे	म ग म म	म – म ग	प प म ग
मो रे रा मा	म थ रा न	ग र के ऽ	कुं व र क
रे – ग –	रे – स स	रे नि स रे	ग म म ग
नै ऽ या ऽ	रा ऽ मा कि	मो रे रा मा	ब र सा ऽ
म प म ग	रे – ग ग	रे स स नि	रे – रे ग
ने ऽ को ऽ	जा ऽ यें बि	र ज में ऽ	आ ऽ ये ऽ
रे स ध नी	स – – स		
रे ऽ हा ऽ	री ऽ ऽ ऽ		

— शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'बधाए'

बधाई बाजे नन्द घर मोरी आली

1. कि मोरी आली पहला मोर बियानी
   कि मुतियन चुन धरे मोरी आली

2. कि मोरी आली दूजे गाय बियानी
   कि बछरन हर चलें मोरी आली

3. कि मोरी आली तीजे भैंस बियानी
   मटकियन दध भमैं मोरी आली

4. कि मोरी आली चौथे घोड़ी बियानी
   बछेड़न खुर धरें मोरी आली

5. कि मोरी आली पांचे जसोदा गरभ से
   कन्हैया जनम लयें मोरी आली

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* — 7 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

				स
				ब
रे रे स नि़	ध़– –ध़ –– नि़–	स रे ग रे	स – स,	
धा ई बा जे	ऽऽ ऽनं ऽऽ दऽ	घ र मो री	आ ऽ ली,	

अन्तरा :–

				स
				कि
स– –स रे म	म – म –	म – प –म	म –ग – स	
मोऽ ऽरि आ ली	प ह ला ऽ	मो ऽ र ऽबि	या ऽनी ऽ सो	
रे रे स नि़	ध़– –ध़ –– नि़–	स रे ग रे	स – स, स	
मु ति य न	ऽ ऽचु न धा	रे ऽ मो री	आ ऽ ली, ब	

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'सोहर' (चरूआ)

कड़वी लागें आज पिपरी मैं नाहीं पीहों

सासो ना आवै तो हमार का बिगड़ी
सासो का नेग हमरी मइया करें, आज ......

जिठनी ना आवै तो हमार का बिगड़ी
जिठनी का नेग हमरी भौजी करें, आज .....

ननदी ना आवै तो हमार का बिगड़ी
ननदी का नेग हमरी बहना करें, आज .....

देवरा ना आवैं तो हमार का बिगड़ी
देवरा का नेग हमरे बीरन करैं, आज ......

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

7 स्वर (दोनों गंधार, कोमल धैवत)
(पीलू पर आधारित)

स्थाई :–

– ग ग ग ग	स रे म– –म	(म)ग– गरे नीस स–	रेग गरे नीस स–
ऽ कड़ु वी ला	गे ऽ आऽ ऽज	पिऽ पऽ रीऽ मैंऽ	नाऽ हीँऽ पीऽ हौंऽ

अन्तरा :–

– स ग म	प प प (नी)प	ग म म– ––	ग रे सनी स–
ऽ सा सो ना	आ वे तो ह	मा र काऽ ऽऽ	बि ग रीऽ ऽऽ
– प प प	पध पध पप म–	म– गग गरे रेस	सरे रेम म– –म
ऽ सा सो का	नेऽ ऽग हम रीऽ	ऽऽ मइ याऽ ऽक	रेऽ ऽऽ आऽ ऽज
(म)ग– गरे नीस स–	रेग गरे नीस स–		
पिऽ पऽ रीऽ मैंऽ	नाऽ हीऽ पीऽ हौंऽ		

— शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'पालना–गीत'

कन्हैया झूले पलना सुनो मोरी गुइयां

1. काहे के हरि बने पालना
   काहे की लागी डोर, काहे के लगे फुंदना सुनो मोरी गुइयां
2. चन्दन के हरि बने पालना
   रेसम लागी डोर, मोतिन के लगे फुंदना सुनो.....
3. एक सखी भुंसारे से आय गई
   नजर भर देखे कन्हैया, दूध डारै ललना, सुनो....
4. राई नोंन उसारें जसोदा
   नन्दबाबा करें गऊदान, खेलन लागे ललना, सुनो....
5. कृष्णा झूलें सखियां झुलावे
   नन्द बाबा लै रये बलैंया, जसोदा मुख चूमना, सुनो....

– *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

6 स्वर (दोनों गंधार, कोमल धैवत')
(पीलू पर आधारित)

स्थाई :–

			–स
			ऽक
(रे)स – रे	स नी –	स स रे	रे स –
न्है ऽ या	झू ले ऽ	प ल ऽ	ना ऽ ऽ
ग ग –	ग ग –	रे– रे– ––	स– – –स
सु नो ऽ	मो री ऽ	गुऽ ईऽ ऽऽ	याऽ ऽ ऽक

अन्तरा :–

स – –	ग म –	प – –	प प –
का ऽ ऽ	हे ऽ ऽ	के ऽ ऽ	ह रि ऽ
म ग म	ऽम – –	ऽग – –	स – –
ब ने ऽ	ऽपा ऽ ऽ	ऽल ऽ ऽ	ना ऽ ऽ
स – प	– प –	प – –	धा – प
का ऽ हे	ऽ की ऽ	ला ऽ ऽ	गी ऽ ऽ
म – –	ग – रेस	स रे –	स नि –
डो ऽ ऽ	र ऽ ऽका	हे के ऽ	ला गे ऽ
स स रे	रे स –	ग ग –	ग ग –
फुं द ऽ	ना ऽ ऽ	सु नो ऽ	मो री ऽ
रे– रे– ––	स– – –स		
गुऽ ईऽ ऽऽ	याऽ ऽ ऽक		

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'बन्ना'

बना की बखरिया में रंग बरसत है
रंग बरसत है अबीर उड़त है
1. सो मोर मुकुट बारे बनरा को सोहे
सो कलगिन बीच अतर महकत है
2. सो कानन कुण्डल बारे बनरा के सोहे
सो लटकन बीच अतर महकत है
3. सो गरवा हार बारे बनरा को सोहे
सो मुतियन बीच अतर महकत है
4. सो अंग जामा बारे बनरा को सोहे
सो फुंदनन बीच अतर महकत है।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दीपचन्दी' — 6 स्वर (बिलावल की झलक)

स्थाई :–

			म ब
(ग)रे ग –	(रे)स – स ध़	ध़ स –	स – स रे
ना ऽ ऽ	की ऽ ब ऽ	ख रि ऽ	या ऽ में ऽ
रे ग –	ग रे रे स	स – –	स – – –
रं ग ऽ	ब ऽ र ऽ	स त ऽ	है ऽ ऽ ऽ
ग ग –	रे ग रें स	रे ग –	म प म –
रं ग ऽ	ब ऽ र ऽ	स त ऽ	है ऽ अ ऽ
ग रे –	रे म म ग	रें रे –	स – – स
बी ऽ ऽ	र ऽ उ ऽ	ड़ त ऽ	है ऽ ऽ ऽ
X	O	2	3

अन्तरा :–

			स सो
रे ग –	रे – – स	रे ग –	म प म –
मो ऽ ऽ	र ऽ ऽ मु	कु ट ऽ	बा ऽ रे ऽ
ग रे –	रे म म ग	रे रे –	स – – म
ब न ऽ	रा ऽ ऽ को	सो ऽ ऽ	हे ऽ ऽ सों
(ग)रे ग –	(रे)स – स ध़	ध़ स –	स – स रे
क ल ऽ	गि ऽ न ऽ	बी ऽ ऽ	च ऽ अ ऽ
रे ग –	ग रे रे स	स – –	स – – –
त र ऽ	म ऽ ह ऽ	क त ऽ	है ऽ ऽ ऽ

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'बीरोठ'

देव– देव अटक नदी बैरन भाई–2

1. देव– देव घरर घरर नदिया बहे
हे कैंसें कें उतरों पार बेह नार सिंह, अटक नदी.....

2. देव–देव काहे की नइया करों–2
हे कहां डार किड़वार बेहा नार सिंह, अटक नदी......

3. देव–देव चन्दन की नइया करों–2
हे अम्मा डार किड़वार बेह नार सिंह अटक नदी.....

4. देव–देव को तोरे नाव हो बैठियो–2
को है खेवन हार बेहा नार सिंह, अटक नदी......

5. देव–देव देवी नाव हों बैठिएं–2
लगड़े खेवनहार बेह नार सिंह, अटक नदी.....

6. देव–देव कौना की भीजें चूनरी –2
कौना के पचरंग पाग बेहा नार सिंह, अटक नदी....

7. देव–देव देवी की भीजें चूनरी–2
लंगडे के पचरंग पाग बेहा नार सिंह, अटक नदी.....

8. देव–देव कैसे कें सूके चूनरी–2
कैसे कें पचरंग पाग बेह नार सिहं, अटक नदी......

9. देव–देव लहरों सूके चूनरी–2
अरे लपटों पचरंग पाग बेह नार सिंह, अटक नदी.......

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

ध़ स रे ग म (5 स्वर)
झलक 'दुर्गा' (बिलावट थाट)

स्थाई :–			
म – म ग	रे रे रे रे	^{ग}रे – (रे) स	स – स स
दे व दे व	अ ट क न	दी ऽ बै ऽ	र न भा ई
अन्तरा :–			
म – म ग	रे रे रे रे	^{ग}रे – (रे) स	स – स स
दे व दे व	घ र र घ	र र न दि	या ऽ ब हे
म – – –	म – म म	म – म ग	रे – रे ^{ग}रे
हे ऽ ऽ ऽ	कैं ऽ सें के	उ त रों ऽ	पा र बे ह
स – ध़ –	रे – रे रे	रे – रे स	स – स –
ना र सिं ह	अ ट क न	दी ऽ बै ऽ	र न भ ई

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

होऽऽ अरे जगतारन आई बेला बाग में हो ऽ ऽ ऽ
1. अरे मुख भरे पान नयन भरे सुरमा
सिंदुरा भरके मांग रे पट बेंदा की अरे ढुरिया ढुरके मांग पे हो
2. माथे बीच रवारी सोहे बिदिंया की छब–न्यारी
रवारी फुलिया, माई कानों तरूकला खुब रहे
3. हृदय हार हिय को सोहे, गरे गोप खंगवार
हार लौगों के माई हीरा दमक रए हार में
4. बाहु बरा बाजुबंद सोहे फैंटा की छब न्यारी
रवारो ककना, माई हीरी पीरी चुरियां कांच की हो मां
5. दसई उंगरियो मुंदरी सोहे बाह पटेला चार
हाथ में मेंहदी, माई मेंहदी रची गुल दागनी
6. लाल पाट के लहंगा पैरे, ओढ़े को कुसम रंग चीर
कमर करधौनी, माई पीरे ध्वजा रंग माई के हो मां ।

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* — स रे ग म प – 5 स्वर (सब शुद्ध)
'मध्य–लय' — अन्तरे में 'देस की झलक'

स्थाई :–

म म म ग	रे – ग ग	रे रे स स	रे – – रे
अ रे ज ग	ता ऽ र न	आ ई बे ला	ऽ बा ऽ ग
(रे) – स –	– – – –		
में ऽ हो ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ		

अन्तरा :–

म म म म	म प प म	म म म म	म म म म
अ रे मु ख	भ रे पा ऽ	न न य न	भ रे सु र
म ग रे रे	रे – रे म	म ग रे –	रे – रे रे
मा ऽ सिं दु	रा ऽ भ र	के ऽ मां ऽ	ग रे प ट
रे ग रे –	स – – –	म ग रे रे	ग – रे रे
बें ऽ दा ऽ	की ऽ ऽ ऽ	अ रे ढु रि	या ऽ ढु र
स – रे –	– – (रे) –	स – – –	– – – –
के ऽ ऽ मां	ऽ ग पे ऽ	हो ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'ब्याह हेतु न्योता'
(करैया चढ़ने के समय 'लोकगीत')

अटरिया महक रही फूलन सें
कछु फूलन से कछु पानन सें
सों कछु देवतन के बल सें
अटरिया, सेजरिया महक रही फूलन सें
सबरे देवता आए मिसिल सें
गनेस बाबा काए नई आए, अटरिया सेजरिया..
सबरे देवता आए मिसिल से
सों संकर बाबा काए नई आए अटरिया.....
सबरे देवता आए मिसिल सें
सों कालका मइया काए नई आई, अटरिया
सबरे देवता आए मिसिल सें
सों हरदौल लाला काए नई आए, अटरिया
सबरे देवता आए मिसिल सें
सों जेठे बड़े काए नईं आए, अटरिया

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दीपचन्दी' — 'देस की झलक'

स्थाई :–

			स अ
स रे –	रे – स ऩि	ऩि स –	स – स रे
ट रि ऽ	या ऽ ऽ ऽ	म ह ऽ	क ऽ र ऽ
रे म ग	रे स ऩि –	स स –	स – स –
ही ऽ ऽ	फू ऽ ऽ ऽ	ल न ऽ	सें ऽ, सो ऽ

अन्तरा :–

ऩि ध़ –	ऩि – – –	स – –	स – स –
क छु ऽ	फू ऽ ऽ ऽ	ल न ऽ	सें ऽ सो ऽ
स रे –	स ऩि – –	स रे –	रे – स –
क छु ऽ	पा ऽ ऽ ऽ	न न ऽ	सें ऽ सो ऽ
ऩि स –	स – स रे	रे म ग	रे – स ऩि
क छु ऽ	दे ऽ व ऽ	त न ऽ	के ऽ ऽ ऽ
स रे –	स – – ऩि	स रे –	रे स – –
ब ल ऽ	सें ऽ ऽ, अ	ट रि ऽ	या ऽ ऽ ऽ

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।*

'नौरता'

पूँछत पूंछत आये हैं नारे सुआ हो कौन बड़े जू की पौर सुआ
ऊंची अटरिया रंग भरी नारे सुआ हो चन्दन जड़े किवार सुआ
गज मुतियन के झूमका नारे सुआ हो रूरकत पौर मझार सुआ
पूंछत पूंछत आये है नारे सुआ हो कौन बड़े जू की पौर सुआ
का दै के खोलूं तोरी आगरैं नारे सुआ हो का दै कें बजर किवार सुआ
नौ दै के खोलूं तोरी आगरैं नारे सुआ हो दस दैं कें बजर किवार सुआ
पौर के जागो भइया पौरिया नारे सुआ हो खिरकिन के जागो छड़ीदार सुआ
निकरौ दुलैया रानी बायरें नारे सुआ हो बिटियन देओ तमोल सुआ
हम कैसें निकरै बैया बायरे नारे सुआ हो डलिया झडूलै नोने फूट सुआ
पूंछत पूंछत आये हैं नारे सुआ हो कौन बड़े जू की पौर सुआ
पूत जो पारो भौजी पालना नारे सुआ हो बिटियन देओ तमोल सुआ
भर कोपर रानी निंग चली नारे सुआ हो चन्दन निकसे है पांव सुआ
जितने दुलैया हरछट पड़ी नारे सुआ हो उतने दुलैया तोरे पूत सुआ
तुम जिन जानो भौजी मांगनी नारे सुआ हो घर घर देत असीस सुआ
ऐसें *'ललित भैया'* बाड़ियो नारे सुआ हो जैसे बढ़े नगर बेल सुआ
पूंछत पूंछत ——————————————————

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

प़ ध़ स रे ग 5 स्वर
'पहाड़ी की झलक'

स्थाई :–

रें स ध़ स	सरे ग– रेग रेस	सरे स ध़ –	– ध़ ध़ ध़
पू ऽ छ त	पूंऽ ऽऽ छऽ तऽ	आऽ ऽ ये हों	ऽ ना रे सु
ध़स सरे रें सध़	ध़स सरे रेस सध़	ध़ स रे सध़	ध़ प ध़ स
आऽ ऽऽ हो ऽऽ	कौऽ ऽऽ नऽ बऽ	ड़े ऽ जू कीऽ	पौ ऽ र सु
स – – –			
आ ऽ ऽ ऽ			

– शेष पंक्तियां इसी तरह गाई जाएंगी ।

'दादरा'

पन्ना के जुगल किसोर हो
मुरलिया मे हीरा जड़े हैं–2

1. ताती जलेबी रतनसाई लडुआ–2
जेबें दिवाले की ओट में, मुरलिया.....

2. ठंडो सो पानी गरम कर ल्याई–2
सपरें दिवाले की ओट में, मुरलिया.....

3. चुन–चुन कलियां सेजा सजाई–2
पौढ़े दिवाले की ओट में, मुरलिया.......

4. पाना पचासी के बीड़ा लगाए–2
चाबैं दिवाले की ओट में, मुरलिया में.......

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' — स रे म प ध नी (6 स्वर) (राग पहाड़ी पर आधारित)

स्थाई :–

प़ – ध़	नी̱ नी̱ स	स रे –	स – स
प ऽ न्ना	ऽ के ऽ	जु ग ऽ	ल ऽ कि
नी̱ – नी̱	स रे रे	रे नी̱ स	– रे –
सो ऽ र	हो ऽ मु	र लि या	ऽ मे ऽ
नी̱ – नी̱	– नी̱ –	स रे –	नी̱ – –
ही ऽ रा	ऽ ज ऽ	ड़े ऽ ऽ	हैं ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

नी̱ स रे	– ग –	रे स नी̱	– स –
ता ऽ ती	ऽ ज ऽ	ले ऽ बी	ऽ र ऽ
नी नी –	नी̱ नी̱ –	स स रे	स नि –
त न ऽ	सा ई ऽ	ल डु ऽ	आ ऽ ऽ
प़ – ध़	नी̱ नी̱ स	स रे –	स – स
जे ऽ बे	ऽ दि ऽ	वा ऽ ले	ऽ की ऽ
नी̱ – नी̱	स रे रे	रे नी̱ स	– रे –
ओ ऽ ट	मेंऽ ऽ मु	र लि या	ऽ में ऽ
नी̱ – नी̱	– नी̱ –	स रे –	नी̱ – –
ही ऽ रा	ऽ ज ऽ	ड़े ऽ ऽ	हैं ऽ ऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'यज्ञोपवीत' *('जनेऊ', 'बरूआ')*

तीन तगा को डोरा री, दमरी को सूत सुन भैया
तीन तगा को जनवा री, कैंसो मजबूत सुन भैयाउ
पैले में बिस्नू दूजे बिरमा तीजे सूत संकर अवधूत सुन भैया
पैले तगा में ओंकार हैं दूजे में अगन सबूत सुन भैया
तीजे तगा में नाग–बास है चंद बिराजे चौथे सूत सुन भैया
पॉचे सूत में पितर बिराजें प्रजापती हैं छटवें सूत सुन भैया
सातव तंत अस्थान पवन को सूरज को है आठों सूत सुन भैया
नमे तंत में विश्वे देवा हीरा कातें कन्या सूत सुन भैया

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' 'झिंझोटी की झलक'

स्थाई :–

स म – म	प म म –	ग – ग रे	रे स स स
ती न ऽ त	गा ऽ को ऽ	डो ऽ रा ऽ	री ऽ द म
स – रे –	रे ग ग ग	रे ग रे स	स – स ध़
री ऽ को ऽ	सू ऽ ऽ त	सु न भै ऽ	या ऽ द म
स – रे –	ग – – ग	रे ग रे स	स – – –
री ऽ को ऽ	सू ऽ ऽ त	सु न भै ऽ	या ऽ ऽ ऽ
स रे – म	म – म –	ग ग ग रे	रे स स ध़
ती न ऽ त	गा ऽ को ऽ	ज न वा ऽ	री ऽ कै ऽ
स रे रे रे	ग – – ग	रे ग रे स	स – – –
सो ऽ म ज	बू ऽ ऽ त	सु न भै ऽ	या ऽ ऽ ऽ

अन्तरा :–

स रे – म	म म प ग	ग रे रे ग	रे स स –
पै ले ऽ में	बि स नू ऽ	दू ऽ जे ऽ	बि र मा ऽ
स रे रे ग	ग ग स ध़	स रे रे ग	ग – – ग
ती ऽ जे ऽ	सू त शं ऽ	क र अ व	धू ऽ ऽ त
रे ग रे स	स – स ध़	स रे रे ग	ग ग
सु न भै ऽ	या ऽ शं ऽ	क र अ व	धू ऽ ऽ त
रे ग रे स	स – – –		
सु न भै ऽ	या ऽ ऽ ऽ		

— साभार — डा. आशा खरे, खैरागढ़ (म.प्र.)

'ख्याल'

अधरतियां रे राजा–2, हो ऽ ऽ ऽ खेल ले सिकार
गोरी तो हिरनियां हो गई हों–2

1. जल में चमके माछरी रन चमके तलवार
पंचों में तोरी–पागड़ी, सिजिया पे बेंदी लिलार, अधरतियां
2. नैनों में काजर दये, बेंदी दयं लिलार
ठुमक अटरियां चढ़ गईं रे , के कर सोला सिंगार, अधरतियां
3. रतन कुआं मुख सांकरे, के और धनी पनहार
अचरा छोड़े चल बरै, के हीन पुरस की नार, अधरतियां
4. अंगना सूके सूक नै, बन सूके कचनार
गोरी धन सूके मायके, के हीन पुरस की नार, अधरतियां

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

7 स्वर – 'नी–कोमल'
(राग झिंझोटी पर आधारित)

स्थाई :–

			धा धा –
			अ धा ऽ
ध ध –	प ध पम	म म –	मप धनी —
र ति यां	ऽ ऽ होऽ	रा जा ऽ	होऽ ऽऽ ऽऽ
नी ध प	म प ग	म – –	ग रे स
खे ल ऽ	ले ऽ सि	का ऽ ऽ	ऽ ऽ र
स रे स	रे म म	म ग रे	रे ग –
गो री ऽ	तो ऽ हि	र नि ऽ	या ऽ ऽ
स – –	ध़ स –	स – –	– – –
हो ऽ ऽ	ग ई ऽ	हां ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

– अन्तरे साखी के रूप में हैं, इन्हें अनिबद्ध गाएगें ।

अन्तरा :–

ध ध ध –	ध ध ध –	ध प ध प	म – – –
ज ल में ऽ	च म के ऽ	मा ऽ ऽ छ	री ऽ ऽ ऽ
ध – ध ध	ध – – ध	ध नी ध प	(नी)ध प – प
र न च म	के ऽ ऽ ऽ	त ल वा ऽ	ऽ ऽ ऽ र
ध – ध –	प – – प	सं – ध प	म – प ग
पं ऽ चों ऽ	में ऽ तो ऽ	री ऽ ऽ ऽ	पा ऽ ऽ ऽ
प म – प	(म)ग – – –	ग ग ग प	म प ग –
ग ड़ी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	सि जि या ऽ	पे ऽ बें ऽ
रे – स स	– – – –		
दी ऽ लि ला	ऽ ऽ ऽ र		

'भगत'

माई सब पे किरपा राखियो हो मां
राजा जनक के मामले हो मां

1. काना रैबे कोहलिया रे, काना दोई मोर–2
   काना रैबें जालपा, माई जुगल किसोर–2, सबपे.....
2. अरे जंगल रैबे कोहलिया रे, बन में दोई मोर–2
   मड़ में रैबें जालपा माई जुगल किसोर–2, सबपे....
3. अरे, काहो खाबे कोहलिया रे, काहो दोई मोरे–2
   अरे काहो भोगें जालपा, माई जुगलकिसोर–2, सबपे.....
4. अरे अमआ खबे कोहलिया रे, मोतिया दोई मोर–2
   अरे मेवा भोगें जालपा, माई जुगल किसोर–2 सबपे....
5. अरे काहो पिबे कोहलिया रे, काहो दोई मोर–2
   अरे काहों पिबें जालपा, माई जुगल किसारे–2 सबपे....
6. अरे जल तो पिबे कोहलिया रे, इमरत दोई मोर–2
   निबुआ पिबें जालपा माई जुगल किसोर, सबपे....
7. अरे कैसें के आवे कोहलिया रे, कैसे दोई मोर–2
   अरे कैसे कें आवे जालपा, माई जुगल किसोर–2, सबपे.
8. अरे उड़ के आवे कोहलिया रे, नाचत दोई मोर–2
   थिरकत आवें जालपा माई जुगल किसोर–2 सबपे.....
9. अरे सुमर–सुमर मइया तोरे जस गा लऊं
   जै बोलो हिंगलाज–माई, सबपे किरपा राखियों हो माँ ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* 'मिश्र झिंझोटी'

स्थाई :–

			ग ग
			मा ई
रे रे ग –	रे रे स –	– रे – रे	(स)रे – स –
स ब पे ऽ	कि र पा ऽ	ऽ रा ऽ खि	यो ऽ हो ऽ
स – रे रे			
मां ऽ मा ई			

अन्तरा :–

			म म
			अ रे
म – म –	म म – म	म म म –	म – म गरे
का ऽ ना ऽ	रै बे ऽ को	ह लि या ऽ	रे ऽ का ऽऽ
रे ग ग ग	ग ग ग रे	रे ग रे स	रे – – –
ना ऽ दो ई	मो र का ऽ	ना ऽ दो ई	मो ऽ ऽ र
म – ग रे	रे ग – ग	रे – स –	– – स स
का ऽ ना ऽ	रै बे ऽ जा	ऽ ल पा ऽ	ऽ ऽ मा ई
रे ग रे स	रेग ग ग ग	रे ग रे स	रे – – ग
जु ग ल कि	सोऽ र मा ई	जु ग ल कि	सो ऽ ऽ र
रे रे ग –	रे रे स –	– रे – रे	(ग)रे – स –
स ब पै ऽ	कि र पा ऽ	ऽ रा ऽ खि	यो ऽ हो ऽ
स –			
माँ ऽ			

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

देवीगीत

सजो मलिनिया फुलवा ल्याओ नदन बन के, बीरा ओई बन के
ऊँची नीची घटिया मइया भीकम उजार नदन बन के
छिंगरी पकर लंगरे ले जाएं नदन वन के, बीरा.......
छोटी–छोटी मालन बिटिया लम्बे–लम्बे केस नदन बन के
फुलवा बीने रे मरद के भेष नदन वन के, बीरा........
बीन बीन फुलवा लगाई रे रास नदन बन के
उड़ गए फुलवा सो रह गई बास नदन वन के, बीरा......
फुलवा बिनत भई खाड़ी दुफरिया नदन बन के
फुलवा बिनत मोरी छिंगरी पिराय नदन वन के, बीरा....
जो में जनती लंगर मोरे जेठ नदन बन के
काढ़ लेती घुंघटा संवार लेती केस नदन वन के, बीरा....
बीन–बीन फुलवा रे हो गई रात नदन बन के
आज के बसेरो मोरी माई के दुआर नदन वन के, बीरा.....

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

स रे ग म प ध — 6 स्वर (सब शुद्ध)
'राग तिलक कामोद की किंचित छाया'

स्थाई :–

प़ स – स	रे ग म ग	रे रे स –	स रे म ग
स जो ऽ म	लि नि या ऽ	फु ल वा ऽ	ल्या ऽ ओ न
रे ग रे स	स – स स	स स रे स	नी़ – – –
द न व न	के ऽ बी रा	ओ ई व न	के ऽ ऽ ऽ

अन्तरा :–

स स स स	(रे–) ग (म–) ग	रे रे स स	स रे म ग
ऊँ ची नी ची	(घटि) या (मइ) या	भी क म उ	जा ऽ र न
रे ग़ रे स	स – प प	प प प प	प ध प म
द न व न	के ऽ अ रे	छिं ग री प	क र लं ग
म ग ग रे	रे म म ग	रे ग रे स	स – स स
रे ऽ लै ऽ	जा ऽ यें न	द न व न	के ऽ बी रा
स स रे स	नी़ – – –		
ओ ई व न	के ऽ ऽ ऽ		

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'ब्याह गीत' *(जब करैया चढ़ती है)*

आंधी औ पानी को बंद करत है सो
हातन काज संभारे पमन जू के
हनुमत हैं रखवारे
हमरी कालका मइया ऐसी गरजत है
सो जैसें के बजत नगाड़े, पमन जू के .....
हमरे हरदौल लाला ऐसे पुजत हैं
सो जैसें के इन्द्र अखाड़े पमन जू के .....
हमरे संकर बाबा ऐसे गरजत है
सो जैसें के बजत नगाड़े, पमन जू के .....
हमरे जेठे बड़े ऐसे पुजत है
सो जैसें के इन्द्र अखाड़े पमन जू के.....

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'दीपचन्दी' 'राग तिलक कामोद की छाया'

स्थाई :–

नि़ प़ –	नी़ – नी़ –	स – –	स – स –
आं ऽ ऽ	धी ऽ औ ऽ	पा ऽ ऽ	नी ऽ को ऽ
स रे –	स नि़ नि़ –	स रे –	रे – स –
बं ऽ ऽ	द ऽ क ऽ	र त ऽ	हैं ऽ सो ऽ
स – –	स – रे –	रे ग –	रे – स –
हा ऽ ऽ	त ऽ न ऽ	का ऽ ऽ	ज ऽ सं ऽ
स रे –	स – नि़ –	स रे –	स – नि़ –
मा ऽ ऽ	रे ऽ प ऽ	म न ऽ	जू ऽ के ऽ
नि़ स –	स – रे –	रे ग –	रे – स –
ह नु ऽ	म ऽ त ऽ	है ऽ ऽ	र ऽ ख ऽ
स – –	स – – –		
वा ऽ ऽ	रे ऽ ऽ ऽ		

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'दादरा'

गैला में ढाड़ीं चार गुइयां
कहो री कौन के कैसें सइयां

1. पहली कहत मोरो बारो है सैंया
मैं लेत हौं ओखें कइयां, कहो....
2. दूजी कहत मोंरो दारू पियत है
नरवा में खात पलटइयां, कहो....
3. तीजी कहत मोरो छैल छबीलो
सो छप–छप के देखत लुगइयां, कहो...
4. चौथी कहत मोरो चोर है सइयां
सो थाने में घलत पन्हैया, कहो.....

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' (दोनों मध्यम) 'मांझ की झलक'

स्थाई :–

ग – ग	– ग –	ग रे रे	ग म म
गै ऽ ला	ऽ में ऽ	ठा ऽ ड़ी	चा ऽ र
ग ग़ गरे	– – रे	स स रे	स नि़ नि़
गु इ यांऽ	ऽ ऽ क	हो ऽ री	कौ ऽ न
नि़ स रे	ग रे –	ग – –	गरेस – –
के ऽ कै	ऽ से ऽ	स इ ऽ	यांऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – –	ग – म	प – –	प प –
प ह ऽ	ली ऽ क	ह त ऽ	मो रो ऽ
मं – प	मं प –	म – –	ग – –
बा ऽ रो	ऽ है ऽ	स इ ऽ	यां ऽ ऽ
ग – ग	– ग ग	ग रे –	ग म –
मैं ऽ ले	ऽ त हौं	ओ ऽ ऽ	खें ऽ ऽ
म ग ग	रे रे –	स – रे	स नि नि़
क इ यां	ऽ क ऽ	हो ऽ री	कौ ऽ न
नि़ स रे	ग रे –	ग – –	रेस – –
के ऽ कै	ऽ से ऽ	स इ ऽ	यांऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'दादरा'

गोरी रतनारे नैना संभार कजरा प्यारे लगे
प्यारे लगे री न्यारे लगे

1. ईंगुर सैं लाल गोरी मुइयां तुम्हारी
माथे की बेंदी समार कजरा प्यारे लगे

2. चारई दिनां खों जा आई ज्वानी
आगे को कर लो बिचार, कजरा प्यारे लगें

3. आयो बुढ़ापो थकित भई काया
राम नाम मुख सैं उचार, कजरा प्यारे लगें

– *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' 'सारंग की झलक'

स्थाई :–

			स रे
			गो री
नी़ – नी़	– प़ –	नी़ स रे	रे स –
र त ना	ऽ रे ऽ	नै ऽ ना	ऽ स ऽ
रे – –	– – नी़	नी़ स –	रे प –
मा ऽ ऽ	ऽ ऽ र	क ज ऽ	रा ऽ ऽ
म – रे	– नी –	स – –	– – –
प्या ऽ ऽरे	ऽ ऽल ऽ	गे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

मरे – म	– म –	प – प	प प –
ई ऽ ऽगु	र सें ऽ	ला ऽ ल	गो री ऽ
रे प –	– प –	पध मप –	ग रे –
मु ई यां	ऽ तु ऽ	म्हा ऽऽ ऽ	री ऽ ऽ
स रे नी़	– प़ –	नी़ स रे	– स –
मा ऽ थे	ऽ की ऽ	बें ऽ दी	ऽ स ऽ
रे – –	– – नी़	नी़ स –	रे प –
मा ऽ ऽ	ऽ ऽ रे	क ज ऽ	रा ऽ ऽ
म – रे	– नी –	स – –	–, – –
प्या ऽ ऽरे	ऽ ऽल ऽ	गे ऽ ऽ	ऽ, गो री
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'लोक–भजन'

कहा करौं तदवीर कुंजन वन छोड़ गए ऊधौ
1. जो मैं होती जल की मछरिया–2
करते कृष्ण असनान, चरन गह लेती ऐ ऊधौ
2. जो मैं होती सुरहिन गइया–2
कृष्ण दुहाते गाय, गगर भर देती ऐ ऊधौ
3. जो मैं होती बांस–बंसुरिया–2
कृष्ण बजाते बीन अधर रस लेती ऐ ऊधौ
4. जो मैं होती सीप को मोती–2
कृष्ण गुहाते हार, गले बिच रहती ऐ ऊधौ
5. जो मैं होती बन की हिरनियां–2
कृष्ण चलाते बान प्रान तज देती ऐ ऊधौ

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'दादरा' 'जौनपुरी की झलक'

स्थाई :–

प – प	– प –	प नी –	ध प –
क ऽ हा	ऽ क ऽ	रौ ऽ ऽ	त द ऽ
म ध प	– म म	गरे ग –	रे स –
बी ऽ र	ऽ कुं ऽ	जऽ न ऽ	ब न ऽ
– – रे	म म –	म नी –	ध प –
ऽ ऽ छो	ऽ ड़ ग	ये ऽ ऽ	ऊ ऽ ऽ
प – –	– – –		
धो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ		

अन्तरा :–

– – म	– ग म	प ध –	प – –
ऽ ऽ जो	ऽ मैं ऽ	हो ऽ ऽ	ती ऽ ऽ
– – प	सं सं नी	ध – –	प – –
ऽ ऽ ज	ल की म	छ रि ऽ	या ऽ ऽ
– – स	प प –	प प नी	ध प –
ऽ ऽ क	र ते ऽ	कृ ष्ण ऽ	अ स ऽ
म ध प	म प म	गरे ग –	रे स –
ना ऽ न	ऽ ऽ च	रऽ न ऽ	ग ह ऽ
– – रे	म म –	म नी –	ध प –
ऽ ऽ ले	ऽ ती ऽ	रे ऽ ऽ	ऊ ऽ ऽ
प – –	– – –		
धौ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ		

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'दादरा' (नरा छीनने का गीत)

कैसी मचल रई दाई अवध में, कैसी मचल रई रे
सुरंग चुनरी कौसल्या लयं ठाड़ी, बई न लेबे दाई अवध में
सोने को हार कैकई लयं ठांडी, कूलो मरोर गई दाई " "
सोने की तिलरी सुमित्रा लयं ठांडी, मुखऊ न बोले दाई " "
मुतियन थार राजा, लयं ठाड़े, नजर न फेरे दाई " "
नरा तुमाओ जबई हम छीने, दरसन दें रघुराई " "
रुप चतुरभुज प्रभु दरसायो, खुसी भई तब दाई " "
दरसन लयं दाई घर खां आई, घर–घर करत बड़ाई " "

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ग, ध, नी कोमल,
'जौनपुरी की झलक'

'ताल–'दादरा'
(कहरवा में भी गा सकते हैं)

स्थाई :–

स प प	– प –	प नी –	ध प –
कै ऽ सी	ऽ म ऽ	च ल ऽ	र ही ऽ
म प मप	ध – पम	ग ग –	रे स –
दा ऽ ईऽ	ऽ ऽ अऽ	व ध ऽ	में ऽ ऽ
स रे रे	म म –	प प नी	ध ध –
कै ऽ सी	ऽ म ऽ	च ल ऽ	र ही ऽ
प – –	स – –		
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ		
X	O	X	O

अन्तरा :–

म – म	ग म –	प ध –	प – प
सु ऽ रं	ऽ ग ऽ	चु न ऽ	री ऽ कौ
प स –	सं नी –	ध – –	प – –
स ल्या ऽ	ल य ऽ	ठां ऽ ऽ	ड़ी ऽ ऽ
स – प	– प –	प नी –	ध प –
ब ऽ ई	ऽ न ऽ	लौ ऽ ऽ	बे ऽ ऽ
म प मप	ध – पम	ग ग –	रे स –
दा ऽ ईऽ	ऽ ऽ अऽ	व ध ऽ	मे ऽ ऽ
स रे रे	म म –	प प नी	ध ध –
कै ऽ सी	ऽ म ऽ	च ल ऽ	र ही ऽ
प – –	स – –		
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ		
X	O	X	O

— *शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।*

'युगल लोक–गीत'

पु० बिरछा भए रे हरे, नदिया ताल भरे
मोरी ओरई सी जरन बढ़ा दई, भये जिया के खता हरे
स्त्री० बिरछा भये रे हरे, नदिया ताल भरे
पिया जू नहिं आए अन गाँव से, मैनें कौन से पाप करे

स्त्री० मोरी पाँव लगौनी ले लइयो, पाती जो मिले सोई निंग लइयो
दोऊ चौक पुरे, कौरे दियरा धरे, पिया जू......
पु० जौ लगन होत बहुतईं लगी, मोरी आंखन की निदियां भगी
जो बूंदा गिरे जैसे अंगरा झरे, मोरी ओरई.......
स्त्री० मोरे सइयां गए परदेस सखी नई कौनऊ खबर संदेस सखी
अबकी आए न बे, सांची मिलहैं मरे, पिया जू......

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दीपचन्दी एवं कहरवा' 'शिवरंजनी की झलक'

स्थाई :–

			स – स ध़
			बि र छा ऽ
ध़स स –	रे ग – (रे)ग	रे – –	स – स ध़
भाऽ ये ऽ	रे ऽ ऽ ह	रे ऽ ऽ	न दि या ऽ
ध़स स –	रे ग – ग	रे – –	स – स –
ताऽ ऽ ऽ	ल ऽ ऽ भ	रे ऽ ऽ	मो ऽ री ऽ
रे ग रे	म – म –	ग – –	रे स – स
ओ ऽ ऽ	र ई सी ऽ	ज र ऽ	न ऽ ऽ ब
(म)रे – –	– – – –	– – –	(रे)ग – रे स
ढ़ा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ द	ई ऽ ऽ	मैं ऽ ने ऽ
ग – –	रे – स –	(रे)ग – –	रे – स –
कौ ऽ ऽ	न ऽ से –	पा ऽ ऽ	प ऽ ऽ क
स – –	– – – –	ध़ – –	
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	
X	2	O	3

अन्तरा – प्रारम्भ में – कहरवा (ठेका दुगन में)

अन्तरा :–

– – प प	– पध –प –म	ग रे म –	–ग –रे (स)रेस स
ऽ ऽ मो री	ऽ पांऽ ऽव ऽल	गौ ऽ नी ऽ	ऽले ऽऽ ऽल इ
स – प प	– पधा –प म	ग रे म –	–ग रे– रेस स
यो ऽ पा ऽ	ऽ तीऽ ऽजो मि	ले ऽ सो ई	ऽनिं गऽ लऽ ई
स – – –			
यो ऽ ऽ ऽ			

अन्तरे की अगली (दूसरी) पंक्ति स्थाई की तरह गानी है, सभी अन्तरे इसी प्रकार गाने हैं ।

'ढोला'

बाज रहो रे मंडराए रे ढोला तोरे पिया के लाने

1. खेतन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
   खेतन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी

2. बागन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
   बागन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी

3. तालन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
   तालन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी

4. कुंअलन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
   कुंअलन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी

5. महलन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
   महलन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' (द्रुतलय)

ध़ स रे ग॒ (4 स्वर)
'शिवरंजनी की झलक'

स्थाई :–

(स)ध़ – स	स रे –	रे – ग॒	ग॒ रे –
बा ऽ ऽ	ज र ऽ	हो ऽ रे	मं ड ऽ
स – –	स रे –	रे ग॒ –	ग॒ – रे
रा ऽ ऽ	य के ऽ	ढो ऽ ऽ	ला ऽ ऽ
रे – रे	– रे –	(म)ग॒ – –	रे – –
तो ऽ रे	ऽ पि ऽ	या ऽ ऽ	के ऽ ऽ
स – –	स – –	– – –	– – –
ला ऽ ऽ	ने ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

— शेष सभी पंक्तियां इसी धुन में गाई जाएंगी ।

'प्रभाती' ('ईसुरी')

जीवन श्री जगन्नाथ जाल सें निनोरौ ।

1. थाकें न हाथ–पांव, धरै नहिं कोऊ नांव
   चलत फिरत चलौ जांव, घोरुवा न घोरौ, जीवन ....
2. बनी रई बान बात, इज्जत के संग साथ
   दीनबन्धु दीनानाथ, रै गओ दिन थोरौ, जीवन ....
3. हाथ जोर चरन परत, चरनामृत धोय पियत
   जियत राम देखों ना दूसरें कौ दोरौ, जीवन ...
4. 'ईसुर' 'परभाती' पढ़त, आबर्दा सोऊ पढ़त
   कीचड़ में सनौ भऔ, नीर ना बिलोरौ, जीवन ....।

– *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' 'मध्य–लय' 'राग–मालगुंजी'

स्थाई :–

ऩी – स	– रे –	(स)ऩी स –	ऩी धप ध
जी ऽ व	न श्री ऽ	ज ग न	ना ऽऽ थ
स – स	ग ग ग	ग – रेग	म ग रेस
जा ऽ ल	सैं ऽ नि	नों ऽ रौऽ	ऽ ऽ ऽऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – ग	– म ग	प – म॑	प – प
था ऽ कें	ऽ न ऽ	हा ऽ थ	पां ऽ व
म॑ – म॑	प प –	मग म –	ग – –
धा रै ऽ	न हिं ऽ	कोऽ ऽ ऊ	नां ऽ व
ग ग म	ध ध –	धध (सं)नी –	ध – प
च ल त	फि र त	चऽ लौ ऽ	जा ऽ ऊं
ग म ग	रे स –	ध स रेग	म ग रेस
घो रु वा	ऽ न ऽ	घो ऽ रौऽ	ऽ ऽ ऽऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'मधुरला' (दस्टौन)

अरे हाँ रे मधुरला बाजै मधुर सुहावनें
1. हां हां रे मधुरला सुरहन गोबर मंगाइयो–2
अरे ढिंग धर अंगन लिपाए, मधुरला बाजे
2. हां हां रे मधुरला मुतियन चौक पुराइयो–2
अरे कंचन कलस धराए, मधुरला बाजे.....
3. हां हां रे मधुरला चन्दन पटली डराइयो–2
अरे सुरहन घियला जराए, मधुरलाबाजे.....
4. हां हां रे मधुरला आईं जसोदा रानीचौक में
अब लालन को गोद बिठाए, मधुरला.....
नन्द लाला को गोद बिठाए, मधुरला बाजे........

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा'

'रे, ग, ध, नी, कोमल'
राग 'भैरवी'

स्थाई	ध ध –	ध प –	प – म	प प –
	अ रे ऽ	हां ऽ ऽ	रे ऽ म	धु र ऽ
	ध – –	– – प	म ग –	ग ग प
	ला ऽ ऽ	ऽ ऽ बा	ऽ जे ऽ	म धु ऽ
	प म –	– – ग	रे ग रे	स – –
	र सु ऽ	ऽ ऽ हाऽ	ऽ ऽ व	ने ऽ ऽ
	O	X	O	X
अन्तरा	ध ध –	ध प –	प म म	प प –
	अ रे ऽ	हां ऽ ऽ	रे ऽ म	धु र ऽ
	ध – –	– – प	म ग –	ग ग प
	ला ऽ ऽ	ऽ ऽ सु	र ह न	गो ब ऽ
	प म –	– – ग	रे ग रे	स – –
	र मं ऽ	ऽ ऽ गा	ऽ ऽ इ	यो ऽ ऽ
	स नि –	स ग –	ग म –	प प –
	अ रे ऽ	ढिं ग ऽ	ध रे ऽ	अं ग ऽ
	ध – ध	प – –	म – म	प प –
	न ऽ लि	पा ऽ ऽ	ये ऽ म	धु र ऽ
	ध – –	– – प	म ग –	ग ग प
	ला ऽ ऽ	ऽ ऽ बा	ऽ जे ऽ	म धु ऽ
	प म –	– – ग	रे ग रे	स – –
	र सु ऽ	ऽ ऽ हा	ऽ व ऽ	ने ऽ ऽ
	O	X	O	X

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'फाग'

सुख सो रहे राजा परमाल मोरी बेला
तोरे चलाए कब हुई हैं

1. अरी हाँ मोरी बेला सावन कजरियां ना देखी,
   ना देखी चंदेलन फाग मोरी बेला
2. अरी हाँ मोरी बेला नगर महोबे ना देखे
   ना देखे किरितुआ ताल मोरी बेला, तोरे....
3. सोनै घिनौची ना देखी, न देखी चंदन चौपार,
4. घोड़ा बिंदुलिया ना देखे, न देखे ऊदल असवार
5. सास चंदेलन ना देखी न देखे ससुर परमाल

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–'कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* | प़ नि़ स रे ग म (6 स्वर) 'ग कोमल' राग पीलू की झलक'

स्थाई :–

			नि़ स़
			सु ख
ग – रे स	रे ग ग रे स	सरे रेरे स नी़	नि़स सरे रे रे
सो ऽ र हे	रा जा प र	माऽ ऽल मो री	बेऽ ऽऽ ला ऽ
– –प़ –रे –म	ग – रेस –	नि़ नि़ स– –	स –,
ऽ ऽतो ऽरे ऽच	ला ऽ एऽ ऽ	क ब हुई ऽ	हैं ऽ,

अन्तरा :–

			म ग रे
			अ री
स – नि़ नि़	सरे रेरे स न	–प़ –रे –रे –म	ग – रे स
हां ऽ मो री	बेऽ ऽऽ ला ऽ	ऽन ऽग ऽर ऽम	हो ऽ बे ऽ
नि़ – स –	स – नि़ स	ग – रे स	रे ग ग रे स
ना ऽ दे ऽ	खे ऽ ना ऽ	दे ऽ खो कि	रि तु आ ऽ
सरे रेरे स नी़	नि़स सरे रे रे	– –प़ –रे –म	ग – रेस –
ताऽ ऽल मो री	बेऽ ऽऽ ला ऽ	ऽ ऽतो ऽरे ऽच	ला ऽ एऽ ऽ
नि़ नि़ स– –	स – नि़ स		
क ब हुई ऽ	हैं ऽ, सु ख		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

सागर में भुजरियां सहेली बिना सिर गईं री

1. बागन में जाती चेतउती अपने देस खां जी
   ए जी कोई आजऊं ना आए भइया वीर, सागर....
2. तालन खॉ जाती चेतउती अपने देस खां जी
   ए जी कोई आजऊं न आए भइया वीर, सागर....
3. कुअंलन खां जाती चेतउती अपने देस खां जी
   ए जी कोई आजऊं न आए भइया वीर, सागर.....
4. गलियन खां जाती चेतउती अपने देस खां जी
   ए जी कोई आजऊं न आए भइया वीर, सागर....
5. महलन खां जाती चेतउती अपने देस खां जी
   ए जी कोई आजऊं न आए भइया वीर, सागर.....

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा' *(मध्य–लय)* 'पीलू की छाया'

स्थाई :–

स– – रे ग	रे – स –	ऩि – ऩि –	स – रे –
साऽ ऽ ग र	मे ऽ भु ऽ	ज ऽ रि ऽ	यां ऽ स ऽ
ऩि – स –	रे – ग रे	गरे स स –	रे – स –
हे ऽ ली ऽ	बि ऽ ना ऽ	ऽऽ ऽ सि ऽ	र ऽ ग ऽ
ऩि – – –	स – – –		
ईं ऽ ऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ		
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – ^रे^ग –	रे – स –	ऩि – – –	स – रे –
बा ऽ ऽ ऽ	ग न में ऽ	जा ऽ ऽ ऽ	तीं ऽ चे ऽ
स ऩी स –'	रे – ग –	रेस – स –	रे – स–
त उ ती ऽ	अ प ने ऽ	ऽऽ ऽ दे ऽ	ऽ ऽ स ऽ
ऩि – – –	स – – –	रे – रे^प^म	म – म ग
खां ऽ ऽ ऽ	जी ऽ ऽ ऽ	ए ऽ जी ऽ	को ऽ ई ऽ
रे – ग –	रे स स –	ऩि – स –	रे – ग रे
आ ऽ ऽ ऽ	ज ऊं न ऽ	आ ऽ ए ऽ	भ इ या ऽ
गरे स स –	रे – स –		
ऽऽ ऽ वी ऽ	ऽ ऽ र ऽ		
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'झूलनौ'

झुला दे माई झूलना, झूलना रे

1. काहे कौ तोरौ बनो है झूलना
काहे की लागी डोर, काहे के लागे फूंदना
फूंदना रे, झुला दे......

2. अगर चंदन कौ बनौ है झूलना
रेसम लागी डोर, मोतिन के लागे फूंदना
फूंदना रे, झूला दे.....

3. कौना झूलै, कौना झुलावै
कौना लेत बलायें, कौन मुख चूंमना
चूंमना रे, झुला दे......

4. किसना झूलें, सखियां झुलावे
जसोमती लेत बलायें, नंद मुख चूंमना
चूंमना रे, झुला दे माई–

– *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' 7 स्वर (ग, ध कोमल)

'पीलू की झलक'

स्थाई :–

			म –
			झु ऽ
ग रे –	स – नि़	– – स	– रे –
ला दे ऽ	म इ या	ऽ ऽ झू	ऽ ल ऽ
ग – –	रे स –	– – रे	– म –
ना ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ झू	ऽ ल ऽ
ग रे स	–		
ना ऽ रे	ऽ,		
X	O	X	O

अन्तरा :–

– –, स	– ग म	प – –	प प –
ऽ ऽ, का	ऽ हे ऽ	को ऽ ऽ	ते रो ऽ
ग ग –	म – म	ग ग –	रे स –
ब नो ऽ	है ऽ पा	ऽ ल ऽ	ना ऽ ऽ
– –, प	– प प	प – –	ध प –
ऽ ऽ का	ऽ हे की	ला ऽ ऽ	गी ऽ ऽ
म – ग	रे स –	स – रे	स – नि
डो ऽ र	ऽ का ऽ	हे ऽ के	ला ऽ गे
– – स	– रे –	ग – –	रे स –
ऽ ऽ फूं	ऽ द ऽ	ना ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
– – रे	– म –	ग रे स	–, म –
ऽ ऽ फूं	ऽ द ऽ	ना ऽ रे	ऽ, झु ऽ
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'भगत' (ढिमरियाई शैली में)

गंगा जमन की बालू रेत में
मइया ने हिंडोला घलवाए मां

1. अरे काहे की तोरी चारऊ पलकियां–2
काहे के अजगर खम्ब मां

2. अगन चंदन की चारउं पलकियां
मलयागिर के खम्ब मां

3. को हो झूले चारऊ पलकियां
को हो झुलावन हार मां

4. देवी झूले चारऊ पलकियां
लंगड़े झुलावन हार मां

5. पहली मचकनी माई बारे लंगड़े
सुरग घुमें आगास मां

6. दूजी मचकनी माई बारे लंगड़े
उड़ गए अजगर खम्ब मां

7. तीजी मचकनी माई बारे लंगड़े
टूटे गज मोतन हार हो मां

8. चौथी मचकनी माई बारे लंगड़े
मड़ के कलश दिखाए हो मां

9. संग की सहेली मोंरी चौसठ जोगन
मोतियां लए बिनवाए हो मां

10. बीन–बीन मोतियां थार सजाए
चली पटवा की दुकान हो मां

11. छोटे–2 लरका खेलें गिल्ली–डण्डा
उनईं ने गैल बताई हो मां

12. ऊँची अटरियां चन्दन किवरियां
सूरज सामूं द्वार हो मां

13. दौड़ो–दौड़ो आओ पटवा
को जगदम्बा लईं उतार हो मां

14. चन्दन चौकी बैठक दीन्हीं
दूधों पखारे दोई पाँव हो मां

15.	हुकम करो मोरी जगत की माता कैसी पुकारन आई हो मां
16.	चोटी गो दें चुटीला गो दें बारे लंगड़े की कोंची गों दे, और हिय को हार हो मां
17.	गो गा कें सामदौं भओ पटवा को मुख भर देतीं असीस हो मां
18.	अन्न धन्न सब तुमरो दओ है पटवा अमर कर देओ हो मां
19.	अमर तो नइयां मोरे पांचई पंडवा जिन्ने मोरे भुवन बनाए हो मां
20.	अमर तो नइयां धरनी के बासक जिन्ने पिरथवी रचाई हो मां
21.	सुमर सुमर मइया तोरे जस गा लऊं जै बोलो हिंगलाज हो मां

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा *(ठेका दुगुन में)* 'द्रुतलय' 'राग पीलू पर आधारित

स्थाई :–

सस सरे सस सस	सस सरे सस स–	गग गग रेरे सस	–रे–स नी –
गंगा ऽज मन कीऽ	बालू ऽरे ऽत मेंऽ	मइया नेहिं डोला घल	ऽवा ऽये मां ऽ

अन्तरा :–

रे– रेस रेग ग–	रेरे रस सस स–	सरे –ग रे–स–	–रे –स स नी –
काऽ हेऽ कीऽ तोरी	चार उप लकि यांऽ	काऽ हेके अज गर	ऽख ऽम्ब मां ऽ

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएगें।

'लोरी'

झूल भइया झूल, तोरी टोपी में फूल
फाट गई टोपी बगर गए फूल

1. आम से डारे पालना पीपल डारी डोर
   जी में झूले बारो कनैया, टूट पड़ी लमडोर
2. ताती–ताती खीर बनाई, ओई मे डारो घी
   खाए मोरो 'ललत' तो जुड़ाए मोरो जी
3. काए को बनो पालना, काए की डारी डोर
   चन्दन को जो बनो पालना, रेसम डारी डारे।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–कहरवा *(ठेका दुगुन में)* 'मध्यलय' 'पीलू की झलक'

स्थाई :–

नी –नी नीनी स	ग –ग ग रे	स –रे — स–	नीस – – –
झू ऽल भइ या	झू ऽल तो री	टो ऽपी ऽऽ मेंऽ	फू ऽ ऽ ल
नी –नी नी नी	स –स – रे	ग ग रे स	स – – –
फा ऽट ग ई	टो ऽपी ऽ ब	ग र ग ए	फू ऽ ऽ ल

अन्तरा :–

नी –नी नी नी	स –स स स	नी नीनी नी सं	ग – – –
आ मसें डा रो	पा ऽल ना ऽ	पी पर डा री	डो ऽ ऽ र
ग ग ग रे	रे मम म म	ग गग रे रेरे	स – – –
जी मैं झू लै	बा रोक नैं या	टू टप ड़ी लम	डो ऽ ऽ र

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

'बसन्त गीत'

आई–आई बसन्त बहार
पिया बिन गोरी पीरी भई

1. पीरी केसर, पीरी बेसर, पीरी बेंदी लिलार, पिया ......
2. पीरी चूनर पीरी चोली, औ पीरे जड़े है सितार, पिया...
3. पीरे पान को बीरा चाबैं, सो रई पियु पंथ निहार पिया.
4. सांझ भई दृग लगे झरोखन, सो ना आयो बेदर्दी भरतार, पिय

– *संकलन*

(प्रस्तुत गीत साहित्यिक सौन्दर्य का अनुपम उदाहरण है। बसन्त, विरहन, व स्वर्ण तीनों का रंग पीला है। इन तीनों का समन्वय व साथ ही 'पीलू' राग के स्वरों से श्रृंगार, गीत को मानुषी रूप में जीवन्त कर देता है।)

स्वर–लिपि

ताल–कहरवा (ठेका दुगुन में) 'राग पीलू'

स्थाई :–				नि स
				आ ई
	ग – ग ग	रे ग रे ग	स रे रे नि	प नि नि नि
	आ ऽ ई ब	स ऽ त ब	हा ऽ ऽ र	पि या बि न
	स – रे प	ग –रे स नी	स –	
	गो ऽ री ऽ	पी ऽरी भ ऽ	ई ऽ	
अन्तरा :–				स – ग ग
				पी ऽ री ऽ
	प – प प	–ग –म –नी प	ग रे स –	– ग ग ग
	के ऽ स र	ऽपी ऽरी ऽऽ ऽ	बे ऽ स र	ऽ पी ऽ री
	रे ग रे ग	स रे रे नी	प नी नी नी	स – रे प
	बें ऽ दी लि	ला ऽ ऽ र	पि या बि न	गो ऽ री ऽ
	ग –रे स नी	स –		
	पी ऽरी भ ऽ	ई ऽ		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

माई केवल राम सुमर लो मन मोरे अजान

1. अरे बिना पंख को सुअना रे, उड़ जात अगास--2
   जहाँ पेड़ ना पत्ता, जहाँ भूख न प्यास, माई.....
2. अरे आठ काठ को पिंजड़ा रे, बामें सुअना अमोल--2
   टंगो कदम की छइयां बामे करत किलोल, माई....
3. अरे ऊँचे महल को दियला रे, किन्ने गुलकीन--2
   राम लछन की जोड़ी, किन्ने हरलीन–2, माई.....
4. अरे ऊँचे महल को दियला रे, भौंरा गुलकीन–2
   राम लछन की जोड़ी राउन हर लीन–2 माई......
5. किन्ने रची पिरथवी रे, दुनिया सिनसार--2
   किन्ने रचे पाण्डवा, देवी दरबार–2, माई......
6. अरे बिरमा रची पिरथवी, रे दुनिया सिनसार –2 माई...
   देवी रचे पाण्डवा, अपने दरबार–, माई.........
7. अरे भौ–सागर–एक नदिया रे, बामे डरी जहाज--2
   खेवन हार विधाता, लग जैहों पार–2, माई.........
8. अरे सुमर–सुमर मइया तोरे जस गा लऊं
   जै बोलो हिंगलाज हो मां, मइया.....

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–कहरवा *(ठेका दुगुन में)* 'मध्य लय' 5 स्वर – स रे ग म प (सब शुद्ध)

'राग मांड पर आधारित'

स्थाई :–

			स स
			मा ई
स रे रे रे	रे ग रे स	स रे रे ग	ग म ग रे
के ऽ व ल	रा ऽ म सु	म र लो ऽ	ऽ ऽ म न
रे ग रे स	स –स		
मो रे ऽ अ	जा ऽन,		

अन्तरा :–

			म म
			अ रे
म म – म	– म म –	म प प –	म – म ग
बि ना ऽ पं	ऽ ख को ऽ	सु अ ना ऽ	रे ऽ उ ड़
ग रे रे स	स –रे म ग	रे – स स	स रे रे ग
जा ऽ त अ	गा ऽस उ ड़	जा ऽ त अ	गा। ऽ ऽ स
म म – ग	रे रे रे ग	रे – स –	– – स स
ज हां ऽ पे	ऽ ड़ न ऽ	प ऽ त्ता ऽ	ऽ ऽ ज हा
रे ग रे स	रे –रे स स	रे ग रे स	स –स स स
भू ऽ ख न	प्या ऽस ज हां	भू ऽ ख न	प्या ऽस, मा ई

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

डस लई मोरे महाराज झूला झूलत नागिन डस लई
दहिनीं छिंगरिया के बीच, झूला झूलत नागिन...
जाय जो कइयो कोऊ ससुरा सें, सासो सें कइयो समुझाय, झूला.
राजा सें कइयो ब्यालैं दूसरी, छोड़े चन्द्रवदनी की आस....
कागा सब तन खाइयो, चुन–चुन, खाइयो मांस,
दो नैना जिन खाइयो, जामैं पिया मिलन की आस,

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–दीपचन्दी

7 स्वर (दोनों गंधार)
रायसा की झलक

स्थाई :–

ध़ स –	स – स –	ग रेस रे	म – ग –
ड स ऽ	ल ऽ ई ऽ	मो रे ऽ	म ऽ हा ऽ
म़ – –	– – – पम	ग – रेस	रे – सनि –
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ज	झू ऽ ऽ	ला ऽ झू ऽ
स रे –	ग॒ – ग॒ –	रे रे –	ग – रेस नी
ल त ऽ	ना ऽ गि न	ड स ऽ	ऽ ऽ ऽ ल
स – –			
ई ऽ ऽ			
X	2	O	3

अन्तरा :–

रे ग॒ रे	स – नि़ –	स स –	ग – ग –
जा ऽ ऽ	य ऽ जो ऽ	क र यो	को ऽ ऊ ऽ
रे रे –	ग॒ रे स नि	स – –	स – स –
स सु ऽ	रा ऽ ऽ ऽ	सैं ऽ ऽ	औं ऽ र ऽ
ध़ – –	स – स –	रे – रे	म – ग –
सा ऽ ऽ	सौं ऽ सें ऽ	क इ यो	स ऽ म ऽ
म – –	– – – पमग	ग – रेस	रे – सनि –
झा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ य	झू ऽ ऽ	ला ऽ झू ऽ
स रे –	ग॒ – ग॒ –	रे रे –	ग – रेस नी
ल त ऽ	ना ऽ गि न	ड स ऽ	ऽ ऽ ऽ ल
स – –			
ई ऽ ऽ			
X	2	O	3

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

'जिकड़ी'

लालन गोद खिलावे रे बैठी, अंगना में गोद खिलावै जी
कैकेई मात सुमित्रा कौसिल्या, लै–लै सुत हुलरावै जी, लालन ....

1. ए जी कोई सखी करताल बजावे, कोई चुकटी कुनकुना बजावै
सास सुत रोवन ने पावै जी ऽ ऽ ऽ ऽ
ए जी सखी कज्जल का परम सलोना, राम भाल पे दियो है डिठौना
मनु पंकज बैठे अलि छौना जी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
स्याम गौर मन भाए रे बैठीं, अंगना .....

2. ए जी कबहुं छंद उठावत भामन, डोलत चलत ठुमक गज रावन
गावत गीत सोहेरे सुहावन जी ऽ ऽ ऽ ऽ
ऐ कबहुं पार पालना दैवे, रोवै लाल तो कइयां लैवे
बाल विनोद लाल हिय सोवै जी ऽ ऽ ऽ ऽ
बहुतक लाड़ लड़ाएं रे बैठी, अंगना....

3. ए जी कबहुं सुतहीं को नजर लग जावै, धूप दीप लै नजर झरावै
मुख देखात जननी सुख पावै जी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
अरे या बिध पांचो मास बिताए, अष्टम भादौं सुखद सुहाए
ता दिन अनप्रासन करवाए जी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
भूसन तन पहराएं रे बैठीं, अंगना में ....

4. ए जी सिव जी आए अवधपुर धामा तुरत राम कीन्हीं परनामा
दई असीस जोगी अभिरामा जी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ए जुग जीवैं दसरथ के लाला, धरत पाए हम भए हैं निहाला
बेनीदास के दीनदयाला जी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
नित नव मोद मनाए रे बैठीं, अंगना में.......

– *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–कहरवा *(ठेका दुगुन में)* 'मध्य लय'
(लय का सौन्दर्य है)

7 स्वर – ग ध नी कोमल
'राग किरवानी की झलक'

स्थाई :–

– प –ध –प	प ध प प	– म – गरे	सरे रे– स– नी–
ऽ ला ऽल ऽन	गो ऽ द खि	ऽ ला ऽ वेरे	बैऽ ऽऽ ठींऽ ऽऽ
– पप –नी –नी	स रे म ग	– गरे – रे	स – – –
ऽ अंग ऽना ऽमें	गो ऽ द खि	ऽ लाऽ ऽ वे	जी ऽ ऽ ऽ
– प –ध –प	प ध प प	– म – गरे	सरे रे– स– नी–
ऽ कै ऽक ऽई	मा ऽ त सु	ऽ मि त्रा कौऽ	सिऽ ऽऽ ल्या ऽऽ
– पप –नी –नी	स रे म ग	– गरे – रे	स – – –
ऽ लैऽ ऽलै ऽ	सु त हु ल	ऽ रा ऽ वै	जी ऽ ऽ ऽ

अन्तरा :–

– सम म मम	म– म– मप मग	गरे रेस सस सरे	रेग गग गरे ग
ऽ एजी को ईस	खीऽ कर ताऽ लब	जांऽ वेऽ कोई चुक	टीऽ कुन कुना ऽब
रे स स सरे	रेम म– गग गरे	रे– रेग रे –	– – (ग)स –
जा वे ऽसा ऽस	सुत रोऽ वन दैऽ	पाऽ वेऽ जी ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
सम म मम म	मप मग गरे रेस	स– सरे ग ग	गरे रेग रेस स
सखी क ज्जल को	पर मस लोऽ नाऽ	राऽ मभा ल पै	दियो हैडि ढौ ना
सस सरे सम म	मग गरे रे रेग	रे – – –	– – (ग)स –
मनु पंऽ कज बै	ढेऽ अलि छौ ना	जी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
– प –ध –प	प ध प प	– ग – गरे	सारे रे सा नी
ऽ स्या ऽम गौ	ऽ र म न	ऽ भा ऽए रेऽ	बैऽ ऽऽ ठीऽ ऽऽ
– पप –नी –नी	स रे म ग	– गरे – रे	स – – –
ऽ अंग ऽना ऽमें	गो ऽ द खि	ऽ लाऽ ऽ वे	जी ऽ ऽ ऽ

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

'बन्ना' (वृषभान कुंवर का)

बांकी चलन हंसन बनरे की

1. माथे मौर खौर चन्दन कों,
   सो फुंदरी हलन लटक जुलफन की ।
2. सांवरी सूरत सिया मन भावन,
   नैनन बीच कोर कजरे की ।
3. ब्याह विभूषण सोहत सुन्दर,
   राजकुंवर छवि दलन मदन की ।
4. अली वृषभान कुंवर मन भावन,
   जुग जीवै जोरी सियावर की ।

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल–दादरा

धृ नी़ स रे ग म 6 स्वर (सब शुद्ध)
'चैती की धुन का दर्शन

स्थाई :–

— — ग	— गरे ग	म म —	ग — स
ऽ ऽ बां	ऽ कीऽ ऽ	च ल ऽ	न ऽ ह
नी़ स —	रे ग —	नी़ नी़ —	स — —
स न ऽ	ब न ऽ	रे ऽ ऽ	की ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

— — नी	स धृ नी़	स ग रेस	स — म
ऽ ऽ मां	ऽ थे ऽ	गौ ऽ ऽ	र ऽ खौ
म म —	म म —	ग रेस नी	स — —
ऽ ऽ ऽ	र चं ऽ	द नऽ ऽ	कों ऽ ऽ
— — ग	— ग रे	म म —	ग — स
ऽ ऽ फुं	द री ऽ	ह ल ऽ	न ऽ ल
नी़ स —	रे ग —	नी़ नी़ —	स — —
ट क ऽ	जु ल ऽ	फ न ऽ	की ऽ ऽ
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'कजरी'

गरजै बरसै रे बादरवा, बिजुरी चमकै चारऊ ओर
1. उठत घटा घुमड़ायै स्याम, पुरवइया पवन झकोर
नान्हीं–नान्हीं बुंदियन मेहा बरसै, दादुर मचा रये सोर, गरजै.
2. सांवना बरसै भदवां गरजै, लगी झड़ी घनघोर
ऐसे में कौं हुइये जानकी, डरपत है मन मोर, गरजै....
3. दादुर मोर पपीहा बोले, झींगुर मचाये सोर,
पिया पिया रट तारे गिन–गिन रघुवर कीन्हीं भोर, गरजै.

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–कहरवा *(ठेका दुगुन में)* — 7 स्वर (दोनों निषाद) 'देस–मल्हार' की झलक

स्थाई :–

ग ग ग रे	म म म म	गरे ग– स –	स रे रे नि
ग र जे ऽ	ब र से ऽ	रेऽ ऽऽ बा ऽ	द र वा ऽ
नि़ स रे –	ग ग ग म	ग – रेस स	स – – स
बि जु री ऽ	च म के ऽ	चा ऽ रऽ ऊ	ओ ऽ ऽ र
म म म –	ग रे ग म	प – – प	सं सं नी धप
चं म के ऽ	चा ऽ र ऊ	ओ ऽ ऽ र	बि जु री ऽऽ
प प प –	ध – प म	म – ग रे	
च म के ऽ	चा ऽ र ऊ	ओ ऽ ऽ र	

अन्तरा :–

नि़ नि़ नि़ नि़	नि़ – नि़ –	स – स स	– स, स स
उ ठ त घ	टा ऽ घु म	ड़ा ऽ ये श्या	ऽ म, पु र
रे रे रे स	ग रे रे स स	स – – –	म म म म
व इ या ऽ	प व न झ	को ऽ ऽ र	ना नीं ना नीं
ग रे ग म	प – प –	प ध पधसं नी	नी धप म ग ग
बुं दि य न	मे ऽ हा ऽ	ब र सेऽऽ ऽ	ना नीऽ ना नीं
ग रे ग म	प – प –	प प प –	म प – म म म
बुं दि य न	मे ऽ हा ऽ	ब र से ऽ	दा ऽ दु र म
ग – रे स	ग – – –		
चा ऽ वे ऽ	सो ऽ ऽ र		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'मसवारौ' या 'कुआं पूजन का गीत'

ऊपर बदर गहराए हों तरैं गोरी पानी खों निकरी

1. जाय जो कहियो उन ससुरा बड़ेन सों,
अंगना में कुइयां खुदाय हो, तुमाई बहु पानी खों निकरी।

2. जाय जो कहियों उन जेठा बड़ेन सों,
चन्दन के पाटें डराव रें, तुमाई बऊ पानी खों निकरी ।

3. जाय जो कइयो उन लहुरा बड़ेन सों,
रेसम रसरिया डराव रे, तुमाई भौजी पानी खों निकरी ।

4. जाय जो कइयो उन नन्देऊ बड़ेन सों,
कुअला पे गिर्री डराव रे, तुमाई सरज पानी खों निकरी।

5. जाय जो कइयो उन राजा बलम सों,
सोने के घेलना (कलश) मंगाव रे, तुमाई धना पानी खों निकरी।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा'

(7 स्वर) 'पहाड़ी की झलक'
अन्तरे में – 'कल्याण का पुट'

स्थाई :–

प़ – ध़	स स –	रेग – –	रे – –
ऊ ऽ प	र ब ऽ	द र ऽ	ग ऽ ह
रेस – –	रे प ग	ग म ग	रे स –
रा ऽ ए	हो ऽ ऽ	त रैं ऽ	गो री ऽ
नी़ – स	– रे –	ग – रे	स – –
पा ऽ नी	ऽ खों ऽ	नि क ऽ	री ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

ग – ग	– रे –	ग – ध	प – –
जा ऽ ये	ऽ जो ऽ	क हि यो	उ न ऽ
मं – ग	– स –	रे – –	स – –
रा ऽ जा	ऽ ब ऽ	ड़े न ऽ	सें ऽ ऽ
प़ – ध़	– स –	रे – –	स नी –
अं ग ना	ऽ में ऽ	कु इ यां	ऽ खु ऽ
रेस – –	रे प ग	ग म ग	रे स –
दा ऽ ए	हो ऽ ऽतु	मा ऽ ई	ब हु ऽ
नि़ – स	– रे –	ग – रे	स – –
पा ऽ नी	ऽ खों ऽ	नि क ऽ	री ऽ ऽ
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'दादरा'

हंस दै लै झंझर किबार सजन कंगना गढ़वा देओ सोने के

1. बारे देवरा ने दुलरी लै दई – 2
   हंस गढ़ गओ सुघर सुनार, सजन ......
2. जेठी ननदी ने चन्दन हार दओ – 2
   मोरे कंठन को सिंगार, सजन...
3. ननदेउआ ने बिछिया लै दए – 2
   पग, धरत होत झनकार, सजन....
4. राजा तिर्वाचा मोंसें हारियो – 2
   तब निकरन दैहों द्वार, सजन....
5. हंस मित्र सजन कर गह लए – 2
   तोपे जाऊं धाना बलिहार, सजन......

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा'

स्थाई में – 'तिलककामोद व'
अन्तरे में – 'खमाज की झलक'

स्थाई :–

X	O	X	O
			स रे – हं स ऽ
ग – – दै ऽ ऽ	ग ग – लै ऽ ऽ	ग ग प झं झं ऽ	म – ग र ऽ कि
रे ग रे वा ऽ र	म – गरे ऽ ऽ सऽ	स रे – ज न ऽ	स नि़ – कं ग ऽ
– – प ऽ ऽ ना	– नि़ नि़ ऽ ग ढ़	स – – वा ऽ ऽ	रे रे – दे ओ ऽ
– – ग ऽ ऽ सो	– ग म ऽ ने ऽ	ग स – के ऽ ऽ	स रे – हं स ऽ

अन्तरा :–

X	O	X	O
			ग म – बा रे ऽ
प – प दे व रा	– प – ऽ ने ऽ	प ध प दु ल ऽ	ध नी – री ऽ ऽ
– – ध ऽ ऽ लै	– ध – ऽ द ऽ	प – – ई ऽ ऽ	स रे – हं स ऽ
ग ग – ग ढ़ ऽ	ग ग – ग ओ ऽ	ग गप – सु घ ऽ	म ग – र सु ऽ
रे ग रे ना ऽ र	म – गरे ऽ ऽ सऽ	स रे – ज न ऽ	स नि़ – कं ग ऽ
– – प – – ना	– नि़ नि़ ऽ ग ढ़	स – – वा ऽ ऽ	रे रे – दो ऽ ऽ
– – ग ऽ ऽ सो	– ग म ऽ ने ऽ	ग सं – के ऽ ऽ	

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'झिंझिया नृत्य'

हाय मोरे नार की रातैं डुको डुकरा सैं लड़ी तीं

1. हाय मोरे नार की डुको कहें मोहे सुतिया बनवाय दे
   हाय मोरे नार की डुकरा कहे जाको गरो कटवाय दे।
2. हाय मोरे नार की डुको कहे मोहे झुमकी बनवाय दे
   हाय मोरे नार की डुकरा कहे जाके कानई कटवाय दे।
3. हाय मोरे नार की डुको कहे मोहे नथनी बनवाय दे
   हाय मोरे नार की डुकरा कहे जाकी नाकई कटवाय दे।
4. हाय मोरे नार की डुको कहे मोहे ककना बनवाय दे
   हाय मोरे नार की डुकरा कहे जाके हातई कटवाय दे।
5. हाय मोरे नार की डुको कहे मोहे लच्छा बनवाय दे
   हाय मोरे नार की डुकरा कहे जाके गोड़ई कटवाय दे।

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' *(द्रुत लय)*　　　　4 स्वर – नि स रे ग

'पीलू'

स्थाई :–

ऩि – ऩि	ऩि स –	ग – –	गरे – –
हा ऽ य	मो रे ऽ	ना ऽ र	कीऽ ऽ ऽ
स ऩि – ऩि	– स –	ग – –	ग रे –
रा ऽ तैं	ऽ डु ऽ	को ऽ ऽ	डु क ऽ
ऩि – नि	स स –	स – –	स – –
रा ऽ सैं	ऽ ल ऽ	ड़ी ऽ ऽ	तीं ऽ ऽ
X	O	X	O

शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी।

'झिंझिया नृत्य गीत'

किन्ने मारे दोऊ मोरा बता दे पापी
1. सोई कौना की बखरी में चुनन गए
अरे कौना ने लगाय दई गरे में फांसी।
2. सोई ससुरा की बखरी में चुनन गए
सासो रानी ने लगाय दई गरे में फांसी।
3. सोई जेठा की बखरी में चुनन गए
जिठनी रानी ने लगाय दई गरे में फांसी।
4. सोई देवरा की बखरी में चुनन गए
बहुआ रानी ने लगाय दई गरे में फांसी।

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा' (द्रुत लय)

नि स रे ग
'पीलू'

स्थाई :–

ग – ग रे	सरे – रे –	स – नि –	स – – –
कि ऽ न्ने ऽ	माऽ ऽ रे ऽ	दो ऽ ऊ ऽ	मो ऽ ऽ ऽ
रेग – ग –	रे – रे –	रेस – – –	स – – –
रा ऽ ब ऽ	ता ऽ दे ऽ	पाऽ ऽ ऽ ऽ	पी ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

			प – प –
			सो ऽ ई ऽ
स – स रे	स – नि –	स – – –	रेग – ग –
स ऽ सु ऽ	रा ऽ की ऽ	ब ऽ ख	री ऽ में ऽ
रे – रे –	रेस – स –	स – – –	ग – ग रे
चु ऽ न ऽ	न ऽ ग ऽ	ये ऽ ऽ ऽ	रा ऽ सो ऽ
सरे – रे –	स – नि –	स – – –	रेग – ग –
रा ऽ नी ऽ	ने ऽ ल ऽ	गा ऽ ऽ य	द ई ग ऽ
रे – रे –	रेस – – –	स – – –	
रे ऽ में ऽ	फां ऽ ऽ ऽ	सी ऽ ऽ ऽ	
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'नौरता'

तिल के फूल तिली के दाने
चन्दा ऊरै बड़े भुन्सारे
ऊरई न होय बारे चन्दा
सब घर होय लिपना पुतना
सास न होय दैहे गारी
ननद न होय कोसे बिरना
माई को कहौ न करिहौं
बाबुल को कहौ न करिहौ
गोबरा की हेल न धरिहौं
पनिया की खेप न धरिहौं
चकिया को डड़ा न पकरहौं
तवा पै कुचैया न धरिहौं
बासी को कौर न दैहों
ताती को लप-लप खैहों

— *संकलन*

स्वर–लिपि

(4 स्वर) स रे ग म

स स स रे	रे रे स स	स स स रे	रे रे स –
ति ल के ऽ	फू ऽ ल ति	ली ऽ के ऽ	दा ऽ ने ऽ
स स स रे	रे रे स स	स स स रे	रे रे स –
चं ऽ दा ऽ	ऊ ऽ रै ब	ड़े ऽ भु न	सा ऽ रे ऽ
ग ग ग ग	म – – –	ग – ग –	$^{रे}$स – $^{रे}$स –
ऊ र ई न	हो ऽ ऽ य	बा ऽ रे ऽ	चं ऽ दा ऽ
ग ग ग –	म – – –	ग – ग –	$^{रे}$स – $^{रे}$स –
स ब घ र	हो ऽ ऽ य	लि प ना ऽ	पु त ना ऽ

शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'देवी–गीत' 324

तुम्हरे दरस खां आई कि मइया मोरी
तुम्हरे दरस खां आई हो मां

1. पहलो ब्रत कौसल्या जू ने कीन्हो
रामचन्द्र सुत पाई कि मइया मोरी तुम्हरे ...

2. दूजो ब्रत माता जानकी ने कीन्हों
रामचन्द्र वर पाई कि मइया मोरी, तुम्हरे .....

3. तीजो ब्रत अंजनी ने कीन्हों
बजरंगी सुत पाई कि मइया मोरी, तुम्हरे ...

4. चौथो ब्रत माता गिरजा ने कीन्हों
सिव संकर वर पाई कि मइया मोरी तुम्हरे .....

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* 'मध्य–लय' स रे ग म प – 5 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

म – म म	म प $^{\text{प}}$ग –	ग – ग गरे	रेग ग– रे– स–
तु म्ह रे द	स र खां ऽ	आ ऽ ई किऽ	मइ याऽ मोऽ रीऽ
स रे रे म	ग ग– गरे स–	सरे ग– रे स	स – – –
तु म्ह रे द	र स खांऽ ऽऽ	आऽ ईऽ हो ऽ	मा ऽ ऽ ऽ

अन्तरा :–

स रे रे –	रे – स रे	ग ग म ग	रे – गरे स
प ह लो ऽ	ब्र त कौ ऽ	स ल्या जू ने	की ऽ न्हो ऽ
म – म म	म प $^{\text{प}}$ग –	ग – ग गरे	रेग ग– रे– स–
रा ऽ म च	ऽ न्द्र सु त	पा ऽ ई किऽ	मइ याऽ मो री
स रे रे म	ग ग– गरे स–	सरे ग– रे स	स – – –
ऽतु म्ह रे द	र स खांऽ ऽऽ	आऽ ईऽ हो ऽ	मा ऽ ऽ ऽ

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'सुआटा'

डूंड़ी पिपरिया झक झालरी नारे सुआटा बई तरैं भरौ है बजार
बिरजीं गौरा बेटी बाबुल सें नारे सुआटा मोरे बाबुल चुनरी रंगाव
चुनरी रंगइयो पक्के पाट की नारे सुआटा जनम न मैली होय
ढिक ढिक लिखियो सखि सेलरी नारे सुआटा छोरन पपीरा दोई मोर
अंचरन लिखियो बारे बीरना नारे सुआटा जिन देखे नैना जुड़ाय
कुड़रिन लिखियो बारी ननदिया नारे सुआटा गगर घरैं दब जाय
लॉवनन लिखियो खास जिठनियां नारे सुआटा चलतन उड़-उड़ जाय
पीठन लिखियो मोरी सास खों नारे सुआटा घाम लगैं कुमलाय।

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा *(ठेका दुगुन में)* 'मध्य लय' — नि स रे ग म (5 स्वर)

'पहाड़ी की झलक'

स्थाई :–

ग रेस रे स	ग– ग म म	ग – गरे सरे	गरे नी – स
डूं ऽ ड़ी पि	परि या झ क	झा ऽ लऽ रीऽ	ऽऽ ना ऽ रे
स ग ग स	ग ग रे स	नि सरे स रे	स– म म
सु अ टा ऽ	ब ई त रैं	भ रोऽ है ब	जा ऽ ऽ र

शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'बुन्देला'

बुन्देला देसा के हो, राजा रैया के हो बेटा साहेब के हो
लाला बींघ बघाए चले आवो, बुन्देला ....
को का कैंसी घरी जनमन लियो लाला कौना घरी अवतार
लाला रोहणी घरी जनमन लियो लाला रोहणी घरी अवतार
कौना की कुंखियां के जनमन लियो, कौना बहन के बीर
माता गंगोतरी उर धारें बहिन कुंजावती के बीर
कौना के नंदन नतिया हो लाला कौन ठाकुर के लाल
राजा अजय जू के नतिया हो वीर सिंह देव के पूत
काहे के छुरा नरा छीनयो, काहे खापर असनान
सोने के छुरा नरां छीनयो, रूपे खापर असनान

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा *(ठेका दुगुन में)* 'मध्य लय'

नि़ स रे ग म 5–स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

			रे
			बुं
स रे स नी़	स रे स –	रे म – –	रे ग स –
दे ऽ ला ऽ	दे ऽ सा ऽ	के ऽ ऽ ऽ	हो ऽ ऽ ऽ
स रे स नी़	स रे स –	रे म – –	रे ग स –
रै ऽ या ऽ	रा ऽ जा ऽ	के ऽ ऽ ऽ	हो ऽ ऽ ऽ
स रे स नी़	स रे स –	रे म – –	रे ग स –
बे ऽ टा ऽ	सा ऽ हे ब	के ऽ ऽ ऽ	हो ऽ ऽ ऽ

अन्तरा :–

रे ग ग –	ग ग रे रे	म ग रे स	स स स –
कौ ऽ का ऽ	कैं ऽ सी घ	री ऽ ज न	म न लि ऽ
रे म – –	रे ग स –	ग ऽ ग रे	ग – रे रे
यो ऽ ऽ ऽ	हो ऽ ऽ ऽ	ला ऽ ला ऽ	कौ ऽ न घ
रे म – –	रे ग स –		
री ऽ औ ऽ	ता ऽ र बुं		

साभार – डॉ० आशा खरे, खैरागढ़ (म०प्र०)

'सावन'

आसौं के सावन राजा घर ही के करियो
करियो अरे पर के करौं ससुरार
राजा आसौं के सावन सुहावने

1. आसौं के सावन राजा चुनरी पहरबे
पहरबे अरे तुमहुं बंधइयो सिर पाग, राजा आसौं....
2. आसौं के सावन राजा मेंहदी रचइबे
रचइबे अरे तुमहुं रचइयो बीड़ा पान, राजा आसौं....
3. आसौं के सावन राजा खैलबे घुटउआ
घुटउआ अरे तुमहुं खेलो पासा चार, राजा आसौं....
4. आसौं के सावन राजा झुलवबे हिंडोलना
हिंडोलना अरे तुमहुं बढ़इयो लम्बी पेंग, राजा आसौ..

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–दीपचन्दी

प़ नि़ स रे ग 5 स्वर (ग कोमल)
'पीलू'

स्थाई :–

प – –	नि़ – नि़ –	स स –	ग ग रे
आ ऽ ऽ	सौं ऽ के ऽ	सा व न	रा ऽ जा ऽ
रे स –	स ग ग रे	रे स –	स – नि़ –
घ र ऽ	ही ऽ के ऽ	क रि ऽ	यो ऽ ऽ ऽ
नि़ स नि़	स ग ग ग	ग ग रे	स – रेग रे
क रि ऽ	यो ऽ अ रे	प र ऽ	के ऽ ऽ क
स रेग –	रे – स –	सनि़ – –	सनि – – –
रो ऽऽ ऽ	स ऽ सु ऽ	रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
– – नि़	नि – सरे –	सनि़ – सरे	सनि़ – नि़ –
ऽ ऽ र	रा ऽ जाऽ ऽ	आऽ ऽ ऽऽ	सौऽ ऽ कें ऽ
स स –	रे – सनि़ –	स – –	– – रा –
सा व ऽ	न ऽ सुऽ ऽऽ	हा ऽ ऽ	ऽ ऽ व ऽ
स – –	– – – ऽ		
ने ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ		

अन्तरे इसी धुन मे गाए जाएंगे ।

'सोहर' *(चरुआ धराई पर)*

आम घने महुआ घने बिच–बिच घने हैं अनार
गुनन की आगरीं री भगेलिन रखे संत बिलमाय
आम गुड़े महुआ गुड़े बिच–2 गुड़े हैं अनार
गुनन की आगरीं री कालका रखे संत बिलमाय
आम सिंचे महुआ सिंचे बिच–बिच सिंचे हैं अनार
गुनन की आगरीं री कालका रखे संत बिलमाय
आम फरे महुआ फरे बिच–बिच फरे हैं अनार
गुनन की आगरीं री कालका रखे संत बिलमाय
टपर–टपर महुआ चुएं बिच–बिच जाएं अनार
गुनन की आगरीं री कालका रखे संत बिलमाय
काहे की भटिया बनी काहे के चढ़े है करहाव, गुनन .....
मटिया की भटिया बनी री कालका तामें के चढ़ेहै करहाव, गुनन.
खदर बदर महुआ चुरें तो टपकत रस की बूंद, गुनन .....
काहे की लोभिन कालका काहे को लोभी कलार, गुनन ....
मद की लोभिन कालका तो रस को लोभी कलार, गुनन....

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल 'कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* (4 स्वर)

'पीलू" पर आधारित

स्थाई :–

नि़ – नि़ नि़	स – ग रे	नि़ – – –	ग – – –
आ ऽ म घ	ने ऽ म हु	आ ऽ ऽ घ	नें ऽ ऽ ऽ
ग ग रे स	स ग रे स	नि़ – – रे	स – नि़ नि़
बि च बि च	घ ने हैं अ	ना ऽ र गु	न न की ऽ
– नि़ – स	ग – – –	ग – – रे	– – स –
ऽ आ ऽ ग	री ऽ ऽ ऽ	री ऽ ऽ भ	गो ऽ ल न
स ग रे नि़	स ग रे स	स – – –	
र खे ऽ सं	ऽ त बि ल	मा ऽ ऽ य	

शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'बरूआ' (यज्ञोपवीत)

गंगा जमुन जी के अन्तर ठांडे बरूआ पुकारे हो
मांगे मोरी सिर की पगड़िया माथे केरो चंदन हो
भीगे मोरी अंग अंगोछी छतिया केरो चंदन हो
जिन्हें भिखिया की साध पैदल चल आये हो
भीख दो माई असीस देव हम बरूआ ब्राह्मन हो
एही भिखिया के कारन हम चले बनारस हो।

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल– 'दीपचन्दी' *(विलम्बित लय)* 'राग पहाड़ी पर आधारित'

[स]ध़ – ध़	सा – सा –	[ग]रे रे –	ग – ग –
गं ऽ ऽ	गा ऽ ज ऽ	मु न ऽ	जी ऽ के ऽ
[म]रे रे –	रे – सा –	– – सा	[रे]स [रे]ग ग ग
अं ऽ ऽ	त ऽ र ऽ	ऽ ऽ ठा	ऽ डे ऽ ऽ
ग – –	रे – सा –	सा – –	ग – – –
ब रु ऽ	आ ऽ पु ऽ	का ऽ ऽ	रे ऽ ऽ ऽ
रे – –	– – – –	– – –	– – – –
हो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

सन्दर्भ – डा0 आशा खरे, 'बुन्देलखण्ड एवं ब्रज के लोकगीत' एक तुलनात्मक अध्ययन (शोध प्रबन्ध) के पृ0 72 से उद्धृत ।

'चूड़ा करण' *(मुण्डन)*

झालर जबई मुड़ाय हौं, जब आजुल घरं होयं, झालर मोरी पाहुनी
झालर जौ को है खेत, झालर मोरी पाहुनी
जे झालर के कारने मैंने सहे है कष्ट अनेक
जे झालर के कारने तजे है अम्मा इमलिया बेर
जे झालर के कारने मैंने सहे हैं बोल कुबोल
झालर मोरी पाहुनी।

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल— 'दीपचन्दी' *(विलम्बित लय)* स रे ग म प (5 स्वर)

स्थाई :—

म – –	म – म –	प म –	म प प –
झा ऽ ऽ	ल ऽ र ऽ	ज ब ऽ	ई ऽ मु ऽ
प म –	म – रे रे	रे स –	ग – ग –
ड़ा ऽ ऽ	ऽ ऽ य ऽ	हों ऽ ऽ	ज ऽ ब ऽ
ग रे –	रे स स –	स रे –	ग – ग –
जो ऽ ऽ	रा ऽ आ ऽ	जु ल ऽ	घ ऽ र ऽ
रे – –	रे – स –	स रे –	ग – ग –
हों ऽ ऽ	य ऽ झा ऽ	ल र ऽ	मो ऽ री ऽ
रे – –	स – स –	स – –	ग – ग –
पा ऽ ऽ	हु ऽ ऽ ऽ	नी ऽ ऽ	ज ऽ ब ऽ

— *उपरोक्त स्वरों में ही विभिन्न व्यक्तियों के नाम ले कर गीत गाना है।*

अन्तरा :—

स – –	स – स –	रे स –	रे ग म म
झा ऽ ऽ	ल ऽ र ऽ	जौं ऽ ऽ	को ऽ ऽ ऽ
ग – –	रे – स –	स रे –	रे ग ग –
खे ऽ ऽ	त ऽ झा ऽ	ल र ऽ	मो ऽ री ऽ
रे – –	सरे स स –	स – –	– – – –
पा ऽ ऽ	हुऽ ऽ ऽ ऽ	नी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
ध़ सा –	स – – –	रे स –	रे ग म –
जे ऽ ऽ	झा ऽ ऽ ऽ	ल र ऽ	के ऽ ऽ ऽ
ग – –	– – रे स	रे स –	रे ग ग –
का ऽ ऽ	ऽ ऽ र ऽ	ने ऽ ऽ	मैं ऽ ने ऽ
स रे –	रे – रे स	रे ग –	ग – ग –
स ऽ ऽ	हे ऽ हैं ऽ	क ऽ ऽ	ष्ट ऽ अ ऽ
रे स –	स – स –	स रे –	ग – ग –
ने ऽ ऽ	क ऽ झा ऽ	ल र ऽ	मो ऽ री ऽ
रे – –	स रे से –	स – –	
पा ऽ ऽ	ऽ ऽ हु ऽ	नी ऽ ऽ	

साभार – डॉ० आशा खरे, खैरागढ़ (म०प्र०)

'फाग'

जरुआ तोपे गाज गिरत नइयां
बरुआ तोपे गाज गिरत नइयां

1. जरुआ की खाट मैने पौर में डारी
   टूटो बड़ैरो दबत नइयां
2. जरुआ की खाट मैने चौरे में डारी
   आओ डकूरो उड़त नइयां
3. जरुआ की खाट मैने बामीं पै डारी
   बामीं को करिया डसत नइयां
4. जरुआ की खाट मैने बनई में डारी
   बनऊ को बिघना फारत नइयां

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल– 'दादरा' 'तिलक कामोद की झलक'

स्थाई :–

			– नी स
			ऽ ज रु
रे – सनी	– स –	रे – –	स – रे
आ ऽ तोऽ	ऽ पे ऽ	गा ऽ ऽ	ज ऽ प
नी स –	स – –	स – –	– नी स
र त ऽ	न इ ऽ	यां ऽ ऽ	ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

नी – नी	– नी –	स – –	नी – स
ज रु आ	ऽ की ऽ	खा ऽ ट	मैं ऽ ने
रे – –	रे – सरे	नी – –	स – –
पौ ऽ र	ऽ मैं ऽऽ	डा ऽ ऽ	री ऽ ऽ
म – –	म – म	म – म	– मप –
टू ऽ ऽ	टो ऽ ब	ड़े ऽ रो	ऽ द ऽ
ग रेस –	रे गरे रे	गरे स –	– नी स
ब तऽ ऽ	न इऽ ऽ	याऽ ऽ ऽ	ऽ ज रु
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'कार्तिक का गीत'

आ जांऊगी बड़े भोरा दहिया लैके
आ जाऊंगी बड़े भोरा हो मां

1. कोरी मटकिया मे दहिया जमो है–2
   पानी ना डारो एक बूंदा दहिया लैके, आ जाऊंगी
2. ना मानो मटकी धर राखो
   और गउअन को मोल, दहिया लैकें.... "
3. ना मानों इंड़री धर राखो
   मोतिन जड़ी है किनार, दहिया लैकें.... "

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' (ठेका दुगुन में) 'पीलू छाया'

स्थाई :–

			ग
			आ
– ग ग	ग – –	ग रे –	स – स
ऽ जा ऊं	गी ऽ ऽ	ब ड़े ऽ	भो ऽ रा
– रेम –	ग – रे	स – –	– – ग
ऽ द ऽ	(म)हि ऽ या	ले के ऽ	(रे)ऽ ऽ आ
– ग ग	(रे)ग – ग	स रे –	ग – ग
ऽ जा ऊं	गी ऽ ऽ	ब ड़े ऽ	भो ऽ रा
रेस रे –	स – –	– – –	– –, ग
हो ऽ ऽ	मां ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ, आ
X	O	X	O

अन्तरा :–

– – प	– प प	प प प	– धप (म)
ऽ ऽ को	ऽ री म	ट कि या	ऽ में ऽ
– म –	म – म	म – –	पग पगग
ऽ द हि	या ऽ ज	मो ऽ ऽ	है ऽ ऽ
– – ग	– ग ग	ग – –	ग रे –
ऽ ऽ पा	ऽ नी न	डा रो ऽ	ए क ऽ
स – स	– रेम –	ग – रे	स – –
बूं ऽ दा	ऽ द ऽ	हि ऽ या	लै के ऽ
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जायंगे ।

'बनरा'

मोहे लगै मतवारौ री बनरा रघुवंसी

1. मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, भाल तिलक द्विज सारौ री बनरा......
2. भौंह कमान नैन रतनारे, सोहत कजरा कारौ री ''
3. हीरन हार हिय में रुरकें, रुच–रुच सखिन समारौ री ''
4. कटि परिकर धनुबान कंधन पै, सोहत कमर दुधारौ री ''
5. मृदु मुस्कान नैन चंचल दोउ, चाल चलै मतवारौ री बनरा रघुवंसी

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' 'मध्य लय'

ध़ नि़ स रे ग म

(बिलावल के करीब है)

स्थाई :–

– – ग	रे ग ग	म – –	ग ग रेस
ऽ ऽ मो	ऽ हे ल	गै ऽ ऽ	म त ऽऽ
– – ग	रे ग –	म – –	ग – रेस
ऽ ऽ वा	ऽ रो ऽ	री ऽ ऽ	ब न ऽऽ
नि़ स –	स रे –	नि़ – –	स – –
रा ऽ ऽ	र घु ऽ	ब न ऽ	सी ऽ ऽ

अन्तरा :–

– – नि़	स नि़ध़ नि़	स – रेस	ग ग –
ऽ ऽ मो	ऽ रऽ मु	कु ट ऽऽ	म क ऽ
– – म	– ग रे	स – –	– – –
ऽ ऽ रा	ऽ कृ त	कुं ऽ ऽ	ड ल ऽ
– – ग	– ग म	रे ग –	स स –
ऽ ऽ भा	ऽ ल ति	ल क ऽ	द्वि ज ऽ
– – ग	रे ग –	म – –	ग – रेस
ऽ ऽ सा	ऽ रो ऽ	री ऽ ऽ	ब न ऽऽ
नि़ स –	स रे –	नि़ – –	स – –
रा ऽ ऽ	र घु ऽ	ब न ऽ	सी ऽ ऽ
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार ।

'फाग'

जमुना तेरी ऊंची रे करार कि अ र र र
उचक गेंद जमना में गिरी

1. पहली गेंद बागन में गिरी सखि–2
हो लागी लागी–रे–2 मालिनिया के चोट के अररररर
उचक गेंद जमना में गिरी

2. दूजी गेंद तालन में गिरी सखि–2
लागी लागी रे धोबनिया के चोट.... "

3. तीजी गेंद कुअंलन में गिरी सखि–2
लागी लागी रे ढिमरिया के चोट.... "

4. चौथी गेंद महलन में गिरी सखि–2
लागी–लागी गोरी धनिया के चोट.... "

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* 'पीलू का आभास'

स्थाई :–

			नी स
			ज मु
ग – ग ग	रे ग रे ग	सरे गरे स नि	निस सरे रे रे
ना ऽ ते री	ऊं ची रे क	राऽ ऽऽ र कि	अ र र र
प रे रे म	ग रे स रे	नी स ऽ स	सं – नी स
उ च क गें	ऽ द ज मु	ना ऽ में गि	री ऽ, ज मु

अन्तरा :–

नी – नी नी	– नी नी स	स रे रे ऽ	रे – – स
प ह लीं गें	ऽ द बा ऽ	ग न में गि	री ऽ स खि
ग – ग रे	– ग स रे	नी स – स	स –, नी स
पह ली गें	ऽ द बा ऽ	ग न में गि	री ऽ, ला गी
ग ग ग ग	रे ग रे ग	रारे गरे रा नि	निरा रारे रे रे
ला गी रे मां	लि नि या के	चो ऽ ट कि	अ र र र
प रे रे म	ग रे स रे	नी स ऽ स	स –, नी स
उ च क गें	ऽ द ज मु	ना ऽ में गि	री ऽ, ज मु

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'बिलवारी'

सूरज की मुरक गई कोर, राम जू के रथ बिलमाए काऊ साधू ने

1. अरे हाँ मोरे रसिया काहे के रथला बने
   अरे काहे की लागी डोर, राम जू....
2. अरे हाँ मोरे रसिया चन्दन के रथला बने
   अरे रेसम लागी डोर, राम जू....
3. अरे हाँ मोरे रसिया को जो रथला बैठियो
   अरे को जो हांकन हार, राम जू....
4. अरे हाँ मोरे रसिया रामचन्द्र रथ बैठियो
   अरे लछमन हांकन हार, राम जू.....

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा' 'पीलू' की छाया

स्थाई :–

			नी स
			सू ऽ
ग – ग ग	रे ग रे ग	सरे गरे स नी	नीस स रे रे
र ज की मु	र क ग ई	कोऽ ऽऽ र रा	ऽऽ म जू के
– प़रे रे रेम	ग रे स रे	नि़ स – स	स –,
ऽ रथ बि ल	मा ए का ऊ	सा ऽ धू ऽ	ने ऽ,
X	O	X	O

अन्तरा :–

			ग रे
			अ रे
सं – नी नी	नीस स रे रे	– प़रे रे रेम	ग रे स रे
हॉ ऽ मो रे	र सि या ऽ	ऽ का ऽ हे	कं ऽ र थ
– नि़ स –	स – नी़ स	ग – ग ग	रे ग रे ग
ऽ ला ऽ ब	ने ऽ अ रे	का ऽ हे की	ला ऽ गी ऽ
सरे गरे स नी	नीस स रे रे	– प़रे रे रेम	ग रे स रे
डोऽ ऽऽ र रा	ऽ म जी के	ऽ रथ बि ल	मा ए का ऊ
नि़ स – स	स –		
सा ऽ धू ऽ	ने ऽ,	ला ऽ गी ऽ	
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'चढ़ाव गीत'

अरी एरी जनक भवन मे मैं देख आइ सिया के चढ़ाय
अरी एरी माथे बीच दावनी सोहे झूमर को लटकाव
अरी एरी कानन करन फूल मन मोहे सांकर को लटकाव
अरी एरी गरदन बीच बिचौली सोहे हरवा को लटकाव
अरी एरी कम्मर में करधनिया सोहे गुच्छा को लटकाव
अरी एरी बाहन बरां बदुल्ला सोहे फूलन को लटकाव
अरी एरी घूम घुमारो जड़कल सोहे लहंगा भलो बनाओ
अरी एरी पांव बेद पैजनियां सोहे पायल को लटकाव
अरी एरी काम छोड़ के मेरी गुइयां देखन को चली आई।

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* 'झिंझोटी की झलक'

स्थाई :–

			स स
			अ री
सरे रेप म– म–	गग गग रेग रे–	रेग सरे रेप म–	ग– गरे रे रे
एऽ ऽऽ रीऽ ऽऽ	जन कभ वन मेऽ	मैंऽ देख आऽ ईऽ	सि या के च
स धा़, स स			
ढ़ा ए, अ री			

शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'बनरी' (बन्नी)

बेटी रूपयों की परखन हार असरफीमोल करें
आजुल ऐसो घर ढुढ़ियो जाय जहाँ–बेटी राज करें
जहाँ बम्मन तपत रसोई, कहर दोऊ नीर भरें
बेटी झूलों की झूलनहार, कचुल्लन दूध पियें
बेटी छज्जे की पौढ़नहार, झरोखन बाग दिखें।

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'दीपचन्दी' (मध्यलय) ध स रे ग म (5 स्वर)

स्थाई :– 'पहाड़ी राग पर आधारित'

म – म –	[म]रे ग –	सा – सा रे	म म –
बे ऽ टी ऽ	रु प ऽ	यों ऽ की ऽ	प र ऽ
[स]रे – रे –	ध – –	सा – सा –	सा रे ग
ख़ ऽ न ऽ	हा ऽ ऽ	र ऽ अ ऽ	स र ऽ
रे – रे –	ग ग –	रे – रे स	स – –
फी ऽ ऽ ऽ	मो ऽ ऽ	ल ऽ ऽ क	रे ऽ ऽ
3	X	2	O

साभार – डॉ0 आशा खरे, छतरपुर (म0प्र0)

'सुहाग'

हंसत खेलत आजुल घर आई
सों देओ मेरी आजी
सुहाग को बीरा,
सुहाग को बीरा जैसें
मानिक हीरा ! (1)

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल— 'दीपचन्दी'

ध़ नि़ स रे ग म.प (7 स्वर)
'तिलककामोद पर आधारित'

स्थाई :—

नि़ स नि़	ध़ – नि़ –	स रे –	नि़ – रे –
हं स ऽ	त ऽ खे ऽ	ल त ऽ	आ ऽ ऽ ऽ,
रे म ग	रे – नि़ –	सा – –	स – नि स
जु ल ऽ	घ ऽ र ऽ	आ ऽ ऽ	ई ऽ सों ऽ
रे ग –	रे – ग –	म प –	प – म –
दे ओ ऽ	मे ऽ री ऽ	आ ऽ ऽ	जी ऽ सु ऽ
ग रे –	म – ग –	रे स –	स – ग रे
हा ऽ ऽ	ग ऽ को ऽ	बी ऽ ऽ	रा ऽ ऽ सु
नि़ स नि़	ध़ – नि़ –	स रे –	नि़ – रे –
हा ऽ ऽ	ग ऽ को –	बी रा ऽ	जैं ऽ सें ऽ
ग म ग	– – नि़ –	स – –	स – – –
मा ऽ ऽ	नि ऽ क ऽ	ही ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ
X	2	O	3

(1) मामुलिया, अंक 22–24 'बुन्देल लोक संगीत' – महेश कुमार मिश्र, पृ0 106–107 से उद्धृत

'राछरो' (ननद भौजाई का)

आउत देखो बारी ननदी को डोला
डोला अरी भौजी ने हन लए किबार
सुनियो ननद भौजाई को राछरो

1. माई बोली बहु से निरासन धिरिया
धिरिया अरी भौजी ने हन लए किवार, सुनियो ननद....
2. खोलो री खोलो भौजी बजुर किवरियां
किवरियां अरी माई भेंट घर जाऊं, सुनियो .....
3. माई तो तुम्हरी बिन्नू नैहर खों गई है
गईं हैं अरी उतईं भेंट चलि जाओ, सुनियो .....।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल – 'दीपचन्दी'

(ग कोमल)
'पीलू की छाया'

स्थाई :–

प – –	ऩि – ऩि –	स स –	ग – ग –
आ ऽ ऽ	उ ऽ त ऽ	दे खो ऽ	बा ऽ री ऽ
रे स –	स ग ग रे	रे स –	स – ऩि –
न न ऽ	दी ऽ को ऽ	डो ऽ ऽ	ला ऽ ऽ ऽ
ऩि स ऩि	स ग ग ग	ग ग रे	स – (रे)ग रे
डो ऽ ऽ	ला ऽ अ री	भौ ऽ ऽ	जी ऽ ने ऽ
स रेग –	रे – स –	(स)ऩि – –	(स)ऩि – – –
ह नऽ ऽ	ल ए ऽ कि	बा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
– – ऩि	ऩि – सरे –	सऩि – सरे	सऩि – ऩि –
ऽ ऽ र	सु नि योऽ ऽ	न न ऽऽ	दऽ ऽ भौ ऽ
स स –	(स)रे – सऩि –	स – –	स – स –
जा ई ऽ	को ऽ ऽऽ ऽ	रा ऽ ऽ	छ ऽ रो ऽ
स – –	– – – –		
ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ		

अन्तरे इसी धुन में गाए जाएंगे ।

'दिलबारी *(चैत कटाई पर)*

(1)

खेती बालन को बड़ो है गुमान
अबेरे दिन, डूब गए छोड़त नइयां
अरे हॉ रे किसान भइया
सबके दियला जर गए रे–2
मोरे लागे हैं बजर किवार
अबेरे दिन, डूब गए छोड़त नइंया

(2)

दिन डूबे सें धरा दई लम्बी मांग, किसान भइया
बेरा तो भई है घर जाबे की
घालो--घालो धरम के दो–दो हाथ
कठोइरा ने पीर ना जानीं मोरे जियरा की

– *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल –'कहरवा'

प़ नि़ स रे ग म (6 स्वर)

राग – 'पीलू'

स्थाई :–

			नि़ – स –
			खे ऽ ती ऽ
रे ग रे –	ग रे – स –	स – रे ग	रे – स –
बा ऽ ऽ ऽ	ल न को ऽ	ब ऽ ड़ो ऽ	है ऽ गु ऽ
स रे रे –	स नि़ नि़ –	नि़ स स रे	रे – रे –
मा ऽ ऽ ऽ	न ऽ अ ऽ	बे ऽ रे अ	दि ऽ न ऽ
– – प़ रे	– रे – म	ग – रे –	स – – –
ऽ ऽ डू ऽ	ऽ ब ऽ ग	ये ऽ ऽ ऽ	छो ऽ ऽ ऽ
स नि़ – – स	स – – –	स – – –	
ऽ ड़ त ऽ	नैं ऽ ऽ ऽ	या ऽ ऽ ऽ	
X	O	X	O

अन्तरा :–

रे – स –	नि़ – नि़ –	नि़ स – रे	म – ग रे
हाँ ऽ ऽ ऽ	रे ऽ कि ऽ	सा ऽ ऽ न	अ ऽ रे ऽ
– – प़ रे	– रे – म	ग॒ – रे –	रे – रे –
ऽ ऽ स ब	ऽ के ऽ ऽ	दि ऽ य ऽ	भ इ या ऽ
(स)नि़ – – स	स – – –	स – – –	स – – –
ज ऽ र ऽ	ग ऽ ए ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ
रे ग॒ रे –	रे – स –	स – रे ग॒	नि़ – स –
ला ऽ ऽ ऽ	ग ऽ है ऽ	ब ऽ जु ऽ	मो ऽ रे ऽ
स रे रे –	स नि़ नि़ –	नि़ स स रे	रे – स –
वा ऽ ऽ ऽ	र ऽ अ ऽ	बे ऽ रे ऽ	र ऽ कि ऽ
– – प़ रे	– रे – म	ग – रे –	रे – रे –
ऽ ऽ डू ऽ	ऽ ब ग ऽ	ये ऽ ऽ ऽ	दि ऽ न ऽ
(स)नि़ – – स	स स – –	स – – –	स – – –
ड ऽ ता ऽ	न ईं ऽ ऽ	या ऽ ऽ ऽ	छो ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

प्रत्येक पद इसी प्रकार गाये जायेंगे ।

'दिवारी–गीत'

अपने के अरे गैल में के भए तन गॉव के भीर रे,
एऽ तुलसीदास चन्दन घिसें और तिलक देत रघुवीर रे ।

बाजत आवै अरे बांसुरी के ढमकत आवै ढोल रे,
और नाचत आवै ठाठिया कै चढ़त बिड़ारै गाय रे ।

गाड़ी चलै अरे चर्खालै से प्यारे अरे चल रए सैंल सैं बैल रे,
नाव मरद के जब चलें घरै होवै लच्छमी नार रे ।

अरे कैकेयी सी माता मरै और सरमन कैसी नार रे,
और बाली से भइया मरै और कैकेई सी नार रे ।

अरे अहीर को प्यारे अरे भैंसिया कुरमी को प्यारो बैल रे,
और ठाकुर खों प्यारे अरे बेड़नी नचवा रए पौर के दौर रे ।

अरे बिन्द्रावन बनसी बजी भइया मोह लए तीनई लोक रे,
बे तीनो मोहे नहीं, सो रहे कौन सी ओट में ।

ऊंचे भटुआ अरे दम दम प्यारे बई ककड़ौली गैल रे,
और भौजी के बिछुआ अरे पांच नसों पांव धरे ठन्नाय रे ।

मौड़ी कोई अरे दो हतीं प्यारे दोई मिल हाटैं जाएंरे,
गोरी खों सोहे काजला सांमलिया लौंजी पान रे ।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

प नि सं रें गं (5 स्वर)
(तार सप्तक में गाते हैं)

प प प –	नि – नि नि	नि – – सं	निसं सं – –	गं – रेंसं नी–
अ प ने ऽ	के ऽ अ रे	गै ऽ ऽ ल	मेंऽ ऽऽ ऽ ऽ	कै ऽ ऽ ऽ
सं रें सं प	नी सं रेंऽ संरें	नीसं – – सं	सं नी – प	
भ ए त न	गां व केऽ ऽऽ	भीऽ ऽ ऽ र	रे ऽ ऽ ऽ	
प प प प	– प नी –	नी नी – सं	नि सं रे गं	गं ग
एऽऽ तु ल सी दा	ऽ स चं द	द न ऽ घि	सं ऽ ऽ ऽ	औ र
गं गं गं गं	– गं गं गं	रेंसं नी –सं –	– रें संरें –	नी – – प
ति ल क दे	ऽ त र घु	ऽ ऽ वी ऽ	ऽ र रे ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

नोट :– उपर्युक्त बिना ताल के गाने के बाद लय तेज करके 'वाद्यों पर केवल रिदम बजाते है । पुनः उसके बाद दूसरा 'पद' । यही क्रम चलता रहता है ।

'दिवारी' *(पद)*

ए, हिंना 'दिवारी दो दिनां
काए, मथरा में बारऊ मास रे
अरे, चलो दिबारी देखिएं
देखिए सिरि क्रैस्न चरायें गायं रे।

— संकलन

स्वर–लिपि

लय – विलम्बित — ध सं रें गं (तार सप्तक)

- - - - सें रें गं - ए ऽ ऽ ऽ	रें रें - रें सं रें गं - हि ना ऽ दि वा ऽ री ऽ	रें - रें - रें स सं गं दो ऽ दिना ऽ ऽ ऽ ऽ	गं - ग - रें - रें - का ऽ ए ऽ म ऽ थ ऽ
रें - गं - गं रें सं रें रा ऽ में ऽ बा ऽ ऽ ऽ	सं - सं - सं ध, ध सं र ऽ ऊ ऽ ऽ ऽ, मा ऽ	- रें रें सं सं रें गं - ऽ ऽ स ऽ रे ऽ ऽ ऽ	गं - गं - रें - रें - अ ऽ रे ऽ च ऽ लो ऽ
सं रें गं - रें - सं - ऽ ऽ दि ऽ बा ऽ ऽ ऽ	सं - रें - सं रें सं - री ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ दे ऽ	- - सं - सं ध - - ऽ ऽ खि एं ऽ ऽ ऽ ऽ	- - ध स - - सं रें ऽ ऽ दे ऽ ऽ ऽ खि ऽ
सं रें गं - गं - गं - एं ऽ ऽ ऽ सि ऽ रि ऽ	रें - - - रें - गं - क्रै ऽ ऽ ऽ स्न ऽ च ऽ	रें - सं - सं - रें - रा ऽ ऽ ऽ यें ऽ ऽ ऽ	सं रें स - - - स - ऽ ऽ गा ऽ ऽ ऽ यें ऽ
स ध ऽ ऽ, रे ऽ ऽ ऽ,			

स्वर लिपि – महेश कुमार मिश्र 'मधुकर', पृ0 5, मामुलिया अंक 14,
सम्पादक – नर्मदा प्रसाद गुप्त

'कार्तिक' गीत'

भई न बिरज की मोर सखीरी मैं तो भई न बिरज की मोर
काहां रहती सो काहा खाती, काहां करती किलोल, सखी...
बन में रहती सों बन फल खाती, सों बनई में करती किलोल,
उड़ उड़ पंख गिरें धरती पे सो बीनत नगरी के लोग
इन पंखन के मुकुट बनाए, सो बांधत नंद किसोर,

— संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा *(ठेका दुगुन में)*

प़ नी़ स रे ग म (6 स्वर)
'राग तिलक कामोद की झलक'

स्थाई :–

प़ नी़ नी़ स	रेग मग रे– स–	सरे नी स रे	गम गरे स नी
भ ई न बि	रऽ जऽ कीऽ ऽऽ	मोऽ ऽ र स	खीऽ रीऽ मैं तो
प़ नी़ नी़ स	रेग मग रे स	स – – –	
भ ई न बि	रऽ जऽ की ऽ	मो ऽ ऽ र	

अन्तरा :–

स रे गम गरे	स रे स –	स रे गम गरे	स रे स –
का ऽ हाऽ ऽऽ	र ह ती सो	का ऽ हाऽ ऽऽ	खा ऽ ती सों
स रे गम गरे	स रे स स	सरे स नी़ रे	गम गरे स नी
का ऽ हाऽ ऽऽ	क र ती कि	लोऽ ऽ ल स	खीऽ रीऽ मैं तो
प़ नी़ नी़ स	रेग मग रे स	स – – –	
भ ई न बि	रऽ जऽ की ऽ	मो ऽ ऽ र	

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'रैया' *(सावन में गाते हैं)*

रतन कुंआरी मोखें संकरे अरे रैया अलबेली भरे पानी हां
गगरी उतारी कुंअल पे अरे रैया कुड़री बिरछ की रे डार
माय सें आय गई पंछी दो जने अरे रैया नीली सी घोड़ी असवार
घोड़ी जो बांधो करीले से अरे रैया गगरी तो देओ उठवाय
गगरी तो गोरी धना जब उठे अरे रैया चलन कहो री मोरे साथ
रातैं बसो रे मोरी पौर में अरे रैया भोरहूं चलौं रे तोरे साथ
भोर भए रे खग बोलियो अरे रैया चलबे की हो रई तैयार
लहर–लहर डोला सज लए अरे रैया पचरंग सजे हैं कहार
डोली में लगी ऐन आरसी अरे रैया गलियों में चमकत जाएं
डोला उतारें बगीचों में अरे रैया फुलवन भर गई गोद
डोला उतारे हैं पौर में अरे रैया ब्याही रे ठूके ठूके जायं
कै तो लै आई पिया पाउनी अरे रैया कै ल्याये जनम को सौत
नै तो लै आए धना पाउनी अरे रैया नै ल्याये जनम को सौत
तोरे जो पीसे नौने पीसनैं अरे रैया पौर खिलाबें नंदलाल
बरै जरैं रे तोरे पीसनैं अरे रैया ठांड़े पटक देऊ नंदलाल
ओढ़ पिछौरा धना निंग चली अरे रैया बनिया की दुकान बताव
हरे–हरे रे बनिया सुन लियो अरे रैया बेसन भरो बिस देओ
ओढ़ पिछौरा धना निंग चली अरे रैया सपने में कढ़ गए पिरान
धंधक – धंधक धना जर गई अरे रैया ठांडे मुरख पछताएं।
रतन कुंआरी मोखे संकरे, अरे रैया अलबेली भरे पानी हां ।

– संकलन

स्वर–लिपि

(4 स्वर) – ध स रे ग (सब शुद्ध)

ताल–'कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

स्थाई :–

. ध़ ध़	– स – रे	ग – ग –	रे स रे –
ऽ ऽ र त	ऽ न ऽ कुं	आ ऽ री ऽ	गो ऽ खे ऽ
– – रे ग	रे ग रे स	स – – –	– – – –
ऽ ऽ सां ऽ	ऽ ऽ क ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
ध़ – ध़ स	स रे रे –	– – – –	स – स रे
ऽ ऽ अ रे	रै ऽ या ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ अ ल
रे ग ग रे	रे ग रे स	ध़ स स रे	रे – – –
बे ऽ ली ऽ	भ ऽ रे ऽ	पा ऽ ऽ ऽ	नी ऽ ऽ ऽ ऽ
हाँ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ		

शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'सैरा गीत'

1. साहुन सुहाने रे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
साहुन सुहाने अरे मुरली बजी हो
भादौं सुहानी मोर
तिरिया सुहावन अरे जबहीं लगे
अरे खेलें पौर के दौर

2. असढ़ा तो उतरे रे ऽ ऽ ऽ ऽ
असढ़ा तो उतरे अरे सहुना लगे हो
दूबा रही हरयाये
बीरन लिबौआ अरे आए हैं
मैने चुनरी धरी है रंगाय–2

3. बैठी तो रइयो रे ऽ ऽ ऽ
बैठी तो रइयो अरे गोरी सतखड़ हो ऽ ऽ ऽ
खइयो डबों के पान
जब हम आवें अरे रण जूझ कें
तोरी मोतिन भराएहौं मांग

4. हरवारें जावैं रे ऽ ऽ ऽ
चरवारें जावैं, अरे गोरी सतखड़ हो ऽ ऽ ऽ
अरे पानों पे परै री तुसार
तोरे अकेले अरे जियरा आवे ना
कि मोहे सूनो लगे सन्सार

5. काए कों गईं तीं रे ऽ ऽ ऽ
काए कों गईं तीं अरे, बेला बाग में हो ऽ ऽ ऽ
और काए को टोरे अनार
काए को टोरी अरे चम्पा कली
तुमे डस लेबे कारे नाग

— *संकलन*

स्वर–लिपि

ध़ स रे ग म (5 स्वर) सब शुद्ध

ताल–'दादरा'

स्थाई :–

ध़ – ध़	स स –	स – –	रे म –
सा ऽ हु	न सु ऽ	हा ऽ ऽ	ने ऽ ऽ
म – –	– – –	– – –	प म ग
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ग – ग	रे स –	रे – ग	रे स –
सा ऽ हु	न सु ऽ	हा ऽ ऽ	ने ऽ ऽ
रे रे ग	रे स –	रे – ग	रे स –
अ रे ऽ	मु र ऽ	ली ऽ ऽ	ब जी ऽ
स – –	– – –	– – –	– – –
हो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ग – ग	– ग रे	रे ग –	रे स –
भा ऽ दौ	ऽ सु ऽ	हा ऽ ऽ	नी ऽ ऽ
रे – – –	– – –	– – –	प म ग
मो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र
ध़ – ध़	स स –	रे – ग	रे स –
ति रि या	ऽ सु ऽ	हा ऽ ऽ	नी ऽ ऽ
रे रे ग	रे स –	स – –	स स –
अ रे ऽ	ज ब ह	ई ऽ ऽ	ल गे ऽ
– – –	म म –	म ग रे	– रे –
ऽ ऽ ऽ	अ रे ऽ	खे ऽ ले	ऽ पौ ऽ
ग – ग	रे स –	स – –	– – स
ऽ ऽ र	के ऽ ऽ	दौ ऽ ऽ	ऽ ऽ र
X	O	X	O

शेष पद इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'पाई' (सैरा के बाद पाई गाई जाती है)

सांवरे पिया तोरे बोलों में मरी जाऊं रे

1. जब नरबदा फरबन हों आई – 2
   लाहंगा भीजें हिलोरों में मरी जाऊंरे ।
2. जब नरबदा पिडंरन हों आई – 2
   चुनरी भीजे हिलोरों में मरी जाऊं रे ।
3. जब नरबदा करहन हों आई – 2
   करधन भीजे हिलोरों में मरी जाऊं रे ।
4. जब नरबदा छतियन हों आई
   चोली भीजें हिलोरों मे मरी जाऊं रे ।
5. जब नरबदा गलुअन हौं आई
   घुंघटा भीजे हिलोरों में मरी जाऊं रे ।

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' *(द्रुत लय)* मि़ स रे ग

स्थाई :–

नि़ – नि़	नि़ – स	ग – –	ग रे स
सां ऽ व	रे ऽ पि	या ऽ ऽ	तो रे ऽ
रे – स	सारे – स	सरे – स	नि नि –
बो ऽ ऽ	लों ऽ ऽ	में ऽ ऽ	म री ऽ
स – –	स – –	– – –	– – –
जा ऊं ऽ	रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

नि़ – नि़	– स –	ग ग –	ग रे –
ज ऽ ब	ऽ न ऽ	र ब ऽ	दा ऽ ऽ
स रे –	रे – स	स – –	स – –
फ र हौं	हो ऽ ऽ	आ ऽ ऽ	ई ऽ ऽ
रेग – –	रेग – –	रेग – –	रेग – रे
ल हं ऽ	गा ऽ ऽ	भी ऽ ऽ	जे ऽ हि
सरे – स	सरे – स	सरे – स	नि नि –
लो ऽ ऽ	रों ऽ ऽ	में ऽ ऽ	मं री ऽ
स – –	स – – –	– – –	– – –
जा ऊं ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'स्वांग'

बे घर सूने डरे–2 जिन घर में राम नाम नइयां–2

1. राम नाम सब कोऊ कहे दसरथ कहे ना कोय
   एक बार दसरथ कहे कोटि यश फल होय, बे घर
2. राम नाम अनमोल है बिन दामों मिल जाए–2
   तुलसी ऐसे नाम खों गाहक नै ठहराय, बे घर....
3. राम नाम की कोठरी और चन्दन जड़े किवार
   तारे लागे प्रेम के–2 और खोलो कृष्ण मुरार, बे घर..
4. चित्रकूट के घाट पै भई सन्तन की भीर
   अरे तुलसीदास चन्दन घिसें–2 और तिलक देत रघवीर, बे घर.......

– संकलन

स्वर–लिपि

ताल–'कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* (7 स्वर)
'तिलककामोद की झलक'

स्थाई :–

– –, ^सम ^सम–	^सम – ^सम –म	म म म मग	रेस – रेग –रे
ऽ ऽ, बे घर	सू ऽ ने ऽड	रे ऽ बे घर	सूऽ ऽ नेऽ ऽड
स – नि़ –	रे– –रे –रे म–	रे – सनि़ –स	रेग –रे स –
रे ऽ ऽ ऽ	जिन ऽघ ऽर मेंऽ	रा म ना म	नई ऽऽ या ऽ

अन्तरा :–

नि़– नि़नि़ –नि़ नीनी	स स स –	रे– रेस सरे –स	स – – –
राऽ मना ऽम सब	को ईक हे ऽ	दस रथ कहे ऽन	को ऽ ऽ ऊ
रे– रेम –म मम	मप –प प– पम	प – धप –म मम	म ग, ग रे
एऽ कबा ऽर दस	रथ ऽक हेऽ ऽऽ	कोऽ टिज ऽज्ञ फल	हो य, बे घर

शेष पद इसी धुन में गाए जाएंगे ।

'ढिमरियाई'

ढीमर कक्का ने डार दओ जार
बींद गई जल मछरी
जल मछरी रामा जल मछरी – 2

1. लइयो – लइयो तेल और प्याज
छौंक देओं जल मछरी

2. लइयो–लइयो रे फुलका चार
सूंत देओं जल–मछरी

3. मौड़ी मौड़न के खुल गए भाग
बींद गई जल मछरी

– *संकलन*

स्वर–लिपि

ताल–'दादरा' *(ठेका दुगुन में)*

नी स रे ग म (5 स्वर)
'दोनों गंधार'

स्थाई :–

– नि स–	ग ग –	ग ग –	– ग –
ऽ ढी मर	क क्का ऽ	ने डा ऽ	ऽ र ऽ
ग रे –	रे – –	– रेस –	रे ग –
द ओ ऽ	जा ऽ ऽ	ऽ रबीं ऽ	ऽ द ऽ
ग रे –	रे रे –	रे रे –	रे – –
ग ई ऽ	ज ल ऽ	म छ ऽ	री ऽ ऽ
रे – –	म म –	म म –	म – म
ऽ ऽ ऽ	ज ल ऽ	म छ ऽ	री ऽ रा
– म –	ग ग –	ग ग –	रे – –
ऽ मा ऽ	ज ल ऽ	म छ ऽ	री ऽ ऽ

अन्तरे इसी धुन में गाए जाएंगे ।

'दिनरी' *(चैत कटाई पर)*

नगर अजोध्या की गैल में अरे एक महुआ रे दूजे आम

कौन तरैं मेले जोगीरा अरे कौन तरैं रे मनहार
अम्मा तरैं मेले जोगीरा अरे महुआ तरैं रे मनहार

काहा हो लए मेले जोगीरा अरे काहा हो लए रे मनहार
कखई लए मेले जोगीरा अरे सेंदुरा लए रे मनहार

— संकलन

स्वर–लिपि

'विलम्बित–लय' | नि़ स रे ग म (5 स्वर)

स [रे]ग [रे]स म	म – गरे,स [रे]ग	स स सरे,ग [रे]गस
न ग र अ	जो ऽ ध्या,ऽ की	गै ल मेंऽ अरे
स रे स नी़	स रेग [रे]स रे	स – – स
ए क म हु	आ ऽ दू जे	आ ऽ ऽ म

— अन्तरे की प्रत्येक पंक्ति इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

अचरी (झूलाकी)

मइया झूला अखैबर पालना हो मां
अरे डरे है लौंग की डार री मइया

1. मइया काहे के पलना बने हो मां--2
अब काहे की लागी डोर–रे माई
पूरब झूला, पच्छिम झूला
उत्तर झूला, दक्खिन झूला
झूला होबे अ र र र, झूला होबे स र र र
झूला लौंग – – –

2. मइया चन्दन के पलना बने हो मां
अब रेसम लागी डोर–रे मइया

3. मइया को जो पलना झूलियो हो मां
अब को जो झुलावन हार रे मइया

4. देवी पलना झूलियो हो मां
अब–लंगुरा झुलावन हार रे मइया

5. सुमिर–सुमिर–जस गाइयें हो मां
अब नौहरें छुएं दोऊ पांव रे मइया
बारे पे हो जाओ दयाल रे मइया

– *संकलन*

स्वर – लिपि

'कहरवा–ताल' *(ठेका दुगुन में)* 5 स्वर– स रे ग म प (सब शुद्ध)

स्थाई :–

			स– स–
			मइ याऽ
स सरे ग– ग	रे – स स	– रे – स	सरे – –स –
झू लाऽ ऽऽ अ	खै ऽ ब र	ऽ पा ऽ ल	नाऽ ऽऽ ऽहो ऽऽ
स – म म	म – म म	– म गप ग	– ग – ग
मां – अ रे	ड रे हैं लौं	ऽ ग की ऽ	ऽ डा ऽ र
रे – स –स			
रे ऽ मई या			

अन्तरा :–

स रे रे ग	रे – रे स	– स– रे रेस	सरे रेम –स –
का ऽ हे ऽ	के ऽ प ल	ऽ नाऽ ऽऽ ऽब	नेऽ ऽऽ ऽहो ऽ
स – सम म	म – म म	म – गप ग	– ग – ग
मां – अ ब	का ऽ हे की	ला ऽ गी ऽ	ऽ डो ऽ र
रे – स– स	स सरे ग ग	ग गग रे रे	स सरे ग ग
रे ऽ मइ या	पू रब झू ला	प च्छम झूला	उ त्तर झू ला
ग गग रे रे	स सरे ग ग	ग गग रे रे	स सरे ग ग
द क्खन झू ला	झू लाऽ हो बे	अ रऽ र र	झू लाऽ हो बे
ग गग रे रे	म म – म	– म म प	मग ग – ग
स रऽ र र	झू ला ऽ लौं	ऽ ग की ऽ	ऽ डा ऽ र
ग – रे रे			
रे ऽ मई या			

– *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'भजन की अचरी'

लै गओ चीर मुरारी कदम तरैं लै गओ चीर मुरारी हो मां

1. हमरे चीर हमें तुम दै देओ, हम जल मांझ उघारी, कदम
2. तुमरे चीर तबईं हम दैहें, हो जाओ जल सैं न्यारी, कदम
3. जल सैं न्यारी ज्यों हम होहें, लोग हंसै दै तारी, कदम
4. कौन गाँव के पुरुष हंसत हैं, कौन गाँव की नारी, कदम
5. गोकुल के सब पुरुष हंसत है, बरसाने की नारी, कदम
6. लोग हंसत हैं उन्हें, हंसन देओं, हम हैं पुरुष तुम नारी, कदम

— संकलन

स्वर – लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

नी स रे ग म प (6 स्वर) (गंधार कोमल)

राग 'पीलू'

स्थाई :–

– ग – गग	ग – ग रे	स – स रेम	ग रे स नी
ऽ लै ऽ गओ	ची ऽ र मु	रा ऽ री कऽ	द म त रैं
– प – नी–	स – रे प	ग गरे स नी	स –
ऽ लै ऽ गओ	ची ऽ र मु	राऽ रीऽ हो ऽऽ	मां –

अन्तरा :–

– प – प	प – प प	म म – मम	म – म ग
ऽ ह म रे	ची ऽ र ह	ऽ में ऽ तुम	दै ऽ दे ओ
–ग– — ग ग	ग – ग रे	स – स रे	ग रे स नी
–हऽ मज –ल	मां ऽ झ उ	घा ऽ री क	द म त रैं
– प – नी–	स – रे प	ग– गरे स नी	स –
ऽ लै ऽ गओ	ची ऽ र मु	राऽ रीऽ हो ऽ	मां –

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे ।

'ईसुरी – फाग'

कढ़तन लग गओ मूंड दिरौंदा
ऐसो सिर को औंदा

1. कारीगरन ने ऐसो बनाओ
   धरो ना ऊंचो गौंदा

2. ऐसी नौनी रजऊ ठिनक गई
   नैनूं कैसो लोंदा

3. ईसुर तुमैं उठा ना पाओ
   उतै हतो सकरौंदा

– *संकलन*

स्वर – लिपि

राग 'पीलू'

'ताल – दादरा'

स्थाई :–

गग रे –	स नी –	– – प	प नी नी
क ढ़ ऽ	त न ऽ	ऽ ऽ ल	ग ग ओ
स रे ग	रे – स	स – –	स – –
मूं ऽ ऽ	ड़ ऽ दि	रौं ऽ ऽ	दा ऽ ऽ
– – प	– प प	– – प	म धप प
ऽ ऽ ऐ	ऽ सो ऽ	ऽ ऽ सि	र को ऽ
[म]ग – –	रे स –		
औं ऽ ऽ	दा ऽ ऽ		
X	O	X	O

अन्तरा :–

– – स	– ग म	प प –	[नी]प – –
ऽ ऽ का	ऽ री ग	र न ऽ	ने ऽ ऽ
– – ग	– म म	ग – रे	स – –
ऽ ऽ ऐ	ऽ सो ब	ना ऽ ऽ	ओ ऽ ऽ
– – प	– – प	प – –	म धप प
ऽ ऽ धा	रे ऽ न	ऊँ ऽ ऽ	चो ऽ ऽ
[म]ग – –	[ग]रे स –		
गौं ऽ ऽ	दा ऽ ऽ		
X	O	X	O

– *शेष अन्तरें इसी प्रकार ।*

'चौकड़िया—फाग'

उरझो जिन श्याम कही मानो उरझो जिन
फट जैहे चुनरिया जिन तानो, उरझो जिन

1. मैं बेटी वृषभान लला की
और काउ की जिन जानों, उरझो जिन
2. इतै राज हैं कंस राजा को
उतै बनों गोकुल थानो, उरझो जिन
3. उभरे कुल की रीत यही है
दूध दही माखन खानों, उरझों जिन

— *संकलन*

स्वर — लिपि

राग 'पीलू'

'ताल—दादरा'

स्थाई :—

नि़ स —
उ र ऽ
ग — गरे
म ऽ कऽ
ग रे स
उ र ऽ
प प —
फ ट ऽ
ध प —
या ऽ ऽ
ग रे स
उ र ऽ
O

ग — —
झो ऽ ऽ
रेस — —
ही ऽ ऽ
रे — —
झा ऽ ऽ
प — —
जै ऽ ऽ
म — ग
ऽ ऽ जि
रे — —
झो ऽ ऽ
X

ग — —
जि न ऽ
स रे —
मा ऽ ऽ
स — —
जि न ऽ
प — प
है ऽ चु
ग रे स
न ता ऽ
स — —
जि न ऽ
O

ग — —
श्या ऽ ऽ
म — —
नो ऽ ऽ
— — —
ऽ ऽ ऽ
प प —
न रि ऽ
स रे स
नो ऽ ऽ
— — —
ऽ ऽ ऽ
X

अन्तरा :—

— — नि़
ऽ ऽ मैं
ग — ग
भा ऽ न
— — सं
ऽ ऽ मैं
ग — ग
भा ऽ न
— — प
ऽ ऽ औ
म — ग
ऽ ऽ जि
रे — —
झो ऽ ऽ

— नि़ —
ऽ बे ऽ
— रे स
ऽ ल ऽ
— ग ग
ऽ बे ऽ
— म —
ऽ ल ऽ
— प प
ऽ र का
ग रे स
न जा ऽ
स — —
जि न ऽ

स — —
टी ऽ ऽ
रे — —
ला ऽ ऽ
प — —
टी ऽ ऽ
ग — —
ला ऽ ऽ
प — —
ऊ ऽ ऽ
स रे स
नो ऽ ऽ

नि़ स —
वृ ष ऽ
स — —
की ऽ ऽ
प प —
वृ ष ऽ
रे रा —
की ऽ ऽ
ध प —
की ऽ ऽ
ग रे स
उ र ऽ

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'फाग'

मो पै रंगा ने डारो सांवलिया
मैं तो ऊंसई अतर में डूबी लला, मोपे.........
केसर डार रस रंगा बनाई, हरे बांस पिचकारी लला
भर पिचकारी मोरे सन्मुख मारी, भींज गई तन सारी लला
जो सुन पाहे ससुरा हमारे, आउन न दैहें बखरियें लला
जो सुन पाहे जेठा हमारे, छीयन न दैहें रसोई लला
जो सुन पाहे सैंया हमारे, आउन न दैहें सिजरियों लला।

— संकलन

स्वर – लिपि

'दादरा ताल' 'पीलू की झलक'

स्थाई :–				स – रे
				मो ऽ पे
	नि़ – नि़	– नि़ –	स – –	रे – –
	रं ऽ गा	ऽ ने ऽ	डा ऽ ऽ	रो ऽ ऽ
	नि़ – स	स स –	स – –	म – म
	सां ऽ ऽ	व रि ऽ	या ऽ ऽ	मै ऽ तो
	म – म	म – म	म म –	म ग –
	ऊं ऽ स	ई ऽ अ	त र ऽ	में ऽ ऽ
	रे – –	रे – रे	रे – –	रे – –
	डू ऽ ऽ	बी ऽ ल	ला ऽ ऽ	मो ऽ पे
अन्तरा :–				
	नि़ – –	नि़ – नि़	स – स	स स
	कें ऽ ऽ	स ऽ र	डा ऽ र	र स ऽ
	रे – –	रे – स	नि – –	स – –
	रं ऽ ऽ	गा ऽ ब	ना ऽ ऽ	ई ऽ ऽ
	म – म	म म –	– – म	– – –
	ह ऽ रे	ऽ बां ऽ	ऽ स ऽ	पि च ऽ
	रे – –	रे – रे	रे – –	रे – –
	का ऽ ऽ	री ऽ ल	ला ऽ ऽ	मो ऽ पे
	X	O	X	O

— शेष अन्तरे इसी प्रकार।

'फाग'

मोरे पूरब पिछले भाग री मोए पिया मिले फागुन में

1. रंग अबीर ज्ञान की रोरी, फेकं रहे पिया भर–भर झोरी
मोए धब्बा लगे न दाग री मैं हो जाऊं बैदागन में, मोरे...

2. जो तुम पाग रंगौ पिया रंग में मैं भी चीर रंगू तेरे रंग में
जहॉ बजे छत्तीसों राग री, मैं हो जाऊं बैरागन में, मोरे...

3. मैं हारी मेरे बालम जीते सुकृत के दिन नीके बीते
जाके सोने के माथे हार री मोए मजा मिलौ जागन मैं मोरे...

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा'

नि़ स रे ग म प (6 स्वर)–सब शुद्ध
'राग खमाज की छाया'

स्थाई :–

			स स
			मो रे
रे ग ग ग	रे ग रे स	– म – ग	ग ग प
पू ऽ र ब	पि छ ले ऽ	ऽ भा ऽ ग	री ऽ मो हे
ग ग रे रे	रे सा रे ग	रे स स स	– – – –
पि या ऽ मि	ले ऽ फा ऽ	गु न में ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
नि़ – नि़ नि़	नि – सा सा	रे रे रे –	रे – सा नि़

अन्तरा :–

रं ऽ ग अ	बी ऽ र ज्ञा	ऽ न की ऽ	रो ऽ री ऽ
स रे रे रे	रे – रे रे	ग रे रे सा	सा सा सा सा
फें ऽ क र	हे ऽ पि या	भ र भ र	झो री मो ए
रे ग ग ग	रे ग रे स	– म – म	म – म म
ध ऽ ब्बा ऽ	ल गे ऽ ना	ऽ दा ऽ ग	री ऽ मो ए
ग ग रे रे	रे सा रे ग	रे सा सा सा	– – स स
पि या ऽ मि	ले ऽ फा ऽ	गु न में ऽ	ऽ ऽ मो हे
X	O	X	O

श्री प्यारे लाल श्रीमाल, बुन्देली लोक संगीत, मामुलिया अंक – 2 के पृ0 66 से उदधृत ।

'फाग' (डिढ़खुरयाऊ)

ढुढ़वा दियो राजा अमान, हमारी खेलत बेंदी गिर गई

1. हॉं ऽ ऽ अरे ऽ ऽ अरे हॉं मोरी आली कौना सहर की जा बिंदिया
   और कौना की धरी रवार हमारी खेलत...
2. हॉं ऽऽ हॉं ऽ अरे हॉं मोरी आली, झांसी सहर की जा बिंदिया
   और पन्ना की घरी रवार, हमारी खेलत.....
3. हॉं ऽऽ हॉं ऽऽ अरे हॉं मोरी आली कौना गढ़ा दई जा बिंदिया
   और कौना धरा दई रवार, हमारी खेलत....
4. हॉं ऽऽ हॉं ऽ अरे हॉं मोरी आली ससुरा गढ़ा दई जा बिंदिया
   और जेठा धरा दई रवार, हमारी खेलत....
5. हॉं ऽऽ हॉं ऽ अरे हॉं मोरी आली कैसें के गिर गई जा बिंदिया
   भलां कैसें कैं झरी रवार, हमारी खेलत....
6. हॉं ऽऽ हॉं ऽ अरे हॉं मोरी आली खेलत गिर गई जा बिंदिया
   और गिरतन झरी रवार, हमारी खेलत......

... *संकलन*

स्वर – लिपि

'ताल–दादरा' (मध्यलय)

नि़ स रे ग म (5 स्वर) सब शुद्ध
राग 'नट' की झलक

स्थाई :–

म म म	गम ग रे	सरे –स नी़	– म म
वा दि यो	राऽ जा अ	माऽ ऽन ह	ऽ ढु ढ़
म ग रेस	स स –	स – –	स रे ग
खे ल तऽ	बें दी ऽ	हॉं ऽ ऽ	मा री ऽ
रे रेस नी़	स रे ग	ग म ग	स स रे
हॉं मोऽ री	आ ली ऽ	खो ल त	हॉं अ रे
स स स	स – –		रे ग रेस
गि र ग	ई ऽ ऽ		बें दी ऽ
X	○	X	○

अन्तरा :–

			सरे
			अरे
रे रेस नी़	स रे ग	ग म ग	रे– ग रेस
हॉं मो री	आ ली ऽ	कौ ना स	हर की ऽऽ
स स स	स म म	म म म	गम ग रे
जा बिं दि	या औ र	कौ ना की	धाऽ री, र
सरे सनी़ नी़–	स रे ग	ग म ग	रे ग रेस
वा ऽर हऽ	मा री ऽ	खो ल त	बें ऽ दीऽ
स स स	स – –		
गि र ग	ई ऽ ऽ		
X	○	X	○

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'फाग' *(सख्याऊ)*

साखी– चार खूंटे के चौंतरा रे सो
लाम्हे भरै बजार
सुगर सुगर सौदा करैं रे सो
मूरख फिर फिर जाएं
ए ऽ ऽ ऽ हो ऽ ऽ ऽ
अतर के फोहा धरै दोई बालमा
ए ऽ ऽ ऽ
मूरख फिर फिर जाएं अतर के फोहा धरै ।

– संकलन

स्वर – लिपि

धनि सं रें गं मं (6 स्वर) सब शुद्ध

ध सं ध
आं ऽ ऽ,

धं सं रें – सं –	सं रें मं – मं ऽ	गं – – रें – –	सं – – सं – संध
चा ऽ ऽ ऽ र ऽ	खूं ऽ टे ऽ के ऽ	चौं ऽ ऽ त ऽ ऽ	रा ऽ ऽ रे ऽ सोऽ
(सं)रें – सं (सं)रें – –	(सं)रें – रं (सं)सं रें सं	रें – सं – – ध	
ला ऽ ऽ म्हे ऽ ऽ	भ ऽ रे ऽ ऽ ऽ	ब ऽ जा ऽ ऽ र	
सं सं सं सं रें मं	मं – गं – – –	रें – सं रें – संध	
सु ग र सु ग र	सौ ऽ दा ऽ ऽ ऽ	क ऽ रे ऽ ऽ ऽसो	
नि सं रें ऽ ऽ सं	नि सं रें सं रें स	सं – – – –	
मू ऽ र ऽ ऽ खऽ	फि र फि ऽ र ऽ	जा ऽ ऽ ऽ ऽ य	

आगे लय तेजकर गाते है।

म – – –	मप –म म– म–	गग –रे सरे स–	सरे –रे स– ––
ए ऽ ऽ ऽ	होऽ ऽअ तर केऽ	फोहा ऽध रेऽ दोई	बाऽ ऽल माऽ ऽऽ
म – – –	म– म– म– म–	म– मम म– म–	गरे –रे सरे सस
ए ऽ ऽ ऽ	मूऽ रख फिर फिर	जाऽ एंअ तर केऽ	फोहा ऽध रेऽ ऽऽ

'चौकड़िया–ईसुरी' (लाल की फाग)

हमखों पार देव भू मइयां लाल बलम उठा कैं कइयां
चार हाथ जांगा लिपवा दो, गऊ के गोबर मइयां
जीके ऊपर कुसा बिछा दो, तान दुपट्टा खाइयां
उलटी सांस चलत ऊपर खौं, भर भर देत तलइयां
ईसुर सींक खुली पिंजरा की, उड़ गई राम मुनइयां।

– *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' | दोनों गंधार, (धैवत कोमल) 'राग–पीलू'

स्थाई :–

ग ग रे	स ऩि –	– – ऩ्प	ऩि – नि
ह म ऽ	खों ऽ ऽ	ऽ ऽ पा	ऽ र दे
स स –	रे प –	– – ग	रे –स नि
ऽ व ऽ	भू ऽ ऽ	ऽ ऽ म	इ ऽया ऽ
स – –	– स –	– – प	प प –
ला ऽ ऽ	ऽ ल ऽ	ऽ ऽ ब	ल म उ
सं – –	प ध म	ग – ग	रे –स –
ठा ऽ ऽ	ऽ कैं ऽ	क इ यां	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

– – ग	रे स रे	स ऩि – –	स – –
ऽ ऽ चा	ऽ र हा	ऽ थ ऽ	जां ऽ ऽ
– – ग	रे स रे	ऩि – –	स – –
ऽ ऽ गा	ऽ लि प	वा ऽ ऽ	दो ऽ ऽ
– – स	– ग म	– प –	प – –
ऽ ऽ चा	ऽ र हा	ऽ थ ऽ	जां ऽ ऽ
– – ग	– म म	ग – –	रे स – –
ऽ ऽ गा	ऽ लि प	वा ऽ ऽ	दो ऽ ऽ
– – प	प प –	प सं – –	प ध म
ऽ ऽ ग	ऊ के ऽ	गो ऽ ऽ	ब र ऽ
ग – ग	रे स –		
म इ या	ऽ ऽ ऽ		
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'लेद' *(शास्त्रीय–स्वरूप)*

नैना दुरा ल्याई घूंघट में
तेरो जोबन है नादान, लंगरिया

हरे कसब को घांघरौ
तेरी चोली बूटेदार री।

– संकलन

स्वर – लिपि

'ताल–धमार' *(विलम्बित)*

'धमार की लेद
राग–'सूहा–सुधरई' (मिश्रित)

स्थाई :–

रे नि़ स	रे स रे प	ग – म रे –	स –
दु रा ऽ	ल्या ऽ ई ऽ	नैं ऽ ऽ ऽ ऽ	ना ऽ
रे – –	ग स रे नि	ग – – – म	रे स
में ऽ ऽ	ते ऽ रौ ऽ	घूं ऽ ऽ ऽ ऽ	घ ट
रे म –	प – निप ध	स – – – –	स स
है ऽ ऽ	ऽ ऽ ना ऽ	जो ऽ ऽ ऽ ऽ	ब न
धप मप धप	ग– गम रे– सरे	सं नि – ध नि	प प
गऽ रिऽ ऽऽ	याऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	दा ऽ ऽ ऽ ऽ	न लं
०	3	X	2

अन्तरे का पूर्वार्द्ध (धमार ताल में) ।

– – –	म प सं सं	सं सं – – –	रां –
ऽ ऽ ऽ	ह रे ऽ क	स ब ऽ ऽ ऽ	कौ ऽ
नि सं –	नि सं रे सं	ध – – नि –	प –
धा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ घा	रौ ऽ ऽ ते ऽ	रौ ऽ
म प –			
ऽ ऽ ऽ			
०	3	X	2

अन्तरे का उत्तरार्द्ध

ताल–दादरा *(ठेका दुगुन में)* (लेद के ठेके में)

– रेग पध ऽ चोऽ लीऽ	प– –प –– बूऽ ऽटे ऽऽ	मप ध– धप ऽऽ दाऽ रऽ	मप गम गरे रीऽ तेऽ रीऽ
रेग पम निध चोऽ ऽली ऽऽ	प– –प –– बूऽ ऽटे ऽऽ	नि– ध– धप दाऽ ऽऽ रऽ	मप गरे सनि़ रीऽ तेऽ रीऽ
नि़स रेग ग– ऽऽ चोऽ लीऽ	ग– –ग –– बूऽ ऽटे ऽऽ	ग– गरे नि़स ऽऽ दाऽ ऽर	रे– –म गरे रीऽ ऽऽ ऽऽ
सनि़ नि़– प– नैऽ नाऽ दुऽ	नि– –स प– राऽ ऽल्या ईऽ	–– गरे सनि़ ऽऽ घूंऽ घट	स– –स स– मेंऽ ऽते रोऽ
सरे रेम मम ऽऽ जोऽ बन	प– –ध मप हैऽ ऽना ऽऽ	संनि –ध निप दाऽ ऽन ऽलं	पप मम निप गरि ऽया ऽऽ
ग– –रे –स नैऽ ऽना ऽदु	रेनि सरे पनि राऽ ऽल्या ऽई	ग– मरे –स घूंऽ ऽघ टऽ	रे– –ग स– मेंऽ ऽऽ ऽऽ

'ईसुरी' सं० कान्ति कुमार जैन, 1/83–84 के खण्ड – चार 'लोक और संस्कृति – दतिया की लेद – महेश कुमार मिश्र मधुकर से उद्‌धृत – पृ० 19 ।

"नृप सुअन हठीले छैल
हमें पिचकारी न मारो बालमा
जो तुम हमें पिचकारी मार हौ
मैं तो पैलें भिंजोय दऊं तोय री"।

– संकलन

स्वर – लिपि

ताल–दादरा

नि स रे ग म प ध (7 स्वर)
(दोनों निषाद)

स्थाई :-

– –स सरे	ग– गग गम	ग– –ग —	गम पध मम
ऽ ऽनृ पऽ	सुऽ अन हऽ	ठीऽ ऽले ऽऽ	छैऽ लऽ ऽह
म– गरे रेग	निस रे– रे–	गस रेग म–	रेग ग– –म
मेंऽ ऽपि चऽ	काऽ रीऽ नऽ	माऽ ऽरो ऽऽ	ऽऽ बाऽ ऽल
रेग रेस नि–	स– –रे –रे	मस रेग म–	रे– ग– गम
माऽ ऽपि चऽ	काऽ ऽरी ऽन	माऽ ऽरो ऽऽ	ऽऽ बाऽ ऽल
ग– रेस निध	धरे रे– रे–	गस रेग म–	गरे गरे गरे
माऽ ऽपि चऽ	काऽ रीऽ नऽ	माऽ ऽरो ऽऽ	ऽऽ बाऽ ऽल
स– –, –			
माऽ ऽ, ऽ			

अन्तरा :–

स– स– रे–	ग– –म –म	गरे ग– रे–	नि– रेस —
जोऽ तुम हऽ	मेऽ ऽपि चऽ	काऽ रीऽ माऽ	ऽऽ रहौ ऽऽ
स– ग– म–	प– प– प–	प– धनि सं–	नि– नि– निध
ऽऽ मैंऽ तोऽ	पैऽ लेंऽ भिंऽ	जोऽ यद ऊंऽ	ऽऽ तोऽ ऽय
पध ग– म–	प– प– प–	प– धनि सं–	पसं संनि निध
रीऽ मैंऽ तोऽ	पैऽ लेंऽ भिंऽ	जोऽ यद ऊंऽ	ऽऽ तोऽ ऽय
धध पनि नि–	नि– नि– नि–	नि– संनि सं–	— नि– निध
रीऽ ऽमैं तोऽ	पैऽ लेंऽ भिंऽ	जोऽ यद ऊंऽ	ऽऽ तोऽ यऽ
धप मग ग–	स– गरे म–	ग– गग ग–	गम पध म–
रीऽ मैंऽ तोऽ	पैऽ लेंऽ भिंऽ	जोऽ यद अंऽ	तोऽ यऽ हऽ
म– गरे ग–	निस रे– रे–	गस रेग म–	गरे रेग गरे
मेंऽ ऽपि चऽ	काऽ रीऽ नऽ	माऽ ऽरो ऽऽ	ऽऽ बाऽ ऽल
स– रेस निध	धरें रे– रे–	गस रेग म–	— गरे गरे
माऽ ऽपि चऽ	काऽ रीऽ नऽ	माऽ ऽरो ऽऽ	ऽऽ बाऽ ऽल
स– — —			
माऽ ऽऽ ऽऽ			

'ईसुरी' सं0–कान्ति कुमार जैन 1/83–84 महेश कुमार मिश्र 'मधुकर' –'दतिया की लेद' खण्ड चार–1 'लोक और संस्कृति पृ0 – 19–20

टूट की 'लेद'

राधा बल्लभ छबीलो छैल सखिन संग, खेलें छबीली फाग हो

1. केसर घोरी कलस में, और पिचकारी लयं हाथ
   तक मारत मुख चन्द्र पै, सो भींज गयो सब गात
   कि मोरी सारी भई सराबोर हो मोरी सारी अरे हॉ, मोरी सारी ए ऽ हॉ ऽ
   मोरी सारी भई सराबोर, सखिन संग खेलें छबीली फाग हों

2. मुठियन भरे अबीर बे उलियन भरें गुलाल
   तक मारत मुख चन्द्र पे, सौ नैन भए दोउ लाल
   मोरे नैनन बहे रसधार, सखिन संग....

3. चन्द्र सखी छवि निरख के, और तन मन सब बलिहार
   मोरी नैया के प्रभू, सो तुम ही खेवन हार
   कि मोरी नैया लगा दियो पार, सखिन संग......

– *संकलन*

विशेष :–
स्थाई गाने के बाद ठेका तोड़ कर अन्तरा कहते हैं, इसी लिए इसे 'टूट की लेद' कहते है ।

स्वर – लिपि

'ताल दादरा' *(मध्य लय)* 'चैती की धुन की झलक'

स्थाई :–

स – रे	ग – ग	– ग –	ग रे –
रा ऽ धा	ब ऽ लऽ	भ छ ऽ	बी ऽ ऽ
ग प –	– – म	– ग रे	स रे –
लो ऽ ऽ	ऽ ऽ छै	ऽ ल स	खि न ऽ
स नि –	– – प	– नि नि	स – –
सं ग ऽ	ऽ ऽ खे	ऽ लें छ	बी ऽ ऽ
रे – म	– – ग	– – रेस	स – –
ली ऽ ऽ	ऽ ऽ फा	ऽ ऽ गऽ	हो ऽ ऽ
O	X	O	X

कृ0प0उ0

अन्तरा :–

स स स स	ग ग म ग	प प प मं	प – प –
के ऽ स र	घो ऽ री ऽ	ऽ क ल स	में ऽ ऽ ऽ
मं मं मं मं	मं प मं प	म – – –	– – – ग
पि च का ऽ	री ऽ ल यं	हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ था
ग – म –	ग – ग –	ग ध प ध	प म ग –
त क मा ऽ	र त मु ख	च ऽ ऽ न्द्र	पे ऽ ऽ ऽ
– – – ग	ग ग ग रे	म ग रे सा	स – – स
ऽ ऽ ऽ सो,	भीं ऽ ज ग	यो ऽ स ब	गा ऽ ऽ त

– – ग	ग – म	प – प	नि नि –
ऽ ऽ कि	मो ऽ री	सां ऽ री	अ रे ऽ
नि ध प	ग – म	प – प	सं – –
हां ऽ ऽ	मो ऽ री	सा ऽ री	ए ऽ ऽ
नि ध प	ग – म	प – प	– प –
हां ऽ ऽ	मो ऽ री	सा ऽ री	ऽ भ ऽ
प ध प	ध सं –	– गी –	ध प –
ई ऽ ऽ	स रा ऽ	ऽ बो ऽ	ऽ र ऽ
ध प म	स – रे	ग – ग	– ग –
हो ऽ ऽ	मो ऽ री	सा ऽ री	ऽ भ ऽ
ग – रे	ग प –	– म –	ग – रे
ई ऽ ऽ	स रा ऽ	ऽ बो ऽ	र ऽ स
स़ रे –	ऩि ऩि –	– – प	– नि नि
खि न ऽ	सं ग ऽ	ऽ ऽ खे	ऽ ले छ
स – –	रे भ –	– – ग	– – रेस
बी ऽ ऽ	ली ऽ ऽ	ऽ ऽ फा	ऽ ऽ ग
स – –			
हो ऽ ऽ			

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जायंगे ।

'सोहर'

आज दिन सोने सों महाराज
सोने के दिन और सोने की रात
सोने के सब दिन होएं महाराज
मोतिन चौक पुराओ बारी सजनी
चंदन पटरी डराव महाराज
चंदन पटरी डराऔ बारी सजनी
चौमुख दियला जराऔं महाराज
चौमुख दियला जराऔ बारी सजनी
इमरत अरग दुआऔ महाराज
इमरत अरग दुआऔ बारी सजनी
रानी कौसल्या चौके ल्याओं महाराज
चौके ल्याकें पूजा कराऔ
लालन कंठ लगाओ महाराज

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

स रे ग म ग रे स ध़ नी़ स रे ग म
(मालगुन्जी एवं झिंझोटी की झलक)

स्थाई :–

			स
			आ
स रे ऽ	ग म ऽ	ग ऽ ग	रे स ग
ऽ ज ऽ	दि न ऽ	ऽ ऽ सो	ऽ ने ऽ
रे स ऽ	ध़ नी़ ऽ	स ऽ ऽ	ऽ ऽ स
सों ऽ ऽ	म हा ऽ	रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ज
X	O	X	O

अन्तरा :–

स ऽ ऽध़	ऽ ऽ ऽनी़	स स –	स रे –
सो ऽ ऽने	ऽ ऽ ऽके	दि न ऽ	औ र ऽ
ग ऽ ऽना	गग गम ऽरे	स – –	– – –
सो ऽ ऽनें	ऽ ऽ ऽकी	रा ऽ ऽ	ऽ ऽ त
स रे ऽ	ग म ऽ	ग ऽ ग	रे स ग
सो ऽ ऽनें	ऽ ऽ ऽके	स ब ऽ	दि न ऽ
रे स ऽ	ध़ नी़ ऽ	स ऽ ऽ	ऽ ऽ स
हो ऽ यें	म हा ऽ	रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ज
X	O	X	O

— शेष अन्तरे इसी प्रकार ।

'सोहर'

हरे बांस बिजनइया तो कस बंध दै लियो महाराज–2
ताकी है तीती बयरिया तो हम तुम सोयं रहे महाराज–2
छुटकी है बिकट जुन्हइया धना खेलन दै चली महाराज
खेलत हो गई अबेरा घरै पिया रिस भरें महाराज
खोलो तो बजुर किवरियां खेल हम आ गईं महाराज
जहॉं से आईं तहीं जाओ बांझ को का करें महाराज

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल दादरा'

ध़ नि़ स रे ग ग म (6 स्वर)
'बिलावल की झलक'

स्थाई :–

ध़ – स	– स –	स रे –	ग ग –
ह ऽ रे	ऽ बां ऽ	ऽ स ऽ	बि ज ऽ
ग – रे	– स –	ग रे –	स नी –
न इ या	ऽ तो ऽ	क स ऽ	बं ध ऽ
– – ध़	– नि़ –	स रे –	रे नि़ –
ऽ ऽ दै	ऽ लि ऽ	यो ऽ ऽ	म हा ऽ
स – –	ग – ग	ग म ग	रे रा नि़
रा ऽ ऽ	ज ऽ ऽतो	क स ऽ	बं ध ऽ
– – ध़	– नि़ –	स रे –	रे नि़ –
ऽ ऽ दै	ऽ लि ऽ	यो ऽ ऽ	म हा ऽ
स – –	स ऽ ऽ		
रा ऽ ऽ	ज ऽ ऽ		
X	O	X	O

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जायेंगी ।

'सोहर'

सोंठ के लडुआ चिरपिरे री

1. अंगना में ठाड़ी सास रानी मांगे
   तनक बहु लडुआ हमको दइयो
   लडुआ फोरत मोरी बांह दुखत है
   पूरो दओ ना जाय,
   पसेरी भर जामे घी डरो री
   गरी के गोला नौ डरे हैं
   बादामों के बीजा सौ डरे हैं
   चिरौजीं दाने चौथियों से

2. अंगना में ढाड़ी जिठानी रानी मांगे ......

3. अंगना में ढाड़ी ननद रानी मांगे ....

4. अंगना में ठाड़े देवर राजा मांगें ....

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

ऩि स रे ग म प़ (6 स्वर)
'राग पीलू' *(दोनों गंधार)*

स्थाई :–

			– स –
			ऽ सौं ऽ
स रे –	स ऩि –	ऩि स –	रे – –
ऽ ठ ऽ	के ऽ ऽ	ल डु ऽ	आ ऽ ऽ
स – ग	– – ग	गरे – रे	स, – –
ऽ ऽ. चि	र ऽ पि	रेऽ ऽ री	ऽ, सौं ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

स – –	ग – म	प – –	प – प
अं ग ऽ	ना ऽ में	ठा ऽ ऽ	ड़ी ऽ सा
ग – –	प प म	ग – रेस	– – स
ऽ स ऽ	रा नी ऽ	मां ऽ गेऽ	ऽ ऽ, त

स रे –	स नि़ –	नि़ सा –	रे – –
न क ऽ	ब हु ऽ	ल डु ऽ	आ ऽ ऽ
स – ग	– – ग	गरे – रे	स – –
ऽ ऽ ह	म को ऽ	दऽ इ ऽ	यो ऽ ऽ
– स स	ग – म	प प –	प प
ऽ ल डु	आ ऽ फो	र त ऽ	मो री ऽ
ग म –	मप – म	ग – रेस	स – –
बां ऽ ऽ	ह ऽ दु	ख त ऽऽ	है ऽ ऽ
– स प	– प –	प – –	ध़ प –
ऽ पू रो	ऽ दि ऽ	यौ ऽ ऽ	ना ऽ ऽ
म – –	ग – रे	स रे –	स नि़ –
जा ऽ ऽ	य ऽ, प	से री ऽ	भ र ऽ
स – –	रे – –	स – रेग	– – ग
जां ऽ ऽ	में ऽ ऽ	ऽ ऽ घीऽ	ऽ ऽ ड
गरे – रे	स – रे	स रे –	स नि़ –
रोऽ ऽ री	ऽ ऽ, ग	री ऽ ऽ	के ऽ ऽ
नि़स – –	रे – –	स – रेग	– – ग
गोऽ ऽ ऽ	ला ऽ ऽ	ऽ ऽ नौऽ	ऽ ऽ ड़
गरे – रे	स – रे	स रे –	स नि़ –
रे ऽ री	ऽ ऽ, वा	दा ऽ मों	ऽ के ऽ
स – –	रे – –	स – रेग	– ग –
बी ऽ ऽ	जा ऽ ऽ	ऽ ऽ सौऽ	ऽ ड ऽ
गरे – रे	स – रे	स रे –	स नि़ –
रे ऽ री	ऽ ऽ, चि	रौं ऽ ऽ	जी ऽ ऽ
स – –	रे – –	स – रेग	– ग –
दा ऽ ऽ	ने ऽ ऽ	ऽ ऽ चौऽ	ऽ थि ऽ
गरे – रे	स – –		
योंऽ ऽ ऽ	से ऽ ऽ		
X	O	X	O

– *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे ।*

'बधाए'

कहाँ लै जातीं जे बन्दन वारे

राजा दसरथ घर पुत्र भए है राजा अज के नातीं
होईं लै जातीं जे बन्दन वारे
काहे की डोरी काहे के पत्ता, काहे की सींक लगातीं
कहाँ लै जातीं जे बन्दन वारे
रेसम की डोरी आम के पत्ता सौने की सींक लगातीं
होईं लै जातीं जे बन्दन बारे
काहे की तेरी डाल–डलैया कहे के अच्छत डरातीं
कहाँ लै जातीं जे बन्दन बारे
हरे बांस की डाल–डलैया मुतियन अच्छत डरातीं
होईं लै जातीं जे बन्दन वारे

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'
(कहरवा ताल में भी गाया जाता है)

स रे ग म प ध – 6 स्वर (सब शुद्ध)
'राग बिलावल की झलक'

स्थाई :–

			स
			क
स रे –	रे – –	रे स –	स रे ग
हॉं ऽ ऽ	लै ऽ ऽ	जा ऽ ऽ	तीं ऽ ऽ
ग – रे	– ग –	स – –	स – स
जे ऽ ब	ऽ न्द न	वा ऽ ऽ	रे ऽ, क
X	O	X	O

अन्तरा :–

स स –	स रे –	रे म –	म म –
रा जा ऽ	द स ऽ	र थ ऽ	घ र ऽ
म – –	प – म	ग रे –	ग – –
पु ऽ ऽ	त्र ऽ ऽभ	ये ऽ ऽ	हैं ऽ ऽ
प – –	प – –	प ध –	प म –
रा ऽ जा	जा ऽ ऽ	अ ज ऽ	के ऽ ऽ
प ध प	म ग –	ग – म	रे – –
ना ऽ ती	ऽ हों ऽ	ऽ ऽ ई	लै ऽ ऽ
रे स –	स रे ग	ग – रे	– ग –
जा ऽ ऽ	ती ऽ ऽ	जे ऽ ब	ऽ न्द न
स – –	स –, स		
बा ऽ ऽ	रे ऽ, क		
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे ।

'बधाई'

बधाव ल्याई ननदी काए सांवरिया
1. कहॉं सें आई हरदी कहॉं से आई सोंठ
कहाँ सें आई ननदी काए सांवरिया
2. सागर सें आई हरदी झांसी से आई सोंठ
महोबे सें आई ननदी काए सांवरिया
3. काहे में आई हरदी काहे में आई सोंठ
काहे में आई ननदी काए सांवरिया
4. गठरी में आई हरदी पुटरियन आई सोंठ
छकड़ा पे आई ननदी काए सांवरिया
5. काहें खों आई हरदी काए खों आई सोंठ
काहे खों आई ननदी काए सांवरिया
6. जच्चा खों आई हरदी बच्चा खों आई सोंठ
लैबें खों आई ननदी काए सांवरिया

नोट :– 'हरदी' शब्द के स्थान पर 'पीपर' भी प्रचलित है ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

ध़ नी स रे ग म 6 स्वर (सब शुद्ध)
'राग पीलू की छाया'

स्थाई :–

			— स —
			ऽ ब ऽ
स रे —	स नि़ —	नि़ स —	रे — —
धा व ऽ	ल्या ई ऽ	न न ऽ	दी ऽ ऽ
नि़ स —	रे — —	स स स	— स —
का हे ऽ	सा ऽ ऽ	व रि या	ऽ ब ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

			— स —
			ऽ का ऽ
ध़ — ध़	स रे —	म — म	— म —
हे ऽ पे	आ ई ऽ	ह र दी	ऽ का ऽ
म — म	म ग —	रेग — —	रेस स —
हे ऽ पे	आ ई ऽ	सौं ऽ ऽ	ठऽ का ऽ
स — रे	स नि़ —	नि़ स —	रें — —
हे ऽ पे	आ ई ऽ	न न ऽ	दी ऽ ऽ
नि़ स —	रे — —	स स स	— — —
का हे ऽ	सां ऽ ऽ	व रि या	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे ।

'लांगुरिया'

देवी मइया के भवन में घुटुअन खेलें लांगुरिया
खेलें लांगुरिया तुमाई सौं खेलें लांगुरिया

1. छोटी सी किरपान हाथ में छोटो सो तिरसूल
बिफर–2 के लांगुर खेलें नभ सें बरसें फूल

2. देवी तेरी गैल में एक लम्बो पेड़ खजूर
ता पर चढ़कर लांगुर हेरें मइया कितनी दूर

3. राम–राम सब कोई कहे दसरथ कहे ना कोय
एक बार दसरथ कहे तो कोटि जज्ञ फल होय

4. राम–नाम की कोठरी और चन्दन जड़े किवार
तारे लागे प्रेम के और खोलो कृष्ण मुरार

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल कहरवा' *(ठेका दुगन में)* 'राग पीलू की झलक'

स्थाई :–

			ग गरे
			दे वीऽ
सरे रे स नी	सस स रेग गग	सरे रेरे स नि–	सा – – –
मइ या के भ	वन मे घुटु रुन	खेऽ लेंऽ लां गुरि	या ऽ ऽ ऽ
म रे रे मम	म मम गम पम	ग ग रे रेरे	रा , ग ग
खे लें ला गुरि	या ऽतु माई सौं	खे लैं लां गुरि	या ऽ, दे वी

अन्तरा :–

नि नि नि नि	स– स– स– सरे	रेग ग– रे– रे–	स– – सग रेस
छो टी सी किर	पाऽ नहा ऽथ मेऽ	छोऽ टोऽ सोऽ तिर	सूऽ ऽ ऽऽ ऽल
मरे रेम म– म–	म– मम म– म–	पप ध– प– म–	ग– –रेस ग गरे
बिफ रबि फर केऽ	लांऽ गुर खेऽ लेंऽ	नभ सेंऽ बर सेंऽ	फूऽ ऽल, दे वी

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे ।

'देवी 'गीत'

माई मोरे अंगना आई निंहुर के पइयां लागूं

1. काहा देखा मइया अंगना आई
   काहा देख मुसक्यानी निंहुर कें...
2. दूधा देखा मइया अंगना आई
   पूता देख मुसक्यानी निंहुर कें....
3. चन्दन पटली बैठत डारो
   दुधुअन चरण पखारो, निंहुर कें....
4. ताती जलेबी दूधा के लड्डुआ
   मइया मोरे जेवन आईं, निंहुर कें.....
5. सोने के गडुआ गंगाजल पानी
   मइया मोरे अचवन आईं निंहुर कें......

— संकलन

स्वर—लिपि

'ताल—दादरा'

स रे ग म 'प ध (6 स्वर)
(राग पहाड़ी की झलक, अन्तरे में तीव्र म)

स्थाई :—

प़ प़ –	ध़ स –	स – –	रे म ग
मा ई ऽ	मो रे ऽ	अं ग ऽ	ना ऽ ऽ
स – रे	– स –	रे रेम –	ग – –
आ ऽ ई	ऽ निं ऽ	हु रऽ ऽ	के ऽ ऽ
– – ग	– रेस –	रे – –	स
ऽ ऽ पंई	ऽ यांऽ ऽ	ला ऽ ऽ	गूं ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :—

ग – ग	– रे –	ग – ध	प – –
का ऽ हा	ऽ दे ऽ	ऽ ख ऽ	मइ या ऽ
मं – ग	– रे –	ग – रे	स – –
अं ग ऽ	ना ऽ ऽ	आ ऽ ऽ	ई ऽ ऽ
प़ प़ –	ध़ स –	स – –	रे म ग
का ऽ हा	ऽ दे ऽ	ऽ ख ऽ	मु स ऽ
स – रे	– स –	रे रेम –	म – –
क्या ऽ नी	ऽ निं ऽ	हु र ऽ	कें ऽ ऽ
– – ग	– रेस –	रे – –	स – –
ऽ ऽ पंइ	ऽ यांऽ ऽ	ला ऽ ऽ	गूं ऽ ऽ
X	O	X	O

— शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे ।

देवी–गीत *(क्वांर)* सुरहिन'

दिन की उगन किरन की बेरा सुरहिन बन खो जाय हो मायं
इक वनं चालीं सुरहिन दुज बन चाली तिज वन पौंची जाय हो मायं
कजली वन में चन्दन हरो बिरछा जां सुरहिन मौं डारो हो मायं
इक मौं घालौ सुरहिन दुज मौं घालौ तिज मौं सिंहा हुंकारो हो मायं
अब की चूक बगस बारे सिंघा घर बछरा नादान हो मायं
को तोरो सुरहिन लाग लगनियां को तोरो होत जमान हो मायं
चन्दा सूरज मोरे लाग लगनियां, वनस्पति होत जमान हो मायं
चन्दा सूरज दोई ऊगै अथैवें वनस्पति झर जाय हो मायं
धरती के बासक मोरे लाग–लगनियां धरती होत जमान हो मायं
इक बन चालीं सुरहिन दुज बन चालीं, तिज बन नगर रम्हानी हो मायं
बन की हिरानीं सुरहिन बगरन आईं बछरै राम्ह सुनाई हो मायं
आओ आओ बछरा पीलो मोरो दुधुआ सिंघै बचन दे आईं हो मायं
वचन को दुधुआ न पीहों मोरी माता, चलहौ तुमाये संग हो मायं
आंगै–आंगै बछरा पीछे–पीछे सुरहिन दोउ मिल बन को जायं हो मायं
इक बन चाली दुज बन चाली तिज बन पहुँची जायं हो मायं
उठ–उठ हेरे बन बारो सिंघा सुरहिन अभहं न आईं हो मायं
बोल की बांदी वचन की सांची एक से गईं दो आईं हो मायं
पैले ममइयां हमईं को भख तो पांछे हमाईं माय हो मायं
कौन भनेजा, तोय सिख–बुध दीनों कौन लगो गुर कान हो मायं
देवी जालपा सिख–बुध दीनीं वीर लंगर लगे कान हो मायं
जौ कजली वन तेरो भनेजा, छुटंक चरो मैदान हो मायं
सौ गऊ आंगै सौ गऊ पांछे, होइयें बगर के सांड हो मायं ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(मध्य लय)*

नि़ स रे ग म प 6 स्वर (सब शुद्ध)
'राग बिलावल पर आधारित'

स्थाई :–

(ग)म म म (ग)म	गप पम (ग)प म	(म)ग ग (म)ग ग	रेग मग रे स
दि न की ऽ	उऽ गऽ न कि	र न की ऽ	बेऽ ऽऽ रा ऽ
(नि़)स रे रे ग	(रे)ग ग रे स	(रे)ग – रे –	(नि़)सा – सा नि
सु र हि न	ब न खों ऽ	जा यं हो ऽ	मा यं मै या
(नि़)स रे रे ग	ग ग रे स	ग – रे –	सा – – स
सु र हि न	ब न खों ऽ	जा य हो ऽ	मां ऽ ऽ य

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

सन्दर्भ – डॉ0 आशा खरे, शोध प्रबन्ध – बुन्देलखण्ड एवं ब्रज के लोकगीत, पृ0 142

'कार्तिक गीत'

तुलसा महारानी नमो नमो
हर की पटरानी नमो नमो
धन बिन्द्रावन तुलसी के बिरछा–2
सो चारो कनैया जित खेलत घुटइया–2 नमो नमो
तुलसी के पत्र महाजन सोहे–2
सो ढूंढत फिरत महागुरू ग्यानी–2 नमो नमो
इन तुलसा ने घुरब तप कीन्हे–2
सो सालिगराम की भई पटरानी–2 नमो नमो
छप्पन भोग छतीसन व्यंजन–2
सो इन तुलसा बिन एकउ ना बानी–2 नमो नमो

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' (ठेका दुगुन में)

स रे ग म प ध – 6 स्वर (सब शुद्ध)
'राग बिलावल पर आधारित'

स्थाई :–

			ग म
			तु ल
गम गरे रे स	स रे ग म	ग रे ग रे	स –, ग म
साऽ ऽऽ म हा	रा ऽ नी ऽ	न मो ऽ न	मो ऽ, ह र
गम गरे रे स	स रे ग म	ग रे ग रे	स –,
कीऽ ऽऽ प ट	रा ऽ नी ऽ	न मो ऽ न	मो ऽ,

अन्तरा :–

स रे गम गरे	स रे स स	म म म म	म म म म
ध न बिंऽ दऽ	रा ऽ ब न	तु ल सी के	बि र छा ऽ
ग रेस रे ग	रे स स स	म म म म	म म म प
ध नऽ बिं द	रा ऽ ब न	तु ल सी के	बि र छा सो
प ध प म	ग रे ग म	गम गरे रेस स	सरे रे ग म
चा ऽ रों क	नै या जि त	खेऽ लऽ तऽ घु	टइ यां जि त
गम गरे रेस स	स रे ग म	ग रे ग रे	स –
खेऽ लऽ तऽ घु	ट इ यां ऽ	न मो ऽ न	मो ऽ,

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'कार्तिक–गीत'

नैना राम रस छाए रए
आली दोई नैना राम रस छाय रय

1. जल बिच सीप, सीप बिच मोती
   स्वाति की बूंद ससाय रय, आली दोई

2. जल बिच मंदिर, मंदिर बिच दीपक
   हरि जरनन सिर नाय रय, आली दोई..

3. जल बिच कमल, कमल बिच कलियां
   तापै भ्रमर लुभाय रय, आली दोई

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

नी़ स रे ग म प – 6 स्वर (सब शुद्ध)
'राग तिलककामोद की झलक'

स्थाई :–

नि़ स – रे	म ग रे स	सरे नी़ स रे	रेम ग रे स
नै ना ऽ रा	ऽ म र स	छा य र य	आऽ ली दो ई
नि़ स – रे	म ग रे स	स स स स	
नै ना ऽ रा	ऽ म र स	छा य र य	

अन्तरा :–

– गग –म –म	स – स स	रे म म म	म म प ग
ऽ जल ऽवि ऽच	सी ऽ प सी	ऽ प बि च	मो ऽ ती ऽ
ग –. रेस रे	ग म ग रे	सरे नी स रे	रेम ग रे स
स्वा ऽ ति की	बूं ऽ द स	साऽ य र य	आऽ ली दो ई

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'कार्तिक गीत' (गैलारी की तर्ज)

मोरी अबकें मोरे राम भव सें पार करौ नइया

1. अरे हॉं ऽ ऽ ऽ दीन बन्धु जू हेरौ, कृपा दृग फेरो, हरौ दुख मेरो
   मैं तो सुमरूं आठों याम, भव सैं पार करौ नइया
2. अरे हॉं ऽ ऽ ऽ दीनानाथ निनौरो, घोरूआ न घोरौ, समय रहौ थोरौ
   जल्दी आओ सुखधाम, भव सैं पार करौ नइया
3. अरे हॉं ऽ ऽ ऽ भव मै डरौ है नबारौ, न कोऊ खेवन हारौ, नाथ दुख टारौ
   बन के केवट लेव थाम, भव सैं पार करौ नइया ।

– *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' *(द्रुत लय)*

नि़ स रे ग म प – 6 स्वर (सब शुद्ध)
'राग देस की झलक'

स्थाई :–

नी़ – स	रे ग –	रे़ रे –	– – ग
मो ऽ री	अ ब के	मो रे ऽ	ऽ ऽ रा
– – म	ग ग रे	– स –	नि़ स –
ऽ ऽ म	भ व सैं	ऽ पा ऽ	ऽ र ऽ
रे ग रे	ग – रे	स – –	– – –
क रो ऽ	नै ऽ ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
O	X	O	X

अन्तरा :–

स रे –	म – –	– – –	म – –
अ रे ऽ	हॉं ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
(म)प ग –	– – म	ग रे स	नि स –
ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ भ	व में ऽ	ड रो ऽ
रे – ग	म ग रे	स – –	नि़ स –
है ऽ न	वा ऽ रो	न ऽ ऽ	को ऊ ऽ
रे – ग	म ग रे	– स –	नि स –
खे व न	हा ऽ रो	ऽ प्र ऽ	भू ऽ ऽ
रे ग रे	ग रे ऽ	स – –	– – –
दु ख ऽ	टा ऽ ऽ	रो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
नी़ – स	रे ग –	रे रे –	– ग –
ब न के	खे व ऽ	ले ओ ऽ	ऽ था ऽ
– – म	ग ग रे	– स –	नि़ स –
ऽ ऽ म	भ व सें	ऽ पा ऽ	ऽ र ऽ
रे ग रे	ग – रे	स – –	– – –
क रो ऽ	नैं ऽ ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
O	X	O	X

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'गारी'

चलो सखी कुंजन बन चलिहें कुंजन कुंज बिहारी बे,
कि हाँ हाँ बे, कि हूं हूं बे

हंस हंस पूछे राजा जनक जी कां की करी तैयारी बे
कि हॉ हाँ बे, कि हूं हूं बे

हंस बाग में मिलें पवन सुत उतईं की भई तैयारी बे
कि हॉ हाँ बे, कि हूं हूं बे

सब सखियां जुड़ चलन लगी हैं, लीन्हीं सजा के थारी बे
कि हाँ हाँ बे, कि हूं हूं बे

जुर मिल सखियां चली जनवासे गावत जावें गारी बे
कि हाँ हाँ बे, कि हूं हूं बे

कोउ–कोउ सखियां बैठी डुली तो कोउ नाचै दै तारी बे
कि हाँ हाँ बे, कि हूं हूं बे

घर कां चल दईं सबरी सख्यिां अखत की उड़त फुहारी बे
कि हाँ हाँ बे, कि हूं हूं बे ।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* 'राग पीलू'

स्थाई :–

ग ग –ग ग– ग–	ग ग ग ग रेस म–	ग– गरे स– रे–	नि– नि– स– सरे
चलो ऽस खीऽ कुंऽ	जन बन चलि हेंऽ	कुंऽ जन कुंऽ जबि	हाऽ रीऽ बेऽ ऽकि
नि– नि– स –रे	नि– नि– स –		
हाऽ हॉऽ बे ऽकि	हूंऽ हूंऽ बे ऽ		

— शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जायेंगी ।

'गारी' (रसबारी के भौंरा)

चाँदी को पानदान लिए मेहरबान, रसबारी के भौंरा रे

1. हमरे ससुर के तीन बखरी
एक कच्ची, एक पक्की, एक चूना छाप, रसबारी के भौंरा रे

2. हमरे ससुर के तीन लरका
एक डिप्टी, एक कलट्टर, एक थानेदार, रसबारी के भौंरा रे

3. हमरे ससुर के तीन बिटियां
एक चटक, एक मटक, एक मजेदार, रसबारी के भौंरा रे

– *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा'

ध़ स रे ग म – 5 स्वर (सब शुद्ध)
(पहाड़ी धुन पर आधारित)

स्थाई :–

ग – रे	ग स –	रे – ग	म – –
चां ऽ दी	ऽ को ऽ	पा ऽ न	दा ऽ न
ग – रे	स रे –	स – स	स ध़ –
लि ए ऽ	मे ह र	बा ऽ न	र स ऽ
स – रे	– स –	ध़ स –	रेऽ म– ग
वा ऽ री	ऽ के ऽ	भौं ऽ ऽ	राऽ ऽऽ ऽ
रे – –	– – –		
रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ		
X	O	X	O

अन्तरा :–

ग – रे	ग स –	रे – ग	म – –
ह म रे	ऽ स ऽ	सु र ऽ	के ऽ ऽ
ग – रे	स रे –	ध़ स –	– – –
ती ऽ न	ब ख ऽ	रीं ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ग – रे	ग स –	रे – ग	म म –
ए ऽ क	क च्ची ऽ	ए ऽ क	प क्की ऽ
ग – रे	स रे –	स – स	स ध़ –
ए ऽ क	चू ना ऽ	छा ऽ प	र स ऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'कछियाऊ–गारी'

पद– अरे दो में से कौन रे प्यारी
अरे ओरे साजना
दो में से कौन रे प्यारी
हॉं, अरे, जेठी तो बेचारी देखो,
पानियां भरत है
लौरी फिरत मसतानी
अरे ओरे साजना
दो में से कौन रे प्यारी ।

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा'

नि सं रें – 3 स्वर (सब शुद्ध)
(तार सप्तक)

रें सं	नि – सं रें	रें –रें सं सं	नि सं रेंरें संस
अ रे	दो ऽ में से	कौ न रे पे	या री अरे ओरे
रें सं नि –	नि – सं रें	रें –रें सं नि	स – सं –
सा ज ना ऽ	दो ऽ में सें	कौ न रे पै	या ऽ री ऽ
सं – रें सं	नि नि सं रें	रें रें सं नि	नि सं रें सं
हॉं ऽ अ रे	जे ठी तौ बे	चा री दे खो	पां नि यां भ
रें सं नि –	नि – सं रें	रें रें सं सं	नि सं रेंरें संसं
र त है ऽ	लौ ऽ री फि	र त म स	ता नी अरे ओरे
रें सं नि –	नि – सं रें	रें –रें सं नि	सं – सं –
सा ज ना ऽ	दो ऽ मे सें	कौ न रे पै	या ऽ री ऽ

स्वरलिपि – श्री महेश कुमार मिश्र, 'बुन्देली लोकसंगीत' पृ0 103 मामुलिया अंक – 22–24
सम्पादक – नर्मदा प्रसाद गुप्त ।

'गारी' *(ज्योनार)*
(बधाई नृत्य के साथ भी गाते हैं)

नैना बंद लागे कइयो हो, चोली बंद लागे कइयो हो, नैना.......
पीपर को पत्ता डुलत नइयां, इन समधी की बैठक उठत नैया, नैना.......
टूटी टपरिया के झांके दिखाएं, इन समधी के ठनगन हमें नै सुहाय नैना.......
कांसे की टाटी चढ़ी जंगाल, समधी मिले सो बेई कंगाल, नैना.......
कांसे की टाटी परसबे कों अब यारी नै करियो तरसबे कों, नैना.......
अरसी के पेड़े चढ़ी चिटिया, अरे हमसें नै बोलो मताई बिटिया, नैना.......
घटिया खाले टंगो मृदंग, इन समधी के जी खों बदो हुरदंग, नैना.......
कल्ले की रोटी कड़–कड़ होय, समधी की बातें सड़–सड़ होय, नैना.......
आलू की सब्जी घुइयां की साग, निकर चलो समधी जुदैंया हैरात, नैना.......
घटिया खाले लगो निंबुआ, टोरन नै जइयो बंधो तिंदुआ, नैना.......
गई ती दुकनिया लैं आई हरदी, 'मेनपानी' को पानी करे सरदी, नैना.......

– *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दादरा' *(द्रुत लय)* निऽ स रे ग – 4 स्वर (सब शुद्ध)

स्थाई :–

– रे स	निऽ – निऽ	– स –	रे – –
ऽ नै ऽ	ना ऽ बं	ऽ द ऽ	ला ऽ ऽ
रे स –	स स –	स – –	स – –
गे ऽ ऽ	क इ ऽ	यो ऽ ऽ	हो ऽ ऽ
– रे स	निऽ – निऽ	– स –	रे – –
ऽ चो ऽ	ली ऽ बं	ऽ द ऽ	ला ऽ ऽ
रे स –	स स –	स – –	स – –
गे ऽ ऽ	क इ ऽ	यो ऽ ऽ	हो ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

ग – रे	– स –	रे ग ग	– ग –
पी ऽ प	र को ऽ	प ऽ त्ता	ऽ डु ऽ
रे रे –	रे स –	(रे)ग – –	– – –
ल त ऽ	न ई ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ग ग –	रे रे रे	स स –	रे ग –
इ न ऽ	स म धी	ऽ की ऽ	बै ऽ ऽ
ग ग ग	रे रे –	रे स –	स – –
ठ क उ	ठ त ऽ	न ई ऽ	या ऽ ऽ
X	O	X	O

– *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'गारी' (विवाह)

नए साजन आए सो सिरी नगर के बजारन में
नए हितुआ री आए,
नए सजना री आए, सो सिरी नगर के बजारन में

1. उनखों लोटा जो दइयो–2 बिन रे रस्सी बिन डोरा के नए ....
2. उनखों डेरा जो दइयो–2 सो गंगा जमन बारी रेतन में नए ....
3. उनखों तलवा खुदइयो उनखों कुअंला खुदइयो सो गंगा अतर अस्नान रे, नए.
4. उनखों पुरियां पकइयो सो बिना रे करइया बिन धियरा के, नए ....
5. उनखों बिड़िया लगइयो सो बिना रे कत्था बिन चूना के, नए ....
6. उनखों सेज बिछइयो तो बिना रे गदिया बिन तकियन के, नए ....

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दीपचन्दी' *(मध्य–लय)*

नि स रे ग म (5 स्वर)
(गंधार कोमल)

स्थाई :–

			रे – स –
			न ऽ ए ऽ
ऩी – –	ऩी – स –	(रे)ग॒ – –	(रे)ग॒ – म –
सा ऽ ऽ	ज ऽ न ऽ	आ ऽ ऽ	ये ऽ सो ऽ
ग॒ ग॒ –	रे – स –	ऩि ऩि –	स – (रे)ग॒ –
सि री ऽ	के ऽ न ऽ	ग र ऽ	के ऽ ब ऽ
स – –	रे – स –	स – –	रे – स –
जा ऽ ऽ	र ऽ न ऽ	में ऽ ऽ	न ऽ ए ऽ
ऩि ऩि –	(रे)ग॒ – रे –	ऩि – –	(स)रे – स –
हि तु ऽ	आ ऽ री ऽ	आ ऽ ऽ	ये ऽ ऽ ऽ
			रे – स –
			उ न खां ऽ

अन्तरा :–

ऩी – –	ग॒ – रे –	ऩी – –	(स)रे – स –
लो ऽ ऽ	टा ऽ जो ऽ	दइ ऽ ऽ	यो ऽ ऽ ऽ
स – –	स – रे –	ऩि – –	नि – स –
ऽ ऽ ऽ	उ न खां ऽ	लो ऽ ऽ	टा ऽ जो ऽ
ग॒ – –	ग॒ – म –	ग॒ ग॒ –	रे – स –
दइ ऽ ऽ	यो ऽ सो ऽ	बि न ऽ	रे ऽ र ऽ
ऩी – –	स – रे –	ऩि रे रे	रे – – –
स्सी ऽ ऽ	बि ऽ न ऽ	डो ऽ ऽ	रा ऽ ऽ ऽ
स – –			
के ऽ ऽ			

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'गारी' (हरदौल)

दतिया के असल दिमान
बुन्देला राजा एरच के

1. सिर के मौर दिमान जू को सोहे
   बांधो बांधो रे हजारी हरदौल, बुन्देला.....
2. माथे हो चन्दन दिमान जू को सोहे
   काढ़ो काढ़ो रे हजारी हरदौल, बुन्देला......
3. कानो में कुण्डल दिमान जू को सोहे
   पहरो पहरो रे हजारी हरदौल, बुन्देला.....
4. गरे मे हरवा दिमान जू को सोहे
   पैरो पैरो रे हजारी हरदौल बुन्देला.....
5. अंगन हरदी दिमान जू खो सोहे
   लागो–लागो रे हजारी हरदौल, बुन्देला......
6. हातन कंगन दिमान जू को सोहे
   पैरो–पैरो रे हजारी हरदौल, बुन्देला.....
7. अंगन बागौ दिमान जू खाें सोहे
   पैरो पैरो रे हजारी हरदौल, बुन्देला.......

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* 'पीलू की झलक' (लय का सौन्दर्य)

स्थाई :–

— — नि़ स	रेग रेग रे स	स ग रे स	नी — नी स
ऽ ऽ द ति	या ऽ के ऽ	अ स ल दि	मा ऽ न बु
ग ग रे स	ग ग रे स	स —, नि़ स	
दे ला रा जा	ए ऽ र च	के ऽ, द ति	

अन्तरा :– 'दादरे की लय'

— — नि़	नि़ नि़ —	स — नि़	— स —
ऽ ऽ सि	र के ऽ	मौ ऽ र	ऽ दि ऽ
ग — ग	रे स —	स — —	स — —
मा ऽ न	जू को ऽ	सो ऽ ऽ	हे ऽ ऽ

'पुनः कहरवा'

— — नि़ स	रेग रेग रे स	स ग रे स	नी — नी स
ऽ ऽ, बां धो	बां धो रे ह	जा री ह र	दौ ऽ ल बु
ग ग रे स	ग ग रे स	स —, नि़ स	
दे ला रा जा	ए ऽ र च	के ऽ, द ति	

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'गारी' (सुनो जू) या (भलैं जू)

का कारन बृषभान लाड़ली है उदास चितचोर सुनौ जू ।
मुख मलीन छविहीन दृगन से, धुबी कजर की कोर सुनौ जू ।
लै उसांस राधे जू बोली, लख ललिता की ओर सुनौ जू ।
सपने में आये मन मोहन, छलिया नन्द किसोर सुनौ जू ।
बे ठांड़े भये आन पलका ढिंग, निरखत हमरी ओर सुनौ जू ।
मै सरमाई नजर झुकाई, रै गई गरदन टोर सुनौ जू ।
ढोड़ी पकर कही उन ऐसीं, चन्दहिं लखौ चकोर सुनौ जू ।
भाग जगौ पै मै ना जागी, काहू कौ का खोर सुनौ जू ।
जब मै जागी भाग सो गओ, रै गई बिथा बटोर सुनौ जू ।
कूंकत रई पपीरा जैसीं, तलफत हो गओ भोर सुनौ जू ।
बे ते श्याम बड़े निरमोही, आखर चोर सो चोर सुनौ जू ।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* — नी स रे ग म – 5 स्वर (सब शुद्ध)

'मध्य–लय'

स्थाई :–

ग – ग म	^ग^रे ग स रे	ग म ग रे	स रे स नी
का ऽ का ऽ	र न वृ ष	भा ऽ न ला	ऽ ड़ ली ऽ
स – स रे	ग ग ग म	ग – रेस स	रे – ग –
है ऽ उ दा	ऽ स चि त	चो ऽ रऽ सु	नो ऽ जू ऽ

– शेष पंक्तिया इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'राम–विवाह' *(गारी, ढिमरियाई शैली में)*

धानुस उठाए राजा राम ने
धानुस उठाय भगवान ने
तकत भए ते सब भूप
अरे मुगद भई सीता जानकी जू
अब दिखो राम को रूप
जनक जू ने ब्याव रचे ते सीता के
सीता के माई सीता के जनक जू ने ब्याव रचे सीता के
अब काहे के मड़वा करें
मड़वा करें जू काए के रोप दएं खम्ब
अरे काहे के टीका करैं जू
काए कें पखारौं पांव, जनक जू ने
हरे बांस मड़वा करैं जू
मलंयागिर रोप दयें खाम्ब
अरी चन्दन के टीका करैं जू
कंचन के पखारूं चारई पांव, जनक जू नै....
जब आ गई बरातै राजा राम की
राम की जू डेरा दओ लखूरो बाग
राजा जनक के बागों मे मेले भगवान ए दइया
ब्याव रचे ते सीता के
अरी ए गॉव, में संका हो गई
पिड़ आए है राजा राम जनक जू ने.....
ब्याहन आ गए राजा राम जनक जू ने ब्याव रचे
मड़वा मारे राम ने बिरमा ने मखाने दौर
सीता चांवर मार लई
लछमन ने ओढ़ लए बान जनक जू ने
राम लखन दोई जेवन बैठे काहों रची जेवनारी जू
काहे की पातर काहे के दौना, काहे की सींक समारी जू
आम की पातर बरिया को दोना, सौने की सींक समारी जू
निंबुआ आम करौंदा कटहर, परमल की तरकारी जू
हलुआ मोहन भोग मिठाई, पूरी पुआ सुहारी जू
राम लखन दोई जेवन बैठे, काहों रची जेवनारी जू

संकलन
कु0म0उ0

स्वर–लिपि

'कहरवा की लय'

नी स रे ग म (5 स्वर)
'गंधार कोमल'

स्थाई :–

ग ग ग ग	ग ग ग रे	– स – रे	(नी) स – – –
ध नु स उ	ठा ए रा जा	ऽ रा ऽ म	ने ऽ ऽ ऽ
नी नी नी स	रे स रे स	– रे – स	स – – –
ध नु स उ	ठा ए भ ग	ऽ वा ऽ न	ने ऽ ऽ ऽ
रे स रे स	रे स रे स	स – – –	म म म म
त क त भ	ये ते स ब	भू ऽ ऽ प	अ रे म ग
म म म म	(ग) म म – म	– म म म	म म म म
न भा ई ती	सी ता ऽ जा	ऽ न की जू	अ ब दि खे
म – म म	ग रे स –	स ग ग रे	ग ग – स
ऽ रा ऽ म	को ऽ रु ऽ	प ज न क	जू ने ऽ ब्या
– रे स रे	स – स –	स –	
व र चे ते	सी ऽ ता ऽ	के ऽ	

'शेष दो अन्तरे इसी धुन में'

(आगे लय द्रुत हो जाती है एवं धुन बदल जाती है)

गग –ग ग– गग	–रे –स स– स–	नि– निस ग– –ग	रे– स– स– स–
राजा ऽज नक जूके	ऽबा ऽग मेंऽ मेऽ	लेऽ भग वाऽ ऽन	ऐऽ दइ याऽ ऽऽ

'गोरी'

बन आए बैद लला गिरधारी,
और सिरी अवध बिहारी मेरे लाल ।

1. सैंनन–सैंनन टेरें ललता प्यारी,
देखें जइयो राधा जू की नारी मोरे लाल।

2. उंगरी पकर कें पौंचा पकर लौ,
झपट पकर लई नारी मोरे लाल ।

3. ना इनै गरमी ना इनै सरदी,
सन्नपात बीमारी मोरे लाल ।

4. ढ़ोरा मिरचैं बाय बिरंगें,
सोंठ की पुरियां न्यारी मोरे लाल ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* निऺ स रे ग म ध (6 स्वर)

स्थाई :–

ग़ म ^ग^रे ग	प – म गरे	रेग म मग रे	स रे स निऺ
ब न आ ए	बै ऽ द लऽ	लाऽ ऽ गिऽ र	धा ऽ री ऽ
निऺ स रेग म	ग गरे सनिऺ स	रेग मग रे सनिऺ	स – – स
औ र सि री	अ वऽ धाऽ बि	हाऽ रीऽ मे रेऽ	ला ऽ ऽ ल

– अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'गारी' *(ब्याह)*

ब्रहमा खों काहा बिगारो री ब्रहमा खों

1. सब खां लिख दए महल अटारी हाँ महल अटारी
मोरी गिरजा खां जंगल गुजारो री, ब्रहमा खों ......

2. सब खां लिख दए हाथी घोड़ा हाँ हाथी घोड़ा
मोरी गिरजा खां डेड़ सींग बारो री, ब्रहमा खों .....

3. सब खां लिख दई मनोहर जोड़ी हाँ मनोहर जोड़ी
मोरी गिरजा खां बर मतवारो री, ब्रहमा खों .....

4. दूल्हे खां देख बिकल भए नैना हाँ बिकल भए नैना
मन नईंयां भरत हमारो री, ब्रहमा खों ....

– संकलन

स्वर – लिपि

'ताल–कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* — नि़ स रे ग॒ म – 5 स्वर (गंधार कोमल)

स्थाई :–

ग॒ – ग॒ ग॒म	म – मग॒ ग॒	रे – स रे	ग॒ – रे स
ब्र ऽ म्हा खोंऽ	का ऽ हाऽ बि	गा ऽ रो ऽ	री ऽ ब्र ऽ
रे – स –			
म्हा ऽ खों ऽ			

अन्तरा :–

नि़ – नि़ –	स – स –	ग॒ ग॒ रे स	स – म –म
स ब खाँ ऽ	लि ख द ए	म ह ल अ	टा ऽ री ऽहाँ
ग॒ ग॒ रे स	रे – स –	– – नि़ स	ग॒ – ग॒ ग॒म
म ह ल अ	टा ऽ री ऽ	ऽ ऽ मो री	गिर ऽजा ऽ कोऽ
म – मग॒ ग॒	रे स स रे	ग॒ – रे स	रे – स –
जं ऽग ऽल गु	जा ऽ रो ऽ	री ऽ ब्र ऽ	म्हा ऽ कों ऽ

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'दादरा'

कर दई बिदा भुंसारे सें नदिया पे मचल गई
आय हाय रे नदिया पे मचल गई
1. पहले लिबउआ मेरे ससुरा जी आए
ससुरा जी आए संगै गाड़ी ले आए
गाड़ी खों देख धना रो रई थीं नदिया पै मचल गई
2. दूजे लिबउआ मेरे जेठा जी आए....
3. तीजे लिबउआ मेरे ननदेऊ जी आए....
4. चौथे लिबउआ मेरे देवरा जी आए....
5. पांचै लिबउआ मेरे राजा जी आए
राजा जी आए संगै गाड़ी ले आए
राजा खों देख धना हंस रई रे, नदिया पे मचल गई
आय हाय रे नदिया पे मचल गई

— *संकलन*

स्वर—लिपि

'ताल—दादरा' (द्रुत लय) — ध़ स रे ग म प (6 स्वर)

स्थाई :—

म म म	म — म	प — —	म — ग
क र द	ई ऽ बि	दा ऽ ऽ	भुं ऽ ऽ
रे स —	रे म —	म — —	म म ग
सा ऽ ऽ	रे ऽ ऽ	सें ऽ ऽ	न दि ऽ
ग रे रे	स — स	रे रे —	रे — —
या ऽ पे	ऽ ऽ म	च ल ऽ	ग ई ऽ
स ध़ —	स रे —	म — —	म म ग
आ य ऽ	हा य ऽ	रे ऽ ऽ	न दि ऽ
ग रे रे	स — स	रे रे —	रे — —
या ऽ पे	ऽ ऽ म	च ल ऽ	ग ई ऽ

अन्तरा :—

ध़ ध़ —	ध़ रे रे	रे रे —	रे रे —
प ह ऽ	ले ऽ लि	ब उ आ	मे रे ऽ
स ध़ —	ध़ रे रेस	स — —	स — —
स सु ऽ	रा ऽ जीऽ	आ ऽ ऽ	ये ऽ ऽ
ध़ ध़ —	ध़ रे रे	रे रे —	रे रे —
सु सु ऽ	रा ऽ जी	आ ये ऽ	सं गै ऽ
सं ध़ ध़	रे स —	स — —	स — —
गा ऽ ड़ी	ऽ ले ऽ	आ ऽ ऽ	ये ऽ ऽ
म म —	म — मप	प — म	म म ग
स सु ऽ	रा ऽ कोऽ	दे ऽ ख	धा ना ऽ
रे स —	रे म —	म — —	म म ग
रो ऽ ऽ	र ई ऽ	रे ऽ ऽ	न दि ऽ
ग रे रे	स — स	रे रे —	रे — —
या ऽ पे	ऽ ऽ म	च ल ऽ	ग ई ऽ

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'दादरा'

नजरिया मोयसें मिलइयो मोरे राजा,
नजरिया मोयसें ऽ ऽ ऽ ।

1. कि मोरे राजा अंगना में कुइयां खुदइयो,
कि पनियां मोयसें भरइयो मोरे राजा ।
2. कि मोरे राजा अंगना में बगिया लगइयो,
मालिनिया मोयखां बनइयो मोरे राजा ।
3. कि मोरे राजा अंगना में मण्डप छबइयो,
दुलनियां मोयखां बनइयो मोरे राजा ।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

('भैरवी' के निकट है)

'ताल–दादरा' (मध्य लय)

स्थाई :–

			स
			न
स ग –	रे स –	नि रा स	– स –
ज रि ऽ	या ऽ ऽ	मो य से	ऽ मि ऽ
स – ग	म प ध	प म ग	रे रे –
ल इ यो	मो रे ऽ	रा ऽ जा	ऽ न ऽ
स ग –	रे स –	नि स स	
ज रि ऽ	या ऽ ऽ	मो य सें	
X	O	X	O

अन्तरा :–

			प
			कि
प ध प	म प म	ग म म	– स –
मो ऽ रे	रा ऽ जा	अं ग ना	ऽ में ऽ
सं ग ग	म मं मग	रे – –	स – –
कु इ यां	ऽ ऽ खुऽ	द इ ऽ	यो ऽ ऽ
स – स	– – रे	ग – म	म म –
कु इ यां	ऽ ऽ खु	द इ यो	सैं ऽ यां
स ग ग–	म– मं– ग	रे – –	स – –
कु इ यांऽ	ऽऽ ऽऽ खु	द इ यो	ऽ ऽ कि
स ग –	रे स –	नि स स	– स –
प नि ऽ	यां ऽ ऽ	मो य सें	ऽ भ ऽ
स – ग	म प ध	प म ग	रे, रे –
र इ यो	मो रे ऽ	रा ऽ जा	ऽ, न ऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'कहरवा'

सासों पनियां कैसे जाऊं, रसीले दोऊ नैना ।

1. बहु ओढ़ो चटक चुनरिया, और सिर पे धरो गगरिया,
छोटी ननदी लै लेओ साथ, रसीले दोउ नैना ।
2. बहु ओढ़ो चटक चुनरिया, और सिर पर धर लई गगरिया,
छोटी ननदी लै लई साथ, रसीले दोऊ नैना ।
3. ननदी बैठो कदम की छइयां, मैं भर कर लाऊं पनियां,
ननदी घरै न कहियो जाय, रसीले दोऊ नैना ।
4. बा ननदी असल छिनरिया, बाने जाय जगाओ भइया,
भइया भौजी के दो–दो यार, रसीले दोऊ नैना ।
5. बैसाख में ब्याह करुंगी, असढ़ा में बिदा करुंगी,
ननदी फिर न लैहों तेरे नांव, रसीले दोऊ नैना ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल–कहरवा'

ध़ नी स रे ग म – 6 स्वर (दोनों गंधार)
(शुद्ध गंधार का विशिष्ट प्रयोग आरोह अवरोह दोनो में)
'राग–पीलू'

स्थाई :–

म – म –	ग – ग रे	रे स स रे	ग – – रेस
सा ऽ सो ऽ	प नि या ऽ	कै ऽ से ऽ	जा ऽ ऽ ऽऽ
रे – रे –	स – स –	नि़ ध़ नि़ –	स – स –
ऊं ऽ र ऽ	सी ऽ ले ऽ	दो ऽ ऊ ऽ	नै ऽ ना ऽ
O	X	O	X

अन्तरा :–

– – स स	ध़ – स –	स स स रे	ग ग म –
ऽ ऽ ब हु	ओ ऽ ढ़ो ऽ	च ट क चु	न रि या ऽ
– – म म	म ग ग रे	रे ग – ग	रे – रे –
ऽ ऽ औ र	सि र पे ऽ	ध रो ऽ ग	ग रि या ऽ
स म म –	ग – ग रे	रे स स रे	ग – – रेस
छो ऽ टी ऽ	न न दी ऽ	लै ऽ ले ओ	सा ऽ ऽ ऽऽ
रे – रे –	स – स –	नि़ ध़ नि़ –	स – स –
थ ऽ र ऽ	सी ऽ ले ऽ	दो ऽ ऊ ऽ	नै ऽ ना ऽ
O	X	O	X

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'बारामासी'

श्याम मिले रे समझइयो रे ऊधो मोरे श्याम मिले रे समझइयो–2

1. अरे असढ़ा मास अंगेरो महीना–2 आके छत्ता तनइयो रे ऊधौ मोरे ।
2. अरे साहुन मास सुहानो महीना–2 सो आके झूला डरइयो रे ऊधौ मोरे ।
3. अरे भादौ मास में मुरली बजी थी–2 सो आके मुरली सुनइयो रे ऊधौ मोरे ।
4. अरे क्वांर मास में फूली केतकी–2 कातक धरम को महीना रे ऊधौ मोरे ।
5. अगहन मास में ठंडक पर रई–2 सो आके नेह लगइयो रे ऊधो मोरे ।
6. पूस मास मे फूली चमेली सो उतईं बिलम नै जइयो रे ऊधो मोरे ।
7. माघ मनाए मानत नइयां, फगुना फाग खिलइयो रे ऊधौ मोरे ।
8. चैत मास चिंता मे जा रए, हाथ जोर कह दइयो रे ऊधौ मोरे ।
9. ब्याकुल भईं बैसाख राधिका, जेठ जियत न पइयो रे ऊधौ मोरे ।

श्याम मिले रे समझइयो .... ।

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल कहरवा' *(ठेका दुगुन में)* नि़ स रे – 3 स्वर (राब शुद्ध)
(मध्य लय)

स्थाई :–

प़नि़ स रे– –स	सरे– सरे– सनि़ पनि़–	प़नि़– स– रे –स	सरे– सरे– सनि़ नि़–
श्या ऽ म ऽमि	लेऽ रेऽ स मऽ	झइ ऽऽ योऽ ऽरे	ऊऽ धोऽ मोऽ रेऽ
प़नि़ स रे– –स	सरे– सरे– नि़ सरे	नीस– स– स– स	
श्या ऽ म ऽमि	लेऽ रेऽ स मऽ	झ इ यो ऽ	

— शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'झूला' (बिलवारी)

गिर गई मोरे महाराज, झूला झुलत बेंदी गिर गई,
गिर मई मोरे महाराज, झूला झुलत बेंदी कैसें गिरी ।

1. कौन गढ़ा दई जा बिदियां, कौन धरा दई रवार,
   झूला झुलत बेंदी गिर गई ।
2. ससुरा गढ़ा दई जा बिदियां जेठा धरा दई रवार,
   झूला झुलत बेंदी ऐसें गिरी ।
3. कौन सहर की जा बिदियां अरे कौना है सुघर सुनार,
   झूला झूलत बेंदी कैसें गिरी ।
4. दतियां सहर गढ़ी जा बिदियां, पन्ना के सुघर सुनार,
   झूला झुलत बेंदी ऐसे गिरी ।

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल--दीपचन्दी' ('चांचर' लय विलम्बित) 'राग रायसा की झलक'

स्थाई :–

स ध़ –	स – स –	रेग सरे –	म – ग –
गि र ऽ	ग ऽ ई ऽ	मो रे ऽ	म ऽ हा ऽ
म – –	– – – –	– – –	प – – ग
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ज
ग – स	रे – नी़ –	नी़ स –	रे ग ग –
झू ऽ ऽ	ला ऽ झु ऽ	ल त ऽ	बें ऽ दी ऽ
रे रे –	(म)गरे – स नी	स – –	– – – –
गि र ऽ	ऽ ऽ ऽ ग	ई ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
X	2	O	3

अन्तरा :–

स ग रे	स – नी़ –	स – –	रे – प –
कौ ऽ ऽ	न ऽ ऽ ग	ढ़ा ऽ ऽ	द ऽ ई ऽ
ग – रे	स – नी़ –	स – –	– – – –
जा ऽ ऽ	बिं ऽ दि ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
स ध़ –	स – स –	रेग सरे –	म – ग –
कौ ऽ ऽ	न ऽ धा ऽ	रा ऽ ऽ	द ई र ऽ
म – –	– – – –	– – –	प – – ग
वा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र
ग – स	रे – नी़ –	नी़ स –	स – प –
झू ऽ ऽ	ला ऽ झु ऽ	ल त ऽ	बें ऽ दी ऽ
रे रे –	(म)गरे – स नी़	स	
गि र ऽ	ऽ ऽ ऽ ग	ई ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
X	2	O	3

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'लड़की की लगुन में'

धीरज धरो जानकी माई वर मिलहैं रघुराई जी

1. काहे सें गंगा मइया धीमी बहत हैं सो,
   काहे जमुन गहराई हो ।
2. ब्याहे सें गंगा मइया धीमी बहत हैं सो,
   क्वांरे जमुन गहराई हो ।
3. काहे सें निंबिया करई लगत है सो,
   काहे सीतली छांव हो ।
4. खाए सें निंबिया करई लगत है सो,
   बैठे सीतली छांव जी ।
5. काहे सें भइया बैरी लगत है सो,
   काहे दाहिनी बांह जी ।
6. हिस्सा सें भइया बैरी लगत है सो,
   रण में दाहिनी बांह जी ।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल–दीपचन्दी' (विलम्बित लय)

6 स्वर (सब शुद्ध)
'तिलक कामोद के निकट'

स्थाई :–

ग – म	रे – ग म	प प –	म – ग –
धी ऽ ऽ	र ऽ ज ऽ	धा रो ऽ	ऽ ऽ जा ऽ
रे ग म	म – ग रे	स रे –	स – नि़ –
ऽ न ऽ	की ऽ ऽ ऽ	मा ऽ ऽ	ई ऽ ऽ ऽ
नि़ स –	रे ग म –	ग – रेस	नि़ – स –
व र ऽ	मि ऽ ल ऽ	है ऽ ऽऽ	र ऽ धु ऽ
रे ग म	रे – स नि़	स – –	– – – –
रा ऽ ऽ	ई ऽ ऽ ऽ	जी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
X	2	O	3

— *अन्तरे इसी धुन में गाए जाएंगे ।*

'बरसाती' (मल्हार)

तुम बिन मोरे बिदेसी पियरवा, कैसे कटे बरसात रे ।
1. बादर गरजै बिजुरी चमकै, रिमझिम परत फुहार रे ।
सूनी सिजरिया पै जिया मोरा तरपै, कैसे कटै जा रात रे ।
2. जल में चमकै जल की मछरिया, रन चमकै तलवार रे ।
भरी सभा में पिया की पगड़िया, सिजिया पै बिंदिया हमार रे ।
तुम बिन .... ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल दीपचन्दी' (विलम्बित लय) (7 स्वर)
'देस' व 'तिलक कामोद' की झलक

स्थाई :–

प प –	प – प ध	म – –	म ग रे रे
तु म ऽ	बि ऽ न ऽ	मो ऽ ऽ	रे ऽ ऽ बि
रे ग रे	ग म म ग	रे स –	स – – –
दे ऽ ऽ	सी ऽ पि ऽ	य र ऽ	वा ऽ ऽ ऽ
(स)प़ – –	स – – स	रे – –	रे ग स रे
कै ऽ ऽ	से ऽ ऽ क	टे ऽ ऽ	ब ऽ र ऽ
प – –	(प)ध – – प	म – –	ग – – स
सा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ त	रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
X	2	O	3

अन्तरा :–

प ध –	(प)ग – म –	प प –	प – – –
बा ऽ ऽ	द ऽ ऽ र	ग र ऽ	जे ऽ ऽ ऽ
प ध प	म ग म –	प ध प	ध (रें)सं – –
बि जु ऽ	री ऽ ऽ ऽ	च म ऽ	के ऽ ऽ ऽ
नि नि –	नि – नि –	ध ध –	प ग ग –
रि म ऽ	झि ऽ म ऽ	प र ऽ	त ऽ फु ऽ
प – –	ध – – प	म – ग	रे ग रे सा
हा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र	रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
प – –	प – ध –	(प)म म –	म ग रे स
सू ऽ ऽ	नी ऽ सि ऽ	ज रि ऽ	या ऽ पे ऽ
रे ग रे	(ग)म – ग रे	स स –	नि़ – – –
जि या ऽ	मो ऽ रा ऽ	त र ऽ	पै ऽ ऽ ऽ
(स)प – –	स – – स	रे – –	रे ग स रे
कै ऽ ऽ	से, ऽ ऽ क	टे ऽ ऽ	जा ऽ ऽ ऽ
प – –	(प)ध – – प	म – –	ग – – स
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ त	रे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
X	2	O	3

– शेष पंक्तियां इसी प्रकार गाई जाएंगी ।

'राछरा'

छींकत घुड़ला पलानियो राजा, बरजत भए असवार
के माई मोरी भली रे, उरई की चाकरी ।

1. कै रूपै आती चाकरी राजा, कै रूपये आती चाकरी राजा,
पांच रूपैया की चाकरी राजा, दस जो उठे खरचा हो माई मोरी।
2. राजा ने पीठा फेरे न पाइयो देवरा हिंडोला डराय,
हो माई मोरी भली रे उरई की चाकरी ।
3. चलो सीता सी रानी भौजाई–2
देवरा हिंडोला डराय, हो माई मोरी ।
4. पैली मचकनी जो घाली राजा देवरा ने,
दूजी में दई झझकोर, हो माई मोरी ।
5. सबरे उरगियां उरई को जायं, हमई उरई खों जाएं,
हो माई मोरी.. ....।

— संकलन

स्वर–लिपि

'ताल दीपचन्दी' — स ग म प ध – 5 स्वर (ध कोमल)

'राग पीलू की छाया'

स्थाई :–

स – –	ग – ग –	म – –	म प ध धप
छी ऽ ऽ	क ऽ त ऽ	घु ड़ ऽ	ला ऽ ऽ पऽ
प म –	म प – म	ग – –	ग – ग –
ला ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ नि	यो ऽ ऽ	रा ऽ जा ऽ
ग म ग	मप ध ध प	प म –	म प म ग
ब र ऽ	जऽ ऽ त ऽ	भ ए ऽ	अ ऽ स ऽ
ग़ – –	– – – –	– – –	– – ग स
वा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र के
स ग –	प – प –	ग मप –	म ग ग –
मा ई ऽ	मो ऽ री ऽ	भ लीऽ ऽ	रे ऽ उ ऽ
म म –	प – म ग	म – –	– – – म
र ई ऽ	की ऽ ऽ ऽ	चा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ क
म – –	– – – –		
री ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ		
X	2	O	3

— अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'स्वांग' (सरमन–श्रवण कुमार)

अंधी अंधा बुलाए–2 बेटा मोय पानी पिआय दे,
सरमन बेटा मोय पानी पिआय दे ।

1. एक हण्डी दो पेट बनाए सुगर नार सरमन की–2,
एक बनाई खट्टी महेरी दूजे खीर जतन की, दूजे खीर बनाई बेटा मोय।

2. पहली थाल पति कों परसी पिता दई सरकाय,
आज भोजन नीकें बने हैं ठाकुर भोग लगाव–2 बेटा मोय ।

3. ऐसें भोजन रोज बनत हैं ठाकुर भोग लगाओ,
रोज बनत है खट्टी महेरी आजईं खीर बनाई–2 बेटा मोय ।

4. हरे–हरे बांस कटाए सरमन कांवर लीन बनाय,
मात पिता दोई कांवर बिठालय तीरथ उनै कराये–2 बेटा मोय ।

5. एक बन नाके दो बन नाके तिज बन पहुँचे जाये,
गैल चलत में प्यास लगी है, बेटा पानी पिआव–2 बेटा मोय ।

6. बात सुनी जब सरमन बेटा तूमी तुरत निकाल,
पानी खोजत सरमन फिर रए, सागर पहुँचे जाये–2 बेटा मोय ।

7. जब सरमन ने तूमी डुबाई सबद भयो है तान,
सबद सुनत दसरथ ने देखा तुरतई मारे बान–2 बेटा मोय ।

8. बान लगत सरमन के मुख सैं निकला है हे राम,
राम सुनत दसरथ जी आए सरमन बोले बात–2 बेटा मोय ।

9. प्यासे मात पिता है ज्ञानी सरमन बोले बात,
उनकी जाकें प्यास बुझा दो सुन लो दसरथ बात–2 बेटा मोय।

10. इतनी बात सुनी सरमन की तूमी तुरत उठाई,
दसरथ पानी लै के पहुँचे अंधा अंधी पास–2 बेटा मोय ।

11. दसरथ पानी लैके पहुँचे हूकन–हूकन बोले
अंधी अंधा बानी जान गए को लै के आयो पानी
हमें सांची बताओ–2 बेटा मोय ।

12. दसरथ बोल रए हैं देखो मन में धर कैं धीरा
मिरगा धोखो मार दए है हमने सरमन तीरा,
मरे सरमन कुमार–2 बेटा मोय ।

कृ०प०उ०

13 जौन बान लगे सरमन कों बोई लगें तुमाय,
बेटा सोक मरे हम जैसें ऐसई मौत तुमाय,
मोरे स्रापई लग जाय–2 बेटा मोय ।

14. राम चन्द्र वनवास भए कैकेई मांग वरदान,
अंधी अंधा स्राप दए सें, वो लागे आन,
दसरथ छोड़े पिरान–2 बेटा मोय ।

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*

7 स्वर (सब शुद्ध)
'तिलक कामोद की झलक'

स्थाई :–

			— —, सग सग
			ऽ ऽ, अं धी
सम –सम –म	म म म ग	रेस – रेग –रे	स – नि़ –
अं ऽ धा ऽबु	ला ए अं धी	अं ऽ धा ऽबु	ला ऽ ऽ ये
रे – रे रेम–	रे – सनि़ –स	रे ग रे स	– – नि़– स–
बे ऽ टा मोय	पा ऽ नीऽ ड़पि	आ य दे ऽ	ऽ ऽ सर मन
रे – रे पम–	रे – सनि़ –स	रे ग रे स	– –,
बे ऽ टा मोय	पा ऽ नीऽ ड़पि	आ य दे ऽ	ऽ ऽ,

अन्तरा :–

नि़ नि़ नि़ नि़	स सस स रे	रेग ग– रे– रेरे	स स स –
एक ह ण्डी दो	पे टब ना ये	सुग रना ऽर सर	म न की ऽ
रे रेरे म म	म मप प प	– – – –	– – म रे
ए कब ना ई	ख ट्टीम हे री	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
रे रेरे म म	म मप प प	पध ध– प मम	गग ग रे स
ए कब ना ई	ख ट्टीम हे री	दूऽ जेऽ खी रज	तन की दू जे
नि़ स रे गरे	स – नि़ –	रे – रे पम–	रे – सनि़ –स
खी ऽ र ऽब	ना ऽ ऽ ई	बे ऽ टा मोय	पा ऽ नी ऽपि
रे ग रे स	– –,		
आ य दे ऽ	ऽ ऽ,		

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाऐ जाऐंगे ।*

'राई' (नृत्य–गीत)

कां गए रे बछेड़ा रथ बेंदला हा,
कां गए रे ऊदल मलखान,
कां गये बछेड़ा खींचन हार ।

दो दो ना धरियो गगरिया,
तुमैं रे लग जैहे नजरिया ।

1. ऊंची डगर सिर गागर है भारी
उड़–उड़ जा रई चुनरिया, तुमैं रे......

2. गिन गिन पांव धरे रे धरनी पै
लचकत जा रई कमरिया, तुमैं रे....

3. मुख भर पान नयन भर सुरमा
हीरा सी दमकें पुंगरिया, तुमैं रे.....

4. बारी उमरिया है पतरी कमरिया
सोला बरस की उमरिया, तुमैं रे......

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'ताल दीपचन्दी', 'कहरवा', 'दादरा'
(तीनों तालों का प्रयोग)
'लय का अद्भुत सौन्दर्य'

नि़ स रे ग म प — 6 स्वर
(सब शुद्ध)

पद :—

	म म —	म — म मग	म (रे)ग ग	स — स रे
	कां ग ए	रे ऽ ऽ बऽ	छे ड़ा ऽ	र ऽ थ ऽ
दीपचन्दी	रे ग —	रे — स —	स़ — —	— — — —
	बें ऽ ऽ	द ऽ ला ऽ	हा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
	X	2	O	3
	म — म म	म — म —	ग ग ग ग	रे — स स
	कां ऽ ग ए	रे ऽ ऊ ऽ	द ल म ल	खा ऽ ऽ न
कहरवा	स रे —रे रे	रे — ग —	रे — रे स	स — — सं
	कां ग एऽ ब	छे ऽ ड़ा ऽ	खैं ऽ च न	हा ऽ ऽ र
	X	O	X	O

कृ०प०उ०

स्थाई :-

स नि़ नि़ दो ऽ दो	स – स ऽ न ऽ	स रे रे ध रि यो	प म – ऽ ग ऽ
म म म ग रि या	– म – ऽ तु ऽ	मग रे रे मेऽ रे ऽ	स रे ग ल ग ऽ
ग – गरे जै ऽ हैऽ	– रे – ऽ न ऽ	रे रे – ज रि ऽ	स – – या ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :-

ग – ग ऊँ ऽ ची	– रे – ऽ ड ऽ	ग ग – ग र ऽ	ग रे – सि र ऽ
रे स रे गा ऽ ग	ग ग रे र है ऽ	गरे – – भाऽ ऽ ऽ	स – – री ऽ ऽ
नि़ स – उ ड़ ऽ	स स – उ ड़ ऽ	स रे रे जा ऽ र	प – म ई ऽ चु
म म म न रि या	– म – ऽ तु ऽ	मग रे रे मेऽ रे ऽ	स रे ग ल ग ऽ
ग – गरे जै ऽ हैऽ	– रे – ऽ न ऽ	रे रे – ज रि ऽ	स – – या ऽ ऽ
X	O	X	O

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'ढिमरियाई' (नृत्य–गीत)

धरे कंधा पै जार मछरिया मारन चले
मारन चले हाँ मारन चले, धरे........

1. कर लओ कलेवा करी तैयारी
पहुँचे तला के पार, मछरिया.......

2. एक दिनां बीतो सो दो दिनां बीते
बीत गए दिन चार मछरिया........

— *संकलन*

स्वर–लिपि

'दोनों गंधार का वैशिष्ट्य'

'ताल दादरा'

स्थाई :–

ग॒ – ग॒	– ग॒ –	ग॒ – –	ग॒ – –
ध ऽ रे	ऽ कं ऽ	धा ऽ ऽ	पे ऽ ऽ
रे – –	– रे स	रे ग॒ –	ग॒ – –
जा ऽ ऽ	ऽ र म	छ रि ऽ	या ऽ ऽ
रे – रे	रे रे –	रे स –	– – –
मा ऽ र	न च ऽ	ले ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
ग – म	– म –	म – –	म – –
मा ऽ रऽ	न च ऽ	ले ऽ ऽ	हाँ ऽ ऽ
ग – –	ग – ग	रे स –	– – –
मा ऽ रऽ	न च ऽ	ले ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

अन्तरा :–

नि़ – –	नि़ – नि़	स – स	– स –
क र ले	ओ ऽ क	ले ऽ वा	ऽ क ऽ
ग॒ – –	ग॒ – –	रे – –	रे – –
री ऽ ऽ	तै ऽ ऽ	या ऽ ऽ	री ऽ ऽ
(ग)म – –	(ग)म – (ग)म	(ग)म – –	(ग)म ग –
प हुँ ऽ	चे ऽ त	ला ऽ ऽ	के ऽ ऽ
ग – –	ग स रे	ग॒ – –	ग॒ – –
पा ऽ ऽ	र म ऽ	छ रि ऽ	या ऽ ऽ
रे – रे	रे रे –	रे स –	– – –
मा ऽ र	न च ऽ	ले ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
X	O	X	O

— *शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।*

'ढिमरियाई'

बड़ी मुस्कल से पाए रे मैंने चार दिनां,

1. अरे पैलो दिनां बालापन में बीतो,
   खेलत फिर रए रे लरकन संग अंगना ।

2. दूजो दिनां ज्वानी में गमां दओ,
   मोपे छोड़ी नैं जावे रे प्यारी गोरी धनां ।

3. तीजो दिनां बिरधापन में बीतो,
   तन कांपन लागे रे जब तक हैं नैना ।

4. चौथे दिनां आ गई चलबे की बेरा–2,
   मोरो हंसा निकर गओ रे, हर के भजन बिना ।

– संकलन

स्वर–लिपि

'ताल कहरवा' *(ठेका दुगुन में)*
(द्रुत लय)

नि़ स रे ग म – 5 स्वर (सब शुद्ध)
'तिलककामोद की झलक'

स्थाई :–

			स रे ब ड़ी
नि़ – नि़ नि़ मुस ऽक ऽल से	स – रे स पा ऽ ये ऽ	रे – – – रे ऽ ऽ ऽ	नि़ – स रे मैं ऽ ने ऽ
स – स स चा ऽ र दि	स – – – नां ऽ ऽ ऽ		

अन्तरा :–

स – रे म पै ऽ लो दि	म – म ग ना ऽ बा ऽ	म ग म –ग –ग रेस ला ऽप ऽन मेंऽ	स – स – बी ऽ तो ऽ
नि़ – नि़ नि़ खे ऽ ल त	नि़ स रे स फि र र ए	रे – – – रे ऽ ऽ ऽ	नि़ – स रे ल र क न
स स स स सं ग अं ग	स – – – ना ऽ ऽ ऽ		

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'कांड़रा' (धुबयाऊ)

साखी :-

हाथ जोर बिनती करौं, के सुनियो गरीब निवाज,
जो गलती होय दास सैं, सो बाखों लीजो भुलाए ।

अरे सबखों गोरी बन्दगी, के मितरन को पिरनाम,
हाथ खुले और जा गए, के सबखों सीताराम ।

सब देवतों में बड़े महादेव, सब नाजों में बड़ो चना,
किसम–किसम की बनै मिठाई, सेओं पपरियां और गुना ।

अरे हाड़ सूखा पिंजड़ा भए नसैं सूख भई तार,
और रोम–रोम सुर बज रओ, कि केवल राम सुहाए ।

गीत :-

नईं बन रईं बात बनाए सैं, बिन बालापन पाए सें

1. जिनके बाल सफेद हो रए का होहै तेल लगाए सैं बिन........
2. नैना की जोत भइया फीकी पर गई, का होहै नेहा लगाए सैं बिन........
3. मुख की कै रई सबईं बत्तीसी, का होहै बात दबाए सैं बिन........
4. कै रए लछमन ऊंचे मढ़ सैं, का होहै मत्था चढ़ाए सैं बिन........
5. जिस गाड़ी में खबर पौंचाने, बो गाड़ी जाबे बारी है ।
6. जा गाड़ी के नौ दरवाजे दसबीं खिरकी न्यारी है ।
7. संभर के बैठो जादा न ऐठों, इसे बड़ी बीमारी है ।
8. राम नाम का टिकट कटा लो, गंगाजमुन मुरारी है ।
9. चलते–चलते बा रुक गई गाड़ी, फिर नईं रोकन बारी है ।

– संकलन

स्वर–लिपि

साखी :–

ग – ग ग	– ग ग –	म – – ग	ग ग – ग
हा ऽ थ जो	ऽ र बि न	ती ऽ ऽ क	रौं ऽ ऽ कि
ग ग ग –ग	ग – ग ग	ग – – –	– – – ग
सु नि यो ऽग	री ऽ ब नि	वा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ज
नि़ – नि़ नि़	– – नि़ नि़	स – – स	स – – स
जो ऽ ग ल	ती ऽ हो ए	दा ऽ ऽ स	सैं ऽ ऽ सो
स – रे –	स – रे –	स स – –	स – – –
बा ऽ खों ऽ	ली ऽ जो ऽ	भु ला ऽ ऽ	य ऽ ऽ ऽ

स्थाई :–

			स स
			न ई
स स स स	स स स रे	स रे स नि़	नि़ – – –
ब न र ई	बा ऽ त ब	ना ऽ ए ऽ	सैं ऽ ऽ ऽ
रे रे रे रे	सरे – स स	स – स –	स – – –
बि न बा ऽ	ला ऽ प न	पा ऽ ए ऽ	सैं ऽ ऽ ऽ

अन्तरा :–

स रे रे –	स – स स	स रे रे स	– स स –
जि न के ऽ	बा ऽ ल स	फे ऽ द हो	ऽ र ए ऽ
सरे – रे रे	रे – स स	स रे स नि़	नि़
का ऽ हो है	ते ऽ ल, ल	गा ऽ ए ऽ	सैं ऽ ऽ ऽ

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

'रावला'

साखी :-

ए जी बड़े हुए तो भइया क्या हुआ–2
क्या हुआ रे भइया जैसें पेड़ खजूर

अरे पंछी खों छाया नहीं
अरे लागे बीरन फल लागे
भइया फल लागे अति दूर

अरे मोरी कही नई मानी मुगल ने
जब झींकत घुड़ला पलाने लए

पलाने लए जू, बइयत में हो गए असवार
अरे यही बाय पै कउआ पर गओ दाहिने पै
फिसर गई जाय मुगल ने. मोरी कही मानी नै

जब माता कै रई बायरौं
बायरौ भइया बहन घुड़ला की बात

अरे तिरिया बाला, लै गई स्वामी तिरिया पाएं ऐबात
मुगल ने मोरी कई मानी नै

गीत :-

माई की बाजनू पैजनियां
मइया की बाजनू पैजनियां

1. अरे कौना कों ल्याबें पांव पैजनियां–2
अरे कौना पे लाल उढ़निया–2 माई तोरी.........

2. अरे दुर्गा कों ल्याबें पांव पैजनियां–2
अर छतिया पै लाल उढ़निया–2 माई तोरी.......

— संकलन

कृ०प०उ०

स्वर–लिपि

साखी :–

– – म म	– म म म	म म म^ग रे	– स – रे	स – – –
ऽ ऽ ए जी	ऽ ब ड़े हु	ए तो भइ या	ऽ क्या ऽ हु	आ ऽ ऽ ऽ
– – म म	– ग – रे	रे –ग स स	स – – –	– – – स
ऽ ऽ भइ या	ऽ जै ऽ सें	पे ऽ ड़ ख	जू ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र

स्थाई :–

रेरे रेस
माई तोरी

रे –स रे– रेस	सस स रेरे रेस	रे –स रे– रेस	सस स
बा ऽज नूंऽ पैऽ	जनि या मइ याकी	बा ऽज नूंऽ पैऽ	जनि या

अन्तरा :–

स रे
अ रे

नीनी –नी स स	रेरे रेस स– स	मम –म म मग	रेग गरे सरे रेस
कौना ऽको ल्या बे	पांव पैऽ जनि या	कौना ऽपे ला लउ	ढ़नि याऽ, अऽ रेऽ
सरे –म म मग	गग गरे सस स–	मम –म म मग	रेग गरे सरे रेस
दुर्गा ऽको ल्या बेऽ	पांव पैऽ जनि याऽ	छति यापे ला लउ	ढ़नि याऽ, माई तोरी

– शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

सप्तम अध्याय

'बुन्देलखण्ड के लोक–वाद्य'

गायन, वादन तथा नृत्य के सम्यक् सम्मिलन को संगीत कहा जाता है । विराट प्रकृति लय, ताल, छंद, पर नर्तन करती गतिमान है । मनुष्य–जीवन संगीतमय है । संगीत की इस चतुर्दिक परिव्याप्ति में वाद्य का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि वाद्य की अनुपस्थिति में गायन तथा नृत्य क्रियाएँ प्रायः पंगु हो जाती हैं । सच तो यह है कि संगीत के इन अवयवों में वाद्य का प्रादुर्भाव प्रथम हुआ होगा । आदिमानव ने जब बादलों की गम्भीर गड़गड़ाहट, वर्षा की बूँदों की झमझमाहट, तेज हवाओं की सनसनाहट तथा समुद्री लहरों की छपछपाहट आदि सुनी होगी तब ध्वन्यानुकरण पर उसने अपनी तालियों को, लकड़ी अथवा पत्थर के टुकड़ों को बजाया होगा, उस ध्वनि में तन्मय होकर गुनगुनाया होगा तथा प्रसन्न होकर नाचने लगा होगा । इस प्रकार शास्त्रीय संगीत का उद्गम स्रोत लोक–संगीत ही है । लोक–संगीत में लोकवाद्यों की प्राचीनता तथा लोकप्रियता स्वयं सिद्ध है। डमरू देवाधिदेव भगवान शिव की पहचान है । विष्णु शंखधारी हैं । प्रजापति ब्रह्मा ढोल के निर्माता हैं । मुरली कृष्ण की पर्याय है । वाग्देवी वीणापाणि हैं । नारद, वीणा, करताल वादक हैं । महाभारत के महासमर का प्रतिदिन आरम्भ तथा अन्त शंख–ध्वनि से किया जाता था । फलतः वाद्यों की चिरंतन धारा अनादिकाल से चली आ रही है और इसका आविष्कार तथा विकास लोक–जीवन में ही हुआ है ।

बुन्देलखण्ड अपने लोकगीतों, लोकवाद्यों तथा लोकनृत्यों के लिये प्रसिद्ध है । यहां लोकवाद्यों का प्रयोग लोकगीतों नृत्यों में संगीत देने तथा स्वतंत्र रूप से वादन के लिये भी किया जाता है । लोकगायक स्वरों को सम बनाने, गीतों को तन्मयता से गाने, गायन के बीच सांस भरने (भराव) तथा श्रोताओं को मंत्र मुग्ध करने के लिये लोकवाद्यों का उपयोग करते हैं । लोक–संगीत सहज एवं प्रकृतितः होता है । इसमें स्वर और ताल प्रधान न होकर लय तथा धुन प्रधान होती है । यह शास्त्रीयता के बन्धन को स्वीकार नही करता। यही स्थिति लोकवाद्यों की भी हैं लोक जन वाह्याडम्बरहीन, बजाने की दृष्टि से उपेक्षित तथा सहज उपलब्ध वस्तुओं से ही बजाने का कार्य ले लेता है । यहां तुम्बी से बीन, गोल तुम्बे से इकतारा, बांस नरकुल से बांसुरी, आम की गुठली से पपीहा, ताड़ या बरगद

के पत्तों से पिपहरी आदि बना लिये जाते हैं । यहां तक कि थाली, लोटा, कटोरा, सूप, चालन, चिमटी, घड़ा ताली एवं चुटकी आदि सभी वाद्य के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं।जहां चक्की की घरघराहट तथा चूड़ियों की खनखनाहट के समवेत स्वर में गातीं ग्रामीण महिलाओं की धुनें अन्तर्मन को स्पर्श कर लेती हैं वही ढेकी, ऊखल–मूसल की धमक तथा चूड़ियों की खनक के बीच गाये जाने वाले गीत किसी अन्य वाद्य–यंत्र की अपेक्षा नहीं करते है। जलाशयों से पानी लाते–जाते समय स्त्रियों के पैर की पैंजनी तथा बिछुवा की रूनझुन की ध्वनि ही उनके गीतों के वाद्य यंत्र होते है। पुत्रजन्मोत्सव की खुशी का इज़हार वे थाली बजाकर कर लेतीं तथा कुछ भी नही मिला तो ताली की ताल पर वे अच्छे–अच्छे साजों को बेहाल कर देती हैं। ग्रामीणजन बैल–घोड़ों के गले में बंधी घंटी, घुंघरू तथा उनकी खुरों की टपटपाहट, ढेकली चलाने वाले पानी की सरसराहट तथा ढेकली की चरचराहट, तेल या रस पेरने वाले कोल्हू की मचमचाहट, नाविक पतवार की छपछपाहट तथा धोबी के कपड़े धोने से उत्पन्न ध्वनि की ताल पर मस्ती से गीत गाते देखे सुने जाते हैं। शास्त्रीय गायन तो बिना वाद्यों के सम्भव ही नहीं। पाश्चात्य संगीत, पॉप आदि तो वाद्यों के जखीरों के बीच गाया जाता है। इससे इतर, सरल बुन्देली लोक जीवन में प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिये हम प्रकृतितः वाद्य उपस्थित पाते हैं।

बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में गीतों के अनुरूप काल, स्थान, जाति के अनुसार वाद्य में परिवर्तन होते रहे हैं । यहां कुछ वाद्य तो ऐसे हैं जिनका प्रयोग स्थान विशेष तथा समय विशेष पर ही किया जाता है । "लोक जीवन में हमें वाद्यों के दो मुख्य स्वरूप मिलते हैं – प्रथम मनुष्य की क्रियाएं वाद्य का स्वरूप धारण कर लेती हैं जैसे ढेकली के चलाने से उत्पन्न ध्वनि । इन क्रियागत ध्वनियों को हम सुविधा के लिए क्रिया–वाद्य का नाम दे सकते हैं। द्वितीय–परन्तु दूसरे प्रकार के वाद्यों को हम वाद्यों के स्वरूप से ही सम्मुख लाते है –उदाहरण के लिये ढोलक। यदि हम इन वाद्यों के इतिहास को टटोलें तो हम इन प्रचलित वाद्यों के पीछे भी क्रिया को ही पायेंगे । लोकवाद्य अपने उत्पत्ति काल में ऐसे साधनों से उत्पन्न हुए जो प्रतिदिन के कार्यो में आते रहे । आज भी आसाम का अत्यधिक प्रचलित लोक वाद्य दो बांसो से बनता है जो बहुत मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है । ये बांस लोक मानस के क्रिया अंग ही रहे होगें । लोक वाद्य संगीत के साथ संगत

देने वाले उपकरण ही नहीं रह गये, अपितु वह स्वतंत्र रूप से भी बजाये जाने लगे और श्रोताओं को इन अर्थहीन किन्तु अनुभुतिपूर्ण स्वरों में भी मानवीय संवेदनशीलता अनुभव होने लगी"।[1] इससे स्पष्ट है कि लोक वाद्यों के कुक्ष से ही शास्त्रीय वाद्यों का विकास हुआ है।

मध्यकालीन भारत में 36 वाद्य–यंत्रों का उल्लेख हुआ है[2]। इन वाद्यों में अधिकांश लोक वाद्य हैं जो किंबहुना आज भी प्रचलित हैं। संगीत कुल–भूषण पं. तानसेन ने समस्त वाद्यों को वर्गीकृत करते हुए उनकी बनावट तथा विशेषताओं को निम्न प्रकार से छन्दोबद्ध किया है –

तत को पहिले कहत हैं, वितत दूसरो ठान।
तीजे घान चौथे सिखार, तानसेन परमान।
तार लगे सब साज के, सो तत ही तुम मान।
चरम मढ़यों जाको मुख रवि ततलुक है बखान।।
कंस ताल के आदि दे, घन जीय जानहु मीत।
तानसेन संगीत रस बाजत सिखार सुनीत।।[3]

---

1. *डॉ0 सत्या गुप्ता : 'खड़ीबोली का लोक साहित्य' पृ0 158–59 ।*

2. *"चतुर्भुज दास कथित 'खटऋतु की वार्ता" में 36 वाद्य–यंत्रों का उल्लेख हुआ है। – बीना चीन, मुरली, अमृत कुण्डली, जलतरंग, मदनभेरी, धौंसा, दुन्दुभी, निसान, नगाड़ा, शंख, घंटा, मुहचंग, सिंगी, खंजरी, ताल, षटताल, मंजीरा, गुहरि, थारी, झालर, ढोल, ढप, डिमडिम, झांझ, मृदंग, गिड़गिड़, पिनाक, रबाब, जंत्र, शहनाई, श्री मण्डल, सारंगी, दूधारी, करताल, तुरही तथा किन्नरी"।*

   – प्रभुदयाल मीतल : अष्टछाप परिचय, द्वितीय संस्करण, पंचम परिच्छेद–अष्टछाप का संगीत (अष्टछाप के वाद्य यंत्र) पृ0 364 ।

3. *तानसेन कृत 'संगीतसार' – अथ बाजे भेद नामान् । उद्धृत डॉ0 सरजू प्रसाद अग्रवाल : 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि', प्रथम संस्कारण, पृ0 362*

   परिशिष्ट – तानसेन की रचनाएं ।

'तंतु' या 'तंत्र-वाद्य'

'सारंगी'

'केंकड़िया'

'तम्बूरा'

'एकतारा'

'डुगडुगी'
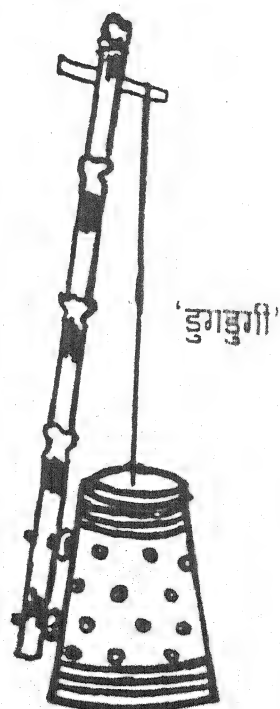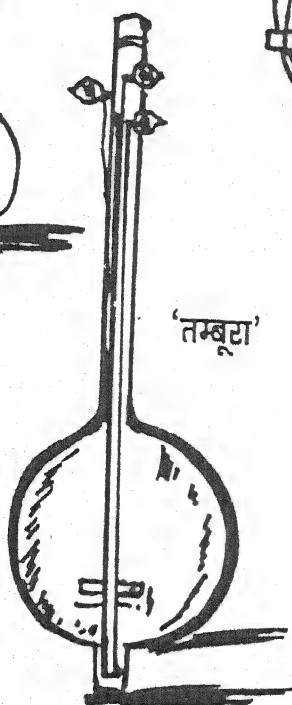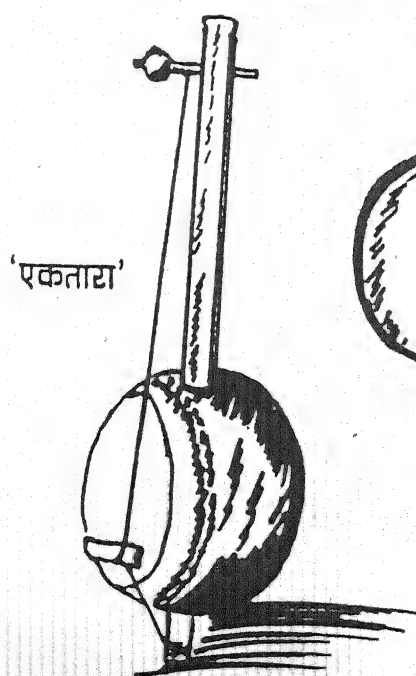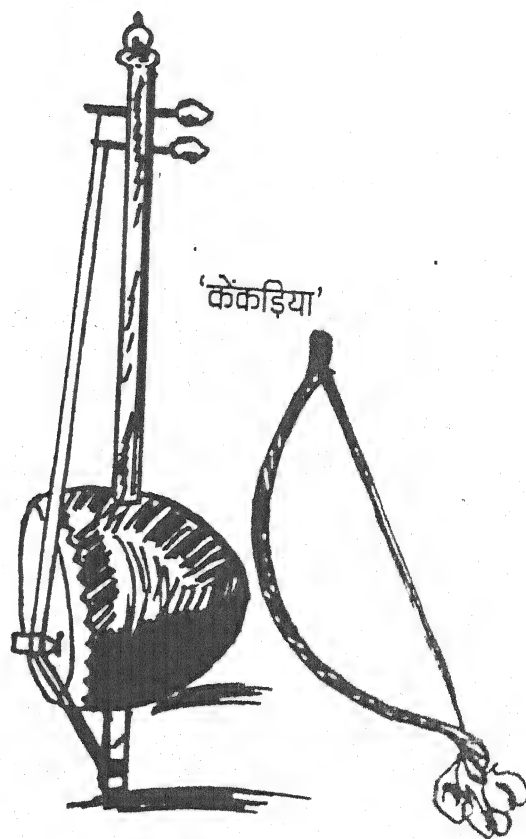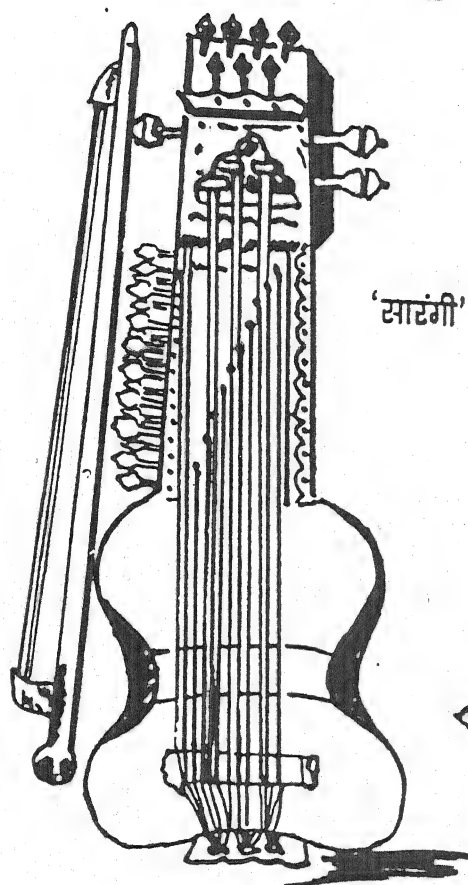
यद्यपि संगीत मार्तण्ड पं0 तानसेन का उपर्युक्त वर्गीकरण शास्त्रीय वाद्यों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है परन्तु इसकी सार्वभौमिकता ने समस्त (शास्त्रीय एंव लोकवाद्य) वाद्यों को अपने पाश में आबद्ध कर लिया है । अतः बुन्देलखण्ड में प्राप्त लोक वाद्यों का उपर्युक्त कोटियों के प्रकाश में अध्ययन करना समीचीन जान पड़ता है ।

(क) तंतु या तंत्री वाद्य

तार या तंतुओ से बने होने के करण इसे 'तंतु या तंत्रीवाद्य' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसकी बनावट तथा विकास की सम्भावनाओं पर अभिमत स्थिर करते विद्वानों का निष्कर्ष है कि – "मनुष्य कृषक बनने के पूर्व आखेटक था। इस आखेटक के पास अन्य अस्त्र शस्त्रों के अतिरिक्त धनुष भी था। बाण छोड़ते समय धनुष की डोरी मे कम्पन होने से जो ध्वनि उत्पन्न हुई होगी, उसको उसने अपने संगीत में सम्मिलित करना चाहा होगा"।[1] और यही आधार है तंत्री वाद्य के प्रादुर्भाव का। बुन्देलखण्ड में सारंगी, तंबूरा, (इकतारा) रेकड़िया, डुगडुगी आदि लोकवाद्यों के रूप मे प्रचलित हैं।

1. सारंगी : –

यह तंतु या तार वाद्य है। सागवान की लकड़ी से बनी सारंगी में 26 तार होते हैं जो इसके माथे में स्थित खूंटियों से बंधे होते है। ऊपर की मोटी ताँतें बकरी की आंतों की बनी होती है। पीतल, ताँबे या स्टील की बनी तेरह तुरमों को चार बड़ी खूंटियों में बांध दिया जाता है। घोड़े के बालों से बंधे गज (धनुष) द्वारा इसे बजाया जाता है। वैसे तो यह जोगी जाति का विशेष वाद्ययंत्र है फिर भी लोक तथा शास्त्रीय संगीत में समान रूप से समादृत है।

2. तंबूरा (इकतारा) : –

औसत गोल कद्दू या तुम्बे के खोल में लगभग दो या ढाई फुट लम्बा एक बांस का डंडा लगा दिया जाता है। तुम्बे के ऊपरी भाग को काट कर बकरी के चमड़े से

---

1. *श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग : सम्पादक संगीत पृ0 160 ।*

'अवनद्ध-वाद्य'

'ढोलक'
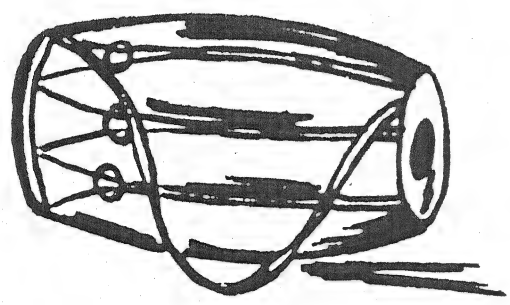
'ढोल'
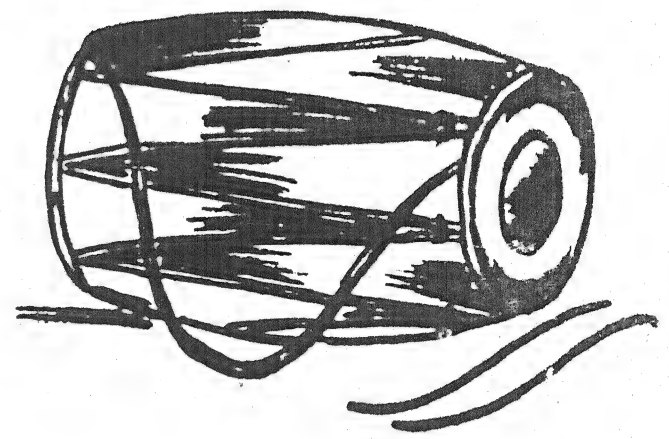
'ढपला'
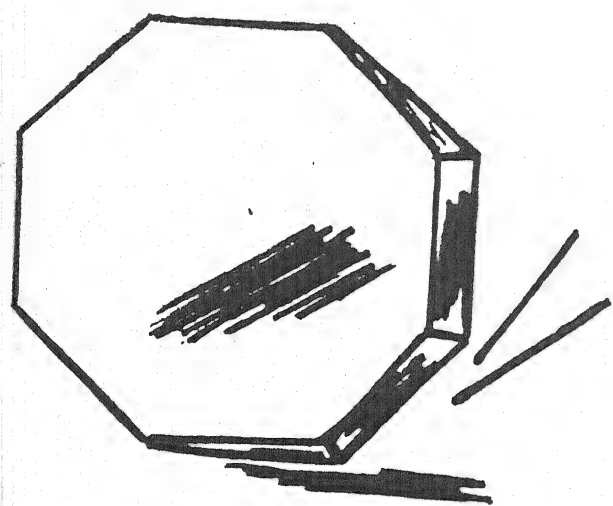
'ढपली'
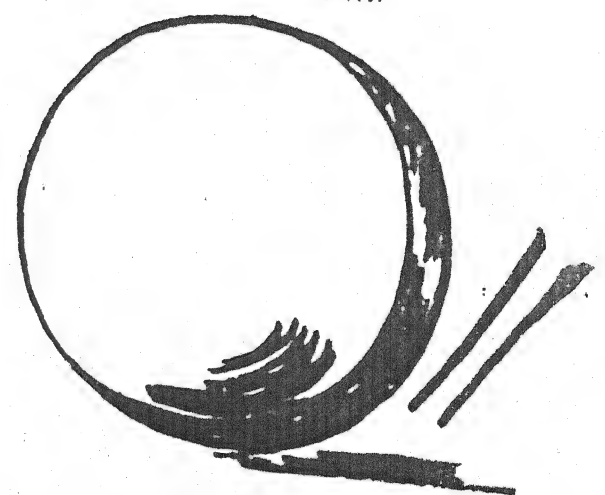
'ढप'
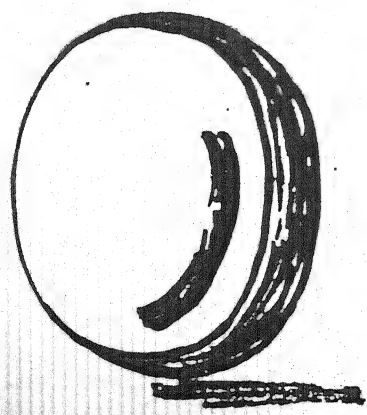
'ढाक'
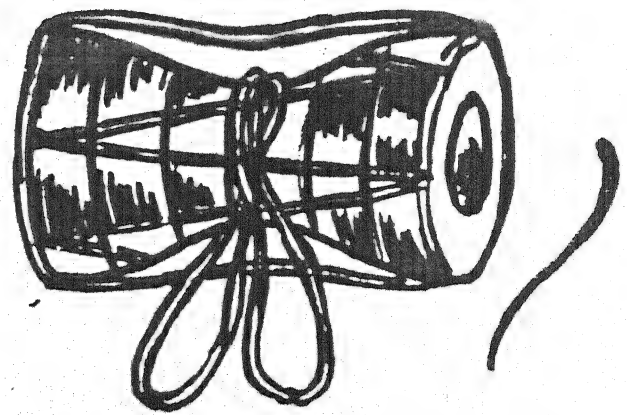
मढ़ दिया जाता है। बांस के ऊपरी हिस्से में लकड़ी की खूंटी होती है। उस खूंटी से लेकर बांस के निचले हिस्से में एक तार बांध दिया जाता है। तार को ऊपर वाली खूंटी से चढ़ाया, उतारा जाता है तथा उंगलियों से तानपूरा जैसा इसे बजाया जाता है। एकतार वाले को इकतारा तथा चार तार वाले को चौतारा या तंबूरा कहा जाता है। बुन्देलखण्ड में साधु–संत तथा जोगी भजन गाते समय इसे बजाते हैं।

3. रेकड़िया : –

यह अति प्राचीन तंतु वाद्य है बुन्देलखण्ड में इसे रू–रू के नाम से जाना जाता है। नारियल के आधे हिस्से को काट कर उस पर चमड़ा चढ़ा दिया जाता है। नारियल के खोल में लगभग एक से डेढ़ फुट लम्बे बांस के टुकड़े को लगा दिया जाता है। बांस की ऊपरी खूंटी से नारियल तक घोड़े के बाल बंधे होते हैं तथा एक पतला तार भी बंधा होता है। चर्म–अवनद्ध हिस्से के बीच एक लकड़ी का टुकड़ा लगा होता है जो इस वाद्य को चढ़ाने–उतारने के काम आता हैं। इसको घोड़े के बालों बंधे गज से सारंगी जैसा बजाया जाता है। बुन्देलखण्ड में इसका उपयोग लोक गाथाओं को गाते समय किया जाता है। ढिमरियाई लोक नृत्य के साथ भी इसे बजाते हैं।

4. डुगडुगी : –

यह तंतु वाद्य इकतारा जैसा होता है। इकतारे में जहां तुम्बी का प्रयोग करते हैं, इसमें टीन के डिब्बे का। टीन के डिब्बे के बीच एक डेढ़ फुट लम्बा बांस का टुकड़ा लगा दिया जाता है। बांस के ऊपरी हिस्से में एक खूंटी लगी होती है तथा उस खूंटी से डिब्बे के बीच एक लोहे का तार कसा होता है जिसे उंगलियों से बजाते हैं। इसकी ध्वनि अत्यन्त मधुर होती है। सस्ते इस वाद्य को बुन्देलीजन बड़ी तन्मयता से बजाते हैं।

(ख) अवनद्ध–वाद्य

अवनद्ध का शाब्दिक अर्थ है चारों ओर से छाया या मढ़ा हुआ। जो वाद्य–यंत्र अन्दर से खोखला तथा ऊपर या मुख पर चमड़े मढ़े होते हैं उन्हें अवनद्ध अथवा वितत वाद्य कहते हैं। बनावट के अनुसार इनमें एक अथवा दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है।

इन वाद्य–यन्त्रों को हाथ या किसी दूसरी वस्तु की सहायता से बजाया जाता है। बुन्देलखण्ड में प्रचलित अवनद्ध लोकवाद्यों में ढोलक, ढोल, ढपला, ढपली, ढप, ढाक, मृदंग (पखावज) डमरू, डहरू, हुड़क, नगाड़ा, नगड़िया, खंजड़ी, तांसा, चंग, नौबत, धौंसा, नाहर धौंकनी, आदि उल्लेखनीय हैं।

1. **ढोलक :–**

"गायन के पीछे ढुलकती हुई चलने के कारण इस वाद्य ने ढोलक का सम्बोधन पाया"[1] बुन्देलखण्ड के लोकवाद्यों में सर्वप्रचलित तथा सर्वप्रिय लोकवाद्य है। इसका प्रयोग लोकगीतों के गायन में स्त्री–पुरुष समान रूप से करते हैं। लोक जीवन में इसकी उपयोगिता सर्वाधिक है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त समस्त संस्कारों के अवसर पर इसका वादन किया जाता है।

ढोलक शीशम, सागवान, आम या बीजा की लकड़ी का खोल होता है जिसका दाहिना मुख, बायें मुख की अपेक्षा व्यास में कुछ छोटा तथा बीच में अपेक्षाकृत उठा होता है। इसके दोनों पार्श्वों में बकरी का चमड़ा मढ़ा होता है। बायीं ओर का चमड़ा दायीं ओर की अपेक्षा कुछ मोटा होता है। सूत की डोरी से बायां तथा दायां मुख आपस में कसा होता है। रस्सी पर लगे सूत, लोहा, या पीतल के छल्लों की सहायता से इसे चढ़ाया–उतारा जाता है। ढोलक के मुख पर स्याही लगी होती है। इसे दोनों हाथों से बजाते हैं। इसकी ध्वनि बहुत दूर तक जाती है।

2. **ढोल :–**

ढोलक का बड़ा रूप ढोल कहलाता है। इसका मुंह ढोलक की अपेक्षा चौड़ा होता है। यह बकरे अथवा भैंस के चमड़े से आच्छादित होता है। यह टेढी मुंहदार बेंत या लकड़ी की सहायता से बजाया जाता है। यह रामदल, अखाड़े, धार्मिक या सांस्करिक अवसरों पर बजाया जाता है। मोहम्मदीय–मुहर्रम के त्योहार का यह मुख्य वाद्य है।

---

1. के० वासुदेव शास्त्री, 'संगीत–शास्त्र', पृ० 282 ।

3. ढपला :–

पूर्वी उत्तर–प्रदेश (भोजपुरी–क्षेत्र) में इसको 'डफरा' कहते हैं। यह चमार–जाति का मुख्य लोकवाद्य है। जिसे मांगलिक अवसर पर गीत–नृत्य के साथ बजाया जाता है। यह अष्टकोणीय या षटकोणीय होता है,, यह आठ या छः बराबर लम्बाई तथा चौड़ाई एवं कुछ कम मोटाई की लकड़ी की पटरियों से अष्ट या षटकोणीय बनाया जाता है। यह एक ओर बकरे के चमड़े से मढ़ा होता है तथा दूसरी ओर तांत से जालीनुमा बुना होता है। वादक के दाहिने हाथ में सीधी लकड़ी तथा बांयें हाथ में बांस की पतली पनच होती है। इसको चढ़ाने के लिए धूप या आग दिखाई जाती है। बुन्देलखण्ड में यह धार्मिक अवसरों तथा संस्कारों पर बजाया जाता है। ढपले पर बजता 'कहरवा' ताल सुखद लगता है।

4. ढपली :–

यह ढपले से अपेक्षाकृत छोटी होती है। इसे ढपलिया भी कहते हैं। इसका गोल घेरा लकड़ी या स्टील की चादर से निर्मित होता है।

5. ढप (डफ) :–

इसका निर्माण लकड़ी के गोल घेरे पर एक ओर उड़द की दाल से बकरे या भैंस का चमड़ा चिपका कर किया जाता है। भक्ति से संबंधित गीतों तथा मोहम्मदीय त्योहारों में इसका प्रयोग होता है।

6. ढाक :–

"कदाचित् इसका मूल 'डहका' रहा होगा । इसे 'डफ' का बड़ा रूप भी कहा जा सकता है।"[1] यह 'डमरु' या 'हुड़क' जैसे आकार–प्रकार का तथा उससे बड़ा होता है। यह पीतल की खोल, जिसके दोनों मुंह पर बकड़े का चमड़ा रस्सियों की सहायता से कसा होता है। बजाने वाला बैठकर दोनों पंजों के ऊपर कपड़ा रख, इसे रखता है तथा दोनों पैरों के अंगूठे में इसके ताने–बाने की रस्सी को फंसा लेता है। बीच की बड़ी

---

1. *श्याम सुन्दर बादल, "बुन्देली–फाग–साहित्य" पृ0 66 ।*

'मृदंग' (पखावज)

'डमरु'

'डहरू'
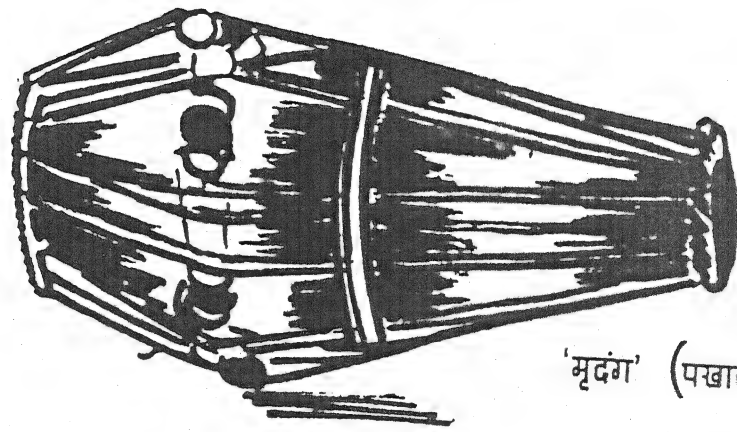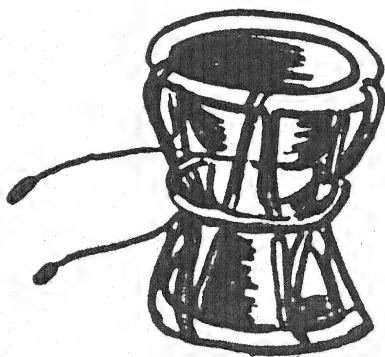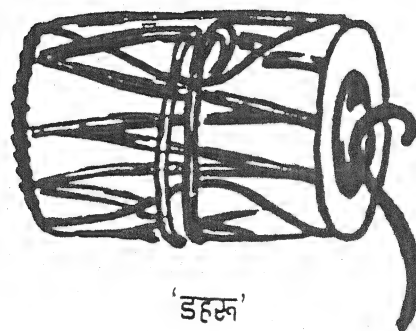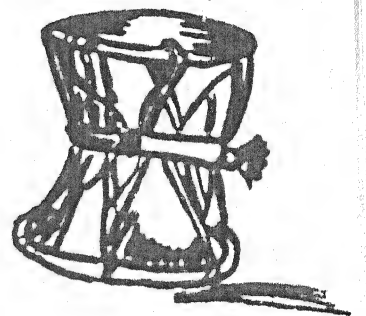
'हुड़क'
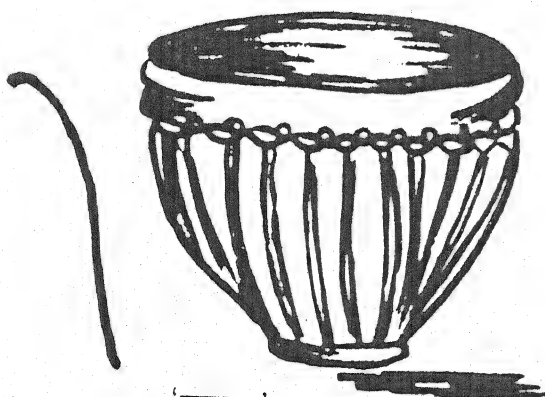
'नगाड़ा'
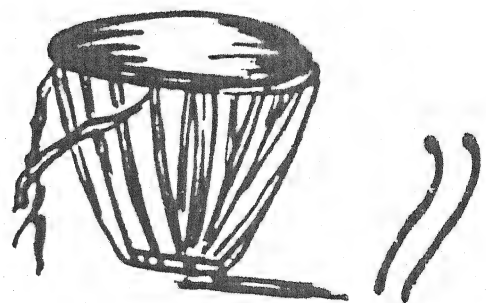
'नगड़िया'

रस्सियों को दोनों घुटनों में डाल देता है। पतली घुमावदार लकड़ी के चमड़े पर आघात करते हुए पंजों में फंसी रस्सी को नीचे–ऊपर करता जिससे घुटनों में फसी रस्सियों में खिंचाव के कारण गूंज पैदा होती है। इस वाद्य का प्रयोग कारस देव की गोटें, कन्हैया गाते या 'भगत' लोग अपने 'इष्ट' को प्रसन्न करने के लिए करते हैं। 'फाग' गाने में भी इसका उपयोग होता है।

7. मृदंग (पखावज) :–

मृदंग भारत का अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। इसकी प्राचीनता को रेखांकित करते हुए 'श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग' ने लिखा है – "यह भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के 'पुष्कल' वाद्य 'पखवाज' का अपभ्रंश है जो कालान्तर में 'पखावज' बन गया। प्राचीन ग्रन्थों में मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक आख्यान प्राप्त होते है। एक मत के अनुसार शिव ने त्रिपुरासुर विजय पर जो नृत्य किया, उसमें संगीत देने के लिए ब्रह्मा ने एक अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया, जिसका ढ़ांचा मिट्टी का था, अतः उसे मृदंग कहा गया।' शिव–पुत्र गणेश ने सर्वप्रथम इस वाद्य को बजाया।"[1]

मृदंग या पखावज ढोलक जैसा ही होता है। यह शीशम, आम, सागौन, बीजे की लकड़ी का लगभग 20 इंच या दो फुट का खोल होता है। बांए मुंह की अपेक्षा दाहिने मुंह का व्यास छोटा होता है। तथा बीच का व्यास अधिक होता है दोनों मुंह बकरे के चमड़े से आच्छादित होते हैं छोटे मुख की ओर स्याही लगी होती है तथा बड़े मुख की ओर गुंधा हुआ आटा स्वर ऊंचा–नीचा करने के लिए आवश्यकतानुसार बजाते समय पानी से चिपका दिया जाता है। इसके ऊपर रस्सी (बद्धी) में लकड़ी के गुटके लगाए जाते हैं। जो इसके चढ़ाने में सहायक होते हैं। बुन्देलीजन आल्हा, फाग, राई, देवी की भगतें, कांड़रा, जवारे आदि गीतों के साथ संगीत के लिए इसको बजाते हैं। यह लोक तथा शास्त्रीय–संगीत दोनों में समान रूप से समादृत हैं।

---

1. *सम्पादक – लक्ष्मी नारायण गर्ग, 'संगीत' मासिक पत्रिका, अप्रैल 1958, पृ0 36।*

8. डमरू :–

डमरु शिव का पर्याय है अतः इसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है। इसी से अन्य अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति मानी जाती है। इसका आकार–प्रकार ढाक जैसा होता है लेकिन ढाक से यह छोटा होता है। इसके दोनों मुखों पर बकरे का चमड़ा रस्सियों की सहायता से मढ़ा होता है। बीच का भाग संकरा तथा दोनों मुखों पर क्रमशः इसकी गोलाई बढ़ती जाती है। बीच में दो रस्सी की लड़ी, जिसके ऊपरी भाग पर गांठ बंधी होती है। हाथ हिलाने पर ये गांठें चमड़े से टकराती हैं तथा डम–डम–डम–डम की आवाज होती है। यह शिव मंदिरों में आरती के समय घंटा–घड़ियाल, शंख आदि के साथ बजाया जाता है। बंदर, भालू नचाने वाले तथा मदारी (जादूगर) इस वाद्य का उपयोग करते हैं।

9. डहरु :–

बुन्देलखण्ड के झांसी तथा सागर क्षेत्र के बाल्मीकि जाति के लोग इस अवनद्ध वाद्य का उपयोग करते हैं। लकड़ी के खोल पर दोनों तरफ कनेर की लकड़ी में चमड़ा मढ़ा यह वाद्य देखने में ढाक जैसा ही होता है एक हाथ से इसकी रस्सियों का पकड़कर खिंचाव पैदा करते हैं तथा दूसरे हाथ से मेंहदी की अर्द्धचन्द्राकार लकड़ी से इसे बजाते हैं।

10. हुड़क :–

हुड़क की बनावट ढाक व डमरु की तरह ही होती है। एक ओर से हाथ से बजाने के कारण यह इन वाद्यों से भिन्न होता है। ढाक की रस्सी को जहां पैर के पंजो तथा घुटने में लगाकर लकड़ी से बजाते हैं। वहीं इसकी रस्सी को बांयें कन्धें में फंसाकर तथा बांये हाथ से इसे बीच में पकड़कर दाहिने हाथ से बजाते हैं। इसे 'देहकी' भी कहते हैं। बुन्देलखण्ड के कहार जाति के लोगों का यह प्रिय वाद्य है।

11. नगाड़ा तथा डिग्गी :–

यह नौटंकी में बजने वाला मुख्य वाद्य है। यह 'नॉंद' के आकार का मिट्टी या लकड़ी का बना होता है। इसके ऊपरी भाग पर तांत की सहायता से चमड़ा मढ़ा होता है। जिसे डंडियों की सहायता से बजाते हैं। बोल निकालने के लिए 'टिमकी' के आकार

'खंजरी'

'तांसा'

'चंग'

'नौबद'
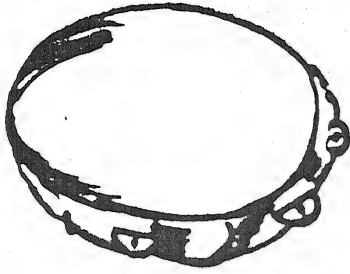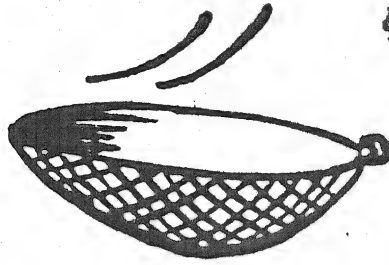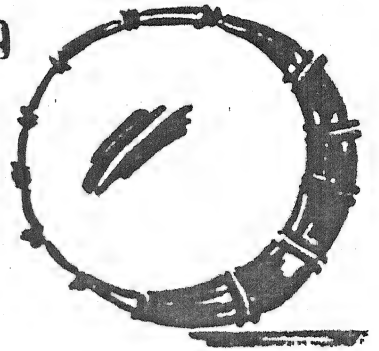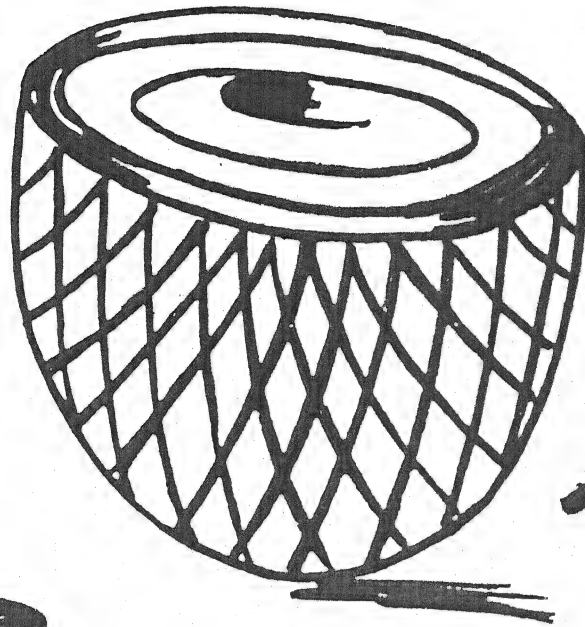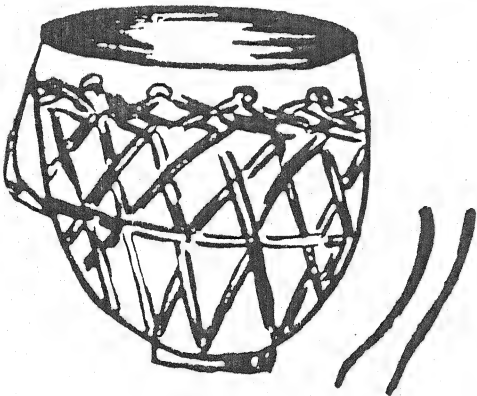
'धौंसा'

'नाहर–धौंकनी'

तथा उससे कुछ गहरी चमड़ा मढ़ी डिग्गी होती है जिसे नगाड़े के पार्श्व में रखकर, नगाड़े तथा डिग्गी को इंड़री पर थोड़ा तिरछा रखकर बजाते हैं। डिग्गी, नगाड़े की सहायिका होती है। इसको चढ़ाने के लिए आग पर सेंकते हैं। नगाड़े और डिग्गी की आवाज़ बहुत दूर तक सुनाई पड़ती है।

12. नगड़िया :—

यह मिट्टी की कटोरेनुमा आकार जैसी होती है। इसके मुंह पर चमड़े को तांत की सहायता से कसा जाता है यह आकार–प्रकार में नगाड़े जैसी होती है। लेकिन उससे आकार में कुछ छोटी होती है। इसे लकड़ी की डंडियों की सहायता से बजाते हैं। इसे चढ़ाने के लिए आग या धूप दिखाते हैं तथा उतारने के लिए इसके मुंह को गीले कपड़े से पोंछते हैं। बुन्देलखण्ड में इसका प्रयोग संस्कारिक अवसरों, देवी–पूजन, भगतें, फागें, राई, दिवारी, जवारे तथा कजरियों आदि के अवसरों पर किया जाता है।

13. खंजड़ी :—

यह लकड़ी के 6 से 8 इंच व्यास का खोल होता है। जिसकी चौड़ई 2 से 3 इंच तथा मोटाई आधा से पौन इंच तक होती है। इसके एक ओर 'गोह' का चमड़ा मढ़ा होता है। चौड़ाई वाले हिस्से में तीन–चार जगह घुंघरु या धातु के छल्ले लगे होते हैं। इसे बांए हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से बजाते हैं। बुन्देलखण्ड में इसका वादन भजन तथा ढिमरियाई–रावला नृत्यों में किया जाता है, यह मूल्य तथा वादन दोनों ही दृष्टि से सस्ता वाद्य है।

14. तांसा :—

यह प्रायः मिट्टी, पीतल, तांबे या लोहे की चादर का तसलेनुमा होता है। इसके ऊपरी भाग पर चमड़ा मढ़ा होता है जिसे रस्सी या तांत की सहायता से कसा जाता है। इसे बांस की खपंच्चियों से बजाते हैं इसकी आवाज़ तेज़ तथा कर्कश होती है। जो बहुत दूर तक सुनाई पड़ती है बुन्देलखण्ड में यह वैवाहिक तथा धार्मिक अवसरों और मुनादी के लिए बजाते हैं।

15. चंग :–

'चंग' बुन्देलखण्ड का अत्यन्त प्रिय वाद्य है। यह पीतल, तांबा अथवा निकल का गोल घेरा होता है। इसके एक ओर चमड़ा मढ़ा होता है, जिसे धातु के हुकों द्वारा फंसाया जाता है। इस पर दाहिने हाथ से थाप देते हैं तथा बाएं हाथ की अंगुलियों में पीतल या लोहे के छल्ले से मेखले पर आघात करते हैं। 'ख्याल' व 'लावनी' गायकों का यह प्रिय वाद्य हैं।

16. नौबत :–

मिट्टी, पीतल या तांबे के नाँदनुमा काफी बड़े खोल के मुंह पर मोटा चमड़ा मढ़ा होता है। जिसे दो डण्डों से बजाया जाता है। बुन्देलखण्ड में आरती के समय मंदिरों में इसे बजाया जाता है। इसकी आवाज़ गम्भीर होती है। राजा–महाराजाओं के महलों तथा युद्ध के अवसरों पर इसका वादन किया जाता था। इससे इसकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

17. घौंसा :–

यह 'नौबत' जैसे ही आकार–प्रकार का लेकिन उससे छोटा होता है। मिट्टी, तांबे या पीतल के नादनुमा खोल पर मोटा चमड़ा मढ़ा होता है। इसे दो उण्डों की सहायता से बजाते हैं। यह मंदिरों में आरती के समय बजाया जाता है।

18. नाहर–धौंकनी :–

यह मिट्टी के मटके के मुंह पर चमड़े से आच्छादित होता है। इसके मुंह के बीचों बीच में एक छेद करते हैं। जिसमें मोर के पंख को जड़ की ओर से डाल देते हैं पानी से गीले हाथ से मटके के मुंह के पास से मोर के पंख को ऊपर की ओर सरकाते हैं। इस क्रिया से उसमें से दहाड़ने जैसी आवाज़ निकलती है। नाहर की दहाड़ जैसी ध्वनि निकलने के कारण कदाचित् इसे 'नाहर–धौंकनी' कहते हैं। बुन्देलखण्ड में तन्त्र–मन्त्र तथा आधि–भौतिक शक्तियों की पूजा–उपासना करने वाले लोग इसे बजाते हैं। इसकी आवाज़ भयानक तथा डरावनी होती है।

'घन-वाद्य'

'करताल'

'चिमटा'

'घट'

'मंजीरा'

'झांझ'
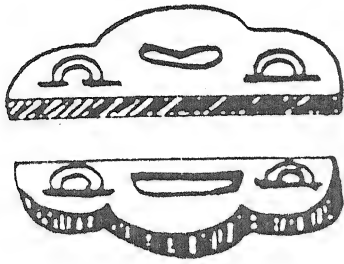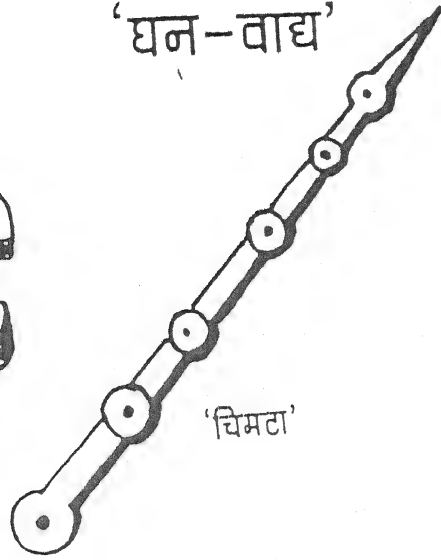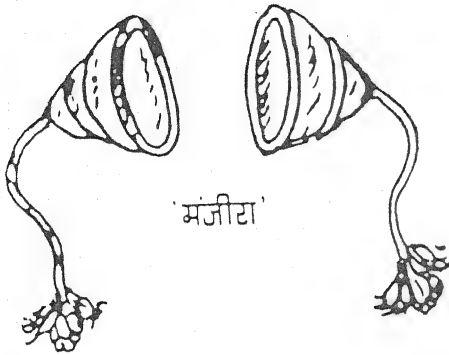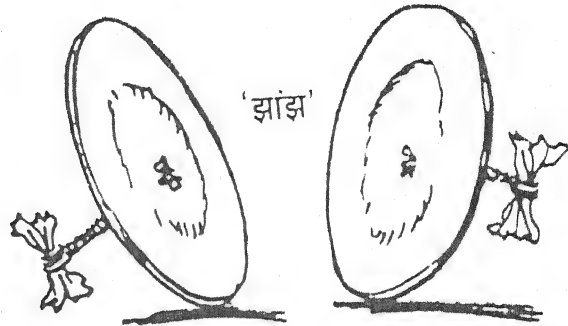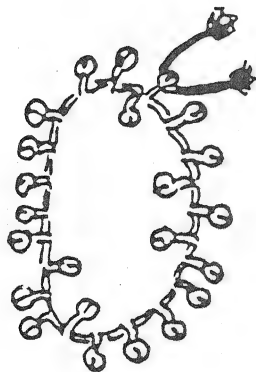
'घुंघरू'
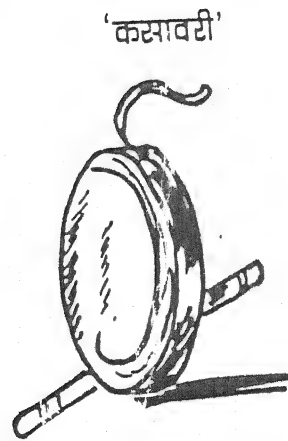
'कसावरी'
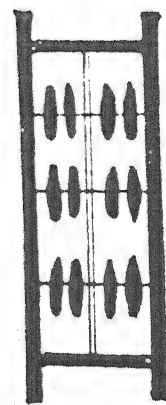
'झींका'

(ग) 'घनवाद्य'

आपस में टकरा कर बजाने के कारण इसे घनवाद्य कहा जाता है। इसका एक नाम 'तालवाद्य' भी है। इसे 'आधासाज' कहा जाता है। बुन्देलखण्ड में झांझ, मंजीरा, खड़ताल, चिमटी, चटकोला, घुंघरु, लोटा, घड़ा आदि घनवाद्य लोकवाद्य के रूप में प्रयोग किये जाते है।

1. झांझ :–

'झांझ' अत्यन्त प्राचीन ताल–वाद्य है। इसका उल्लेख भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, बौद्ध–साहित्य, रामायण, महाभारत आदि पुस्तकों में 'झर्झर' के रूप में मिलता है। यह मंजीरे के आकार–प्रकार का, लेकिन इससे बहुत बड़ा होता है। इसका व्यास आठ अंगुल से लेकर सोलह अंगुल तक होता है। पीतल अथवा कांसे से बने इस वाद्य के मध्य गहराई वाले भाग में छेद होता है जिसमें डोरी डालकर गांठ बांध दी जाती है। बाहरी डोरी में कपड़े को मोटा बांधकर हाथ में पकड़ने योग्य बना लिया जाता है। दोनों हाथों से झांझ के जोड़ें को टकराकर ध्वनि पैदा की जाती है इसका उपयोग आल्हा, फाग तथा भजन में बुन्देली गायक करते हैं।

2. मंजीरा :–

'मंजीरा' प्रसिद्ध ताल–वाद्य है। राम तथा कृष्ण–काव्य में इस वाद्य का उल्लेख हुआ है।[1] सामान्यतया चार अंगुल व्यास का छिछला कटोरेनुमा गोलाकार यह वाद्य फूल, पीतल, कांसा तथा अष्ट धातु का बना होता है। गहराई के बीचोंबीच एक छिद्र होता है जिसमें सुतली या डोरी पिरोई जाती है। इसकी डोरी को हाथ में लपेटकर जब दो मंजीरों को आपस में टकराकर बजाते हैं तो मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का उपयोग भजन, आल्हा, फाग आदि गीतों के गायन में किया जाता है।

---

1. *(क) गीतावली बाल काण्ड पद–2 ।*

   (ख) मंजीरा, दे0 नन्द दास ग्रन्थावली रास पंचाध्यायी 5/8 पदावली पद 192।

3. खड़ताल :–

'खड़ताल' शब्द 'करताल' से बना है। लगभग 9, 10 इंच लम्बे तथा 2, 2½इंच चौड़े लकड़ी के दो टुकड़े होते हैं जिसके ऊपर नीचे के चौड़ाई वाले भाग को लगभग 1, 1½ इंच लम्बा काट देते हैं। इसमें लोहे, पीतल के छल्ले लगे होते हैं। बांए वाले टुकड़े के मध्य अंगूठा तथा दाहिने वाले टुकड़े के मध्य हाथ की शेष चारों अंगुलियों को डालने की जगह बन जाती है। अंगूठे तथा अंगुलियों में पहने इन टुकड़ों को आपस में टकराते हैं जिससे छन–छन की ध्वनि होती है।

4. चिमटा :–

अधिकांशतः ढलाई द्वारा तैयार किया गया लोहे का बना हुआ ये घन वाद्य है। इसका आकार चिमटे की तरह होता है। इसके नीचे के सिरे में एक गोल लोहे का कड़ा लगा रहता है। बजाते समय इसी कड़े से चिमटे पर आघात करते हैं।

5. चटकोला :–

चार या पांच फुट के बांस या डण्डे में ऊपर की ओर चारों तरफ चार लकड़ी के टुकड़े लगे रहते हैं। जो रस्सियों के द्वारा नीचे की ओर जुड़े रहते है बांस के ऊपरी सिरे पर लकड़ी द्वारा निर्मित पक्षी या अन्य किसी भी प्रकार की आकृति लगी रहती है। रस्सी खींचने से लकड़ी के टुकड़ों पर आघात से चट–चट की ध्वनि निकलती है।

6. घुंघरू :–

घुंघरू कांसे की धातु से बने गोल तथा अन्दर से पोले होते है। इसके अन्दर धातु का ही एक कंकड़ रहता है, जो कि बजने पर टकरा कर मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है। इन घुंघरूओं को डोरी में पिरोकर, चमड़े या कपड़े के पट्टे पर टांक कर पैर में बांधने योग्य बना लेते हैं। कई वादक हाथ में बांधकर कई वाद्य यंत्रों जैसे ढोलक, खजड़ी आदि को भी बजाते हैं।

7. लोटा :–

यह कांसे का होता है इसे प्रायः तांबे के सिक्के से बजाया जाता है। इसका प्रयोग प्रायः मंगलिक, संस्कारादि गीतों को गाते समय स्त्रियां करती हैं।

'सुषिर-वाद्य'

'शंख'

'बीन'

'तुरही'
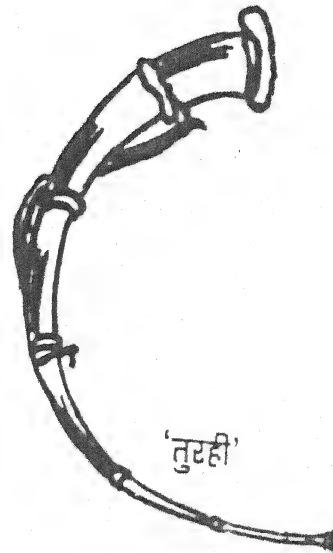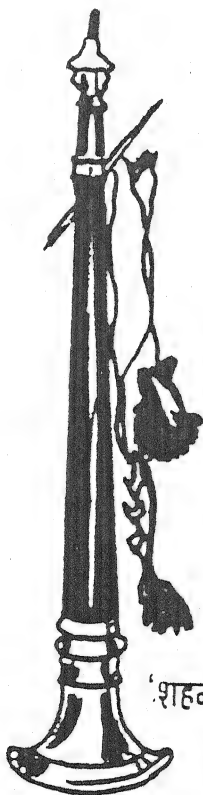
'अलगोजा'

'मदन-भेरी'

'शहनाई'
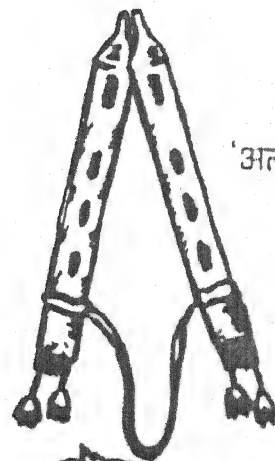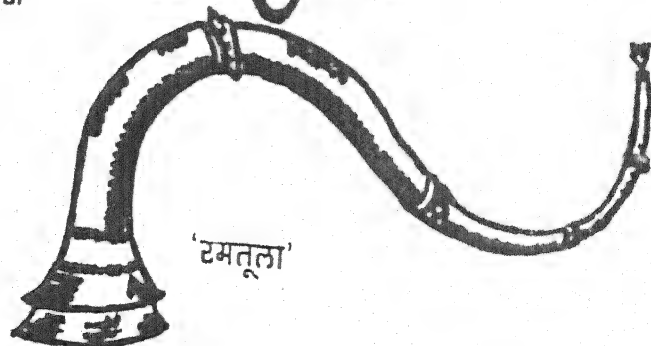
'रमतूला'

8. घड़ा :–

काली मिट्टी से निर्मित इसका मुंह अन्य घड़ों की अपेक्षा छोटा होता है बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग विशेषतः कुम्हार, कहार तथा चमार जाति के लोग अपने जातीय गीतों को गाते समय करते हैं। वादक अपनी बांई हथेली को मटके के मुख पर रखकर थाप देता है तथा दाहिने हाथ से सिक्के या अन्य धातु के टुकड़े से घड़े के मध्य भाग पर आघात करता है इससे सुन्दर ध्वनि निकलती है। इसकी मधुर ध्वनि से प्रभावित होकर आजकल इसे सभी वर्ग के लोग अपना लिए हैं।

9. कसावरी :–

कसावरी कांसे की धातु से निर्मित थाली के आकार जैसी होती है जिसके ऊपरी हिस्से में पकड़ने के लिए एक रस्सी लगी रहती है। इसे लकड़ी से पीट कर बजाते हैं

10. झूला :–

यह लकड़ी का एक फुट लंबा व 6 इंच चौड़ा होता है इसमें लोहे के दो तार लगे रहते हैं। तारों में लोहे की गोलाकार पत्ती लगी रहती है। इस पर आघात करने से मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। इसे झींका भी कहते हैं।

(घ) 'सुषिर वाद्य'

'सुषिर' का शाब्दिक अर्थ है 'सांप का बिल'। जो वाद्य–यंत्र बिल की तरह होते है तथा जिन्हें फूंक कर बजाया जाता है, उन्हें सुषिर वाद्य कहते हैं। डॉ0 राधेश्याम जायसवाल' का मत है कि – "सुषिर–वाद्य प्रायः लोक वाद्य हैं लोक में निर्धनता अधिक है, अतः सस्ते एवं सर्वसुलभ सुषिर वाद्यों को निर्धन एवं निम्न वर्ग के लोगों ने अपना लिया। 'वंशी' इसका अपवाद है।चरवाहे से लेकर अट्टालिका पर रहने वाले प्रेमी बंधु भी वंशी की स्वरावली का आनन्द लेते हैं।"[1] बुन्देलखण्ड में प्रचलित सुषिर लोकवाद्यों में शंख, बांसुरी, बीन, तुरही, शहनाई, मदन भेरी, अलगोजा, रमतूला, टोंटा, पपैया, पुंगी आदि हैं।

---

1. डॉ0 राधेश्याम जायसवाल, 'भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास', पृ0 150 ।

1. **शंख :–**

'शंख' विष्णु का प्रिय वाद्य है। अतः इसकी प्राचीनता निर्विवाद है प्राचीन भारत में युद्ध एवं शान्ति की घोषणा इसके द्वारा की जाती थी।

शंख' समुद्र में रहने वाले जीव विशेष का खोल है बनावट के अनुसार दक्षिणावर्त तथा वामावर्त इसकी दो जातियां हैं। यह अन्दर से बाहर तक घुमावदार होता है। इसके मुंह पर फूंक मार कर इसे बजाते हैं। यह एक मंगल वाद्य है बुन्देलखण्ड में कथा, भागवत आदि के आरम्भ एवं अन्त में इसका बजाना आवश्यक होता है। भगवान की आरती तथा भोगादि में इसका उपयोग किया जाता है। अधिकतर साधू लोग इसे बजाते हैं।

2. **बांसुरी :–**

बांसुरी सबसे प्राचीनतम वाद्य है कदाचित् आदि मानव ने बांस–रन्ध्रों से प्रवेश करती एवं निकलती वायु–ध्वनि की मोहकता पर रीझ कर इसका निर्माण किया होगा। बांसुरी कृष्ण की पर्याय है। 'महाभारत' में इसके लिए 'वेणु' शब्द प्रयुक्त हुआ है। भारतीय प्राचीन–ग्रन्थों, शिल्प–कलाओं तथा भित्ति–चित्रों में इसका स्पष्ट उल्लेख है। बांसुरी, वेणु, वंशी, मुरली इसके कई नाम हैं। मूलतः यह लोकवाद्य था, जिसे विकसित कर शास्त्रीय बना लिया गया। 'शारंगदेव' ने लिखा है – "यह दो हाथ लम्बी होती थी, जिसमें एक मुख–रन्ध्र तथा चार स्वर–रन्ध्र होते थे। इसमें चार स्वर–रन्ध्र होने के कारण ये वाद्य शास्त्रीय संगीत के अनुपयुक्त था। इस वाद्य का उपयोग लोक–संगीत में होता था।"[1] कालान्तर में इसमें सात स्वर विकसित कर इसे शास्त्रीय बना लिया गया, फलतः इसका वादन शास्त्रीय तथा लोक–वादक समान रूप से करते हैं।

यह बांस, लकड़ी, चन्दन, हाथी दांत, लोहा, कांसा, पीतल, चांदी अथवा सोने की बनाई जाती है। अन्य की अपेक्षा बांस की बनी बांसुरी सर्वोत्तम होती है। बांसुरी के मुख्यतः तीन भाग – (1) मुख–नलिका, (2) नली तथा (3) नली के ऊपर समान अन्तर पर छिद्र होते हैं। इसकी आवाज स्निग्ध, गम्भीर तथा मधुर होती है। बुन्देलखण्ड में इसका वादन दिवारी, राई, रसिया तथा फाग आदि पर किया जाता है। साधू तथा मदारी लोग भी इसका उपयोग करते देखे जाते है।

---

1. *डॉ0 राधेश्याम जायसवाल, 'भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास', पृ0 110 ।*

3. बीन :–

'बीन' तुम्बे या लौकी के खोल की बनी होती है। तुम्बी के पृष्ठ भाग में बांस या लकड़ी की नली होती है, जिस पर बांसुरी की तरह समान अन्तर पर छिद्र बने होते है। वादक तुम्बी पर बने मुंह की ओर से फूंक मार कर इसे बजाता हैं सपेरों का यह प्रिय तथा इकलौता वाद्य है।इसकी ध्वनि में सांप को मोहित करने की अद्‌भुत क्षमता होती है।

4. तुरही :–

संस्कृत शब्द 'तूर्य' से तुरही बना है, तांबे अथवा पीतल से बने इस वाद्य–यंत्र की लम्बाई में काफी अन्तर देखा जाता है। इसमें एक नलिका होती है जिसका मुख भाग वाद्य से जुड़ा होता है। फूंककर बजाया जाने वाला यह वाद्य मंगल–वाद्य की श्रेणी में आता है। बुन्देलखण्ड में प्रायः कहार जाति के लोग इसे बजाते हैं। इस दृष्टि से यह जातीय–वाद्य भी है विभिन्न संस्कारोत्सव पर जाति विशेष के लोग घर–घर जाकर इसे बजाते हैं तथा एवज में नेग या इनाम पाते हैं।

5. शहनाई :–

'शहनाई' एक मांगलिक वाद्य है यह लकड़ी या धातु की बनी बड़ी चिलम के आकार की होती है। इसके मुंह पर तीन, चार अंगुल लम्बी तांबे या पीतल की नली लगी होती है, जिसके मुख पर ताड़पत्र या कांसे की दो पत्तियां दूध में भिगोकर लगाई जाती है। इसकी पीठ पर बांसुरी की तरह समान अन्तर पर छिद्र बने होते हैं। फूंक कर बजाए जाने वाले इस वाद्य का स्वर अत्यन्त मधुर और कर्णप्रिय होता है। बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग शादी विवाह, उत्सव तथा लोक नाट्यों में किया जाता है। यह अत्यन्त प्राचीन वाद्य है। शास्त्रीय संगीत में इसका स्वतंत्र वादन भी होता है।

6. मदन–भेरी :–

यह पीतल तथा धातु से निर्मित एक लम्बी नली होती है जो ऊपर की ओर पतली तथा नीचे क्रमशः चौड़ी और गोलाकार होती जाती है। बुन्देलखण्ड में इसका वादन राजा–महाराजाओं के यहां मांगलिक अवसरों पर होता था। युद्ध की सूचना, सेवा के प्रस्थान तथा राजाओं की सवारियों के निकलने पर इसका प्रयोग होता था। अब इसका प्रयोग यदा–कदा ही दिखाई देता है।

7. अलगोजा :–

अलगोजा प्रारंभिक सुषिर–वाद्य है। इसका आकार–प्रकार बांसुरी जैसा होता है तथा यह जोड़े में होता है। इसकी दोनों नलियों में चार–चार छिद्र होते हैं। ये दोनों नली ऊपर की ओर डोरी से बंधी रहती हैं तथा दोनों को मुंह से फूंक कर बजाया जाता है। इसके वादन में बड़ी निपुणता की आवश्यकता है।

8. रमतूला :–

यह तांबे या पीतल से निर्मित होता है इसका आकार अंग्रेजी वर्ण के 'एस' के समान होता है। इसकी नली तीन हिस्सों में बंटी होती है जो मुंह की ओर पतली तथा मध्य और अन्त की ओर क्रमशः चौड़ी होती जाती है। भोजपुरी प्रदेश में इसे 'सिंहा' कहते हैं। संस्कारादि अवसरों पर जाति–विशेष के लोग इसे बजाते हैं तथा एवज में नेग या पारितोषिक पाते हैं।

9. टोटा :–

छः छिद्र वाले इस वाद्य का आकार ऊपर की ओर पतला तथा नीचे की ओर क्रमशः मोटा तथा गोल होता जाता है। इसके मुंह में लोहे का एक ढक्कन सा लगाकर इसे बजाते हैं।

10. पपैया और पुंगी :–

यह बच्चों का प्रिय वाद्य है। जिसे वह खेल तथा मनोरंजन के लिए बजाते हैं। इन वाद्यों का निर्माण भी वे स्वयं करते हैं। पपैया आम की गुठली का बनता है। गुठली के छिलके के नीचे का मुलायम हिस्सा निकाल कर पत्थर पर घिसा जाता है, जिससे गुठली का अग्रभाग घिसकर पतला हो जाता है तथा उसके दोनों दलों के बीच पतली सी खोखली जगह हो जाती है। इसमें फूंकने पर पी–पी–पी की आवाज़ आती है।

'पुंगी' बरगद, पीपल या ताड़ के पतों से बनाई जाती है। पत्ते को गोलाई में मोड़कर इसके पतले हिस्से को दबा देते हैं। फूंकने पर इसमें से पी–पी की आवाज़ आती है। बुन्देलखण्ड में आज भी बच्चों को इसे बजाता हुआ देखा जाता है।

❑

उपसंहार

'उपसंहार'

"प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः"

– *महाभारत, उद्योग पर्व 43-36*

लोकों का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाला मानव ही सर्वदर्शी होता है। अर्थात् लोकजीवन जो अनुभूति के स्तर पर हृदयंगम करता है, मानस–चक्षु से देखता व परखता है, वह सर्वदर्शी बन जाता है।

लोक को कुछ शब्दों में बांधना कठिन ही नही, वरन् लगभग असम्भव है। लोकगीतों के माध्यम से लोक के यथार्थ से साक्षात्कार हुआ। निरन्तर बढ़ते जा रहे सीमेन्ट के जंगलों के बीच खोती जा रही इस सम्पदा को संगीत (स्वर लिपि) के माध्यम से बांधने व बचाने का प्रयास इस शोध का मुख्य ध्येय रहा है। गॉवों का शहरीकरण होने के कारण लोकगायकों व लोकगीतों को उतना प्रश्रय या महत्व नहीं मिल पा रहा है, जो अपेक्षणीय है। पारम्परिक लोकगीतों का स्थान बुन्देली गीत लेना चाह रहे हैं। लोक गायकी की स्वाभाविकता पर भी प्रहार हो रहे है। उनका सहज, सरल, स्वाभाविक श्रृंगार अब क्लिष्ट व बनावटी होता जा रहा है। लोकगीतों की पारम्परिक धुनों व लयों में भी परिवर्तन हो रहा है। बुन्देली लोकगीतों को आडम्बरयुक्त, उसमें अनावश्यक वाद्यों तथा पाश्चात्य वाद्यों के जखीरे का प्रयोग कर कैसेट बनवाकर सस्ती व शीघ्र लोकप्रियता पाने के चक्कर में उसकी आत्मा के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है।

ऐसी स्थिति में बुन्देली लोकगीतों की पारम्परिक धुनों को, लय को, शैली व उसकी आत्मा को स्वरलिपि के माध्यम से बचाने का इस शोध का यह एक भगीरथ प्रयास है।

बुन्देली लोकगीतों के अभी तक साहित्यिक दृष्टिकोण से वर्गीकरण हुए हैं। परन्तु इस शोध में संगीत की दृष्टि से वर्गीकरण किया गया है। इसमें यह भी प्रयास किया गया है कि समस्त बुन्देली लोकगीतों का प्रतिनिधित्व हो सके।

इस शोध–कार्य में जीवन्तता तथा वैज्ञानिकता है। अभी तक हुए कार्य में संगीत का बोध विषयक ज्ञान न होने के कारण एक प्रकार की जड़ता थी, तथ्यों की कमी थी, जिसे इस शोध कार्य में दूर करने का प्रयास किया गया है। साहित्य व संगीत के सामन्जस्य से इस कार्य में सम्बद्धता, गतिशीलता, लयात्मकता, तारतम्यता तथा तथ्यात्मक

बोध है। अतः यह बुन्देली लोकगीतों के अध्ययन की सांगीतिक, तार्किक परिणिति है।

बुन्देली लोकगीतों का मात्र संकलन करके ही कार्य की इतिश्री मान ली गई है। विभिन्न पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जबकि बुन्देली लोकगीत असाधारण है। यह प्रतिध्वनित होते हैं। बिना संगीत के इनका औचित्य नहीं है। केवल पढ़े जा सकते हैं, गाए नहीं जा सकते हैं जो इनका मौलिक गुण है। यह तो कंठ में ही रूचिकर व आनन्दित होते हैं, पुस्तकों में नहीं। निरन्तर यह कंठ में बने रहें इसके लिए इनका यथारूप में स्वरांकन उपयोगी व अत्यावश्यक है।

बुन्देलखण्ड में लोकगीतों की यह सम्पदा सिर्फ बिखरे हुए शब्द नही हैं, वरन् एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इनमें संगीत बोध है। आवश्यकता थी एक भूगर्भशास्त्रीय दृष्टि की। जिसके द्वारा इसके संकलन व सांगीतिक – अनुशीलन से लोकगीत जीवित हो सकें। निरन्तर इसी तरह के प्रयास आगे भी इस बुन्देली धरोहर को मौलिक स्थिति में जीवित रख़ सकेंगे। इसको विलुप्त नहीं होने देना है वरन् वर्तमान से जोड़कर इसकी परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखना है।

अध्ययन व अनुसंधान की अवधि में बुन्देली लोकगीतों में कई विशेषताएं देखने को मिलीं जैसे –

'बुन्देली–लोकगीतों में प्रायः प्रश्नोत्तर विधा दिखाई दी –

1. प्र0 – काहे को तेरो बनों पालना काहे की लागी डोर।
   उ0 – चन्दन को तेरो बनो पालना रेसम लागी डोर।

2. प्र0 – कौना सहर की जा बिंदिया और कौना की धरी रवार।
   उ0 – झांसी सहर की जा बिंदिया और पन्ना की धरी रवार।

बुन्देली लोकगीतों में 'स्वर व ताल' प्रधान नहीं है, बल्कि 'धुन व लय' प्रधान है। रिकार्डिंग के दौरान एक 'फाग' के साथ 'अलगोजा' बज रहा था। उस अलगोजे में पांच छिद्र (स्वर) थे। संभवतः यह छिद्र दर्शाते हैं कि लोकगीतों मे प्रायः पांच स्वर होते हैं और 'राग' के लिए भी कम से कम पांच स्वर होने आवश्यक हैं।

बुन्देली लोकगीतों की एक विशेषता यह भी है कि संगीत की तीनों विधाएं – गायन, वादन व नृत्य का प्रदर्शन विशेष रूप से एक साथ व एक ही व्यक्ति के द्वारा

लोकसंगीत की कई विधाओं में देखने को मिला जैसे – ढिमरियाई नृत्य में नर्तक केंकड़िया वाद्य बजाते व गाते हुए नृत्य करता है। इसी तरह राई–नर्तक हाथों में 'मृदंग' लेकर गाते हुए पद–संचालन (नृत्य) करता है।

बुन्देली लोकगीतों की एक ऐसी विधा 'लेद' प्राप्त हुई है, जिसकी जन्म भूमि 'दतिया' (म0प्र0) है। इसकी 'शास्त्रीय' व 'लोक' दोनों गायन शैलियां प्रचलित हैं। शास्त्रीय संगीत में इसे 'धमार' ख्याल और ठुमरी की शैली में गाया जाता है। इस प्रकार की 'लेदों' की स्थाई व अन्तरे का पूर्वाद्ध सूहा–सुघराई, यमन कल्याण, काफी, खमाज, झिंझोटी, गारा, पीलू, भैरवी आदि रागों के स्वरों में निबद्ध रहता है तथा विलम्बित धमार, एकताल, झूमरा, आड़ा चारताल और दीपचन्दी तालों में गाते हैं। लोक शैली की लेद की अपनी एक धुन है परन्तु अन्तरे का उत्तराद्ध दोनों में लगभग समान है। अतः यह अपने आप में एक अनुपम उदाहरण है जिसे 'लोकजन' व 'शिष्टजन' अपने–अपने तरीके से गाते हैं।

इसी प्रकार से 'दादरा' भी बुन्देली–लोकगीत की एक विधा है और उपशास्त्रीय शैली में भी 'दादरा' गाया जाता है, जो इससे पूर्णतः भिन्न है।

बुन्देलखण्ड में 'ख्याल' भी लोकगीत की एक विधा है जबकि शास्त्रीय संगीत का ख्याल बिल्कुल भिन्न है।

'स्वांग' बुन्देलखण्ड में लोक–नाट्य की एक विधा है, प्रहसन है और 'स्वांग' गाए भी जाते हैं।

बुन्देली लोकगीतों की स्वरलिपि बनाते समय प्रायः अधिकतर लोकगीतों में 'पीलू' राग के स्वर दिखाई दिए। 'पीलू' राग के सन्दर्भ में एक प्रसंग प्राप्त हुआ है कि बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध 'मल्हार' नामक लोकधुन के स्वर 'पीलू' राग से मिलते जुलते हैं।[1]

बुन्देलखण्ड व ब्रज की सीमा पर विशेष कर ब्रज क्षेत्र में एक छोटा सा पीले रंग का बहुत मीठा फल होता है और 'पीलू' राग (धुन) भी बहुत मीठा है। सम्भवतः इसी समानता को आधार मानकर इस 'धुन' (राग) का नाम 'पीलू' रखा गया हो।

स्वरलिपि करते समय बुन्देली लोकगीतों में कई रागों का आभास व छाया दिखाई दी जैसे – पहाड़ी, पीलू, दुर्गा, बिलावल, देस, खमाज, झिंझोटी, तिलककामोद, भैरवी,

---

1. *महेश कुमार मिश्र, 'मामुलिया', अंक–9, पृ0 56 ।*

शिवरंजनी, सारंग आदि। इन लोकगीतों में अधिकतर ऐसी स्वर–संगतियां प्राप्त हुईं जिनसे अनेक रागों की संभावनाएं जुड़ी हैं।

उदाहरण के लिए – 'म ग रे ग–रे स'–इस स्वर–संगति के आगे यदि 'प़ नी़ स रे ग म' जुड़ जाए तो राग तिलक–कामोद की झलक दिखाई देती है। 'ध म ग' तो–'देस', 'ध़ नी़ स रे ग, रे प म ग रे – 'बिलावल', 'प ध स रे ग – 'पहाड़ी', नी़ ध़ – स रे म ग – झिंझोटी तथा 'सरे रेग गम गम' तो 'नट' आदि इसी तरह अन्य रागों की संभावनाएं पैदा हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त कई लोकगीतों में एक से अधिक रागों के स्वरों का आभास भी दिखाई दिया। लोकगीतों की पहचान उसकी धुन के आधार पर ही की जाती है न कि पद–रचना से। बुन्देलखण्ड में एक ही पद–रचना को विभिन्न धुनों में गाया गया है जैसे – फाग की धुन में, भजन की धुन में, गारी की धुन में, अतः विशेष स्वर–रचना (धुन) के आधार पर ही उसकी पहचान कर लेते हैं।

बुन्देलखण्ड में लोकगीतों की एक ही विधा की गायकी में क्षेत्रीय प्रभाव होने के कारण स्वरों (धुनों) में कुछ अन्तर दिखाई दिया जो स्वाभाविक भी है परन्तु कई गायक एक दूसरे की 'धुनों' को दूषित व परिवर्तित बताते हैं जो उचित नहीं है, क्योंकि क्षेत्र व स्थान बदलने से स्वर–स्थानों में भी अन्तर होना स्वाभाविक है वैसे बुन्देलखण्ड में कहावत भी प्रसिद्ध है – "चार कोस पै पानी बदले आठ कोस पै बानी"।

भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में देवी के गीतों को अनेक नामों से पुकारते हैं जैसे – अचरी, भगत, जस, बीरोठ, लांगुरिया, उमाड़े आदि।

बुन्देलखण्ड में बारहों महीने के अलग–अलग गीत है, यहां तक कि 'कार्तिक मास' के प्रत्येक दिन के अलग–अलग गीत हैं।

बुन्देलखण्ड में लोकगीतों की कई ऐसी विधाएं हैं जिन्हें गाते समय कोई वाद्य नहीं बजता है जैसे–कढैया चढ़ाते समय गाए गीत, श्रम व खेती करते समय के गीत आदि–आदि। परन्तु फिर भी इनमें 'लय' स्पष्ट झलकती है अतः इस तरह के लोकगीतों की स्वर लिपि बनाते समय उसमें लय के वज़न के आधार पर दिखाई देती हुई 'ताल' के अन्तर्गत उसे लिपिबद्ध किया गया है।

लोकगीतों में दो से सात तथा सात से बारह स्वरों (कोमल, विकृत) तक के लोकगीतों की स्वरलिपियां हैं। इसमें स्वरों के अतिरिक्त 'श्रुतियों' का भी प्रयोग देखने को मिला। बुन्देलखण्डी लोकगीत मुख्यतः तीन तालों–दादरा, कहरवा व दीपचन्दी में प्राप्त हुए हैं।

बुन्देली लोक गीतों में लोकवाद्यों के प्रयोग में तुम्बा, तुम्बी, बांस, आम की गुठली, ताड़ या बरगद के पत्ते यहां तक कि घरेलू वस्तुओं चक्की, सूप, चालन, चिमटी, घड़ा, ताली, चुटकी, थाली, लोटा, कटोरा, गगरी की खपरियों आदि को लोकवाद्यों के रूप में प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि लोक मानस के क्रिया–अंगो ने ही लोकवाद्य का रूप ग्रहण कर लिया है। जो प्रत्यक्ष देखने को मिला।

लोकमान्यता है कि लोकगीत किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित नहीं हैं। इसको 'लोक' ने रचा है। स्पष्ट स्थिति यह है कि जिस समय यह गीत रचे गए हैं उस समय ऐसे संसाधन नहीं थे कि इनको परिरक्षित (Preserve) किया जा सकता अतः यह 'श्रुति' रूप में ही कंठ में विराजे रहे। एक दूसरे से सुनकर, थोड़ा कुछ अपने से जोड़कर पीढ़ी दर पीढ़ी इसी स्थिति में गाए जाते रहे। मानव ने समूह में रहते हुए प्रकृति, परिवेश व पर्यावरण से प्रभावित होकर शब्दों में भाव पिरोकर ताने–बाने बुने। लोक ने जो देखा, विचारा, अनुभव किया उसे रच दिया इसी कारण एक ही गीत के अन्तरों में कभी–2 दो या उससे अधिक विचार दिखाई दिए हैं। बुन्देलखण्डी बारामासी गीत में एक ही अन्तरे में कहीं–कहीं' – पूस मास में फूली केतकी' और कहीं–कहीं – पूस मास मे ठंडक पर रई'।

इसका अर्थ यही हुआ कि उनकी अपनी–2 दृष्टि है और यह दोनो ही मान्य होनी चाहिए। कहीं–2 इस बात पर लोग बहस करते देखे गए है कि, नहीं! इस लोकगीत में यह शब्द है, वह नहीं! अपने मन से जोड़ा गया है जबकि कुछ जोड़ने व कुछ हटाने वाले परिवर्तन तो निरन्तर चलते रहे हैं और चलते रहेंगे। इसके लिए हमे लड़ना नही, बल्कि उसे स्वीकार करना चाहिए।

आज हमारे पास लेखनी है, भाषा है, लिपि है, टेपरिकॉर्डर (ध्वनि विस्तारक यंत्र) व अन्य कई ऐसे संसाधन हैं जिनके द्वारा गीतों को, उनके रचनाकारो को, उनकी धुनों आदि को परिरक्षित कर सकते हैं तथा अपनी परम्परा को और अधिक सुदृढ व समृद्ध बना सकते हैं।

प्रस्तुत शोध–कार्य में भी टेपरिकॉर्डर, कैमरा व हारमोनियम आदि का प्रयोग किया

गया है जिससे लोकगीतों की स्वरलिपि बनाने का कार्य सुगमता पूर्वक सम्पन्न हो सका।

गांव–देहात के बुजुर्ग पुरुष एवं महिलाओं के पास जाकर उनके द्वारा गाए लोकगीतों को रिकॉर्ड किया गया। उनके पास आज भी न लेखनी है न ही कोई ऐसा संसाधन, केवल कंठ है। अतः यह सिद्ध हो गया कि लोकगीतों की प्रमाणिकता लोककंठ ही है।

अन्त में मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगी कि अध्ययन, खोज व ज्ञान के क्षेत्र में किया गया कोई भी कार्य अंतिम नहीं, आंशिक होता है। यह शोध–कार्य भी आंशिक सत्य को लेकर एक वृहद्–सत्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास करता है। बुन्देली लोकगीत विषयक यह शोध–प्रबन्ध अग्रिम शोध के लिए शोध–संबंधी संभावनाओं का मार्ग अवश्य ही प्रशस्त करेगा। यह संभावनाएं आगे आने वाली पीढ़ी व अनुसंधित्सुओं का मार्ग प्रशस्त करेंगी ऐसा मेरा विश्वास है।

❐

संदर्भ-ग्रन्थ

संदर्भ–ग्रन्थ

(क) 'संस्कृत वाग्ड.मय के ग्रन्थ'

1. ऋग्वेद : संस्कृत संस्थान, बरेली।
2. अथर्ववेद : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1990।
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद–1974
4. आश्वलायन गृह्यसूत्र : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी–1990।
5. कामसूत्र : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–2
6. गाथा सप्तशती (हालकृत) : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1969।
7. गीता : गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. जैमिनीय उपनिषद् : चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।
9. नैषधीय चरित : चौखम्बा सुरभारतीय–वाराणसी–1983।
10. पद्म पुराण : चौखम्बा संस्कृत सीरीज–वाराणसी।
11. पारस्कर गृह्यसूत्र : चौखम्बा संस्कृत सीरीज–वाराणसी।
12. पालिजात कावलि : मा0 खेलाड़ी लाल संकटा प्रसाद संस्कृत पुस्तकालय कचौड़ी गली, वाराणसी–1972।
13. मनुस्मृति : कृष्णदास अकादमी–वाराणसी–1990।
14. महाभारत : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1990।
15. महाभाष्य : वाणी–विलास–प्रकाशन, वाराणसी–वि0 2044।
16. मेघदूत : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1968।
17. मैत्रायिणी संहिता : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी–1968।
18. शिवगीता : चौखम्बा सुर भारती, वाराणसी–1983।

(ख) 'हिन्दी के ग्रन्थ'

1. (श्री) उमाशंकर–शुक्ल : बुन्देलखण्ड के लोकगीत, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद सं0 2010।
2. (डॉ0) उदय नारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं0 2026।
3. (श्री) उमेश जोशी : भारतीय संगीत का इतिहास, मानस सरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोज़ाबाद, आगरा–1984।

4. (डॉ0) कुन्दन लाल उप्रेति : **लोक साहित्य के प्रतिमान**, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़–1971।
5. (डॉ0) कुलदीप : **लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन**, प्रगति–प्रकाशन, आगरा–3।
6. (डॉ0) कृष्णदेव उपाध्याय :
   1. भोजपुरी लोकगीत : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं0 2008।
   2. **लोक साहित्य की भूमिका** : साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद।
   3. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत : साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद।
7. (डॉ0) कृष्ण लाल हंस : **बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप**, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग–1976।
8. (श्री) केशव चन्द्र मिश्र : चन्देल और उनका राजत्व काल, नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी–सं0 2011।
9. (डॉ0) कैलाश चन्द्र अग्रवाल : **लोकसाहित्य विधाएं एवं दिशाएं**, चिन्मय प्रकाशन, 16/36 डी0 मोती लाल नेहरू रोड, आगरा–1986।
10. गोस्वामी तुलसीदास : श्री रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर–1995।
11. (श्री) गौरीशंकर द्विवेदी : **बुन्देल वैभव**, श्री रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी 'रमेश' बुन्देल वैभव ग्रन्थमाला, टीकमगढ़, (बुन्देलखण्ड) सं0 1990।
12. (श्री) चिन्तामणि उपाध्याय : मालवी लोकगीत, म0 प्रकाशन, जयपुर–1964।
13. (श्री) जगन्नाथ सेठ : सूरदास विविध सन्दर्भों में, बड़ा बाजार, कुमार सभा, कलकत्ता–1979।
14. (श्री) त्रिलोचन पाण्डेय : लोक साहित्य का अध्ययन, लोक–भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग–प्रयाग।
15. (डॉ0) दुर्गा पाठक : **छत्तीसगढ़ी एवं बुन्देली लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन**, राही प्रकाशन, शाहजहांपुर।
16. (श्री) देवेन्द्र सत्यार्थी : **धरती गाती है**, सन् 1948।
17. (डॉ0) धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, लोक–भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
18. (श्री) नान्य भूपाल प्रणीतम् : भरत भाष्य प्रथम खण्ड, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ (म0प्र0) 1961।
19. (श्री) पार्श्व देव : संगीत समय सार, कुन्दन भारती, दिल्ली–1977।
20. (श्री) बलभद्र तिवारी :

1. बुन्देली काव्य परम्परा : बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग, सागर (म0प्र0)
2. बुन्देली लोक काव्य भाषा : बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग, सागर (म0प्र0)
3. बुन्देली समाज और संस्कृति : प्रमोद प्रकाशन, 218 ए, जंगपुरा–दिल्ली।

21. (श्री) बटुक नाथ शर्मा : पालिजातकावलि, मा0 खेलाड़ी लाल, संकटा प्रसाद, कचौड़ी गली–वाराणसी–1972।
22. (आचार्य) ब्रहस्पति :
    1. संगीत–चिन्तामणि, सं0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस–1976।
    2. नाट्य शास्त्र का 28वां अध्याय, ब्रहस्पति पब्लिकेशन्स, साहित्य संगीत संगम, डी/4–सी, दिल्ली–1986।
23. (श्री) भोला नाथ तिवारी :
    1. भाषा–विज्ञान, किताब–महल, इलाहाबाद, सन् 1974।
    2. भाषा विज्ञान कोष, ज्ञान मण्डल लि0 वाराणसी–2020 वि0।
24. (श्री) मदन गोपाल गुप्त : मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली–1968।
25. (श्री) मतंग मुनि : वृहद्देशी, सम्पादक–बालकृष्ण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस (उ0प्र0) 1976।
26. (श्री) मनोहर भालचन्द्रराव : ताल वाद्य शास्त्र, शर्मा पुस्तक सदन, पाटनकर बाजार, ग्वालियर (म0प्र0)
27. (श्री) महावीर अग्रवाल : 'लोकसंस्कृति, आयाम एवं परिप्रेक्ष्य', शंकर प्रकाशन, दुर्ग (म0प्र0)
28. (श्री) माणिक बुआ ठाकुरदास : राग–दर्शन, कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर (राज0) 1987।
29. (श्री) मोती लाल त्रिपाठी : बुन्देलखण्ड–दर्शन, शारदा साहित्य कुटीर, 86 पुरानी नझाई, झांसी–1980।
30. (डॉ0) मोती लाल चौरसिया : बुन्देली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली–1989।
31. (डॉ0) वासुदेव शरण अग्रवाल : 'पृथिवी पुत्र', राम प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा–1960।
32. (डॉ0) वासुदेव शास्त्री : संगीत–शास्त्र, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग (उ0प्र0) 1958।
33. (डॉ0) विद्या चौहान : 'लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', प्रगति प्रकाशन, आगरा–1972।

34. (डॉ0) विनोद तिवारी :

1. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, साहित्य वाणी, इलाहाबाद–1987।

2. बुन्देली बघेली लोकगीतों का सामाजिक, सांस्कृतिक, काव्यात्मक तुलनात्मक अध्ययन, साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1979।

35. (डॉ0) रवीन्द्र नाथ मुखर्जी : भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक–प्रकाशन, दिल्ली–1992।

36. राजा नवाब अली : मारिफुन्नगमात, संगीत–कार्यालय, हाथरस–1974।

37. (डॉ0) रामनरेश त्रिपाठी :

1. कविता–कौमुदी, भाग–5, नवनीत प्रकाशन, प्रा0लि0 बम्बई।

2. ग्राम गीत, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली–1952।

3. ग्राम साहित्य भाग–1, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली–1952।

38. (डॉ0) (आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं0 2017।

39 (श्री) रामचरण मित्र : बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–1969।

40. (डॉ0) रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही', बुन्देली लोकसाहित्य, रंजन प्रकाशन, आगरा–1976।

41. (श्री) राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं0 2017।

42. (श्री) लक्ष्मी नारायण गर्ग : निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस–1978।

43. (डॉ0) लालमणि मिश्र : भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन बी/45-47 कनाट प्लेस, नई दिल्ली–1973।

44. (श्री) शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे : भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज वाराणसी–सं0 2026।

45. शारंगदेव : संगीत–रत्नाकर (हि0अनु0), सं0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस–1975।

46. (श्री) शिव सहाय चतुर्वेदी : बुन्देली लोकगीत, म0प्र0 शासन, साहित्य परिषद, सूचना तथा प्रकाशन, संचालनालय–सन् 1959।

47. (डॉ0) श्याम परमार :

1. **भारतीय लोक साहित्य**, राजकमल, प्रकाशन–बम्बई।

2. **लोकधर्मी नाट्य–परम्परा**, हिन्दी प्रचारक, पुस्तकालय ज्ञानवापी, वाराणसी–1959।

48. (डॉ0) श्याम सुन्दर बादल : **बुन्देली फाग साहित्य**, हिन्दी साहित्य प्रकाशन, हमीरपुर–1964।

49. (डॉ0) श्यामा चरण दुबे : **छत्तीसगढ़ी लोकगीत का परिचय**, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली सन् 1940।

50. (श्री) श्रीकृष्णदास : **लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या**, प्रयाग, 1956।

51. (श्री) श्रीपद वन्द्योपाध्याय : **सितार–मार्ग**, पाप्युलर प्रकाशन, बम्बई, चतुर्थ सं0 1967।

52. (डॉ0) सत्या गुप्ता : **खड़ी बोली का लोकसाहित्य**, राजकमल, प्रकाशन, दिल्ली–1979।

53. (डॉ0) सत्येन्द्र :

1. **ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन**, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा–1949।

2. **मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन**, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–1960।

3. **लोक साहित्य विज्ञान**, डॉ0 शिवलाल अग्रवाल कं0 प्रा0 लि0, नई दिल्ली–1962।

54. (डॉ0) सरजार्ज अब्राहम ग्रियर्सन : **भारत का भाषा सर्वेक्षण**, 1959।

55. (डॉ0) एस0एम0 असगर अली कादरी : **मूर्तिकला का विकास**, सन् 1954।

56. (डॉ0) सुनन्दा पाठक : **हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास**, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली–1989।

57. (श्री) सूर्य किरण पारीक : **राजस्थानी लोकगीत**, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग–1969।

58. (डॉ0) स्वतंत्र शर्मा : **भारतीय संगीत का वैज्ञानिक विश्लेषण**, टी0एन0 भार्गव एण्ड सन्स, 1131 कटरा, इलाहाबाद–1986।

59. (डॉ0) हरदेव बाहरी : **ग्रामीण हिन्दी बोलियां**, किताब महल प्रकाशन, प्रा0लि0 इलाहाबाद–1966।

60. (डॉ0) हजारी प्रसाद द्विवेदी : **हिन्दी साहित्य की भूमिका**, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा0लि0 बम्बई–1962।

61. (डॉ0) हरिशचन्द्र श्रीवास्तव : **राग–परिचय**, संगीत–सदन प्रकाशन साउथ–मलाका, इलाहाबाद–1984,85,93।

(ग) 'आंग्ल भाषा के ग्रन्थ'

1. 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका' खण्ड–10
   'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर' – डॉ0ए0बी0कीथ, लन्दन–1948।
2. 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज', खण्ड–5
3. सेन्सेज ऑफ इण्डिया–1971 उ0प्र0, फोक सांग एण्ड फोक म्यूजिक ऑफ उ0प्र0–डॉ0डी0एम0 सिन्हा।
4. 'साइक्लौजी एण्ड फोकलोर' – आर0आर0मैरट'।
5. 'शार्ट हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर' – हार विट्ज–1907।
6. 'द ग्रोथ आफ लिटरेचर' – चैडविक्स ब्रदर्स–1936।
7. 'द फोक एलीमेंट इन कल्चर' – वी0के0 सरकार कलकत्ता–1917।

(घ) 'कोश–ग्रन्थ'

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, डब्ल्यू, डब्ल्यू थामस, लन्दन–1946।
2. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज, वाल्यूम–5, मैकमिलन के न्यूयार्क सं0 1931।
3. हिन्दी–विश्वकोश : सं0 नगेन्द्र नाथ वसु, विश्वकोष कुटीर, कलकत्ता–1929 वि0।
4. हिन्दी साहित्य–कोष : सं0 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल प्रा0लि0 वाराणसी–सं0 2015।
5. 'स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर माइथालॉजी एण्ड लीजण्ड' न्यूर्याक, 1950 (सं0 मेरियालीश)

(ड.) 'पत्र–पत्रिकाएं'

1. ओरछा गजेटियर
2. 'ईसुरी' पत्रिका : सं0 कान्तिकुमार जैन, बुन्देली पीठ, सागर वि0वि0 सागर (म0प्र0) अंक 1 से 12।
3. 'ईसुरी की फागें' : सं0 (डॉ0) कृष्णानन्द गुप्त, चेतना प्रकाशन, झांसी 1965।
4. 'चौमासा' : सं0 कपिल तिवारी, मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल (म0प्र0)
5. 'छायानट' : उत्तर प्रदेश संगीत अकादमी, लखनऊ।
6. जर्नल ऑफ अमेरिकन फोकलोर, सैम्यूयल पी0 बेयर्ड, वाल्यूम–66, 1953

7. 'मधुकर' : सं0 (श्री) बनारसी दास चतुर्वेदी, कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ (म0प्र0) 1940–44

8. 'मामुलिया' : सं0 नर्मदा प्रसाद गुप्त, बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर।

9. 'लोकवार्ता' : सं0 श्री कृष्णानन्द गुप्त, लोकवार्ता परिषद टीकमगढ़, (मध्य भारत)।

10. 'संगीत' (लोकसंगीत अंक) : सं0 लक्ष्मी नारायण गर्ग : संगीत कार्यालय हाथरस (उ0प्र0) जनवरी 1966, वर्ष 32, अंकर 1।

11. सम्मेलन–पत्रिका (लो0सं0वि0) : सं0 श्रीराम नाथ सुमन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, शक 1917, सन् 1995।

(च) 'लेख'

(श्री) कमलाकर तिवारी, 'गांडीव', (रविवारी विशेषांक) 29 अगस्त, 1967।

1. (डॉ0) वासुदेव शरण अग्रवाल : 'आजकल' नवम्बर–1951।
2. (डॉ0) रामनरेश त्रिपाठी : 'जनपद' खण्ड–1
3. (डॉ0) हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'जनपद', खण्ड–1 अंक–1, अक्टूबर–1952।
4. डब्ल्यू0वाई0 पैरी : 'द ग्रोथ ऑव सिविलाइजेशन' – 1973।

❐